
Printed at the Aryabhushan Press, 915/1 Bhamburda Peth,
Poona City, by A. V. Patvardhan and
Published by V. J. Gharpure, at the Office of
the Collection of Hindu Law Texts,
Angrewadi, Girgaum, Back Road, Bombay 4.

धर्मशास्त्रग्रन्थमाला [ग्रन्थाङ्कः २५ (२)]

श्री

वैद्यनाथदीक्षितीय-

स्मृतिमुक्ताफलम्

आन्हिककाण्डम्

(द्वितीयः खण्डः)



जगन्नाथ रघुनाथ धारपुरे

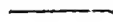
बी. ए., एलएल. बी., ऑनर्स-इन्-लॉ.

पुण्यपत्तनस्थव्यवहारधर्मशालायां मुख्याभ्यापकः

मुंबई विश्वविद्यालयसदस्यः

इत्यनेन संपादितः ।

प्रथमावृत्तिः



शाकाब्दाः १८५९ क्रिस्ताब्दाः १९३८.



(सर्वेऽधिकाराः स्वायत्तीकृताः)

पुण्यपत्तने ' आर्यभूषण ' मुद्रणालये ' अनंत विनायक पटवर्धन ' इत्यनेन मुद्रितः,
मोहमय्यां ' विश्वनाथ जगन्नाथ धारपुरे,' इत्यनेन प्रकाशितम् ।

श्री वैद्यनाथदीक्षितीयस्मृतिमुक्ताफलस्थ- आन्हिककाण्डे विषयानुक्रमणिका

| विषयः | पृष्ठम् | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---------|------------------------------------|---------|
| नाम्ने मुहूर्ते बुध्येत | २०९ | कुशापाणिर्वर्तत | २३० |
| ततः किं कर्तव्यम् | २१० | काम्यपवित्रकम् | २३१ |
| नाम्नमुहूर्तः | २११ | नित्यपवित्रम् | २३२ |
| सध्याया वर्जनीयानि | २१२ | वर्णभेदेन दर्भसंख्या | २३३ |
| अप उपरपृश्य प्राणायामः | २१३ | कुशाभावे सौवर्णादिपवित्राणि | २३४ |
| कृतस्मरिष्यमाणकार्यचित्तनम् | २१४ | गोत्रालपवित्रम् | २३५ |
| तत्र जप्यान् | २१५ | पवित्रनिर्माणम् | २३६ |
| .. दर्शनीयानि, अदर्शनीयानि | २१६ | उत्तवनादेः पवित्रम् | २३७ |
| बलिर्विधायः | २१७ | कुशाहरणम्, तत्प्रकारश्च | २३८ |
| मूत्रपुरीषोच्चारादि | २१८ | कशभेदाः | २३९ |
| तत्र दिग्विचारः | २१९ | ग्राह्या वर्ज्याः | २४० |
| सूत्रस्य कर्णे धारणम् | २२० | दर्भसंख्या | २४१ |
| उच्चारे वर्जनीयस्थलादीनि | २२१ | आचमननिमित्तानि | २४२ |
| शौचविधिः | २२२ | द्विराचमननिमित्तानि | २४३ |
| ग्राह्याग्राह्यमृत्तिकाः, तत्संख्याश्च | २२३ | आचमनापवादाः | २४४ |
| मृत्परिमाणम् | २२४ | दंतच्युतेषु | २४५ |
| अनुपनीतानां शौचम् | २२५ | मधुपर्कादिषु नोच्छिष्टदोषः | २४६ |
| बाह्याभ्यंतरशौचे | २२६ | आचमनप्रशंसा | २४७ |
| गण्डूपाः | २२७ | अकरणे प्रत्यवायः | २४८ |
| आचमनम् | २२८ | दंतधावनविधिः | २४९ |
| दिङ्निनयमः | २२९ | काष्ठानि, तत्परिमाणं च | २५० |
| उदकनियमः | २३० | वर्जनीयानि | २५१ |
| आचमने दिङ्निनयमाः, निषेधाश्च | २३१ | कालनियमः दिङ्निनयमः | २५२ |
| .. पात्रादीनि | २३२ | दन्तधावने वर्ज्यकालः | २५३ |
| ब्राह्म-काय-दैव-पित्र्यतीर्थानि | २३३ | स्नानविधिः | २५४ |
| जलस्पर्शनविधिः | २३४ | स्नानकालः | २५५ |
| आचमनविधिः | २३५ | स्नानप्रशंसा | २५६ |
| आचमनतर्पणयोर्जलस्थलादिसापेक्ष्यम् | २३६ | प्रातःस्नानकालम् | २५७ |
| शुष्काद्रवाससः | २३७ | तत्प्रकारः | २५८ |

विषयानुक्रमिका

| विषयः | पृष्ठम् | विषयः | पृष्ठम् |
|---|---------|--------------------------------|-------------------|
| कालनियमाः ... | ... २४७ | चंद्रसूर्योपरागयोः ... | ... २७२ |
| स्नानांगतर्पणम् ... | ... २४८ | संक्रांत्यादिषु ... | ... २७३ |
| देवर्षिपितृतर्पणम् ... | ... २४९ | अकरणे प्रत्यवायः ... | ... २७४ |
| यक्षतर्पणम् ... | ... २५० | पुण्यकालः ... | ... २७५ |
| जलोत्तरणानंतरकृत्यम् ... | ... २५१ | रात्र्यादिषु ... | ... २७६ |
| वस्त्रनिष्पीडनम् ... | ... २५२ | रजस्वलायाः ... | ... २७८ |
| आर्द्रवस्त्रविसर्जनम्; वासःपरिधानम् ... | ... २५३ | प्रसूतिकायाः ... | ... २७८ |
| अत्र विशेषः ... | ... २५३ | रजस्वलान्योन्यसंस्पर्शे ... | ... २७९ |
| अहतम् ... | ... २५३ | ज्वरादिभिरातुराणाम् ... | ... २७९ |
| उत्तरीयवस्त्रम् ... | ... २५३ | काम्यस्नानानि | ... |
| यज्ञोपवीतानि ... | ... २५३ | माघस्नानविधिः ... | ... २८१ |
| वस्त्रनिष्पीडने विशेषः ... | ... २५३ | मलापकर्षणस्नानम् ... | ... २८१ |
| स्नानम् | ... | तिथिविशेषे ... | ... २८२ |
| स्नानभेदाः ... | ... २५४ | वारविशेषे ... | ... २८४ |
| स्नानार्हजलानि ... | ... २५५ | आश्विनकृष्णचतुर्दश्याम् ... | ... २८५ |
| गर्तलक्षणम् ... | ... २५६ | क्रियास्नानम् ... | ... २८७ |
| परकीयजलादिषु ... | ... २५७ | नदीनां रजोदोषः ... | ... २८८ |
| समुद्रस्नानम् ... | ... २५८ | महानद्यः ... | ... २८९ |
| वर्ज्योदकानि ... | ... २५९ | गौणस्नानानि ... | ... २९० |
| उष्णोदकस्नानम् ... | ... २५९ | सप्तस्नानानि ... | ... २९१ |
| तत्र विशेषः ... | ... २६० | वायव्यसारस्वते ... | ... २९२ |
| मृदाद्याहरणम् ... | ... २६० | ऊर्ध्वपुण्ड्रधारणम् ... | ... २९३ |
| मृद्गोमयादिमंत्राः ... | ... २६१ | तत्फलम् ... | ... २९४ |
| स्नानविधिः ... | ... २६२ | तन्माहात्म्यम् ... | ... २९५, ९६ |
| स्नानफलम् ... | ... २६३ | कचित्तन्निषेधः ... | ... २९७ |
| बोधायनोक्तो विधिः ... | ... २६४ | पांचरात्राद्यागमोत्पत्तिः ... | ... २९८ |
| तीर्थपरिकल्पनम् ... | ... २६५ | तंत्राधिकारी ... | ... २९९ |
| नैमित्तिकस्नानम् ... | ... २६६ | तत्तन्निषेधः ... | ... ३०० |
| प्रमादस्पर्शे ... | ... २६७ | ऊर्ध्वपुण्ड्रनिषेधः ... | ... ३०१ |
| चंडालादीनां व्यवधाने ... | ... २६८ | त्रिपुण्ड्रविधिः ... | ... ३०२, ३०३, ३०४ |
| स्नानाय निमित्तांतराणि ... | ... २६९ | विभूतिधारणं, तत्फलं च ... | ... ३०५ |
| उच्छिष्टादिस्पर्शे ... | ... २७० | ब्रह्मचारिणाम् ... | ... ३०६ |
| अरण्योदयात् पूर्व निषेधः ... | ... २७१ | तिर्यक्पुण्ड्रनिषेधः ... | ... ३०७ |
| रात्रिस्नाने विशेषः ... | ... २७१ | द्विजबंधूनां तंत्रेऽधिकारः ... | ... ३०८ |
| ग्रहणस्नानम् ... | ... २७१ | आग्ने ऊर्ध्वपुण्ड्रधारणम् ... | ... |

| विषयः | पृष्ठम् | विषयः | पृष्ठम् |
|-------------------------------|---------------|-----------------------------------|---------|
| संध्याविधिः; तत्कालः ... | ३१०, ३११ | रुद्रजपः ... | ३४९ |
| अकरणे प्रत्यवायः ... | ३१२ | काम्यजप्यानि ... | ३५० |
| कालभेदेन नामभेदाः ... | ३१३, ३१४ | हरि-राम-विष्णुजप्यानि ... | ३५१ |
| संध्यावन्दनकालः ... | ३१५ | त्रयोदशपञ्चदशाक्षरजपः .. | ३५२ |
| संध्यावन्दनदेशादिविशेषाः ... | ३१६, ३१७ | जपयज्ञप्रशंसा ... | ३५३ |
| प्रोक्षणमार्जनादि ... | ३१७, ३१८ | अभ्युक्षाक्षरणाविधि ... | ३५४ |
| मार्जनप्रोक्षणमन्त्राः ... | ३२० | प्रोक्षणपात्राणि ... | ३५५ |
| अर्घ्यदाने मन्त्रा ... | ३२१ | होमविधिः ... | ३५६ |
| जपदेशः ... | ३२२ | तत्राधिकारिणः ... | ३५७ |
| आसनलक्षणम् ... | ३२३ | अनशिक्षस्य प्रायश्चित्तम् ... | ३५८ |
| न्यासस्थलानि ... | ३२४ | होमे काला. .. | ३५९ |
| प्राणायामविधिः ... | ३२५ | कालातिक्रमे ... | ३६० |
| " लक्षणम् ... | ३२६ | आपन्नन्यासिताग्नेः ... | ३६१ |
| " भेदाः ऋष्यादिकम् ... | ३२७ | समिधः ... | ३६२ |
| " फलम् ... | ३२८ | हविर्द्रव्याणि .. | ३६३ |
| गायत्रीध्यानम् .. | ३२९ | आहुतिपरिमाणम् .. | ३६४ |
| " आवाहनम् .. | ३२९, ३३० | होमप्रकाराः ... | ३६५ |
| " मन्त्रार्थः .. | ३३० | अनूगतेऽग्नौ पुनःसन्धानम् | ३६६ |
| " धिर. .. | ३३१ | मंगलद्रव्यावलोकनम् ... | ३६७ |
| " ऋष्यादि .. | ३३२ | ब्रह्मयज्ञः ... | ३६८ |
| " अक्षरदेवता शक्तयः न्यासः .. | ३३३ | देशादीतिकर्तव्यम् ... | ३६९ |
| " वर्णध्यानम् | ३३४ | नित्यपठनीयानि ... | ३७० |
| न्यासप्रकारः ... | ३३५ | मध्याह्ने विशेषः ... | ३७१ |
| " मुद्राः ... | ३३६ | आपत्कल्पः ... | ३७२ |
| " ध्यानम् ... | ३३७ | ब्रह्मयज्ञप्रशंसा ... | ३७३ |
| " महिमा ... | ३३८ | काम्यब्रह्मयज्ञाध्ययनफलम् ... | ३७४ |
| तत्फलम् ... | ३३९ | द्वितीयभागकृत्यम् ... | ३७५ |
| जपविधिः ... | ३४० | तृतीयभागकृत्यम् ... | ३७६ |
| जपसंख्या .. | ३४१ | चतुर्थभागकृत्यम् ... | ३७७ |
| जपयज्ञभेदाः लक्षणानि च ... | ३४२ | तर्पणादि ... | ३७८ |
| " नियमः .. | ३४३ | बोधायनोक्तम् .. | ३७९ |
| अक्षमाला, रुद्राक्षाः ... | ३४४, ३४५, ३४६ | असामर्थ्ये संक्षेपः ... | ३८० |
| उपस्थानम्, मंत्राश्च ... | ३४७ | यमतर्पणम्; भीष्मतर्पणम् ... | ३८१ |
| अन्यानि जप्यानि ... | ३४८ | महालयादौ परेद्युस्तिरुतर्पणम् ... | ३८२ |
| जपयज्ञः ... | ३४९ | वस्त्रनिष्पीडनम् ... | ३८३ |

| विषयः | पृष्ठम् | विषयः | पृष्ठम् |
|----------------------------------|--------------|----------------------------------|-------------------|
| सूर्याञ्जलिः.... | ... | भोजनपात्राणि, ग्राह्यवर्ज्याणि | ... ४२२ |
| देवपूजनम् | ... | भोजनविधिः | ... ४२१ |
| विष्णुपूजाप्रकारः | ... ३८४ | आपोशनम् | ... ४२२ |
| षोडशै पूजाप्रकारः | ... ३८५ | पंचप्राणाहुतयः | ... ४२३ |
| बोधायनोक्ता पूजा | ... ३८६ | गानहस्तेन पात्रस्पर्शः | ... ४२४ |
| उपचारफलम् | ... ३८७ | आहारप्रमाणम् | ... ४२५ |
| पुष्पपत्रफलादीनि, नैवेद्यादि | ... ३८८, ३८९ | भोजननियमाः | ... ४२६ |
| त्रीशूद्राणाम् ... | ... ३९० | वर्ज्यस्थलादीनि | ... ४२७ |
| मार्गशीर्षार्चनम् | ... ३९१ | पंक्तिभेदः | ... ४२८ |
| शिवपूजा | ... ३९२ | अन्योन्यस्पर्शः, उदक्यादिस्पर्शः | ... ४२९ |
| पंचामृतादिपूजाफलम् | ... ३९३ | श्राद्धे " " | ... " |
| बोधायनोक्ता हरिहरपूजा | ... ३९४ | " उच्छिष्टान्ने " " | ... ४३० |
| पंचमभागकृत्यम् | ... ३९५ | अंजलिना न पिबेत् | ... ४३१ |
| पंचमहायजाः | ... ३९५, १९६ | उच्छिष्टदाने भक्षणे च दोषः | ... ४३२ |
| सायंप्रातर्वैश्वदेवः | ... ३९७ | श्वकाकाद्योपहते | ... ४३३, ४३५, ४३९ |
| वैश्वदेवे वर्ज्यानि ग्राह्यानि च | ... ३९८ | भक्ष्याभक्ष्याणि | ... ४३४ |
| अन्नसंस्कर्तारः | ... ३९९ | मत्याऽमत्या भक्षणे | ... ४३६ |
| बलिहरणम् | ... ४०० | प्रायश्चित्तानि | ... ४३७ |
| बलिदेशसंस्कारः | ... ४०१ | शुक्लादीन्यभक्ष्याणि | ... ४३८ |
| भूतादिभ्यो बलिविसर्जनम् | ... ४०२ | अपेयक्षीराणि | ... ४४० |
| पितृयज्ञः | ... ४०३ | देवतार्पितनैवेद्यभक्षणे | ... ४४२ |
| बलिहरणांते | ... ४०४ | श्राद्धीयान्नभक्षणे | ... ४४२ |
| अतिथिभ्योऽन्नदानम् | ... ४०५ | भोज्याभोज्यान्नाः | ... ४४३ |
| पंचमहायजप्रशंसा | ... ४०६ | भक्षणे प्रायश्चित्तानि | ... ४४४ |
| अकरणे प्रत्यवायः | ... ४०७ | भुंजानस्य फलम् | ... ४४५ |
| श्राद्धे वैश्वदेवकालः | ... ४०८ | अभ्यासानभ्यासे | ... ४४६ |
| आतिथ्यम् | ... ४०९ | शूद्राद्यन्नभोजने | ... ४४७ |
| अतिथिभ्योऽन्नदानम् | ... ४१० | शूद्रेषु भोज्यान्नाः | ... ४४८ |
| यत्रिभ्योऽन्नदानम् | ... ४११ | विष्णुमूत्रादिभक्षणे | ... ४४९ |
| विद्यातपःसमृद्धेषु | ... ४१२, ४१३ | श्राद्धे भुंजानस्य नियमाः... | ... ४५० |
| अतिथिरक्षणम्, तदागमे... | ... ४१४ | ग्रहणे भोजननिषेधः | ... ४५१ |
| श्रोत्रियादौ | ... ४१५ | भक्ष्यमांसानि | ... ४५२ |
| मधुपर्कार्हाः | ... ४१६, ४१७ | मांसवर्जने फलम् | ... ४५३, ४५४ |
| भोजनम् | ... ४१८, ४१९ | भोजनानन्तरं विरामः | ... ४५५ |
| मंदलम्, दिङ्निधनाः | ... | तांबूलमेवनम् | ... |

| विषयः | पृष्ठम् | विषयः | पृष्ठम् |
|--|----------|-----------------------------|---------|
| सायं संध्याविधिः ... | ... | द्रव्यशुद्धिः ... | ४६७ |
| शयनपूर्व पठनीयानि ... | ४५७ | अशुद्धिहेतवः ... | ४६७ |
| दिग्विचारः .. | ४५७ | गवाघातादीनाम् ... | ४६८ |
| साधारणधर्माः ... | ४५८ | सौवर्णराजतताम्रादीनाम् ... | ४६९ |
| सत्यं प्रिय भद्रं ब्रूयात् ... | ४५९ | अल्पोपघाते ... | ४७० |
| सर्वं परवशं कर्म वर्जयेत् ... | ४६० | मृण्मयपात्रादीनाम् ... | ४७१ |
| परशय्यादि ,, ... | ४६१ | भ्यादीनां शुद्धिः ... | ४७२ |
| दीपच्छायादि ,, .. | ४६२ | चण्डालादीनां गृहप्रवेशे ... | ४७३ |
| शुक्ता रुक्षा परुषा वाचो न ब्रूयात् ४६३, ४६४ | ४६३, ४६४ | क्षेत्रारामादौ सहवासे ... | ४७४ |
| परकीयरहस्यानि न शृणुयात् .. | ४६५ | वापीकूपतटाकादीनाम् ... | ४७५ |
| रक्तमातृवस्त्रादि न धार्यम् ... | ४६६ | खीनयादीनाम् ... | ४७६ |

एतत्पुस्तकसंशोधने यानि पुस्तकानि यैश्च सुमनस्कतया
प्रेषितानि तेषां नामानि संज्ञाश्च : यथा

क—भारतमात्रिसंग्रहात् आंग्लदेशतः प्रेषितानि ग्रन्थलिप्यां लिखितानि—

ख—मद्रपुरसंग्रहात्प्राप्तानि ग्रन्थलिप्याम्.

क्ष { सप्तपुरस्य श्रीद्विपिडमहाशयसंग्रहात् रावबहादुर भिकाजी व्यंकटेश द्रवीड
इत्येतेः प्राप्तम् ।

ग—मुद्रितानि—

परमुपकृतं नो धेरिमानि प्रेषितानि—

जगन्नाथ खुनाथ धारपुरे

श्री

स्मृतिमुक्ताफलम् । आन्हिककाण्डम् (२) ।

—•••••—

श्रीगणेशाय नमः । श्रीगुरुचरणारविदाभ्यां नमः । अथेदानीं आन्हिकं प्रस्तूयते ।

तत्र मनुः (४।९२)—

“ ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थावनुचितयन् । कायक्लेशांश्च तन्मूलान् वेदतत्त्वार्थमेव च ” ५

वेदतत्त्वार्थः परमात्मा । तथा च व्यासः—

“ ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय धर्ममर्थं च चितयेत् । कायक्लेशं तदुद्धृतं ध्यायीत मनसेश्वरम् ” ॥

याज्ञवल्क्यः (आ. १।१५)—

“ ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय चिंतयेदात्मनो हितम् । धर्मार्थकामान्श्च कालं यथाशक्ति न हापयेत् ” ॥ इति । १०

ब्राह्मे मुहूर्ते पश्चिमार्धप्रहरे प्रबुद्धः आत्मनो हितं कृतं करिष्यमाणं च वेदार्थरूपं चिंतयेत् ।

ततो धर्मार्थकामान् स्वोचितकाले यथाभवं सेवेत इत्यर्थः इति विज्ञानेश्वरे (पृ. ३२ पं. २४) ।

माधर्वायं पराशरेऽपि ‘ सूर्योदयात्प्रार्थनप्रहरे द्वे मुहूर्ते तत्रार्थो ब्राह्मः । द्वितीये रोद्र ’ इति ।

स्मृत्यर्थसारंऽपि ‘ प्रभात उत्थाय दृष्टं देवतं मनसा नत्वा तदहःकृत्यं स्मरेत् ’ इति । १५

स्मृतिभास्करे—“ रात्रेस्तु पश्चिमे यामं मुहूर्तो ब्राह्म उच्यते ” इति ।

शौनकः—

“ ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय चिंतयेदात्मनो हितम् । गुरुं विष्णुं नमस्कृत्य मातापित्रोस्तथैव च ” ॥ इति ।

विष्णुपुराणे (३।१।१५) —

“ ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय मनसा मतिमान्मृष । विबुध्य चिंतयेद्धर्ममर्थं चाप्यविरोधिनम् ॥ २०

“ अपीडया तयोः काममुभयोरपि चितयेत् ” ॥ इति ।

स्मृत्यंतरेऽपि—

“ षोढा विभज्य रजनीं चरमांशे प्रबोधितः । पत्न्या सह हरिं ध्यात्वा धर्ममर्थं च चिंतयेत् ” ॥ इति ।

स्मृतिरत्नावल्याम्—

“ गृहमेधिनि यत्प्रोक्तं स्वर्गभावनं मुत्तमम् । ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय सर्वं सम्यग्विचारयेत् ॥ २५

“ ब्राह्मे मुहूर्ते देवानां पितॄणां च समागमः । जागरस्तत्र कर्तव्यः पितृसंमाननं हि तत् ॥

“ य इच्छेच्छाश्र्वतीं सिद्धिं यमस्यादर्शनं तथा । सततं तेन कर्तव्यो ब्राह्मे काले प्रजागरः ॥

“ ब्राह्मे मुहूर्ते सेवेतां शयनं यत्र दंपती । श्मशानतुल्यं तद्वेश्म पितृभिः परिवर्ज्यते ॥

“ प्रत्यूषकाले निद्रां च कुरुते सर्वदा तु यः । अशुचिं तं विजानीयादनर्हः सर्वकर्मसु ॥

“ ब्राह्मे मुहूर्ते या निद्रा सा पुण्यक्षयकारिणी । तां करोति तु यो मोहात्पादकृच्छ्रेण शुध्यति ” ॥ इति । ३०

बृहन्मनुः—

“ चत्वारिमानि कर्माणि संध्यायां परिवर्जयेत् । आहारं मैथुनं निद्रां स्वाध्यायं च तथैव च ॥

“आहाराज्जायते व्याधिर्गर्भवेधश्च मैथुनात् । निद्रातो जायतेऽलक्ष्मीः स्वाध्यायादायुषः क्षयः ” ॥

मनुरपि (२१२०-२२१)—

“तं चेदभ्युदियात्सूर्यः शयानं कामकारतः । निम्लोचेद्वाऽप्यनुज्ञानाज्जपन्नुपवसेद्दिनम् ॥

“सूर्येण ह्यभिनिम्लुक्तः शयानोऽभ्युदितश्च यः । प्रायश्चित्तमकुर्वाणो युक्तः स्यान्महतेनसा ” ॥

५ तस्मिन्यस्मिन्कस्मिन्नाश्रमिणि शयाने सति सूर्योऽभिनिम्लोचेदस्तमियादभ्यन्युज्ञानात् ज्ञात्वो-
पोषणात् । एवं वचनादशक्यजानादिषु प्रायश्चित्ताभावः सूचितः । अन्यथा तु प्रायश्चित्ताकरणे
महान्प्रत्यवाय इत्यर्थः ।

आपस्तंबः (२१२१३-१५) “स्वपन्नभिनिम्लुक्तोनाश्वान्वाग्यतो रात्रिमासीत । श्वो
भूते उदक्रमुपसृज्य वाचं विसृजेत् । स्वपन्नभ्युदितोनाश्वान् वाग्यतोहः तिष्ठेत् । आ तमितोः

१० प्राणमायच्छेदित्येके ” इति ।

“सुप्ते यस्मिन्नस्तमेति सुप्ते यस्मिन्नुदेति च । अंशुमानभिनिम्लुक्ताभ्युदितौ तु यथाक्रमम् ” ॥
स्वपन्नभिनिम्लुक्तोनाश्वान्भुंजानस्तूर्णो भूतो रात्रिं सर्वा आसीत न शयीत । अथापरेद्युः
प्रातः स्नात्वा वाचं विसृजेत् । अयमस्य निर्वेषः । आतमितोः यावदंगानां ग्लानिर्भवति
तावत्प्राणायामं कुर्यादित्येके मन्यन्ते इत्यर्थः । शक्त्यपेक्षया विधिकल्पः ।

१५ विष्णुः—

“उत्थायोत्थाय बोद्धव्यं किमद्य सुकृतं कृतम् । दत्तं वा दापितं वाऽपि वाक् सत्या वाऽभिभाषिता ॥

“उत्थायोत्थाय बोद्धव्यं महद्भयमुपस्थितम् । मरणव्याधिशोकानां किमद्य निपतिष्यति ” ॥

व्यासः—

“किं नु मे स्यादिदं कृत्वा । किं नु मे स्यादकुर्वतः । इति संचिन्त्य कार्याणि धीरः कुर्वीत वा न वा ” ॥

२० स्मृतिप्रदीपिकायाम्—

“यस्यां रात्र्यां व्यतीतायां न किञ्चिच्छुभमाचरेत् । तमेव बन्ध्यं दिवसमिति विद्याद्विचक्षणः ” ॥

तत्र जप्यान्याह दक्षः—

“ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरांतकश्च भानुः शशी भूमिसूतो बुधश्च ।

“गुरुश्च शुक्रः शनिराहुकेतवः कुर्वतु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥

२५ “भृगुर्वसिष्ठः क्रतुरंगिराश्च मनुः पुलस्त्यः पुलहश्च गौतमः । रैभ्यो मरीचिश्च्यवनोऽथ दक्षः कुर्वतु ० ॥

“सतत्कुमारश्च सनंदनश्च सनातनोऽप्यासुरि सिंहलौ च । सप्तस्वराः सप्तरसातलानि कुर्वतु ० ॥

“सतार्जवाः सतकुलाचलाश्च सतर्पथो द्वीपवनानि सप्त । भूरादिलोका भुवनानि सप्त कुर्वतु ० ॥

“पृथ्वी सगंधाः सगसास्तथापः स्पर्शश्च वायुर्ज्वलितं च तेजः । नमः सशब्दं महता सहैव कुर्वतु ० ॥

“इत्थं प्रभाते परमं पवित्रं पठेत् स्मरेद्वा शृणुयाच्च भक्त्या ।

३० “दुःस्वप्ननाशो विजयश्च भूयात् दोषग्रहाः शान्तिकरा भवन्ति ” ॥

स्मृतिरत्ने—

“मशभारतमारुहानं भित्तिं गां च नरस्वतीम् । ब्राह्मणान् केशवं चैव प्रातस्तन्याय कीर्तयेत् ॥

“ब्रह्माणं शंकरं विष्णुं धर्मराजं दनुं बलिम् । सप्तैतान् संममेन्नित्यं महापातकनाशनम् ॥

“पुण्यश्लोकां नन्दो गजा पुण्यश्लोको युधिष्ठिरः । पुण्यश्लोका च वैदेही पुण्यश्लोको जनार्दनः ॥

“ पुण्यश्लोको हरिश्चन्द्रः पुण्यश्लोकः पुनरवाः ।

“ कर्कोट्यस्य नागस्य दमयत्या नगर्य च । ऋतुपर्णस्य राजर्षेः कीर्तनं कलिनाशनम् ” ॥

शांटिल्यः—

“ उच्चैः स्वरेण यः प्रातः स्तोतुमिच्छेदनन्यधीः । वासुदेवादिदेवानां नामसंकीर्तनं चरेत् ” ॥

अथ दर्शनीयान्यदर्शनीयानि च दर्शयति कात्यायनः—

५

“ श्रोत्रियं सुभगं गां च गमिगमिचितं तथा । प्रातरुत्थाय यः पश्येद्वापयः स विमुच्यते ॥

“ पापिष्टं दुर्भगं मर्त्यं नशुमुत्कृत्तनासिकम् । प्रातरुत्थाय यः पश्येत् तत्कलेरुपलक्षणम् ” ॥

नम्रपदं बालव्यतिरिक्तविषयम् । अथवा छन्दांगि गाः । न विप्रन्ते गाः यस्य सः नम्रः ॥

अथ बहिर्वितारः । तत्र व्यासः—

“ नक्षत्रज्योतिरारम्य त्वा सूर्योदयदर्शनात् । प्रातःसंध्येति तां प्रातः श्रुतयो मुनिमत्तमाः ॥ १०

“ ततः पूर्वं समुत्थाय प्राचीमेतरेषानिगमेत् । उदीचीं प्रागुदीचीं वा गौचाचारक्षमां दिशम् ॥

“ यत्रोदकं प्रभृतं तु तद्वत्त्वा गौचमाचरेत् ” ॥

माधवीये—

“ नैर्ऋत्यामिण्विक्षेपमतीत्याभ्यधिकं भुवः । दृग्दावमथान्मूत्रं पुरीषं च समाचरेत् ” ॥

तथा चापस्तंबः (१।३१।२)ः— “ आगजावमथान्मूत्रपुरीषे कुर्यात् दक्षिणां दिशं १५ दक्षिणापरां वा ” इति । गत्वेति शेषः । आरात् दूरादित्यर्थः ।

व्यासः— “ प्रतिश्रयादक्षिणपश्चिमं दिशं गत्वा क्षेपमात्रं शरस्य ॥

“ कुर्यात् पुरीषं हि दिशोऽवकुण्ठ्य न तु स्पृशेज्जातु शिरः करेण ” ॥ प्रतिश्रयो गृहम् ।

मनु (४।१५१)ः—

“ दृग्दावमथान्मूत्रं दृग्त्पादावनेजनम् । उच्छिष्टं च निषेकं च दृग्देव समाचरेत् ” ॥ २० एतद्विवाविषयम् । “ अस्तमिते च बहिर्गामादागदादावसथाद्वा मूत्रपुरीषयोः कर्म वर्जयेत् ।

“ रात्रौ मूत्रपुरीषे तु गृहाभ्याधौ समाचरेत् ” इति स्मरणात् ।

अंगिराः—

“ उत्थाय पश्चिमे यामे रात्रेराचम्य चोदकम् । अंतर्धाय तृणैर्भूमिं शिरः प्रावृत्य वाससा ॥

“ वाचं नियम्य यत्नेन धीवनोच्छ्वासवर्जितम् । कुर्यान्मूत्रपुरीषे तु शुचौ देशे समाहितः ” ॥ इति । २५

अनेन यत्र स्वापादिना निमित्तेनाचमनप्राप्तिः तत्राचम्येव मूत्रपुरीषे कुर्यादित्युक्तं भवति ।

तृणान्ययज्ञियानि । तथा च कात्यायनः—

“ शिरः प्रावृत्य कुर्वीत शकृन्मूत्रविसर्जनम् । अयज्ञियैरनार्द्रैश्च तृणैः संछाद्य मेदिनीम् ” ॥

तृणग्रहणं काष्ठादेरपि प्रदर्शनार्थम् । अत एव मनुः (४।४९)—

“ तिरस्कृत्योच्चैरेत्काष्ठलोष्ठपर्णतृणादिनां । नियम्य प्रयतो वाचं संवीतांगोऽवकुण्ठितः ” ३०

तिरस्करणं अंतर्धानम् । उच्चारः पुरीषोत्सर्गः । मूत्रस्याप्युपलक्षणमेतत् ।

“ अयज्ञियैरनार्द्रैश्च तृणैः संछाद्य मेदिनीम् । घ्राणास्ये वाससावेष्ट्य मलमूत्रं त्यजेद् बुधः ” ॥

इति स्मरणात् । संवीतांगः आच्छादितदेहः । अवकुण्ठितः प्रावृतशिराः । अत्र विष्णुः—

“ ब्राह्मणः अनार्द्रेण स्ववाससा वेष्टयित्वा मूर्धानं ग्रीवायां अवसज्योच्चरेत् ” इति ।

हारीतः—

“अप्रावृतशिरा यस्तु विण्मूत्रं सृजति द्विजः । तच्छिरः शतधा भूयादिति देवाः शपन्ति तम्” ॥

बोधायनः (१।५।६८)—“शुष्कं तृणमयाज्ञिकं काष्ठं लोष्ठं वा तिरस्कृत्याहोरात्रयो-
रुदङ्गदक्षिणामुखः प्रावृत्य शिर उच्चरेन्मेहेच्चेति ” । मनुः (४।५०-५१)ः—

५ “मूत्रोच्चारसमुत्सर्गं दिवा कुर्यादुदङ्मुखः । दक्षिणाभिमुखो रात्रौ सन्ध्ययोश्च यथा दिवा ॥

“छायायामंधकारे च रात्रावहनि वा द्विजः । यथासुखमुखः कुर्यात्प्राणवाधाभयेषु च ” ॥

“छायायां मूत्रपुरीषयोः कर्म वर्जयेदिति ” स्मरणात् । अत्र छायाशब्देनावर्जनीयो
मेघपर्वतादिना महता व्यवधाने सति सूर्यस्य तिरोभावो विवक्षितः । अंधकारशब्देन रात्रौ
ज्योतिषामभावः । यत्तु देवलेनोक्तं “सदैवोदङ्मुखः प्रातः सायाह्ने दक्षिणामुखः ” इति
१० “विण्मूत्रे आचरेन्नित्यं सन्ध्यासूपरिवर्जयेत् ” इति तन्निरुद्धेतरविषयम् । ‘नोपरुद्धः क्रियां
कुर्यात्’ इति स्मरणात् । स्मृतिरत्ने—

“आगम्य राक्षसीमाशां...वाग्यतो दिवा । विण्मूत्रोत्सर्जनं कुर्यात् धृतशिश्न उदङ्मुखः ” ।

“सन्ध्ययोश्च तथा रात्रौ दक्षिणाभिमुखो द्विजः ” । यत्तु—

“प्रत्यङ्मुखस्तु पूर्वह्निऽपराह्णे प्राङ्मुखस्तथा । उदङ्मुखस्तु मध्याह्ने निशायां दक्षिणामुखः” ॥

१५ यमवचनं तत्सूर्याभिमुख्यनिषेधपरमिति माधवीये । याज्ञवल्क्यः (आ. १६)ः—

“दिवा संध्यासु कर्णस्थब्रह्मसूत्र उदङ्मुखः । कुर्यान्मूत्रपुरीषे तु रात्रौ चेद्दक्षिणामुखः ” ॥

आपस्तंबः । (१।३१।१)—“प्राङ्मुखोऽन्नानि भुंजीतोच्चरेद्दक्षिणामुख उदङ्मुखो मूत्रं
कुर्यात्प्रत्यक्पादावनेजनमिति ” । अत्र विकल्पो वेदितव्यः । अंगिराः—

“कृत्वा यज्ञोपवीतं तु पृष्ठतः कंठलंबितम् । विण्मूत्रं तु गृही कुर्याद्यद्वा कर्णे समाहितः ” ॥

२० आपस्तंबोऽपि—

“नोर्ध्वं नाधो न तिर्यक्च किंचिद्दीक्षेत बुद्धिमान् । नभोभूम्यंतरं पश्येत् कृत्वा मूर्धन्युपवीतकम्” ॥

इति । स्मृत्यंतरे—“सूत्रं तु दक्षिणे कर्णे कृत्वा विण्मूत्रमुत्सृजेत् ” इति । अंगिराः—

“यज्ञोपवीतं कर्णे च दक्षिणे तु निधाय च । कुर्यान्मूत्रपुरीषे तु शुचौ देशे समाहितः” ॥

दक्षिणकर्णनिधानमेकवस्त्रविषयम् । यथाह सुमंतुः—

२५ “यथेकवस्त्रः स्याद्विप्रः कर्णे कृत्वोपवीतकम् । मूत्रोत्सर्गं गृही कुर्यादिति सांख्यायनोऽब्रवीत्” ॥

सांख्यायनगृह्येऽपि—“यथेकवस्त्रो यज्ञोपवीतं कर्णे कृत्वा मूत्रपुरीषोत्सर्गं कुर्यात् ” इति ।

स्मृतिसारे—

“कृत्वाऽवकुंठनं चात्र उत्तरीयेण वाससा । पवित्रं दक्षिणे कर्णे कृत्वा विण्मूत्रमुत्सृजेत् ” ॥

पवित्रं यज्ञोपवीतम् । तथा भरद्वाजः—

३० “चंडालैरंत्यजैरुक्तो मलमूत्रविमोचने । दक्षिणे श्रवणे विप्रो ब्रह्मसूत्रं विनिक्षिपेत्” ॥ मूत्रपुरीषादि-
करणे शंखः—“नानुदको नामृत्तिको नापरिवेष्टिताशिरा.” इति । स्मृतिप्रदीपिकायाम्—

“उत्पृतोदकमादाय मृत्तिकां चैव वाग्यतः । उदङ्मुखो दिवा कुर्यात् रात्रौ चेद्दक्षिणामुखः ॥

“त्यागान्मूत्रपुरीषस्य पूर्वं गृह्णीत मृत्तिकाम् । पश्चाद्गृह्णाति यो विप्रः सचैलो जलप्राविशेत् ” ॥

पैठीनसिः—“अनुदकमूत्रपुरीषकरणे सचैलस्नानम् ” इति । स एव

“उत्पृत्यैव जलं पूर्वं कुर्यान्मूत्रपुरीषके । गृहीतोदकपात्रश्चेत्कुर्यान्मूत्रपुरीषके ॥

“ततोयं मूत्रतुल्यं स्यात्पीत्वा चांद्रायणं चरेत् ॥

“करस्थोदकपात्रश्चेत्कुर्यान्मूत्रपुरीषके । तज्जलं मूत्रसदृशं सुगपानेन तत्समम् ॥

भरद्वाजः—

“मूत्रमूत्रं त्यजेयस्तु विरपृत्यैवोपवीतधृक् । तत्सूत्रं तु परित्यज्य दध्यादन्यत्पुनर्नवम् ॥ ५

अंगिराः—

“कृत्वा मूत्रपुरीषं वा यदा नैवोदकं भवेत् । स्नात्वा लब्धोदकः पश्चात्सर्चेलं तु विशुध्यति ॥

“स्नानं कृत्वाऽर्द्रवासास्तु विण्मूत्रं कुरुते यदि । प्राणायामत्रयं कृत्वा पुनः स्नानेन शुध्यति ॥

“तैलाभ्यंगे तथा चांते धुरं कर्मणि भैशुने । अनाचम्योद्यगन्धिप्रः त्रिगत्रमशुचिर्भवेत् ॥ इति ।

आपस्तम्बः—“शिरःपण्डिष्टेन प्रथमं निशीतं द्वितीयं दिशावलोकनं तृतीयमन्तर्याणं चतुर्थं १०

मौनं पञ्चमं पुरीषं षष्ठं मृत्तिकाग्रहणं सप्तममुदकमष्टमम् ॥ इति । पुरीषकण्ठानन्तरं मृत्तिको-

दकग्रहणमनुद्वृत्तशौचविषयम् ।

“सजलं भाजनं स्थाप्य मृत्तिकां च परीक्षिताम् । कुर्यान्मूत्रं पुरीषं च नान्यथा शुद्धिमाप्नुयात् ॥

इति व्यासस्मृत्याम् ।

मनुः (४१४५)—“न मूत्रं पथि कुर्वीत न भस्मनि न गोव्रजे ।

१५

“वाय्वग्निं विप्रमादित्यमपः पश्यंस्तथैव गाम । न कदाचन कुर्वीत विण्मूत्रस्य विसर्जनम् ॥ (४८)

“न फालकृष्टे न जले न चित्या न च पर्वते । न जीर्णदेवायतने न वल्मीके कदाचन ॥ (४९)

“न ससत्त्वेषु गर्तेषु न गच्छन्नापि च स्थितः । न नदीतीरमासाय न च पर्वतमस्तके ॥ (५०)

“प्रत्यग्निं प्रतिसूर्यं च प्रतिशोमोदकदिग्जम् । प्रतिगां प्रतिसन्ध्यां च प्रजा नश्यति मेहतः ॥ (५१) इति ।

यमः—

२०

“प्रत्यादित्यं न मेहेत न पश्येद्वात्मनः शकृत् । दृष्ट्वा सूर्यं निरीक्षेत गामग्निं ब्राह्मणं तथा ॥

विष्णुः (६०।२२)—“न प्रत्यनिलानलेन्द्रर्कस्त्रीगुरुब्राह्मणानां च ॥ इति ।

बोधायनः—“फालकृष्टे जले चित्यां वल्मीके गिरिमस्तके । देवालये नदीतीरे दर्भशृष्टे तु शाद्वले ॥

“छायायां वृक्षमूले वा विण्मूत्रे न त्यजेद्बुधः । नान्यचित्तश्चिरं तिष्ठेत् न स्पृशेत्पाणिना शिरः ॥

“न द्रव्यान्न दिशः पश्येद्विण्मूत्रोत्सर्जने बुधः ॥ ” ॥

२५

पारिजाते—

“अग्नौ च गच्छन् तिष्ठन्ने रथ्यातीर्थं श्मशानके । अंगारे गोमये नद्यां यज्ञभूमिषु सर्वदा ॥

“विले जले चित्तायां च वल्मीके गिरिमस्तके । देवालये नदीतीरे दर्भपुष्पकुशस्थले ॥

“सेव्यछायासु वृक्षेषु मार्गगोष्ठांबुभस्मसु । स्थानेष्वेतेषु वै कुर्यान्न तु मूत्रादि किञ्चन ॥

“तिष्ठेन्नातिचिरं तत्र नैव किञ्चिदुदीरयेत् ॥

३०

यमः—“तुषांगारकपालाग्निदेवतायतनानि च । राजमार्गश्मशानादि क्षेत्राणि च खलानि च ॥

“उपरुद्धो न सेवेत छायादृश्यं चतुष्पथे । उदकं चोदपानं च पन्थानं च विवर्जयेत् ॥

“वृक्षमूलानि सर्वाणि चैत्यश्वभ्रानिलानि च ॥

हारति:—“चत्वारोपद्वारयोर्न मूत्रपुरीषे कुर्यान्न गोमये न गोष्ठे न तीर्थे न यज्ञभूमौ न यज्ञियानां वृक्षाणामधस्तात्” इति । उपद्वारं द्वारसमीपम् । विष्णुरपि (६०।३, ७, १६, १७)—

“ना प्रच्छादितायां भूमौ नोषरे न शाङ्गुले नोद्यानोद्यकसमीपयोर्नाकाश” इति ।

व्यासः—

- ५ “पुरीषं यदि वा मूत्रं ये न कुर्वन्ति मानवाः । राजमार्गे सभामध्ये धान्यमध्ये च ते शुभाः ॥
“वाय्वग्न्यर्काबुगोविप्रान् पश्यन्नोच्चारमुत्सृजेत् । नाश्ममूलफलांगारैरुन्मृज्यान्नाथ बर्हिषा” ॥

स्मृतिरत्ने—

“न सोपानत्पादुको वा छत्री वानंतरिक्षके । तथैवाभिमुखः स्त्रीणां गुरुब्राह्मणयोग्याम्” ॥

याज्ञवल्क्यः (आ. १३४-१३५)—

- १० “न तु मेहेन्नदीछायावर्त्मगोष्ठांबुभस्मसु । न प्रत्यग्न्यर्कगोसोमसंध्यांबुस्त्रीद्विजन्मनाम् ॥
“नेक्षेतार्कं न नग्नां स्त्रीं न च संसृष्टमैथुनाम् । न च मूत्रं पुरीषं वा नाशुची राहुतारकाः” ॥
उदयास्तमययोरादित्यं नेक्षेत न सर्वदा । यथोक्तं मनुना (४।३७)—
“नेक्षोतोद्यंतमादित्यं नास्तं यंतं कदाचन । नोपरैक्तं न वारिस्थं न मध्यं न भसो गतम्” ॥ इति ।
“उपभोगादन्यत्र न नग्नां स्त्रियमीक्षेत अन्यत्र मैथुनात्” इत्याश्वलायनस्मरणात् ।
- १५ मूत्रपुरीषे च न पश्येत् । तथा अशुची राहुताकाश्च न पश्येदित्यर्थः ।

- आपस्तंबः (१।३०।१५-२०)—“शिरस्तु प्रावृत्य मूत्रपुरीषे कुर्याद्भूम्यां किंचिदन्तर्धाय । छायायां मूत्रपुरीषयोः कर्म वर्जयेत् । स्वां तु छायावमेहेत् । न सोपानमूत्रपुरीषे कुर्यात् । कृष्टे पथ्यप्सु च । तथा धेवनमैथुनयोः कर्माप्सु वर्जयेत् । अग्निमादित्यमपो ब्राह्मणं गा देवताश्च अभिमुखो मूत्रपुरीषयोः कर्म वर्जयेत्” । छायायामुपजीव्यछायायाम् । ‘न चोपजीव्यच्छायासु’ इति
- २० स्मरणात् । ष्टावनं श्लेष्मनिरसनम् । स्मृत्यर्थसारे “मूत्रं पुरीषं समुत्सृजन्न यज्ञियकाष्ठलोष्ठ-वृणपर्णादिकं गृहीत्वा शिरः प्रावृत्य निवीतं कंठलंबितं कृत्वा एकवस्त्रश्चेद्दक्षिणे कर्णे निधाय भुवं काष्ठाद्यंतर्हितां कुर्यान्मौनी घ्राणस्य पिधानं कृत्वा दिवासंध्ययोरुदङ्मुखो रात्रौ दक्षिणामुखो मूत्रपुरीषे कुर्यात् ।

- २५ “फालकृष्टे जले चित्यां वल्मीके गिरिमस्तके । देवालये नदीतीरे दर्भपुष्पेषु शाङ्गुले ॥
“सेव्यछायासु वृक्षेषु मार्गगोष्ठाम्बुभस्मसु । अग्नौ च गच्छंस्तिष्ठंश्च विष्टां मूत्रं च नोत्सृजेत् ॥
“रथ्याचत्वरतीर्थेषु श्मशाने गोमये जले । न सस्यमध्ये मेहेत जनसंसादि वर्त्मनि ॥
“अंगारोद्यानसप्राणियज्ञभूमिषु नोत्सृजत् । मारुताग्न्यर्कगोसोमसंध्याम्बुस्त्रीद्विजन्मनः ॥
“पश्यन्नभिमुखश्चैव विष्टां मूत्रं च नोत्सृजेत् । सर्वे निषेधा नैव स्युः प्राणवाधाभयेषु तु ॥
“काष्ठादिना त्वपानस्थममेध्यं निमृजीत च । कंदमूलफलांगारैर्नामिध्यं निमृजीत च ॥
- ३० “अन्यासक्तमना नैव तिष्ठेदतिचिरं बुधः” ॥ इति ।

पुराणे—

“देवालये तु परितः शतदंढाद्वहिर्मुने । विष्णुमूत्रकरणं कुर्यात् कोशाद्बहिरथापि वा” ॥

भरद्वाजः—

“अथापहृष्य विण्मूत्रं लोष्टकाष्ठवृणादिना । उदस्तवासा उत्तिष्ठेत् दृढं विधृतमेहनः” ॥ मेहनं लिंगम् ।

हारीतः—“लोष्टेन परिमृंजति शुष्ककाष्ठेन वा गुदम्” ॥ इति ।

व्यासः—

“मार्जनं वामहस्तेन वीरणाधेरयजियैः । कुर्यान्मूत्रपुरीषाणामेवमायुर्न हीयते” ॥

आपस्तम्बः (१।३०।२१)—“अह्ममानं लोष्टमार्द्रानोपधिवनस्पतीन्ध्वानान्छिय मूत्रपुरीषयोः ५, शुधने वर्जयेत्” इति । फलपाकावसाना ओषधयः । पुष्पविना ये फलन्ति ते वनस्पतयः । मार्द्रानिति वचनात् शुष्केषु न दोषः । ऊर्ध्वानिति वचनाद्वातादिनिमित्तेन भोगेषु न दोषः । एतेरह्मादिभिः मूत्रपुरीषयोः शोधनं कुर्यादित्यर्थः ।

गौतमोऽपि (१।१५)—“न पर्णलोष्टाह्माभिः मूत्रपुरीषापरुषणं कुर्यात्” इति । अत्र लोष्टप्रतिषेध उक्तकाष्ठादिभिर्भवे वेदितव्यः । हारीतः—

“आहारं च गृहः कुर्याद्विहारं च सर्वदा । गुप्ताभ्यां लक्ष्मीयुक्तः रयात् प्रफाशे हीयते श्रियः” ॥ इति ।

अथ शौचविधिः । तत्र दंचलः—

“आशौचान्नोत्सृजंश्चिउश्रं प्रस्वाशोच्चाग्यान्पि । गुदं हस्तं च निर्मृज्य मृदम्भोभिर्मुहुर्मुहुः” ॥

स्मृत्यन्तरे—

“उत्थाय वामहस्तेन गृहीत्वाऽध्वनि मेहनम् । शौचदेवं समभ्येत्य कुर्याच्छौचं मृदंशुभिः” ॥ १५

याज्ञवल्क्यः (आ. १७)—

“गृहीतशिश्रश्चेत्थाय मृद्भिर्भ्युद्धतं गर्जलः । गंधलेपक्षयकरं शौचं कुर्यादतंद्रितः” ॥

अभ्युद्धतः कर्मण्यत्वादिना उद्धृतः । तथा च दंचलः—

“मूत्रोच्चारणे कृते शौचं न स्यादतर्जलाशये । अन्यत्रान्दृत्य तत्कुर्यात्सर्वदेवं समाहितः” ॥

दक्षोऽपि—

“तीर्थं शौचं न कुर्वीत कुर्वीताद्भृतवाग्निना । मृत्तिकावारिदौ चास्य शौचजो परिचारकौ” ॥

बोधायनः (१।५।९)—“प्राङ्मुखोदङ्मुखो वोपासीनः शौचमारभेत” ॥ इति ।

गौतमोऽपि (१।३४)—“प्राङ्मुखोदङ्मुखो वा शौचमारभेत” इति । शौचग्रहणं मूत्रपुरीषादि-शौचेऽपि यथा स्यादाचमनं एवं मा भूदिति हरदत्तेन व्याख्यातम् ।

तथा स्मृतिरत्ने—

“उद्धृतोदकमादाय मृत्तिकां चैव वाग्यतः । उदङ्मुखो दिवा कुर्याद्रात्रौ चेद्दक्षिणामुखः” ॥

यमः—

“आहरेन्मृत्तिकां प्राज्ञः कृत्वात्सलिकता तु या । शुचौ देशे तु सा ग्राह्या शर्कराश्मविवर्जिता ॥

“नाखुकुष्ठान्न वल्मीकात् पांसुतो न च कर्दमात् । न मार्गान्नोपराच्चैव शौचशिष्टात्परस्य च ॥

“एतास्तु वर्जयेन्नित्यं वृथाशौचं हि तत्स्मृतम्” ॥

आश्वलायनः—

“त्यागान्मूत्रपुरीषस्य पूर्वं गृहीत मृत्तिकाम् । न च प्रव्हो न चोत्तिष्ठन्नाशुचिर्नालपन् द्विजः ॥

“कमादग्न्यादिवाय्वन्तदिङ्मुखो नाहरेन्मृदम् । क्षेत्राच्छुशानाद्वल्मीकान्मार्गाद्विहाज्जलात्खलात् ॥

“उषरोद्भवतास्थानान्न द्विजो मृदमाहरेत् । नाशुत्वभूमेश्चैत्याह्वा न वेद्या गोव्रजान्मृदम् ॥

“आहरेष्टेपभूतांश्च जंतुमिश्रान्न कर्दमम्” ॥

देवलः—

“अंगारतुषकीटास्थिसिकताशर्करान्विताम् । बल्मीकोषरतोयांतः कुड्योद्भूतां श्मशानजाम् ॥

५ “आहृतामन्यशौचार्थं आददीत न मृत्तिकाम्” । तोयान्तः जलमध्यात् । एतच्च वाप्यादिव्यतिरिक्तविषयम् । अत एव मनुः—

“वापीकूपतटाकेषु बाह्यतो नाहरेन्मृदम् । आहरेज्जलमध्यात् परतो मणिवंधनात्” ॥
एतदारण्यविषयम् । स्मृतिरत्ने तु—

“अंतर्जलगता ग्राह्या परतो मणिवंधनात् । आरण्यकेषु त्वेवं स्याद्ग्राम्येष्वहरणं न तु” ॥ इति

१० स्मरणादित्यभिहितम् । मरीचिः—

“विप्रे शुक्ला तु मृच्छौचे रक्ता क्षत्रे विधीयते । हरिद्रवर्णा वैश्ये तु कृष्णा स्त्रीशूद्रयोस्तथा” ॥
यत्र पुनरुक्तलक्षणा मृत् न लभ्यते तत्र कथं शौचमित्यपेक्षिते मनुराह—

“यस्मिन् देशे तु यत्तोयं या च यत्रैव मृत्तिका । सैव तत्र प्रशस्ता स्यात्तया शौचं विधीयते” ॥
यदा कथमप्युदकोद्धरणं न संभवति तदा विशेषमाह विवस्वान्—

१५ “अरत्निमात्रं जलं त्यक्त्वा कुर्याच्छौचमनुद्धृते । पश्चात्तच्छोधयेत्तीर्थं अन्यथा ह्यशुचिर्भवेत्” ॥
जलाद्गहिररत्निमात्रप्रदेशं तीरे त्यक्त्वा जलपात्राभावेन उद्धरणासंभवे दक्षिणहस्तेनोत्थृत्य वामेन प्रक्षालयेदित्यर्थः । तीर्थमत्र शौचस्थलम् । तथा ऋश्यशृंगः—

“यस्मिन् स्थाने कुतं शौचं वारिणा तत्तु शोधयेत् । न शुद्धिस्तु भवेत्तस्य मृत्तिकां यो न शोधयेत्” ॥

स्मृतिरत्ने—

२० “देशान्तरगतो विप्रः क्षालयेच्छौचभूतलम् । शौचशेषमृदं तोयैर्न विप्रक्षालयेद्यदि ॥

“अशेषास्तस्य पितरो भक्षयेयुर्न संशयः” ॥ देशान्तरगतः प्रदेशान्तरगतः । देवलः—

“धर्मविद्वक्षिणं हस्तं अधःशौचे न योजयेत् । तथा च वामहस्तेन नाभेरुर्ध्वं न शोधयेत्” ॥

संग्रहे—

“नाभेरधस्तात्सकलं क्षालयेत्सव्यपाणिना । कुर्यादाचमनादीनि सर्वाणीतरपाणिना” ॥

२५ ऋष्यशृंगः—

“धाराशौचं न कर्तव्यं शौचसिद्धिमभीप्सता । चुलकैरेव कर्तव्यं हस्तशुत्थिविवानतः” ॥
दक्षः—“न शौचं वर्षधाराभिराचरेत्तु कदाचन” । मृत्संख्यामाह वसिष्ठः (६।१८)—

“पंचापाने दण्डैकस्मिन्भूयोः सप्त मृत्तिकाः । उभयोः पादयोः सप्त लिङ्गे द्वे परिकीर्तिताः” ॥

यमः—

३० “द्वे लिङ्गे मृत्तिके देये गुदे पंच कर दश । उभयोः सप्त दातव्याः पुनरेका तथा गुदे” ॥ इति ।
मनुः (५।१३५-१३६)—

“एका त्रिंशो गुदे तिस्रः तथैकस्मिन्करं दश । उभयोः सप्त दातव्या मृदः शुद्धिमर्भाप्सिता ॥

“एतच्छौचं गृहस्थस्य द्विगुणं ब्रह्मचारिणः । त्रिगुणं तु वनस्थस्य यतीनां तु चतुर्गुणम्” ॥

दक्ष.—

“पंचापाने दशैकस्मिन्नुभयोः सप्त मृत्तिकाः । गृहस्थशौचमाख्यातं त्रिष्वन्येषु यथाक्रमम् ॥

“द्विगुणं त्रिगुणं चैव चतुर्थस्य चतुर्गुणम् ” ॥

हारीतः—“एका लिगे तिस्रोऽपाने दद्यात् दश सध्ये षट् षष्ठे सप्ताभाभ्याम् ” ॥ इति ।
षष्ठे मध्यस्य पश्चात् भागे । तस्यैव प्रकृतत्वात् ।

मरीचि.—

“तिसृभिश्चा तलात्पादौ शौच्या गुल्फानयं च । हस्तौ त्वा मणिवंधान्च लेपगंधापकर्षणम् ” ॥ इति ।
शंख. (१६।२०-२१)—

“मेहने मृत्तिकाः सप्त लिगे द्वे परिकीर्तिते । एकस्मिन्विंशतिर्हस्त द्वयोर्दण्डांश्चतुर्दश ॥

“पहन्या नखशृङ्गे तु देया. शौचेऽनुना मृदः । तिसस्तु मृत्तिका देयाः कृत्वा तु नखशोधनम् ॥

“तिसस्तु पादयोर्देया. शौचकामस्य नित्यशः ” ॥ विष्णुपुराणे (३।१।१७)—

“एका लिगे गृदे तिस्रो दश वामकं नृप । हस्तद्वयं च यतान्या मृदः शौचोपपाटिकाः ” ॥

स्मृतिसारे—

“कराग्रं कण्ठे च बहिर्विष्टाविशुद्धये । षट् संयथा प्रदानव्या मृत्तिकाश्च पृथक् पृथक् ” ॥

यमः—

“पूर्वं जलेन प्रक्षाल्य मृदा पश्चात्ततोऽनुभिः । एव दादशकृत्वस्तु गुंदाश्च समाचरत ॥

“दशैकृत्व. कर्ग क्षाल्य मृदाऽऽमलकमात्रया । त्रि.कृत्वा लिगशौचं च हस्तं क्षाल्य पदद्वयम् ॥

“संयोज्य त्रिर्मुदा क्षाल्य शालयेच्छाचभूतलम् ” ॥

स्मृतिचंद्रिकायाम् (७ ९२ प १०)—

“आयन्तयोस्तु शौचाना अग्निः प्रक्षालनं स्मृतम् । सुनिर्णिक्तं मृदं दद्यान्मृदंत जलमव च ॥

“अंतरा चांतरा वामहस्तप्रक्षालनं चरत ” इति । अत्र न्यूनाधिकमृत्संख्याप्रतिपादकवचनानां २०

लेपतान्तभ्याभिप्रायो विकल्पो वेदितव्यः ।

एवमुक्तशौचेऽपि यत्र गंधो लेपश्च नापेति तत्र उक्तसंख्याया अधिकसंख्यायामपि न

विरोध इत्याह मनुः (५।१३३)— “विष्मृत्रयोः समुत्तरो मृद्वार्या देयमर्थवत् ॥

“यावन्नापेत्यमध्याक्तो गंधो लेपश्च तत्कृतः । तावन्मृदाणि चादेय सर्वाणु द्रव्यशुद्धिषु ” (१२५) ॥

देवलौऽपि—

“यावत्तु शुद्धि मन्येत तावच्छुद्धिर्विधीयते । प्रमाणं शान्तसंख्याया न शिष्टैरुपदिश्यते ” ॥

आपस्तंबौऽपि (१।१५।२३)— “मूत्रं कृत्वा पुरीषं वा मूत्रपुरीषलेपानन्नलेपानुच्छिष्ट-

लेपान् रेतसश्च ये लेपास्तानद्भिर्मुदा च प्रक्षाल्य पादौ चाचम्य प्रयतो भवति ” इति ।

यत्तु दक्षेणोक्तम् (५।१३)—

“न्यूनाधिकं न कर्तव्यं शौचशुद्धिमभीप्सता । प्रायश्चित्तेन युज्येत विहितातिक्रमे कृतं ॥

“गायत्र्यष्टशतं चैव प्राणायामत्रयं तथा । प्रायश्चित्तमिदं प्रोक्तं नियमातिक्रमे सति ” ॥ इति

तत्संकल्पितसंख्यायाः प्रागेव गंधलेपक्षये वेदितव्यम् । एवं चोक्तसंख्याया अर्वागेव यत्र

गंधाद्यपगमः तत्र संख्यानियमो अदृष्टार्थ इति स्मृतिचंद्रिकादौ (पृ. ९२ पं १७-२५) ।

विज्ञानेश्वरस्तु (पृ. ५ पं ३०) “गंधलेपक्षयकरं शौचं कुर्यात्” इत्येतत्सर्वाश्रमिणां साधारणं

मृत्संख्यानियमस्तु अदृष्टार्थ इत्येवांचत ।

अत्र मृत्परिमाणमाह अंगिराः—

“ प्रथमा प्रसृतिर्ज्ञेया द्वितीया च तदर्धिका । तृतीया मृत्तिका ज्ञेया त्रिभागकरपूरणाम् ” ॥

वक्षः (५।७)—

“ अर्धप्रसृतिमात्रा तु प्रथमा मृत्तिका स्मृता । द्वितीया च तृतीया च तदर्धेन प्रकीर्तिता ॥

५ “ चतुर्थी पंचमी वाऽपि तृतीया मृत्तिका समा ” इति ॥ वसिष्ठः ()

“ अर्धप्रसृतिमात्रा तु प्रथमा मृत्तिका भवेत् । पूर्वा पूर्वार्धमात्रा तु द्वितीयाद्याः प्रकीर्तिताः ” ॥

यत्तु शातातपेनोक्तम्—

“ आर्द्रामलकमात्रास्तु ग्रासा इंदुव्रते स्मृताः । तथैवाहुतयः सर्वाः शौचार्थं याश्च मृत्तिकाः ” ॥ इति तद्धस्तशौचाभिप्रायं गुदलिंगयोः परिमाणांतरविधानादिति स्मृतिचंद्रिकायाम् (पृ. ९२)

१० मूत्रशौचे मृत्संख्यामाह वक्षः— (५।५) “ एका लिंगे गुदे तिस्रः उभयोर्मृद्वयं समम् ” इति । शातातपोऽपि—

“ एका लिंगे करे सव्ये तिस्रे द्वे हस्तयोर्द्वयोः । मूत्रशौचं समाख्यातं शुक्ले तु द्विगुणं भवेत् ” ॥ इति ।

यत्तु “ तिस्रो मृदो लिंगशौचग्राह्याः स्युर्मूत्रशुद्धये । वामपाणौ मृदः पंच तिस्रः पाण्योर्द्वयोरपि ” ॥ इत्यादि तल्लेपभूयस्त्वाभिप्रायम् ।

१५ “ एकां लिंगे मृदं दद्याद्द्वामहस्ते तु मृद्वयम् । उभयोर्हस्तयोर्द्वे तु मूत्रशौचं प्रचक्षते ” ॥ इत्यादि तल्लेपस्मरणात् । मूत्रशौचे मृत्परिमाणमाह वक्षः (५-८)—

“ लिंगे तु मृत्समाख्याता त्रिपर्वा पूर्यते यया । दातव्यमुदकं तावन्मृदभावो यदा भवेत् ” ॥ विवस्वान्—

“ पर्वमात्रप्रमाणास्तु लिंगशौचे मृदः स्मृताः । आर्द्रामलकमात्रा वा यदि वाऽक्षप्रमाणिकाः ” ॥ इति ।

२० शौनकः—

“ तत उद्भुततोयेन प्राङ्मुखो वाऽप्युदङ्मुखः । आर्द्रामलकमात्रां वै लिंगे प्रक्षिप्य शोभयेत् ” ॥ व्यासः—

“ विट्शौचं प्रथमं कुर्यान्मूत्रशौचमतः परम् । पादशौचं ततः कुर्यात्करशौचमतः परम् ” ॥

आपस्तम्बः—

२५ “ अग्नि शौचं तु यत्प्रेोक्तं निश्चयं तत उच्यते । पथि पादं तु विज्ञेयमार्तः कुर्याद्यथानलम् ” ॥ इति । बालुकाभिर्यदा शौचं कुर्यात् तत द्विगुणं कुर्यादिति ।

चतुर्विंशतिमते—

“ यद्विवा विहितं शौचं तदर्धं निशि कीर्तितम् । तदर्धमातुरे प्रोक्तमातुरस्यार्धमध्वनि ” ॥ इति । एतत्सामर्थ्ययुक्तातुरविषयम् । अन्यथा तु यथासामर्थ्यमेव शौचम् ।

१ तथा चंद्रिकायाम् (पृ. ९४ पं. २१)—

“ दिवा शौचस्य निश्चयं पथि पादो विधीयते । आर्तः कुर्याद्यथाशक्ति स्वस्थः कुर्याद्यथोचितम् ” ॥

बोधायनोऽपि (१।५।४७)—

“ त्रेयं कालं तथाऽन्मानं द्रव्यं द्रव्यप्रयोजनम् । उपपन्नमवस्थां च ज्ञात्वा शौचं प्रकल्पयेत् ” ॥ इति ।

अनुपनीतानां शौचमाह आतातेपः—

“न यावदुपनीयन्ते द्विजाः शूद्रास्तथाऽगनाः । गंधलेपक्षयकं शौचमेषां विधीयते ॥
“यावच्छुद्धिं न मन्येत तावच्छौचं विधीयते । प्रमाणं शौचसंख्याया न शिष्टैरुपदिश्यते” ॥ इति ।
स्त्रीशूद्रयोस्तु आदित्यपुराणे विशेषो दर्शितः—“स्त्रीशूद्रयोर्धमानं प्रोक्तं शौचं मनीषिभिः” ॥ इति ।
व्यासः—“ कुर्वीतैवं दिवा शौचं रात्रौ चेदर्धमुच्यते । अशक्तस्य यथाशक्ति शौचमुक्तं तथाऽध्वनि ॥ ५

“योपितामुक्तशौचार्थं शूद्राणाप्युदाहृतम् ” ॥ इति । यस्तु विष्णुत्रोत्सर्जनयोपविष्टः
तत्र कगेति तस्याप्यर्धशौचमाह वृद्धशतातपः—

“उपविष्टस्तु विष्णुमत्र कर्तुं यस्तु न विंदति । स कुर्यादर्धशौचं तु स्वरय शौचस्य सर्वदा” ॥ इति ।

भोजने तु गुदस्यावे विशेषमाह घृहस्पतिः—

“भुञ्जानस्य तु विप्रस्य कदाचिन्म्रवते गुदम् । उन्मिष्टमशुचित्वं च तस्य शौचं कथं भवेत् ॥ १०

“पूर्वं कृत्वा च शौचं च पश्चात् स्नानं समाचरेत् । ततः कृत्वोपवासं च पंचगव्येन शुध्यति” ॥

शरीरमलशौचं वक्तुं शरीरमलानाह मनुः (५।१३१, १३४)—

“उर्ध्वं नाभेर्यानि खानि तानि मेध्यानि सर्वशः । यान्यधस्तादमेध्यानि देहाच्चैव मलाश्च्युताः ॥

“वसाशुक्रमसृङ्मज्जामूत्रविट्कर्णविण्णगाः । झलेष्माश्रुपृथिकास्वेदो द्वादशैते नृणां मलाः ” ॥

श्रुतिरपि (तै. सं. ६।१।३)—“ऊर्ध्वं वै पुरुषस्य नाभ्यं मेध्यमवाचीनममेध्यम् ” ॥ इति । १५

पुरुषस्य नाभेरूर्ध्वं मेध्यं शुद्धम् । अवर्चानं नाभेरधोभागो अमेध्यम् । अशुद्धमित्यर्थः ॥

त्रयाणामेतेषां मलानां मर्शं नति यथायोग्यं मृज्जलाभ्यां शुद्धिर्गित्याह मनुः (५।१३३)—

“विष्णुत्रोत्सर्गशुध्यर्थं मृद्वार्यादेयमर्थवत् । दंष्ट्रिकानां मलानां च शुद्धिषु द्वादशस्वपि ” ॥ इति ।

अत्र विशेषमाह बोधायनः—

“आददीत मृदोऽपश्च पटसु पूर्वेषु शुद्ध्ये । उत्तरेषु तु पटस्यद्भिः केवलाभिर्विशुध्यति” ॥ इति । २०

परकीयमलस्पर्शने शुद्धिमाह देवलः—

“मानुषास्त्यवसां विष्टा आर्तवममृत्रेतरसी । मज्जानं शोणितं वाऽपि परस्य यदि सस्पृशेत् ॥

“स्नात्वाऽपमृज्य लेपादीनाचम्य स शुचिर्भवेत् । तान्येव खानि संस्पृश्य पूतः स्यात्परिमार्जनात्” ॥

परिमार्जनं प्रक्षालनम् । अत्र विशेषमाह विष्णुः (२२।७६-७७)—

“नाभेरधस्तात्कार्तिकैर्मलैः सुराभिर्मयैर्वापहतो मृत्तोयैस्तदंगं प्रक्षाल्य चांतः शुध्येत् । २५

अन्यत्रोपहतो मृत्तोयैस्तदंगं प्रक्षाल्य स्नानेन इंद्रियेषूपहतस्तुपोऽप्य स्नात्वा पंचगव्येन दशन-

च्छदोपहतश्च ” इति ॥ अत्र यमः—

“मूत्रे तिस्रः पादयोस्तु हस्तयोस्तिस्र एव तु । मृदः पंचदशामेध्ये हस्तादीनां विशेषतः ॥

“एतद्वात्मीयमूत्रादिस्पर्शं शौचमुदातदम् । उत्सर्गकालादन्यत्र परकीयेषु पठ्यते ॥

“परस्य शोणितस्पर्शं रेतोविष्णुमूत्रजे तथा । चतुर्णामपि वर्णानां द्वात्रिंशन्मृत्तिकाः स्मृताः” ॥ इति । ३०

स्मृतिरन्ते—

“सकर्मं तु वर्षावु प्रविश्य ग्रामसंकटे । जंघयोर्मृत्तिकास्तिस्रः पादयोर्द्विगुणं न्यसेत् ” ॥ इति ।

स्मृत्यर्थसारे—

“एका तु मृत्तिका लिंगे तिस्रः सव्यकरे मृदः । करद्वये मृद्द्वयं स्यान्मृत्प्रमाणमनेकधा ॥

“त्रिपैर्वा पर्वमात्रा वा मृत्तिकाक्षप्रमाणिका । आद्रामिलकमात्रा वा मूत्रशौचे तु मृत्तिका ॥ ३५

“मूत्रात्तु द्विगुणं शुक्ले मैथुने त्रिगुणं स्मृतम् । पुरीषे पञ्च मृत्क्षेपः करे वामे दश स्मृताः ॥

“करयोः सप्त दातव्याः पुरीषे मृत्प्रमाणकम् । अर्धप्रसृतिमात्राद्याः तत्तदर्धास्ततः पराः ॥

“यद्वा पाने मृदस्तिप्तः प्रसृत्यर्धत्रिभागकाः । यद्वा प्रसृतिमात्रास्त्रिः पादयोः पाण्योः पृथक् पृथक् ॥

“एतच्छौचं गृहस्थानां द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम् । त्रिगुणं तु वनस्थानां यतीनां तु चतुर्गुणम् ॥

५ “दिवा यद्विहितं शौचं तदर्धं निशि कीर्तितम् । तदर्धमातुरे प्रोक्तं आतुरस्यार्धमध्वनि ॥

“स्त्रीशूद्रादेरशक्तानां बलानां चोपनीतिनाम् । गंधलेपक्षयकरं शौचं कार्यमसंख्यया ॥

“एकैक्या मृदा पादहस्तप्रक्षालनं ततः । अमेध्यांगमलस्पर्शं मृत्तिकाषट्कमिष्यते ॥

“अमेध्यांगमलस्पर्शं शौचं प्रक्षालनं स्मृतम् । परविण्मूत्रसंस्पर्शं द्वात्रिंशन्मृत्तिकाः स्मृताः” ॥ इति ।

एवमुक्तशौचकरणेऽपि यस्य भावशुद्धिर्नास्ति तस्याशुद्धिरेवेत्याह दक्षः—

१० “शौचं तु द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमभ्यन्तरं तथा । मृज्जलाभ्यां स्मृतं बाह्यं भावशुद्धिस्तथान्तरम् ॥

“शौचं तु परमं बाह्यं तस्मादाभ्यन्तरं परम् । उभयेन शुचिर्यस्तु स शुचिर्नेतरः स्मृतः” ॥

व्याघ्रपादोऽपि—

“गंगातोयेन कुत्स्नेन मृद्गैश्च नगोपमैः । आ मृत्योराचरेच्छौचं भावदुष्टो न शुध्यति” ॥

बोधायनः (१।५।४६)

१५ “कालोऽग्निर्मनसः शुद्धिरुदकाद्युपलेनम् । अविज्ञातं च भूतानां षड्विधं शौचमुच्यते” इति ॥

शौचाकरणे प्रत्यवायो हारीतेन दर्शितः—

“अष्टशौचं नरं दृष्ट्वा प्रहरन्तीह राक्षसाः । यक्षाः पिशाचा भूतानि ये चान्ये दुष्टचारिणः ॥

“स्नानं दानं तथा ध्यानं मन्त्रकर्मविधिः क्रिया । मंगलाचारनियमः शौचअष्टस्य निष्फलाः” ॥

बोधायनः—

२० “शौचे यत्नः सदा कार्याः शौचमूलो द्विजः स्मृतः । शौचाचारविहीनस्य समस्ता निष्फलाः क्रियाः ॥

“यस्य शौचे तु शैथिल्यं व्रतं तस्य परिक्षतम्” ॥ अपरार्के—

“शुचिं देवाश्च रक्षन्ति रक्षन्ति पितरः शुचिम् । शुचेर्विभ्यति रक्षांसि ये चान्ये दुष्टचारिणः” ॥

व्यासः—

“अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा । यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः” ॥

२५ इति शौचविधिः ।

अथ गण्डूपाः । पराशरः—

“कृत्वा तु शौचं प्रक्षाल्य पादौ हस्तौ च मृज्जलैः । निबद्धशितकच्छस्तु गण्डूपाचमनं चरेत्” ॥ इति ।

स्मृतिसारे—

“विप्रस्य दक्षिणे भागे देवास्तिष्ठन्ति नित्यशः । आसीन एव गण्डूपान् वामभागे विसर्जयेत् ॥

३० “मूत्रे पुरीषे भुक्तं च तथैवान्यस्य भक्षणे । चतुरष्टौ च षष्ट्यगण्डूपैस्तु विशुध्यति” ॥ इति ।

तथा च व्यासः—

“अपां द्वादशगण्डूपान् पुरीषोत्सर्जने बुधः । मूत्रे तु चतुरः कुर्यात् भोजनान्ते तु षोडश” ॥

स्मृत्यन्तरे—

“अपूपभक्षणे भुक्तो विण्मूत्रोत्सर्जनादिके । आसीन एव गण्डूपान् वामपार्श्वे विसर्जयेत् ॥

“ मूत्रे पुरीषे भुक्तच्ये तथैव द्विजभावेन । चतुष्टद्विषयप्रगृह्यैः शुद्धिर्गम्यते ” ॥

गौतमः—

“ गेहपुण्याथ नमये तर्जन्या वज्रचालनम् । कर्णेति यदि मूत्राण्य गेह्वे नग्ने पतेत् ” ॥

अथाचमनविधिः ।

आपस्तम्बस्मृतौ—“ अथ वक्षे आचमनं शृणुध्व मुनिपुंगवाः ।

५

“ प्रक्षाल्य पादौ हस्तौ च मुखे चाद्भिः समाहितः । बाणवृद्धः सोत्तरीयस्ततस्त्राचमनं चरेत् ।

“ उदङ्मुखो वा प्राङ्मुखो वा जान्वन्तरं करं । ब्राह्मतीर्थेन विप्रेभ्यो ग्राचामेन्मन्त्रपर्वकम् ॥

“ आदौ पांगणिकं प्रोक्तं स्मार्तमागममेव च । श्रौतं चतुर्विधं प्राङ्ग्राचामं ब्रह्मवादिनः ॥

“ अच्यताथैः नम्राचामेत्वं दवाथैरनु नामभिः । अंगानां स्पर्शनं कुर्याद्वैतत्पांगणिकं स्मृतम् ॥

“ अंगुष्ठानामिकाभ्यां तु चक्षुषी नमपरमृशेत् । केवलांगुष्ठौ नाभि तलेन हृदयं स्पृशेत् ॥ १०

“ सर्वांगुली न्यसेत् मद्भिं जले स्पृष्ट्वा त्तरांतगम् ” । वृद्धपराशरः—

“ कृत्वाऽथ शौचं प्रक्षाल्य पादौ हस्तौ च मृज्जले । कृत्योपवीतं नव्यामं वाटमनःकायमंयत ॥

“ निबद्धशिरस्कच्छुम्न द्विज आचमनं चरेत् ॥ ” इति ।

वेपथुः—

“ इत्येवमद्भिग जानुं प्रक्षाल्य चण्णा पृथक् । हस्तौ चा मणिबंधाभ्यां कुर्यादाचमनं ततः ॥ १५

“ केशान्नीवीमयःकाय स्नानार्द्रवर्णीमपि । यदि स्पृशति चेतानि भूयः प्रक्षालयेत् करम् ” ॥

व्यासः—

“ प्रक्षाल्य पादा हस्तौ च मुखमद्भिः समाहितैः । दक्षिणं बाहुमुद्धृत्य कृत्वा जान्वतरे करौ ॥

“ आचम्य प्राङ्मुखः पश्चाद्वत्तथावनमाचरेत् ” ॥

स्मृत्यर्थसारे—“ पादौ हस्तौ प्रक्षाल्य यजोपवीती पादौ भूमा प्रतिष्ठाप्य बद्धकच्छशिरः ॥

पुंडरीकाक्षमिष्टदेवता स्मृत्वा आचामेत् ” इति ।

द्विजिनयमाह हारीतः—“ पञ्चान्यभिमुखो भूत्वोपस्पृशेत्तु यथाविधि ” । उपस्पृशेदाचामेदित्यर्थः ॥

ब्राह्मवल्क्यः (आ. १८)—

“ अंतर्जानुः शुचौ देशे उपविष्ट उदङ्मुखः । प्राग्वा ब्राह्मेण तीर्थेन द्विजो नित्यमुपस्पृशेत् ” ॥

अंतर्जानु जान्वोन्तरा अग्नी कृत्वेत्यर्थः । “ अतस्त्रोर्गर्त्नी कृत्वा त्रिरपो हार्दाः पिबेत् ” ॥ २५

इति हारीतस्मरणात् । उपविष्ट इति गमनादिनिषेधः ।

“ न गच्छन्न शयानश्च न तिष्ठन्नापरं स्पृशन् । न हसन्नेव संजल्पन्नात्मानमवलोकयन् ” ॥

इति स्मरणात् ।

भरद्वाजः—

“ जंघांतं जानुपर्यंतमपि वा चरणद्वयम् । कूर्परांतकरं सम्यक् क्षालयेत्प्रथमं बुधः ॥

३०

“ उपविश्य शुचौ देशे प्राङ्मुखो ब्रह्मसूत्रधृक् । बद्धचूडः कुशकरो द्विजः शुचिरुपस्पृशेत् ” ॥

स्मृतिभास्करे—

“ दक्षिणं तु करं कृत्वा गोकर्णाकृतिवत्पुनः । त्रिः पिबेद्दक्षिणेनांबु द्विरास्यं परिमार्जयेत् ” ॥

प्रदीपिकायाम्—

“ संहतांगुलिना तोयं गृहीत्वा पाणिना द्विजः । मुक्त्वाऽङ्गुष्ठकनिष्ठे तु शेषेणाचमनं चरेत् ” ॥ ३५

व्यासः—“गोकर्णाकृतिहस्तेन माषमग्नं जलं पिबेत् । तन्न्यूनमाधिकं पीत्वा सुरापानसमं भवेत्” ॥
भरद्वाजः—

“आयतं दक्षिणं कृत्वा गोकर्णाकृतिवत्करम् । माषमज्जनमात्रास्तु संगृह्य त्रिः पिबेदपः” ॥
देवलः—

५ “अप्स्वीक्षितासु हृदयं प्राप्तासु ब्राह्मणः शुचिः । राजन्यः कंठमास्यं वै विदूषूद्रस्पर्शनाच्छुचिः” ॥ इति ।
स्पर्शनात्तालुनेति शेषः । शूद्रग्रहणं स्त्रीणामपि प्रदर्शनार्थम् । तथा च याज्ञवल्क्यः (आ. २१)
“हृत्कंठतालुगाभिस्तु यथासंख्यं द्विजातयः । शुध्येरन्स्त्री च शूद्रश्च सकृत्स्पृष्टाभिरंततः” ॥
सकृदेव ताल्वन्तेन स्पृष्टाभिरद्भिरित्यर्थः ।

“अप्सु प्राप्तासु हृदयं ब्राह्मणः शुद्धिमाप्नुयात् । राजन्यः कंठं तालु विद् स्त्रीशूद्रौ तु तदंततः” ॥

१० इति स्मरणात् । मनुरपि (२।६२)—

“द्वद्राभिः पूयते विप्रः कंठगाभिस्तु भूमिपः । वैश्योऽद्भिः प्राशिताभिस्तु शूद्रस्पृष्टाभिरंततः” ॥ इति ।
स्मृत्यर्थसारे—“हृत्कंठतालुगाभिस्तु अद्भिः शुद्धाः क्रमात् द्विजः स्त्रीशूद्रानुपनीता अंततस्तालौ
सकृत्स्पृष्टाभिः शुद्धाः” ॥ इति ।

बोधायनः (१।५।१८)—

१५ “गताभिर्हृदयं विप्रः कंठ्याभिः क्षत्रियः शुचिः । वैश्योऽद्भिः प्राशिताभिः स्यात् स्त्रीशूद्रौ स्पृश्यचांततः” ॥
हृदयंगमानामपां परिमाणमाह उशनाः—“माषमज्जनमात्रा आपो हृदयंगमा भवंति” इति ।
अत्रोदकनियममाह शङ्खः

“अद्भिः समुद्धृताभिस्तु हीनाभिः फेनबुद्बुदैः । वन्हिना च न तप्ताभिर्न क्षाराभिरुपस्पृशेत्” ॥ इति ।

भरद्वाजः—“पक्वं सफेनं कलुषं सडुर्गंधं सवुद्बुदम् । उष्णं समृत्तिकं क्षारं त्यजेदाचमने जलम् ॥

२० “तिष्ठन्नमन् हसन् जल्पन् गृण्वन्नन्त्यजभाषणम् । अन्यं स्पृश्यन् दिशः पश्यन् कदाचिदुपस्पृशेत् ॥
“काकाश्वखरविद्रकोडताम्रचूडरजस्वलाः । व्रात्यांत्यजातिपतितान्पश्यन्नोपस्पृशेत् द्विजः” ॥

मनुः (२।६१)—

“अनुष्णाभिरफेनाभिरद्भिस्तीर्थेन धर्मवित् । शौचेऽप्सु सर्वदाचामेदेकांते प्रागुदङ्मुखः” ॥
वसिष्ठोपि—(३।३६) “न पर्णरसदुष्टाभिर्याश्च स्युरशुभागमाः” ॥ हारीतः—“विवर्णगंधवत्तोयं
२५ फेनिलं च विवर्जयेत्” । याज्ञवल्क्यः—(आ. २०) “अद्भिस्तु प्रकृतिस्थाभिर्हानाभिः फेनबुद्बुदैः” ॥
स्मृतिसारे—

“एलालवंगकर्पूरगंधाद्यैर्वीसितैर्जलैः । नाचामेदद्भिरुष्णाभिस्तथा शौचावशेषितैः ॥

“पात्राशिष्टं तु यच्छौचे पाने पादावनेजने । भूमौ तदंबु निस्त्राव्य शेषमाचमनं चरेत् ॥

“न चाग्न्युदकशेषेण कुर्यादाचमनं बुधः । यदि कुर्याज्जलं भूमौ स्त्रावयित्वा समाचरेत्” ॥

३० अग्न्युदकशेषेण अग्निपरिषेचनावशिष्टेनेत्यर्थः ।

स्मृत्यर्थसारे—“नान्योदग्न्युदकशेषमाचामेद्यथाचामेद्भूमौ जलं स्त्रावयित्वाऽऽचामेत न पाद-
प्रक्षालनाचमनाग्न्युदकशेषेणाचमनं कुर्यात् । अन्यकर्मापि न कुर्यात् । यदि कुर्यात् जलं स्त्राव-

यित्वा तत्रांबुपात्रं स्थापयित्वा तत्र उद्धृत्य कुर्यात्” इति । बोधायनः—(१।५।९, १०, १४, १५)
 “प्राङ्मुख उद्धृत्य वाऽऽसीनः शौचमारभेत । शुचौ देशे दक्षिणं बाहुं जान्वंतरां कृत्वा प्रक्षाल्य
 पादौ पाणी च मणिबंधात् । पादप्रक्षालनोच्छेषणेन नाचामेयद्याचाद्धूमौ स्रावयित्वाऽऽचामेत् ।
 नांगुलीभिर्न सबुद्बुदाभिर्न फेनाभिर्न चोष्णाभिर्न क्षाराभिर्न लवणाभिर्न कलुषाभिर्न कटुभिर्न
 दुर्गन्धरसाभिर्न हसन्न जल्पन्न तिष्ठन्नावलोकयन्न प्रव्हो न प्रणतो न विमुक्तशिखो न प्रावृत्तकण्ठो ५
 न वेष्टितशिरा न त्वरमाणो नायज्ञोपवीती प्रसारितपादो न बद्धकक्ष्यो न बहिर्जानुर्न शब्द
 कुर्वन्” इति । प्रचेता अपि—

“अनुष्णाभिरफेनाभिः पूताभिर्वस्त्रचक्षुषा । हृदताभिरशब्दाभिः त्रिचतुर्वाऽद्भिराचमेत्” ॥
 अनुष्णाभिरित्यनातुरविषयम् । अत एव यमः—

“रात्राववीक्षितेनापि शुद्धिरुक्ता मनीषिणाम् । उदकेनातुराणां च तथोष्णेनोष्णपायिनाम्” ॥ इति । १०
 उष्णपायिनामिति आतुराणां न पुनरातुरमात्राणामित्यर्थः । उष्णपायिनो दिक्षिता इति केचित् ।
 स्मृत्यर्थसारे— “नात्मानं पश्यन्नाचामेन्नासीनस्त्रियाद्यान्नान्यार्थ आसने भुक्त्वाऽऽचामेन्ना-
 न्यासने न शयानः पादुकोपानस्थः न दुर्देशे न पदाग्रस्थो न प्रव्हो नान्यमना न नम्रो नैकवस्त्रो
 न वामहस्तेन न प्रसारितपादो नाबद्धासनो यज्ञोपवीतमुत्तरीयं वाऽन्यथा धृत्वा नाचामेत्” ॥

भृगुः—

१५

“सोष्णीषो बद्धपर्यंकः प्रौढपादश्च यानगः । दुर्देशे प्रपदश्चैव नाचामन्शुद्धिमाप्नुयात् ॥

“आसनारूढपादो वा जान्वोर्वा जंघयोस्तथा । कृताऽवसक्थिको यश्च प्रौढपादः स उच्यते” ॥

संवर्त्तः—

“अकृत्वा पादशौचं तु तिष्ठन्मुक्तशिखोऽपि वा । विना यज्ञोपवीतेन आचान्तोऽप्यशुचिर्भवेत्” ॥

माधवीये—

२०

“कण्ठं शिरोऽग्रं प्रावृत्य रथ्यापणगतोऽपि वा । अकृत्वा पादयोः शौचमाचान्तोऽप्यशुचिर्भवेत्” ॥

फलहः—

“शिरः प्रावृत्य कण्ठं वा मुक्तकच्छशिखोऽपि वा । अकृत्वा पादयोः शौचमाचान्तोऽप्यशुचिर्भवेत्” ॥

इति ।

अत्रिः—“अपः पाणिनखाग्रेभ्यः आचामेत् ब्राह्मणस्तु यः । सुरापानेन तत्तुल्यमित्येवं मनुरब्रवीत्” ॥ २५

यमः—“अपः परनखं स्पृष्ट्वा य आचामति वै द्विजः । सुरां पिबति सुव्यक्तं यमस्य वचनं तथा” ॥

मरीचिः—

“न बहिर्जानुराचामेन्नासनस्थो न चोत्थितः । मुक्तासनस्थोऽप्याचामेन्नान्यकाले कदाचन ॥

“नातरीयैकदेशस्य कृत्वा चैवोत्तरीयकम् । आच्छन्नदक्षिणांसस्तु नाचामेतु कदाचन ॥

“विना यज्ञोपवीतेन तथा धौतेन वाससा । मुक्त्वा शिखां वाऽऽचातेन कृतस्थैव पुनः क्रिया ॥ ३०

“याम्यप्रत्यङ्मुखत्वेन कृतमाचमनं यदि । प्रायश्चित्त्यै तदा कुर्यात्स्नानमाचमनं क्रमात्” ॥

प्रचेताः—“नांतर्वाससा बहिर्वासः कुर्वन्नाचामेत्” इति । देवलः—

“शिखां बध्वा वसित्वा द्वे निर्गिक्ते वाससी उभे । तूष्णीं भूत्वा समाप्य न कुर्यान्नावलोकयन्” ॥

उदकं याज्यापेन स्पृशति तावन्नाचामेदित्याह यमः—

“तावन्नोपस्पृशेद्विद्वान्यावदामेन न स्पृशेत् । वामे हि द्वादशादित्या वरुणश्च जलेश्वरः” ॥ इति ।
स्मृत्यर्थसारे—

“वामेन पात्रमुद्धृत्य न पिवेद्दक्षिणेन तु । सौवर्णरौप्यताम्रैश्च वेणुविल्वाश्वचर्मभिः ॥

“अलावुदारुपणैश्च नालिकेरैः कपित्थकैः । वृणकाष्ठैर्जलाधारैरन्यांतरितमृन्मयैः ॥

५ “वामेनोद्धृत्य वाऽऽचामेदन्यदातुरसंभवे । तत्र मृन्मयपात्रस्थं जलं नैवोपहन्यते ॥

“तीर्थं तोयं च शुध्येत करकादिस्थितं सदा” ॥ इति । प्रचेता माधवीये—

“अलावुताम्रपात्रं च करकं च कमंडलुम् । गृहीत्वा स्वयमाचामेन्न तेनाप्रयतो भवेत्” ॥

संवर्त्तः—“शूद्रा शुद्धैकहस्तैश्च दत्ताभिर्न कदाचन । आरूढपादुको वापि न शुध्येत द्विजोत्तमः” ॥
आचम्येति शेषः ।

१० पराशरः—“शूद्राहृतैस्तु नाचामेदेकपाण्यात्तैरपि । न चैवावृतहस्तेन नापरिज्ञातहस्ततः” ॥
यमः—

“उद्धृत्य वामहस्तेन यत्पिवेद्ब्रह्मणो जलम् । सुरापानेन तत्तुल्यं मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥

“कांस्यपात्रे च यत्तोयं यत्तोयं ताम्रभाजने । सौवर्णे राजते चैव नैवाशुद्धं तु कर्हिचित्” ॥

चांद्रिकायाम्—

१५ “करकालावुकांस्येन ताम्रचर्मपुटेन च । स्वहस्ताचमनं कार्यं स्नेहलिप्तानि वर्जयेत्” ॥
भरद्वाजः—

“ताम्रपात्राश्ववालैश्च नारिकेलाश्मपत्रकैः । उपस्पृशेत् स्वहस्तस्थैरैरपि विचक्षणः” ॥

आपस्तम्बः (१।४।२०-२१)—“नाग्न्युदकशेषेण वृथाकर्माणि कुर्वीताचामेद्वा । पाणिसंशुब्धे-
नोदकेनैकपाण्यावर्जितेन च नाचामेत्” । पाणिसंशुब्धेन तत् तटाकादिषु स्वयमाचमने यदा-

२० पर आचमयति तदा एकेन पाणिना यदावर्जितमुदकं तेन नाचामेत् । किंतु उभाभ्यां हस्ताभ्यां
करकादि गृहीत्वा यदावर्जितमुदकं तेनाचामेत् । एवं च स्वयं वामहस्तवर्जितेनापि नाचामेत् ।

अलावुपात्रेण नालिकेरजेन च वैणवेन चर्ममयेन ताम्रमयेन वा पात्रेण स्वयमाचमन्ति शिष्टाः”
इति हरदत्तः । आपस्तम्बः—(१।५।१५।२-६) “भूमिगतास्वप्स्वाचम्य प्रयतो भवति । यं

वा प्रयत आचामयेत् । न वर्षधारास्वाचामेत् । तथा प्रद्रोदके । तप्ताभिश्चाकारणात्” इति । प्राय-
२५ त्पार्थमाचमनं भूमिगतास्वप्सु कुर्यात् । यं वा प्रयतोऽन्य आचामयेत् सोऽपि प्रयतो भवति । सर्वथा

स्वयं वामहस्तावर्जिताभिरद्विराचमनं न भवति । ताम्रपात्रादिना तु वामहस्तावर्जिताभिरद्विः
स्वयं आचमनं भवति । स्मृत्यन्तरे विधानात् । न वर्षधारास्विति प्रतिषेधात् । करकादिधारायां

प्रायत्पार्थमाचमनं भवत्येव प्रद्रोदके गर्तोदके भूमिगतेऽपि नाचामेत् । यत्तु
“आपः शुद्धा भूमिगता वृष्ट्यं यानु गोर्भवेत् । अव्याप्ताश्चेद्मेघेन गंधवर्णरसान्विताः” ॥ इति

३० मनुवचनं (५।१२७), यदपि “शुचि गोवृत्तिकृतोयं प्रकृतिस्थं महीगतम्” इति
यान्नवल्कचवचनं (आ. १९२), यदपि “प्रदग्दपि या गोस्तर्पणाय स्युः” इति वसिष्ठवचनं

(३।३५), तत्सर्वं “गोवृत्तिशिष्टे पयसि शिष्टैराचमनक्रिया” इति कलिसमयनिर्दिष्टं
तप्ताभिश्चाकारणात् ‘तप्ताभिः’ इति वचनात् अतः शीताभिर्द्रोण । तथा चोष्णानामेव प्रतिषेधः
स्मृतिर्न प्रागेव भवति । चरगर्दो न चाग्रे उष्णाभिर्गपि न दोष इत्यर्थः ।

“ त्रिः प्राश्नीयादपो यत्तु प्रीतास्तेनास्य देवताः । ब्रह्मा विष्णुर्महेशश्च भवंतीत्यनुशुभ्रमः ॥

“ गंगा च यमुना चैव प्रीयेते परिमार्जनात् । संस्पृष्टयोर्लोचनयोः प्रीयेने शशिभास्करो ॥

“ नासत्यसंज्ञौ प्रीयेते स्पृष्टे नासापुटे द्वये । कर्णयोः स्पृष्टयोस्तद्वत् प्रीयेते चानलानिलौ ॥

“ संस्पृष्टे हृदये चास्य प्रीयन्ते सर्वदेवताः । मूर्ध्नि संस्पर्शनाद्देवः प्रीतस्तु पुरुषो भवेत् ॥

५ “ य एवं ब्राह्मणो नित्यमुपस्पर्शनमाचरेत् । ब्रह्मादिस्तंबपर्यन्तं जगत्स परितर्पयेत् ” ॥

गौतमः (१।३५-३९)— “ वाग्यतो हृदयं स्पृशस्त्रिचतुर्वाऽऽचामेद्विः परिमृज्यात्पादौ चाभ्युक्षेत् । खानि चोपस्पृशेच्छीर्षण्यानि मूर्ध्नि च दद्यात् ” इति ।

आपस्तंबः (१।५।१६।२-८)— “ आसीनस्त्रिराचामेद्वहृदयंगमाभिराद्भिस्त्रिरोष्ठौ परिमृजेत् । द्विरित्येके सक्कडुपस्पृशेत् । द्विरित्येके । दक्षिणेन पाणिना सव्यं प्रोक्ष्य पादौ शिरश्चेंद्रियाण्युपस्पृशेत् ।

१० चक्षुषी नासिके श्रोत्रे चाथाप उपस्पृशेत् ” इति । सक्कडुपस्पृशेदिति मध्यमाभिः तिसृभिरंगुलीभिः ओष्ठावुपस्पृशेत् । द्विरित्येके इति तुल्यविकल्पः । ओष्ठौ चात्र सलोमकौ । यदाह कण्वः—

“ अथ वेदेतिहासपुराणानानि ध्यायन्ब्राह्मेण तीर्थेन त्रिरपः पीत्वा सलोमकावोष्ठावुन्मृजेत् ” इति ।

दक्षः— “ संहत्यांगुष्ठमूलेन द्विः प्रमृज्यात्ततो मुखम् । संहताभिश्चतसृभिः पूर्वमास्यं सक्कटस्पृशेत् ॥

“ अंगुष्ठेन प्रदेशिन्या घ्राणं स्पृश्यादनंतरम् । अंगुष्ठानामिकाभ्यां तु चक्षुषी समुपस्पृशेत् ॥

१५ “ श्रोत्रे कनिष्ठांगुष्ठाभ्यां नाभिमंगुष्ठकेन वै । सर्वाभिस्तु शिरः पश्चात् बाहू चाग्रेण संस्पृशेत् ” ॥ इति । संवृत्य अलोमकदेशमिति शेषः । “ तिसृभिर्मध्यमाभिर्मध्यमाभिर्मुखं पूर्वं तिसृभिः समुपस्पृशेत् ” ॥

इति योगयाज्ञवल्क्यस्मरणात् । अग्रेण कराग्रेण । व्याघ्रपादः—

“ असौ स्पृष्ट्वा कराग्रेण तोयं स्पृष्ट्वा समाहितः । संस्पृष्ट्य पद्मनाभं च विप्रः सम्यग्विशुध्यति ” ॥ इति ।

अत्र “ ओंकारेण सह यज्ञपुरुषं मनसा स्मरेत् ” इति नारायणीये विशेषः । पैठीनसिः—

२० “ सव्ये पाणौ शेषा अपो निनयेत् ” इति । शेषा आचमनशिष्टाः । भृगुः—

“ त्रिः पीत्वापो द्विरुन्मृज्य मुखं दक्षिणपाणिना । प्रोक्षयेद्बामहस्तं च पादौ मस्तकमेव च ॥

“ स्रोतस्थानानि सर्वाणि स्पृष्ट्वांते तु जलं स्पृशेत् ” । आपस्तंबोऽपि (१।५।१६।८)—

‘ अथाप उपस्पृशेत् ’ इति । आचमनानंतरं हस्तौ प्रक्षालयेदित्यर्थः । प्रकारांतरमाह शंखः—

“ अंगुलीनां चतुष्कोणं स्पृशेन्मूर्धानमादितः । तर्जन्यंगुष्ठयोगेन स्पृशेन्नेत्रद्वयं पृथक् ॥

२५ “ मध्यमानामिकाभ्यां तु स्पृशेन्नासापुटे क्रमात् । अंगुष्ठेन कनीयस्या कर्णौ संयोगतः स्पृशेत् ” ।

वृद्धशङ्खः— “ तर्जन्यंगुष्ठयोगेन स्पृशेन्नासापुटद्वयम् । मध्यमाङ्गुष्ठयोगेन स्पृशेन्नेत्रद्वयं ततः ॥

“ अङ्गुष्ठस्यानामिकाया योगेन श्रवणे स्पृशेत् । कनिष्ठाङ्गुष्ठयोगेन स्पृशेदंसद्वयं ततः ॥

“ नाभिं च हृदयं तद्वत्स्पृशेत्पाणितलेन तु । संस्पृशेत्तु ततः शीर्षं अयमाचमने विधिः ” ॥ इति ।

पैठीनसिः— “ अग्निरंगुष्ठतस्तस्मात्तेनैव सर्वाणि स्थानानि संस्पृशेत् ” इति ।

३० संवर्त्तः—

“ द्दामाभिरफेनाभिस्त्रिचतुर्वाभिराचमेत् । परिमृज्य द्विरास्यं तु द्वादशांगानि चालभेत्

“ सोदकेन च हस्तेन खान्यास्यादीनि सप्त च । नाभिं तथा हन्मूर्धानमन्ते वाहू तथैव च ॥

आत्मतुष्ट्यभिप्रायेण त्रिचतुर्वेति विकल्पः । यत्र मंत्रवदाचमनं तत्र तेन स चतुः । अन्यञ्जी इति केचिद्व्यवस्थामाहुः ।

हारीतः—

“ त्रिः पिबेद्वीक्षितं तोयं आस्यं द्विः परिमार्जयेत् । पादौ शिरस्तथाभ्युक्ष्य त्रिभिरास्यमुपस्पृशेत् ॥

“ अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां च चक्षुषी समुपस्पृशेत् । अङ्गुष्ठेन प्रदेशिन्या नासिके समुपस्पृशेत् ॥

“ तथाङ्गुष्ठकनिष्ठाभ्यां कर्णौ तु समुपस्पृशेत् । अङ्गुष्ठेन प्रदेशिन्या नाभिं च समुपस्पृशेत् ॥

“ तथैव पंचभिर्मूर्ध्नि स्पृशेदेवं समाहितः ॥

“ अङ्गुष्ठोऽग्निरिति ख्यातः प्रोक्ता वायुः प्रदेशिनी । अनामिका तथा सूर्यः कनिष्ठा मघवान् स्मृता ॥

“ प्रजापतिर्मध्यमा तु ज्ञेयाः शुद्धिमभीप्सता” इति । बोधायनः (१।५।१५।१६-२१)—

“ शब्दं अकुर्वस्त्रिरपो हृदयंगमाः पिबेत् । त्रिः परिव्रजेत् । द्विरित्येके । सकृदुभयं शूद्रस्य स्त्रियाश्च । खान्यद्भिः संस्पृश्य पादौ नाभिं शिरः सव्यं पाणिमंततः ” इति । प्रायश्चित्तप्रकरणे स एव (४।३।२-५)— “ ओं पूर्वाभिर्व्याहृतीभिः सर्वपापेष्वामेत् । यत्प्रथममाचामति तेन ऋग्वेदं १० प्रीणाति । यद्वितीयं तेन यजुर्वेदं प्रीणाति । यत्तृतीयं तेन सामवेदं यत्प्रथमं परिमार्ष्टि तेनाथर्व-वेदं यद्वितीयं तेनेतिहासपुराणम् । यत्सव्यं पाणिं प्रोक्षति पादौ शिरौ हृदयं नासिके चक्षुषी श्रोत्रे नाभिं चोपस्पृशति तेनौषधिवनस्पतयः सर्वाश्च देवताः प्रीणाति चाचमनादेव सर्वस्मात्पापात्प्रमुच्यते ” इति । तथा ब्रह्मयज्ञाधिकारे श्रूयते (तै. आरण्य. प्र. २।११)— “ दक्षिणत उपवीयोपविश्य हस्ताववनिज्य त्रिराचामेत् द्विः परिमृज्य सकृदुपस्पृश्य शिरश्चक्षुषी नासिके १५ श्रोत्रे हृदयमालभ्य यत्रिराचामति तेन ऋचः प्रीणाति यद्विः परिमृजति तेन यजूंषि यत्सकृदुप-स्पृशति तेन सामानि यत्सव्यं पाणिं पादौ प्रोक्षति यच्छिरश्चक्षुषी नासिके श्रोत्रे हृदयमालभते तेनाथर्वीगिरिसो ब्राह्मणानीतिहासान्पुराणानि कल्पान्गाथानाराशसीः प्रीणाति ” इति । दक्षिण उपवीयेति “ दक्षिणं बाहुमुद्धरतेऽवधत्ते सव्यमिति यज्ञोपवीत ” (तै. आ. प्र. २।१) इत्येतत्समर्थते । हस्ताववनिज्य मणिबंधनात्प्रक्षाल्य पादयोरप्युपलक्षणम् । द्विः परिमृज्य २० ओष्ठाविति शेषः । सकृदुपस्पृशनमोष्ठयोरेव । सुबोधमन्यत् । भरद्वाजः—

“ ब्रह्मयज्ञे विशेषोऽस्ति किञ्चिदाचमनक्रमे । पानत्रयं तथा कुर्यात्तथा द्विः परिमार्जनम् ॥

“ उपस्पृश्य शिरश्चक्षुः नासिकाद्वितयं ततः । श्रोत्रद्वयं च हृदयं पूर्वोक्तविधिना लभेत् ” ॥ इति ।

शौनकः—

“ प्रक्षाल्य पादौ हस्तौ च त्रिः पिबेदंबुवीक्षितम् । माषमग्नं तु सद्धारि हृद्वतं तु विशुध्यति ॥ २५

“ संवृत्याङ्गुष्ठमूलेन द्विः प्रमृज्यात्तदोष्ठकौ । संहताङ्गुलिभिः सम्यगवाचीनं स्पृशेन्मुखम् ॥

“ अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां तु चक्षुषी समुपस्पृशेत् । अङ्गुष्ठेन प्रदेशिन्या घ्राणं स्पृश्यादनंतरम् ॥

“ कनिष्ठया चाङ्गुष्ठेन श्रोत्रैः सम्यगुपस्पृशेत् । अङ्गुष्ठमध्यमाभ्यां तु बाहू सम्यक् स्पृशेत्ततः ॥

“ अङ्गुष्ठमेण नाभिं तु हृदयं तिसृभिस्ततः । सर्वाभिस्तु शिरः पश्चादेवमाचमनं चरेत् ” ॥ इति ।

स्मृत्यर्थसारे— “ ब्राह्मतीर्थेन त्रिश्चतुर्वा पीत्वा हस्तौ प्रक्षाल्य ओष्ठौ संकोच्याङ्गुष्ठमूलेन द्विः १०

परिमृज्य संहताङ्गुलिभिरास्यं सलोमप्रदेशे स्पृष्ट्वा घ्राणादीर्नीद्रियाणि स्पृशेत्सर्वत्र मध्ये मध्ये अप उपस्पृशेत् । अशक्तौ त्रिः पीत्वा मुखं प्रमृज्य खानि स्पृशेदत्यंताशक्तौ पीत्वा श्रोत्रं स्पृशेत् ।

“ तदोकरेणाचमनं यद्वा व्याहृतिभिर्भवेत् । सावित्र्या वाऽपि कर्तव्यं यद्वा कार्यममंत्रकम् ” ॥ इति ।

स्मृत्यन्तरे—

“अच्युताद्यैः समाचामेत्केशवाद्यैस्तु नामभिः । अंगानां स्पर्शनं कुर्यादेतत्पौराणिकं स्मृतम्” ॥ इति ।
अत्र यथास्वशाखं व्यवस्था । येषां तु स्वशाखायां अंगोपस्पर्शनमाप्नानां तेषां विकल्पः । यत्र
पुनः कृतिपयांगस्पर्शनमुक्तं तत्राविरुद्धवचनांतरानुसारादगांतरस्पर्शनमस्तीति स्मृतिचंद्रिकादौ
व्यवस्थापितम् (पृ. ९५) । जलमध्ये तिष्ठन्नप्याचामेदित्याह विष्णुः—

१५ “जानोरुर्ध्वं जले तिष्ठन्नाचांतः शुचितामियात् । अधस्ताच्छतकृत्वोऽपि समाचांतेन शुध्यति” ॥ इति ।
न तिष्ठन्नाचामेदित्येतत्स्थलविषयम् । अत एव गौतमः (५९।११)— “न तिष्ठन्नुद्धृतो-
दकेनाचामेत्” इति विशिनष्टि । व्यासोऽपि— “नाचामेद्वर्षधाराभिर्न तिष्ठन्नुद्धृतोदकैः” ॥ इति ।
स्मृतिरत्नेऽपि—

“जानुभ्यामूर्ध्वमाचम्य जले तिष्ठन्न दुष्यति । ताभ्यामधस्तात्तिष्ठन्वै नाचामेच्च विचक्षणः ॥”

१० अध इत्येतेन जानुमात्रेऽप्यविरुद्धमित्युक्तम् । तथा चंद्रिकायाम्—

“जानुमात्रजले तिष्ठन्नासीनः प्राङ्मुखस्थले । सर्वतः शुचिराचांतस्तयोस्तु युगपत् स्थितः” ॥ इति ।
यदा जानुमात्रजले स्थित्वाचामेत्तदा जले क्रियमाणे कर्मण्यधिकृतो भवति । यदा तु स्थल
एवासीन आचामेत्तदा स्थल एव क्रियमाणे कर्मणि । यदा पुनरुभयस्थस्तदोभययोरपि क्रिय-
माणेषु कर्मस्वधिकृतो भवतीत्यर्थः । तथा च पैठीनसिः— “अंतरुदकमाचांतोऽतरेव शुध्यति ।

१५ बहिरुदकमाचांतो बहिरेव शुध्यति । तस्मादंतरेकं च बहिरेकं च कृत्वा पादमाचामेत् । सर्वतः
शुद्धो भवति ” ॥ इति । शौनकः—

“पुष्करिण्यां हृदे वाऽपि जानुदध्ने जलं पिबन् शुचिः स्याज्जानुनोऽधस्तादशुचिः स्यान्न संशयः ॥
“तत्तोयं यः पिवेद्विप्रः कामतो वाऽप्यकामतः । अकामं नक्तभोजी स्यादहोरात्रं तु कामतः ” ॥

भरद्वाजः—

२० “जानोरुर्ध्वमथाचामन्नजले तिष्ठन्शुचिर्भवेत् । अधस्ताच्छतकृत्वोऽपि समाचांतो न शुध्यति ॥
“उदके तूदकस्थस्तु स्थलस्थस्तु स्थले शुचिः । पादौ कृत्वोभयत्रापि ह्याचम्योभयतः शुचिः” ॥
यत्तु आपस्तम्ब आह (१।५।१५।१०)— “नाप्सु सतः प्रयमणं विद्यते ” इति । जान्वोरुर्ध्वं
जले सतः आसीनस्य प्रयमणं येन प्रयतो भवति तत्प्रयमणं आचमनं नास्तीति तस्यार्थः ।
तथा च शौनकः—

२५ “जान्वोरुर्ध्वं जले तिष्ठन्नप्याचामेच्छुचिर्भवेत् । आसीनस्तु शयानो वा शतकृत्वो न शुध्यति” ॥ इति ।
स्मृत्यर्थसारेऽपि—

“जानुमात्रे जले तिष्ठन्नाचामन्न हि दुष्यति । उपविश्य सदाचामेज्जानुमात्रादौ जले ॥

“जलाचांतो जले शुच्येद्वहिराचमनो बहिः । बहिरंतश्च आचामेत्सर्वत्र शुचिरेव सः ॥

“जलस्थो जलकायेषु स्थलस्थः स्थलकर्मसु । उभयेषूभयस्थस्त्वाचांतः शुचितामियात् ॥

३० “वामपादं स्थले न्यस्य दक्षिणं तु जले न्यसेत् । वामहस्तेन कं स्पृष्ट्वाऽप्याचामेद्वक्षिणेन तु” ॥ इति ।
हारीतः—

“आर्द्रवासा जले कुर्यात्तर्पणाचमनं जपम् । शुष्कवासाः स्थले कुर्यात्तर्पणाचमनं जपम् ॥

“आर्द्रवासाः स्थलस्थस्तु यथाचामेन्नराधमः । वस्त्रनिश्च्योतनं तस्य प्रेतास्तस्य पिबन्ति हि ॥

“शुष्केणांतर्जले चैव बहिर्गप्यार्द्रवाससा । स्नानं दानं जपो होमः सर्वं भवति निष्फलम् ” ॥

संवर्त्तोऽपि—

“जानुभ्यानुपरिष्ठात्तु शुष्कवासा स्थितो जले । संध्यामाचमनं कुर्वन्न दुष्यति कदाचन ” ॥

विष्णुः (६८।१६)—

“न जले शुष्कवस्त्रेण स्थले चैवार्द्रवाससा । सर्वं तद्राक्षसं विद्यात् बहिर्जानु च यत्कृतम्” ॥ इति ।
आर्द्रवासाः स्नानव्यतिरिक्तकाले स्थले न कुर्यादेव । शुष्कवासास्तु जानुनोऽधस्ताज्जले स्थित्वा ५
न कुर्यादित्यर्थः । स्मृत्यर्थसारे—

“न जले शुष्कवस्त्रेण न स्थले चार्द्रवाससा । आचामादिक्रिया कुर्यादधोजानु न कुत्रचित् ” ॥

विष्णुरपि—

“जानुभ्यामुपरिष्ठात्तु शुष्कवासाः स्थितो जले । सन्ध्यामाचमनं कुर्वन्न दुष्यति कदाचन” ॥

स्मृतिरत्ने—

“ब्राह्मे स्नानेन सूर्यार्घ्ये जलोत्सर्जनतर्पणे । जलेष्टिहोमे शुष्केण जले कुर्वन्न दुष्यति ” ॥ इति ।

यत्तु संवर्त्तवचनम्

“जलं जलस्थो नाचामेज्जलाचांतो जले शुचिः । बहिरंतस्थ आचामेदेवं शुद्धिमवाप्नुयात् ” ॥

यदपि पराशरवचनं

“अवधूनोति यः केशान् स्नात्वा प्रस्रवते द्विजः । आचामेद्वा जलस्थोऽपि स बाह्यः पितृदैवतैः” ॥

प्रस्रवते आर्द्रवस्त्रो मलमूत्रे विसृजति । बाह्यः पितृकं दैविकं चानुष्ठानं कर्तुं अनर्ह इत्यर्थः ॥ १५

यदपि व्यासवचनं—“सोपानात्को जलस्थो वा नोष्णीषी वाऽऽचमेत् बुधः” तत्सर्वं स्नानो-
त्तरकालाचमनविषयम् । यदाह दक्षः—

“स्नात्वाऽऽचामेयदा विप्रः पादौ कृत्वा जले स्थलेऽभयोरप्यसौ शुद्धः ततः कर्मक्षमो भवेत्” ॥ इति ।

पराशरोऽपि (१२।१६)—

“जले स्थलस्थो नाचामेज्जलस्थश्च बहिःस्थले । उभे स्पृष्ट्वा समाचांत उभयत्र शुचिर्भवेत्” ॥ इति । २०

एतत्स्नात्वा य आर्द्रवासास्तद्विषयमिति माधवीये । व्यासः—

“कुशैः पूतं भवेत् स्नानं कुशैर्नोपस्पृशेत् द्विजः । कुशेन चोद्धृतं तोयं सोमपानेन संमितम् ” ॥

भरद्वाजः—“बद्धचूडः कुशकरो द्विजः शुचिरुपस्पृशेत् ” । कुशप्रशंसामाह गोभिलः—

“कुशमूले स्थितो ब्रह्मा कुशमध्ये तु केशवः । कुशाग्रे शंकरं विद्यात्सर्वे देवाः समंततः ” ॥

हारीतः—

“कुशहस्तेन यज्जप्तं दानं चैव कुशैः सह । कुशहस्तस्तु यो भुंक्ते तस्य संख्या न विद्यते ॥

“कुशमालां तु यः कंठे समावहति सर्वदा । लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवांभसा ॥

“करे कंठे शिखायां च कर्णयोरुभयोरपि । पवित्रधारको यश्च न स पापेन लिप्यते ॥

“जपहोमहरा एते असुरा व्यक्तरूपिणः । पवित्रकृतहस्तस्य विद्रवंति दिशो दश ” ॥

गोभिलः—

“वज्रो यथा सुरेंद्रस्य शूलं हस्ते हरस्य च । यथा चक्रायुधं विष्णोरेवं विप्रकरे कुशः ॥

“भूतप्रेतपिशाचाश्च ये चान्ये ब्रह्मराक्षसाः । विप्रांगुलिकुशान् दृष्ट्वा दूरं गच्छन्त्यधोमुखाः ” ॥

मार्कण्डेयः—

“कुशपाणिः सदा तिष्ठेत् ब्राह्मणो ढंभवर्जितः । स नित्यं हंति पापानि तूलराशिमिवानलः ” ॥

कौशिकः—

- “ कुशासनं परं पूर्तं यतीनां तु विशेषतः । कुशासनोपविष्टस्य सिध्यते योग उत्तमः ॥
 “ यथा पुष्करपर्णेषु अपां लेपो न विद्यते । एवं पवित्रहस्तस्य पापलेपो न विद्यते ॥
 “ अपवित्रकरः कश्चित् ब्राह्मणो य उपस्पृशेत् । अपूर्तं तस्य तत्सर्वं भवत्याचमनं तथा ॥”

५ व्यासः—

- “ अंगुष्ठानामिकाभ्यां तु च्छिन्नं पैतामहं शिरः । रुद्रेण तु ततः कालात्समारभ्यकरोऽशुचिः ॥
 “ पावनार्थं ततो हस्ते कुशकाञ्चनधारणम् ॥” इति । शातातपः—
 “ जपे होमे तथा दाने स्वाध्याये पितृतर्पणे । अन्यूनं तु करं कुर्यात्सुवर्णरजतैः कुशैः ॥
 “ कौशेयं विभृयान्नित्यं पवित्रं दक्षिणे करे । भुञ्जानस्तु विशेषेण नात्रदोषेण लिप्यते ॥
 १० अत्रिः—“ उभाभ्यामेव पाणिभ्यां विप्रैर्दर्भपवित्रके । धारणीये प्रयत्नेन ब्रह्मग्रंथिसमन्विते ॥
 “ यज्ञोपवीते मौज्यां च तथा कुशपवित्रके । ब्रह्मग्रंथिं विजानीयादन्यत्र तु यथारुचि ॥
 “ ब्रह्मयज्ञे जपे चैव ब्रह्मग्रंथिर्विधीयते । भोजने वर्तुलः प्रोक्तः एवं धर्मो न हीयते ॥” इति
 अत्र अंगुलीनियमो दर्शितः चन्द्रिकायाम्—(मत्स्यपुराणोक्तः पृ. १०८ पं. ११)
 “ धार्योऽनामिकया दर्भो ज्येष्ठानामिकयाऽपि वा । उभाभ्यामनामिकाभ्यां तु धार्यं दर्भपवित्रकम् ॥”

१५ इति । संवर्तः—

- “ उभाभ्यामपि हस्ताभ्यां पवित्रं धारयेत् द्विजः । दैवे कर्मणि पित्र्ये च ब्रह्मग्रंथिसमन्वितम् ॥
 “ अग्रं तु ब्रह्मदैवत्यं ग्रंथिर्वैष्णव उच्यते । रज्जुराशीनदैवत्यानामिकायां तु योजयेत् ॥
 अत्रिः—“ उभाभ्यामेव हस्ताभ्यां विप्रो दर्भपवित्रके । ब्रह्मग्रंथिसमायुक्ते पवित्रे मध्यपर्वणि ॥
 “ पाणिभ्यां सर्वथा धार्यं कर्मकाले विशेषतः ॥
 २० “ प्रथमं लंघयेत्पर्वं द्वितीयं तु न लंघयेत् । द्वयोस्तु पर्वणोर्मध्ये पवित्रं धारयेद् बुधः ॥
 “ अग्रपर्वस्थितो दर्भस्तपोवृद्धिकरो हि सः । मध्ये चैव प्रजाकामो मूले सर्वार्थसाधकः ॥
 एतत्काम्यविषयम् । वर्णभेदेन पर्वनियममाह स एव—

“अंगुलीमूलदेशे तु पवित्रं धारयेद्विजः । राज्ञां द्विपर्वके चैव विशामग्रे करस्य च” ॥ इति ।

स्मृतिमास्करे—

- २५ “ सप्तभिर्दर्भपुञ्जीलैर्ब्राह्मणस्य पवित्रकम् । पञ्चभिः क्षत्रियस्यैव चतुर्भिश्च तथा विशः ॥
 “ उभाभ्यामेव शूद्रस्य ह्यातराणां तथैव च” । आंतराणामनुलोमानाम् । स्मृत्यर्थसारे—
 “ सर्वेषां वा भवेत् द्वाभ्यां वा पवित्रं ग्रथितं तथा । सप्तपत्राः कुशाः शस्ताः दैवे पित्र्ये च कर्मणि ॥
 “ अन्ततस्तरुणौ साग्रौ प्रादेशे तु पवित्रके ” । काम्यपवित्रमुक्तं तत्रैव—
 “ त्रिभिर्दर्भैः शान्तिकर्म पञ्चभिः पौष्टिकं तथा । चतुर्भिश्चाभिचारारुयं कुर्यात्तत्र पवित्रकम् ॥” इति
 ३० नित्यपवित्रं प्रकारान्तरेणाह मार्कण्डेयः—

“ चतुर्भिर्दर्भपुञ्जीलैर्ब्राह्मणस्य पवित्रकम् । एकैकन्यूनमृष्टिं वर्णतस्तु यथाक्रमम् ॥
 शूद्रस्य ग्रंथियुक्तपवित्रं निषेधति यमः—

- “ कुतूहलेन वा शूद्रं पवित्रं धारयेद्यदि । स तप्यते महाघोरैः सुचिरं नरकामिभिः ॥
 “ तस्मात्पवित्रं नतत द्विजैर्वेदपरायणैः । कर्मानुष्ठाननिरतैर्धार्थ नेतरजातिभिः ॥”

कात्यायनः—

“सप्त दर्भाः शुभा कार्यास्तिलक्षेत्रसमुद्भवाः । ते प्रशस्ता द्विजातीनां दैवे पित्र्ये च कर्मणि ॥
 “अप्रसूताः स्मृता दर्भाः प्रसूतास्तु कुशाः स्मृताः । समूलाः कुतपाज्ञेयाः छिन्नाग्रास्तृणसंज्ञिताः ॥
 “अच्छिन्नाग्रा ह्यशुष्काग्रा ह्रस्वाश्चैव प्रमाणतः । कुतपा इति विज्ञेयास्तैस्तु श्राद्धं समाचरेत्” ॥ इति ।
 “छिन्नाग्रानपि वै दर्भान् अमूलान्कोमलाञ्जुमान् । पितृदेवजपार्थं तु समादद्यात्कुशान्द्विजः ॥ ५
 “छिन्नमूला ग्रहीतव्याः प्रस्तरार्थं कुशोत्तमाः । अग्निकार्ये च यागे च समूलान्परिवर्जयेत्” ॥

कात्यायनः—

“हरिता यज्ञिया दर्भाः पीताः पावकसंज्ञकाः । समूलाः पितृदैवत्याः कल्माषा वैश्वदेविकाः” ॥
 पितृदेवत्याः पित्रर्थाः । तथा च यमः—
 “समूलस्तु भवेत् दर्भः पितॄणां श्राद्धकर्मणि । मूलेन लोकाञ्जयति शक्रस्य सुमहात्मनः” ॥ १०
 एतत् एकोद्दिष्टश्राद्धविषयम् । यतः स एवमाह—
 “एकोद्दिष्टे कुशाः कार्याः समूला यज्ञकर्मणि । बहिर्लूनाः सकृल्लूनाः सर्वत्र पितृकर्मसु” ॥ इति ।
 बहिर्लूनाः उपमूलं लूनाः । तथा च गोभिलः—“उपमूलं लूनाः पितृकार्येषु” ॥ इति ।
 चांद्रिकायाम्—(ब्रह्माण्डपुराणे पृ. १७९ पं. १०)
 “उपमूलं तथा लूनाः श्राद्धार्थं तु कुशाः स्मृताः । तथा श्यामाकनीवारौ दूर्वा च समुदाहृता” ॥ इति । १५
 एकोद्दिष्टश्राद्धार्थमित्यर्थः ।

“सपिंडीकरणं यावद्द्विजुर्धर्मः पितृक्रिया । सपिंडीकरणादूर्ध्वं द्विगुणैर्विधिवद्भवेत् ॥
 “तर्पणादीनि कार्याणि पितॄणां यानि कानि च । तानि स्युर्द्विगुणैर्दर्भैः पवित्रैर्वा विशेषतः ॥
 “तिलक्षेत्रोद्भवैर्दर्भैः प्रयत्नात् द्विगुणीकृतैः । पितॄणां तर्पणं कुर्याद्देवानां तु यदृच्छया ॥
 “पित्र्यं मूलेन मध्येन स्नानं दानं प्रयत्नतः । दैवं कर्म कुशाग्रेण कर्तव्यं भूतिमिच्छताम्” ॥ इति । २०
 यदृच्छया तिलक्षेत्रोद्भवत्वादिनियमराहित्येनेत्यर्थः । शालंकायनः—

“कुशाग्रस्तर्पयेद्देवान्मनुष्यान्कुशमध्यतः । द्विगुणीकृत्य मूलाग्रैः पितॄन् संतर्पयेत् द्विजः” ॥
 मनुष्यतर्पणे मध्यस्य प्राजापत्यतीर्थसंबन्धः । द्विगुणीकृत्य मूलाग्राभ्यां पितृतीर्थगताभ्यामित्यर्थः ॥
 स्मृत्यर्थसारे—

“पवित्रकर आचामेत् शुचिः कर्मादरात् द्विजः । कुशमात्रकरो वाऽपि दर्भमात्रकरोऽपि वा ॥ २५
 “तं कुशं विधिवल्लूनं न त्यजेदन्यथा त्यजेत् । अन्ये दर्भास्तु संत्याज्याः त्यजेद्दूर्वां पुरैव तत्” ॥

मार्कण्डेयः—

“सपवित्रेण हस्तेन कुर्यादाचमनक्रियाम् । नोच्छिष्टं तत्पवित्रं तु भुक्तोच्छिष्टं तु वर्जयेत्” ॥ इति ।
 एतद्ग्रंथिविहीनदर्भाभिप्रायम् । तथा च हारीतः—“ग्रंथिर्यस्य पवित्रस्य न तेनाचमनं चरेत्” ॥

कौशिकोऽपि—“न ब्रह्मग्रंथिनाऽऽचामेन्न दूर्वाभिः कदाचन” । स्मृतिसारे—

“ग्रंथीकृतपवित्रेण न भुंजीयान्न चाचमेत् । न पिबेद्यदि कुर्वीत तदा तच्छोणितं भवेत्” ॥ ३०

भरद्वाजः—

“ग्रंथियुक्तपवित्रेण कुर्यादाचमनं यदि । तत्पवित्रं परित्यज्य पुनराचम्य शुध्यति” ॥ इति ।

केचित्तु एतानि वचनानि केवलाचमनविषयाणि । कर्मागाचमने न दोषः

“सदर्भः सपवित्रो वा कर्मागाचमनं चरेत् । नोच्छिष्टं तत्सदर्भं च भुक्तोच्छिष्टं तु वर्जयेत् ॥

“पवित्रं ग्रंथिमुत्सृज्य मंडले निक्षिपेद्विजः । पात्रे च निक्षिपेद्यस्तु स विप्रः पंक्तिवृषकः ॥

“मुक्तदर्भेर्न भोक्तव्यं भुक्त्वा देव्याः शतं जपेत् ॥ इति स्मरणात् । कौशिकः—

“वामहस्ते स्थिते दर्भे दक्षिणेनाचमेद्यदि रक्तं तु तद्भवेत्तोयं पीत्वा चांद्रायणं चरेत् ॥

५ हारीतोऽपि—

“वामहस्ते कुशान् कृत्वा समाचामति यो द्विजः । उपस्पृष्टं भवेत्तेन रुधिराण मलेन च ॥ इति ।

व्यासः—

“गृहीत्वा वामहस्तेन कुशमुष्टिं प्रमादतः । उपस्पृशन्ति तु ये विप्रा रुधिराणाचमन्ति ते ॥

नंदिसूरिः—

१० “वामहस्तस्थदर्भो वा हसन्पश्यन् दिशोऽथ वा । वामपादस्थहस्तो वा नैवाचमनमाचरेत् ॥

स्मृतिरत्ने—

“वामहस्ते स्थिते दर्भे न पिबेद्दक्षिणेन तु । वस्त्रादिनोपग्रहणे न दोषः पिबतो भवेत् ॥ इति ।

एतानि केवलवामहस्तविषयाणि । तथा च गोभिलः—

“उभयत्र स्थितेर्दर्भैः समाचामति यो द्विजः । सोमपानफलं तस्य भुक्त्वा यज्ञफल लभेत् ॥ इति ।

१५ सारसमुच्चये —

“यो दर्भपाणिस्तोयेन सोमपानफलं लभेत् । सपवित्रेण हस्तेन भुक्त्वा यज्ञफलं लभेत् ॥

“अथवाऽनामिकाभ्यां तु ग्रंथिहीनं कुशादिकम् । हेमादीन्वाऽथ विभृयात् सर्वकर्मस्त्रपि द्विजः ॥

“पवित्रं सर्वदुःखघ्नं तथैवानंददायकम् । हेम्ना रूप्येण वा धीमान् पवित्रं धारयेत्सदा ॥

कात्यायनः—

२० “तर्जन्या विभृयाद्रौप्यं स्वर्णं चोपकनिष्ठया । गृहस्थः श्रवणाभ्यां तु शुभे रौप्ये च कुंडल ॥

शाङ्खवल्क्यः—

“गोवालं दर्भसूत्रं च रत्नं कनकसंयुतम् । कायेन धारयन् विप्रो न स पापेन लिप्यते ॥

स्मृतिरत्ने—

“कुशं पवित्रं ताम्रं वा रजतं हैममेव वा । विभृयात् दक्षिणे पाणौ पवित्रं चोत्तरोत्तरम् ॥

२५ “अनामिकाधृतं हेम तर्जन्यां रूप्यमेव च । कनिष्ठिकाधृतं खड्गं तेन पूतो भवेन्नरः ॥

हारीतः—

“न रूप्यं केवलं धार्य दैवे पित्र्ये च कर्माणि । अनामिकाधृतं हेम तर्जन्या धारयेच्च तत् ॥ इति ।

व्यासोऽपि—

“हेमेन सर्वदा सर्वं कुर्यादेवाविचारयन् । रौप्यं दक्षप्रदेशिन्या विभृयात्सर्वदा द्विजः ॥

३२ “दक्षानामिकया विप्रो विभृयाद् ग्रंथिसंयुतम् । अग्रंथिकं च हेमं च तथा लोहत्रयोद्धवम् ॥

“गायत्र्यक्षरसंख्यातं गृह्णीयात्ताम्रमुत्तमम् । अनुष्टुभस्तथा रौप्यं त्रिष्टुभः कनकोत्तमम् ॥

नाम्ररूप्यसुवर्णैर्यथाक्रमं अष्टैकादशादशपरिमितैर्निर्मितमित्यर्थः ।

“एवं लोहत्रयेणैव कृतं रक्षोघ्नमुत्तमम् । अधग्रं च पवित्रं स्याद्रक्षाकर्मनृत्तमम् ॥

“आयुष्करमनाधृष्यमभेद्यं रोगनाशनम् ॥

जीवत्पितृकस्य जीवज्ज्येष्ठस्य रौप्यांगुलीयकनिषेधमाह स एव—

“योगपट्टोत्तरीयं च तर्जन्यां रजतं तथा । न जीवत्पितृकैर्धार्यं ज्येष्ठो वा विद्यते यदि” ॥ इति ।

पादस्पर्शं विशेषमाह स एव—

“विप्राणां चरणस्पृष्टं पादप्रक्षालने यदि । त्यजेत्प्रारब्धकर्मते पवित्रं दर्भनिर्मितम्” ॥ इति ।

भरद्वाजः—

५

“कूर्चेन वा पवित्रेण येन कर्माणि कारयेत् । तस्य ग्रंथिं विसृज्यैव कर्मान्ते तु ततस्त्यजेत् ॥

“पवित्रकूर्चयोस्त्यागे सग्रंथोस्तु प्रमादतः । उपवासं चरेदेकं उपवासत्रयं तु वा ” ॥

दर्भपवित्रस्य त्यागाभिधानात् रूप्यादिनिर्मितस्य पवित्रस्य न त्यागः ।

गोवालपवित्रं प्रकृत्याह कौशिकः—

“गवां वालपवित्रेण धार्यमाणेन नित्यशः । न स्पृशतीह पापानि श्रीश्च गात्रेषु तिष्ठति ॥ १०

“गवां वालपवित्रेण बन्धुपास्तिं करोति यः । पंचाग्नयो हुतास्तेन यावज्जीवं न संशयः ॥

“गवां वालपवित्रेण संध्योपास्तिं करोति यः । स वै द्वादश वर्षाणि कृतसंध्यो भवेन्नरः ॥

“गवां वालपवित्रस्य सुवर्णस्य तथैव च । न ब्रह्मग्रंथिनियमो धारयेत्तु यथाविधि” ॥

पवित्रनिर्माणमुक्तं पारिजाते—

“तर्जन्यंगुष्ठयोरग्रं योजितं तु तथा भवेत् । ज्ञानमुद्रां तथा कुर्यात्कूर्चवद् ग्रंथिवंधनम्” ॥ १५

स्मृतिरत्ने—

“अंगुष्ठं घर्षयेदूर्ध्वं तर्जन्या तु पुनः पुनः । ज्ञानमुद्रामधः कृत्वा कूर्चवद्ग्रंथिवंधनम्” ॥ इति ।

आश्वलायनः—

“साग्राभ्यामृजुदर्भाभ्यां प्रादक्षिण्येन मध्यतः । मूलाग्राबुद्धृतौ कृत्वा कुर्याद् ग्रंथिं च मंत्रवत् ॥

“तरेण कुर्यात्तां ग्रंथिं पवित्रस्य द्विजोत्तमः । ग्रंथिरेकांगुला तस्य तदूर्ध्वं चतुरंगुलम्” ॥ २०

स्मृतिभास्करे—

“चतुरंगुलमग्रं च ग्रंथिरेकांगुला तथा । वलयं ब्यंगुलं चैव पवित्रस्य तु लक्षणम्” ॥ इति ।

उत्पवनादौ पवित्रमाह कात्यायनः—

“अनन्तर्गर्भितं साग्रं कौशं द्विदलमेव च । प्रादेशमात्रं विज्ञेयं पवित्रं यत्र कुत्रचित्” ॥

सूत्रकारोऽपि— “समावप्रच्छिन्नाग्रौ दर्भौ प्रादेशमात्रौ पवित्रे कुरुत ” इति ।

२५

दर्भाहरणकालनियममाह हारीतः—

“माघे नभस्यमा या स्यात्तस्यां दर्भोच्चयो मतः । अयातयामास्ते दर्भा नियोज्याः स्युः पुनः पुनः” ॥

नभः श्रावणमासः । कालांतरोत्पादितास्तु नायातयामाः । अतः पुनः पुनर्विनियोगयोग्या न भवंतीत्यर्थः । अनेनैवाभिप्रायेण शंखोऽपि—

“दर्भाः कृष्णाजिना मंत्राः ब्राह्मणा हविरग्नयः । अयातयामान्येतानि संयोज्यानि पुनः पुनः” ॥ इति ।

३०

स्मृतिचिंतामणौ—

“मासिसास्युद्धृतकुशा मासिसास्येव चोदिताः । नोत्तरोत्तरमासेषु धर्मविद्भिर्बुद्धाहताः ॥

“सप्तरात्रं शुभा दर्भास्तिलक्षेत्रसमुद्भवाः । ते द्विजेन नियोक्तव्या दैवे पित्र्ये च कर्मणि ॥

“अहन्यहनि कर्मार्थं कुशोद्धारः प्रशस्यते । न पूर्वेषूद्धृतकुशा योग्याश्चैवोत्तरेषु तु”॥ इति ।

जावालः—

“कुशान्काशांश्च पुष्पाणि गवार्थं च तृणादिकम् निषिद्धे चापि गृह्णीयात् अमायामहनि द्विजः”॥ इति ।

“अमावास्यासु न छिंद्यात् कुशांश्च समिधस्तथा । सवित्रावस्थिते सोमे हिंसायां ब्रह्महा भवेत् ” ॥

५ इति विष्णुपुराणवचनं अशास्त्रीयकुशादिग्रहणविषयम् । आहरणप्रकारमाह गोभिलः—

“शुचौ देशे शुचिर्भूत्वा स्थित्वा पूर्वोत्तरामुखः । हुंकारेणैव मंत्रेण कुशान् स्पृश्यात् द्विजोत्तमः” ॥

उत्पाटनमंत्रमाह स एव—

“विरिंचेन सहोत्पन्न परमेष्ठिनिसर्गद । नुद पापानि सर्वाणि दर्भं स्वस्तिकरो मम”॥ इति ।

कुशालाभे तु शंखः—

१० “कुशालाभे द्विजः श्रेष्ठः काशैः कुर्वीत यत्नतः । तर्पणादीनि कर्माणि काशाः कुशसमाः स्मृताः”॥

विष्णुरपि—“कुशाभावे कुशस्थाने काशान् दूर्वा वा दद्यात् ” इति ।

वृद्धवसिष्ठः—

“कुशाभावेऽश्ववालो वा विश्वामित्रोऽथ वा यवाः । दूर्वाश्चैतेषु ये लब्धास्तेन कर्माणि कारयेत् ॥

“श्रुतिस्मृतिषु भिन्नत्वाद्विप्राणां विश्वकर्मणाम् । विश्वासाच्चैव मित्रत्वाद्विश्वामित्र उदाहृतः ॥

१५ “कुशकाशाद्यभावे तु अन्ये दर्भा यथोचितम् ” ॥ इति । स्मृतिसारेऽपि—

“कुशाः काशा यवा दूर्वा गोधूमाश्वाथ कुंदराः । उशीरा व्रीहयो मौंजा दश दर्भाश्च बल्वजाः” ॥

वृद्धवसिष्ठः—

“कुशं तु रौद्रं विज्ञेयं कौशं ब्राह्मं तथा स्मृतम् । आर्षं तु दौर्वमाख्यातं वैश्वामित्रं तु वैष्णवम् ॥

“विश्वामित्राः कुशाः काशा दूर्वा व्रीहय एव च । बल्वजाश्च यवाश्चैव सप्तदर्भाः प्रकीर्तिताः ॥

२० “नार्द्रं लुनीयाद्रात्रौ तु लुनीयान्नापि संध्ययोः ” ॥ शंखः—

“काशहस्तस्तु नाचामेत्कदाचिद्विधिशंकया । प्रायश्चित्तेन युज्येत दूर्वाहस्तस्तथैव च” ॥ इति ।

प्रायश्चित्तं गायत्र्यष्टतमिति स्मृतिरत्नेऽभिहितम् । बर्हिषि तु यमः—

“कुशाः काशास्तथा दूर्वा यवा व्रीहय एव च । बल्वजाः पुंढरीकाणि सप्तधा बर्हिरुच्यते ” ॥

स्मृत्यर्थसारे—

२५ “वर्हिः काशमयं ग्राह्यं न लभ्यते कुशा यदि । शरैरकांसूकलाश्ववालमौंजार्जुनेक्षवः ॥

“सुगंधितेजनादारादूर्वाक्षीरद्रुमा अपि । यद्वा सर्वतृणैर्वाऽपि ग्राह्यं बर्हिर्यथोचितम् ॥

“शुष्कशुंडं कृष्टमूलं दुर्गंधि तृणवर्जितम् । सूकलानेरकांश्चापि वर्जयंत्यपरे बुधाः” ॥ इति ।

वज्र्यानाह हारीतः—

“पथि दर्भाश्चित्तौ दर्भा ये दर्भा यज्ञभूमिषु । स्तरणासनपिंडेषु पट् कुशान् परिवर्जयेत् ॥

३० “ब्रह्मयज्ञे च ये दर्भा ये दर्भाः पितृतर्पणे । हता मूत्रपुरीषाभ्यां तेषां त्यागो विधीयते ॥

“अपूता गर्हिता दर्भा ये च छिन्ना नखैस्तथा । कथितानग्निदग्धांश्च कुशान्यत्नेन वर्जयेत् ” ॥

चंद्रिकायाम् (पृ. १०९ पं. २४)—

“नीवीमध्ये तु ये दर्भा ब्रह्मसूत्रे च ये कृताः । पवित्रांस्तान्विजानीयाद्यथा काशास्तथा कुशाः ॥

“पवित्रं करशारास्थं दक्षिणश्रवणे न्यसेत् । नान्यत्र निक्षिपेद्देहे निक्षिप्तं यदि तत्त्यजेत् ” ॥

१ क्ष-कानुक्तान्य...क्षमः । २ क्ष-७ । ३ क्ष-दूर्वाक्षीरद्रुमा, ग-क्षीरद्रुमा । ४ ग-शुगनुगुडी

रुग्गुल ।

दर्भसंख्योक्ता स्मृतिरत्ने—

“ हस्तयोरुभयोर्द्वौ द्वावासने च तथैव च । समे द्वे स्थैल्यदैर्घ्याभ्यां पवित्रे द्वे तथा स्मृते ॥
 “ प्रणीतासनमाच्छाद्यं त्रिभिर्दर्भैरुदीरितम् । पर्याग्निकरणे चैकं द्योतने वोक्षणे तथा ॥
 “ लेखने च तथा द्वे द्वे स्तरणे षोडशाः स्मृताः । अष्टाविंशतिदर्भेषु ब्रह्मार्थं ब्राह्मणाय वा ॥
 “ देवकार्येषु दर्भौ द्वौ पित्र्ये चैकं त्रयोऽपि वा ” ॥ इति ।

५

अथाचमनानिमित्तानि । तत्र मनुः (५।१३७)—

“ कृत्वा मूत्रपुरीषं वा खान्याचान्त उपस्पृशेत् । वेदमध्येष्यमाणश्च अन्नमश्वं च सर्वदा ” ॥
 आचांतः त्रिरपः पीत्वेत्यर्थः । मार्कंडेयः—

“ देवार्चनादिकार्याणि तथा गुर्वभिवादनम् । कुर्वीत सम्यगाचम्य तद्वदेव भुजि क्रियाम् ” ॥
 संवर्तः—

१०

“ स्नात्वा पीत्वा तथा भुक्त्वा क्षुत्वा सुप्त्वा द्विजोत्तमः । अनेन विधिना सम्यगाचांतः शुचिमा मियात् ” ॥
 हारीतोऽपि— ‘ सुषुप्सुर्भोक्ष्यन्नाचामेत् ’ इति । नंदिसूरिः—

“ नूतनोपवीतविन्यासे सस्नेहौषधभक्षणे । पैतृके कर्मणि स्नेहभक्ष्ये चाद्यंतयोः सकृत् ॥
 “ स्वाध्याये देवपूजायां जपे च सकृदादितः । पितृकार्ये तथा स्त्रीणां संभोगे चांततः सकृत् ” ॥

प्रजापतिरपि—

१५

“ उपक्रम्यावशिष्टस्य कर्मणः प्रयतोऽपि सन् । कृत्वा च पितृकार्याणि सकृदाचम्य शुध्यति ॥
 “ वर्णत्रयस्य संस्पर्शेऽध्याचम्य प्रयतो भवेत् । संस्पर्शे प्रतिलोमानां क्रियात्यागो विधीयते ॥
 “ विप्रो विप्रेण संस्पृष्ट उच्छिष्टेन कथंचन । आचम्यैव च शुद्धः स्यादापस्तंबोऽब्रवीन्मुनिः ॥
 “ जपहोमप्रदानेषु पितृपिंडोदकेषु च । विप्रः समाप्तेष्वाचामेत्सर्ववस्तुषु चर्वणे ” ॥

मनुः (४।१४, १४४)—

२०

“ न स्पृशेत्पाणिनोच्छिष्टो विप्रो गोब्राह्मणानलान् । न चापि पश्येदशुचिः स्वस्थो ज्योतिर्गणान् दिवि ॥
 “ स्पृष्ट्वैतानशुचिर्नित्यं अद्भिः प्राणानुपस्पृशेत् । गात्राणि चैव सर्वाणि नाभिं पाणितलेन तु ” ॥ इति ।

चंद्रिकायाम् (पृ. ९८ पं. ३०, पृ. ९९ पं. १)—

“ चंडालम्लेच्छसंभाषे स्त्रीशूद्रोच्छिष्टभाषणे । उच्छिष्टं पुरुषं दृष्ट्वा अभोज्यं च तथाविधम् ॥

“ आचामेदश्रुपाते वा लोहितप्रसवे तथा । अग्नेर्गवामथालंभे स्पृष्ट्वा प्रयतमेव च ॥

२५

“ स्त्रीणामथात्मनः स्पृश नीवीं वा परिधाय च । कृत्वा चावश्यकार्याणि त्वाचामेच्छौचतत्परः ” ॥

अवश्यकार्याणि नित्यानि । तत्रैव—

“ संदेहेषु च सर्वेषु शिखामोक्षे तथैव च । विना यज्ञोपवीतेन नित्यमेवमुपस्पृशेत् ” ॥

आपस्तंबः (१।५।१६।१४)— “ स्वमेक्षवथौ शृंखाणिकाश्वालंभे लोहितस्य केशानामग्नेर्गवां ब्राह्मणस्य स्त्रियाश्वालंभे महापथं च गत्वामेध्यं चोपस्पृश्याप्रयतं च मानुष्यं नीवीं च परि- ३०
 धायाप उपस्पृशेत् ” इति । क्षवथुः क्षुतं । शंखाणिका नासामलम् । अश्रु नेत्रजलम् । आलंभे स्पर्शः । स एव (१।५।१५।११) “ उत्तीर्य त्वाचामेत् ” इति । यमोऽपि—

“ उत्तीर्योदकमाचामेद्वतीर्य तथैव च । एवं स्याच्छ्रेयसा युक्तो वारुणाश्चैव पूजिताः ” ॥

हारीतः— “ नोत्तरेदनुपस्पृश्येत् देवतामभिगंतुकाम आचामेत् ” ॥ इति । बृहस्पतिः—

“अधोवायुसमुत्सर्गे आक्रन्दे क्रोधसंभवे । मार्जारमूषिकस्पर्शे प्रहासेऽनृतभाषणे ॥

“निमित्तेष्वेषु सर्वेषु कर्म कुर्वन्नुपस्पृशेत्” ॥

मनुः (५।८५)—“आचाम्य प्रयतो नित्यं जपेदशुचिदर्शने” ॥ बृहस्पतिः—

“श्वशूद्रपतितांश्चैव रासभं च रजस्वलाम् । दृष्ट्वा तोयमुपस्पृश्य भाष्य स्नात्वा पुनर्जपेत्” ॥

५ चंद्रिकायाम् (पृ. ९९ पं. २२)—

“चंडालादीन्जपे होमे दृष्ट्वाऽऽचामेत् द्विजोत्तमः । श्वादीन् दृष्ट्वा तथैवापि कर्णं वा दक्षिणं स्पृशेत्” ॥

वसिष्ठोऽपि—

“क्षुते निष्ठीविते सुप्ते परिधानेऽश्रुपातने । पंचस्वेतेषु चाचामेच्छ्रोत्रं वा दक्षिणं स्पृशेत्” ॥ इति ।

संवर्त्तः—

१० “क्षुते निष्ठीविते चैव दंतश्लिष्टे तथाऽनृते । पतितानां च संभाषे दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत् ॥

“अग्निरापश्च देवाश्च चंद्रसूर्यानिलास्तथा । सर्वे ते खलु विप्राणां कर्णे तिष्ठन्ति दक्षिणे” ॥

पराशरः (७।४०)—

“प्रभासादीनि तीर्थानि गंगाद्याः सरितस्तथा । विप्रस्य दक्षिणे कर्णे संतीति मनुरब्रवीत् ॥

“आदित्यो वरुणः सोमो बन्धिर्वायुस्तथैव च । विप्रस्य दक्षिणे कर्णे नित्यं तिष्ठन्ति देवताः” ॥

१५ स्मृत्यर्थसारे—

“अग्निस्तीर्थानि वेदाश्च वरुणाकैंदुवायवः । विप्रस्य दक्षिणे कर्णे नित्यं तिष्ठन्ति पूजिताः” ॥ इति ।

एतच्च दक्षिणकर्णस्पर्शनमाचमसंभवे वेदितव्यम् । तथा मार्कण्डेयपुराणे—

“सम्यगाचम्य तोयेन क्रियाः कुर्वीत वै शुचिः । देवतानामृषीणां च पितॄणां चैव यत्नतः ॥

“कुर्वीतालंभनां चापि दक्षिणश्रवणस्य वा । यथाविभवतो ह्येतत्पूर्वाभावे ततः परम् ॥

२० “अविद्यमाने पूर्वोक्त उत्तरप्राप्तिरिष्यते” इति । अथवा बोधायनोक्तं (१।५।७४)

द्रष्टव्यम्— “नीवीं विसृज्य परिधायोपस्पृशेदार्द्रं तृणं भूमिं गोमयं वा सकृदुपस्पृशेत्” इति ।

आपस्तंबोऽपि (१।५।१६।८—१५)—“अप उपस्पृशेदार्द्रं वा शकृदोषधीर्भूमिं वा” इति ।

आर्द्रं वा शकृत् आर्द्रा वा ओषधीः आर्द्रा वा भूमिमित्यर्थः । स्मृतिरत्ने—

“सत्यामाचमनाशक्तावभावे सलिलस्य वा । पूर्वोक्तेषु निमित्तेषु दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत्” ॥ इति ।

२५ व्यासः—“उपस्पृशेत्तृणं वाऽऽर्द्रं जलं वा भूमिमेव वा” ॥ अर्णवे—

“अशक्तौ वा जलाभावे पूर्वोद्दिष्टनिमित्तके । ओषधीगोशकृद्भूमिः स्पृशेत्प्रयतमानसः” ॥ इति ।

अथ द्विराचमननिमित्तानि—

तत्र याज्ञवल्क्यः (आ. १९६)—

“स्नात्वा पीत्वा क्षुते सुप्ते भुक्त्वा रथ्योपसर्पणे । आचान्तः पुनराचामेद्वासो विपरिधाय च” ॥

३० वसिष्ठः (३।३८)—“सुप्त्वा भुक्त्वा क्षुतं कृत्वा स्नात्वा पीत्वा रुदित्वा चाचांतः पुनराचामेत्” इति ।

मनुरपि (५।१४५)—“सुप्त्वा क्षुप्त्वा तथा भुक्त्वा घीवित्वोक्त्वाऽनृतं वचः ।

“पीत्वाऽपोऽध्येष्यमाणश्चाप्याचामेत्प्रयतोऽपि सन्” ॥

भोजने त्वादावपि द्विराचमनम् । “भोक्ष्यमाणस्तु प्रयतोऽपि द्विराचमेत्” इत्या-

स्तं वस्मरणात् (१।५।१६।९) । स्नानपानयोरौ सकृत् द्विरंततः “स्नानखादनपानेषु सकृ-

३५ दादौ द्विरंततः” इति नंदिस्मृतिस्मृतेः ।

स्मृतिरत्ने—

“भोक्ष्यमाणो द्विराचामेद् भुक्त्वा च मतिमान्द्विजः । दाने प्रतिग्रहे होमे संध्यात्रितयवन्दने ॥

“बलिकर्मणि चाचामेदादौ द्विर्नाततो द्विजः । वासोत्तरपरीधाने स्नाने रथ्योपसर्पणे ॥

“चंडालोऽपि ग्रहाक्रामे स्वानुष्ठानांतरा क्षुते । अलोमकोष्ठसंस्पर्शे श्मशानाक्रमणेऽपि च ॥

“हविःशेषप्राशने च द्विराचमनमन्ततः ” ॥ बोधायनः—

“भोजने हवने दाने उपहारे प्रतिग्रहे । हविर्भक्षणकाले च द्विराचमनमिष्यते ” ॥

व्यासोऽपि—

“होमे भोजनकाले च सन्ध्ययोरुभयोरपि । आचान्तः पुनराचामेज्जपदानार्चनेषु च” ॥

विष्णुरपि—(२२।७४,७५)—“रथ्यामाक्रम्य कृतमूत्रपुरीषः पंचनखास्थ्यस्नेहं स्पृष्ट्वाऽऽचांतः

पुनराचामेत् । चण्डालम्लेच्छभाषणे च ” इति । शङ्खः—

“स्नाने भोजनकाले च सन्ध्ययोरुभयोरपि । आचान्तः पुनराचामेत् जपदानार्चनेषु च” ॥ इति ।

कूर्मपुराणे—

“प्रक्षाल्य पाणी पादौ च भुंजानो द्विरुपस्पृशेत् । शुचौ देशे समासीनो भुक्त्वा च द्विरुपस्पृशेत् ॥

“ओष्ठौ विलोमकौ स्पृष्ट्वा वासो विपरिधाय च । रेतोमूत्रपुरीषाणां उत्सर्गे शुक्तभाषणे ॥

“ष्ठीवित्वाध्ययनारंभे कासश्वासागमे तथा । चत्वरं वा श्मशानं वा समागम्य द्विजोत्तमः ॥

“संध्ययोरुभयोस्तद्वदाचांतोऽप्याचमेत्तथा” इति । शुक्तभाषणं निष्ठुरभाषणम् । भरद्वाजः—

“स्नानपानक्षुतस्वापहोमभोजनकर्मसु । रथ्योपसर्पणे मूत्रविद्धुत्सृष्टौ द्विराचमेत् ॥

“जपे श्मशानाक्रमणे परिधाने च वाससः । चत्वराक्रमणे चैव द्विजातिर्द्विरुपस्पृशेत्” ॥

हारीतो विशेषमाह—

“श्रौतस्मार्तेषु गार्ह्येषु कृत्येषु विधिवद् बुधः । द्विराचमेत्तु सर्वत्र विण्मूत्रोत्सर्जने त्रयम्” ॥ इति । २०

स्मृत्यर्थसारे—“आस्यगतश्मश्रुस्पर्शे अलोमकोष्ठस्पर्शे दंतसक्तस्य जिह्वया स्पर्शे रथ्योपसर्पणे

अस्नेहपंचनखास्थिस्पर्शने रोदने विण्मूत्रशौचांते पीत्वा चालीढे दंतसक्तं निष्ठीव्य देवताभिगमने

च द्विराचामेत् । स्नात्वा पीत्वा सुप्त्वा वासो विपरीधाय भ्यंगे कृते हविर्भक्षणे द्विराचामेत् ” इति ।

आपस्तम्बः (१।५।१६।१०)—“श्यावांतपर्यन्तावोष्ठावुपस्पृश्याचामेत्” इति । अत्र द्विरित्यनु-

वर्तते । अलोमकप्रदेशः श्यावः । तस्यांतः सलोमकः । तत्पर्यन्तावोष्ठावुपस्पृश्य द्विराचामेदित्यर्थः । २५

अत्र षट्त्रिंशन्मते—

“अपेयं हि सदा तोयं रात्रौ मध्यमयामयोः । स्नानं तत्र न कुर्वीत तथैवाचमनक्रियाम् ॥

“मूत्रोच्चारे महारात्रौ कुर्यान्नाचमनं तु यः । प्रायश्चित्तीयते तत्र प्राजापत्याधर्महति ” ॥ इति ।

अथ आचमानापवादाः । तत्र याज्ञवल्क्यः (आ. २९५)

“मुखजा विप्रुषो मेध्यास्तथाचमनविंदवः । श्मश्रु चास्यगतं दंतसक्तं त्यक्त्वा ततः शुचिः ” ॥ इति । ३०

अस्यार्थः । मुखनिःसृता लालाबिंदवो मेध्याः नोच्छिष्टं कुर्वति । अंगे अनिपतिताश्चेत् । तथाचमने

ये बिंदवः पादौ स्पृशन्ति ते मेध्याः । श्मश्रु चास्य प्रविष्टं उच्छिष्टं न करोति । दंतसक्तं चान्नादिकं

स्वयमेव च्युतं दंतात् त्यक्त्वा शुचिर्भवति । अच्युतं तु दंतसममिति ।

अत्र गौतमः (१।४४)—“न मुख्या विप्रुष उच्छिष्टं कुर्वति न चेदंगे निपतन्ति ” इति ।

अतो नात्राचामेदिति भावः । अङ्गस्पर्शे तु मलस्पर्शनिमित्ताचमनं भवत्येव ।

- आपस्तम्बस्तु (१।५।१६।१२-१३) “ य आस्याद्विंदवः पतंत उपलभ्यंते तेष्वचमनं विहितं भूमौ न तेष्वचामेदित्येके ” इति । अस्यार्थः । भाषमाणस्यास्याद् विंदवः पतंतो ये लाला- विंदव उपलभ्यंते चक्षुषा स्पर्शनेन वा तेष्वचमनं विहितम् । ये भूमौ विन्दवो निपतन्ति न शरीरे तेषु नाचामेदित्येके मन्यन्त इति । वेदोच्चारणे तु गौतमः — “ मन्त्रब्राह्मणमुच्चारयतो ५ ये विन्दवः शरीरे उपलभ्यंते तेष्वचमनम् ” इति । मनुः (५।१४०) :—
“ नोच्छिष्टं कुर्वते मुख्याः विप्रुषोऽगं न यांति याः । न इमश्रूणि गतान्यास्यं न दंतांतरविष्टितम् ” ॥ इति । स्मृत्यर्थसारे—
“ मुखजा विप्रुषः सूक्ष्माः शुद्धाः स्वाश्च पराश्च याः । स्थूलाश्च विप्रुषः शुद्धाः यद्यंगे न पतन्ति ताः ॥ “ अंगपाते तु प्रक्षाल्य आचामेच्च परस्य च । वेदाभ्यासे मुखज्जाताः शुद्धा एव तु सर्वदा ” ॥ इति ।
३० आचमनविंदवस्त्वंगसृष्टा अपि मेध्याः । तथा च मनुः (५।१४१) :—
“ स्पृशंति विंदवः पादौ य आचामयतः परान् । भूमिगैस्ते समा ज्ञेया न तैरप्रयतो भवेत् ” ॥ इति । अत्र परानाचामयतः पादाविति संबंधः । बोधायनोऽपि (१।५।८९) :—
“ स्पृशंति विंदवः पादौ य आचामयतः परान् । न तैरुच्छिष्टभावः स्यात्तुल्यास्ते भूमिगैः सह ” ॥ इति । पादग्रहणमवयवांतरस्याप्युपलक्षणार्थम् । तथा च यमः—
१५ “ प्रयांत्याचामतो याश्च शरीरे विप्रुषो नृणाम् । उच्छिष्टदोषो नास्त्यत्र भूमिगैस्ते तु ताः स्मृताः ” ॥ इति । इमश्रुविषये विशेषमाह आपस्तम्बः (१।५।१६।११) :— “ न इमश्रुभिरुच्छिष्टो भवत्यंतरास्ये सद्भिर्यावन्न हस्तेनोपस्पृशंति ” इति । अस्मादेव प्रतिषेधात् ज्ञायते यत्किंचिदपि द्रव्यमन्तरास्ये सद्भिरुच्छिष्टताया निमित्तमिति । दंतलग्नविषये बोधायनः (१।५।१९) :—
“ दंतवदंतलग्नेषु दंतसक्तेषु धारणम् । स्रस्तेषु तेषु नाचामेतेषां संस्थानवच्छुचिः ” ॥ इति ।
२० दंतलग्नदंतसक्तयोर्निर्हारीनिहार्यरूपेण भेदः । अत एव देवलः—
“ भोजने दन्तलग्नानि निर्हृत्याचमनं चरेत् । न तत्र बहुशः कुर्याद्यत्नमुद्धरणे पुनः ॥ “ भवेदाशौचमत्यथ तृणवेधावणे कृते ” ॥ इति । स्रस्तेषु स्वस्थानाच्च्युतोष्वित्यर्थः । तत्र मनुः—
“ दंतवदंतलग्नेषु जिह्वास्पर्शं शुचिर्न तु । परिच्युतेष्ववस्थानान्निगिरन्नेव तच्छुचिः ” ॥ इति ।
२५ निगिरन् न प्रवेशयन्नित्यर्थः । एवकारस्त्वाचमननिवृत्त्यर्थः । एतच्च निगरणं याज्ञवल्क्येनो- क्तेन त्यागेन विकल्पते । केचित् जिह्वाभिमर्शनेऽपि यावच्च्युतिर्न भवति तावच्छुचि- रित्याहुः । यथाह गौतमः (१।४१-४२) :— “ दंतश्लिष्टेषु दंतवदन्यत्र जिह्वाभिमर्शनात्प्राक्- च्युतेरित्येके च्युतेष्वाम्नाववद्विधा निगिरन्नेव तच्छुचिः ” इति । च्युतेषु स्वस्थानान्निर्गतेषु आम्नाव आस्यजलं तद्वन्निगिरन्नेव शुचिरित्यर्थः । ‘दंतश्लिष्टेषु दंतवत्’ इत्येतच्च रसानुपलब्धौ वेदितव्यम् ।
३० यदाह शंखः— “ दंतवदंतलग्नेषु रसवर्जमन्यत्र जिह्वाभिमर्शनात् ” इति । एवं च यद्रसहीनजिह्वा- स्पृष्टमनिर्हारी च तदंतवन्निर्हारेण आचमनम् । स्वयं च्युतेषु त्यागो निगरणं वा नाचमनमित्युक्तं भवति । स्मृत्यर्थसारे तु “ दंतवदंतलग्नं रसाज्ञानेन शुद्धं जिह्वाया स्पर्शं अशुद्धम् । तत्र स्पर्शस्थाना- च्युते च निगिरन् संत्यजन्वा कर्णं स्पृशेत् । यद्वा निर्गीर्य कर्णं स्पृशेत् । त्यक्त्वाचामेत् । “ रसज्ञाने तु निर्हृत्य दिगचमनमिष्यते । आस्यं संशोधयेत्तान्द्रतांश्च मृदुयत्नतः ॥
३५ “ दंतवेधं महत्पापं रक्त मयममं स्मृतम् । एवं कृते यत्स्थितं तत्र च दोषाय सर्वदा ॥

“अन्यच्चास्यगतं चैवमाचांतेत्यवशिष्टकम्” ॥ इति । अत्र बोधायनः (१।५।२०)—

“दंतवदंतलग्नेषु यच्चाप्यंतर्मुखे भवेत् । आचांतस्यावशिष्टं स्यान्निगिरन्नेव तच्छुचिः” ॥

अत्र शातातपः—

“दंतलग्ने फले मूले भुक्तस्नेहे तथैव च । तांबूले चक्षुखंडे च नोच्छिष्टो भवति द्विजः” ॥ इति ।

षट्त्रिंशन्मते—

“ताम्बूले चैव सोमे च भुक्तस्नेहावशिष्टके । दन्तलग्नस्य संस्पर्शे नोच्छिष्टस्तु भवेन्नरः ॥

“त्वग्भिः पत्रैर्मूलपुष्पैः तृणकाष्ठमग्नैस्तथा । सुगन्धिभिस्तथा द्रव्यैर्नोच्छिष्टो भवति द्विजः” ॥ इति ।

‘दंतलग्नसंस्पर्श’ इति अनिर्हार्यस्य दंतलग्नस्य जिह्वया संस्पर्शे सतीत्यर्थः ।

अत्यंतानिर्हार्यस्य भुक्तस्नेहविषये देवलः—

“भुक्वाचामेद्यथोक्तेन विधानेन समाहितः । शोधयेन्मुखहस्तौ च मृदाद्भिर्वर्षणैरपि” ॥ इति । १०

अत्रिः—

“मधुपर्के च सोमे च अप्सु प्राणाहुतीषु च । नोच्छिष्टदोषस्तु भवेदत्रेस्तु वचनं यथा” ॥

अप्सु अमृतापिधानमसीत्यादिषु उच्छिष्टस्य मंत्रोच्चारणे दोषो नास्तीत्यर्थः । वसिष्ठोऽपि ()

“प्राणाहुतीषु सोमे च मधुपर्के तथैव च । आस्यहोमेषु सर्वेषु नोच्छिष्टो भवति द्विजः” ॥ इति ।

मार्कंडेयः—

“आग्नेश्वखंडतांबूलचर्वणे सोमपानके । विष्ण्वंघ्रितोयपाने च नाद्यन्ताचमनं स्मृतम् ॥

“विष्णुपादोद्भवं तीर्थं पीत्वा न क्षालयेत् करम्” ॥ इति । व्यासोऽपि—

“मधुपर्के च सोमे च तांबूलस्य च भक्षणे । फलमूलेषुदंडेषु न दोषं प्राह वै मनुः” ॥

स्मृत्यर्थसारेऽपि—

“अस्नेहौषधे जग्धे तथैवांगोपलेपने । तांबूले क्रमुके चैव भुक्तस्नेहानुलेपने ॥

“इक्षुदंडे तिले मूले पत्रपुष्पफलेषु च । तथा त्वकृतृणकाष्ठेषु नाचामेदामभक्षणे ॥

“मधुपर्के च सोमे च प्राणाहुतिषु चाप्सु च । आस्यहोमेषु सर्वेषु नोच्छिष्टो भवति द्विजः” ॥

द्रव्यहस्तोच्छिष्टविषये मनुः (५।१४२)—

“उच्छिष्टेन तु संस्पृष्टो द्रव्यहस्तः कथंचन । अनिधायैव तद्द्रव्यमाचांतः शुचितामियात्” ॥

द्रव्यमन्त्रानभ्यवहार्यं वस्त्रादिः । मार्कंडेयोऽत्र विकल्पमाह—

“उच्छिष्टेन तु संस्पृष्टो द्रव्यहस्तः कथंचन । आचम्य द्रव्यमभ्युक्ष्य पुनरादातुमर्हति” ॥

व्यासोऽपि—

“यद्यमन्त्रं समादाय भवेदुच्छेष्टान्वितः । अनिधायैव तद्द्रव्यमाचांतः शुचितामियात् ॥

“तैजसं द्रव्यमादाय यदुच्छिष्टो भवेत् द्विजः । भूमौ निक्षिप्य तत् द्रव्यमाचम्याभ्युक्षयेत्तु तत् ॥

“वस्त्रादिषु विकल्पः स्यात्तत्स्पृष्टावेवमेव हि” ॥ वस्त्रादिसहितस्योच्छिष्टस्पृष्टौ निधानम- ३०

निधानं वा कार्यमित्यर्थः । बोधायनोऽपि (१।५।२२-२४)—“तैजसं चेदादायोच्छिष्टः

स्यात्तदुदस्याचम्यादास्यन्नद्भिः प्रोक्षेदथ चेदन्नेनोच्छिष्टः स्यात्तदुदस्याचम्यादास्यन्नद्भिः

प्रोक्षेदथ चेदद्भिर्नुच्छिष्टो स्यात्तदुदस्याचम्यादास्यन्नद्भिः प्रोक्षेदेतदेव विपरीतममन्त्रे” इति ।

उदस्यानिधायेत्यर्थः । विपरीतमनुदस्येति यावत् । अभ्यवहार्ये वशिष्टः—

“ प्रचरन्नभ्यवहार्येषु उच्छिष्टं यदि संस्पृशेत् । भूमौ निक्षिप्य तद्द्रव्यमाचम्य प्रचरेत्पुनः ” ॥

अभ्यवहार्येष्वन्नपानादिषु प्रचरन् परिवेषणं कुर्वन्नित्यर्थः । बृहस्पतिरपि—

“ प्रचरन्नपानेषु यदोच्छिष्टमुपस्पृशेत् । भूमौ निधाय तद्द्रव्यं आचातः प्रचरेत्पुनः ” ॥ इति ।

५ गौतमोऽपि—(५।२७) “ द्रव्यहस्त उच्छिष्टो निधायाचामेत् ” इति । द्रव्यमभ्यवहार्यम् । अत्र विशेषमाह तुः शंखलिखितौ—“द्रव्यहस्त उच्छिष्टो निधायाचम्याभ्युक्षेत् द्रव्यम्” ॥ इति । हारीतोऽपि—

“उच्छिष्टेन तु संस्पृष्टो द्रव्यहस्तः कथंचन । भूमौ निधाय तद्द्रव्यमाचम्याभ्युक्षणाच्छुचिः” ॥ इति । द्रव्यस्यैव साक्षादुच्छिष्टत्वे तत्परित्यागमाह वासिष्ठः (४१।२०)—“उच्छिष्टमगुरोरभोज्यं

१० स्वयमुच्छिष्टोपहतं च ” इति । पक्वान्नमादाय मूत्रादिकरणे श्लोकापस्तम्बः—

“भूमौ निक्षिप्य तद्द्रव्यं शौचं कृत्वा यथाविधि । उत्संगोपात्तपक्वान्न उपस्पृश्य ततः शुचिः” ॥ इति । एतद्रापद्यक्षयनिधानद्रव्यविषयम् ।

“ अरण्येऽनुदके रात्रौ चौरव्याघ्राकुले पथि । कृत्वा मूत्रं पुरीषं वा द्रव्यहस्तो न दुष्यति ” ॥ इति बृहस्पतिस्मरणात् । मार्कण्डेयस्तु शौचमप्यनिधायैव कार्यमित्याह—

१५ “ पक्वान्नं तु समादाय मूत्रोच्चारं करोति यः । अनिधायैव तद्द्रव्यमंगे कृत्वा समाश्रितम् ॥

“ शौचं कृत्वा यथान्यायं उपस्पृश्य यथाविधि । अन्नमभ्युक्षयेच्चैवमुद्धृत्यार्कस्य दर्शयेत् ॥

“ त्यक्त्वा तद्ग्रासमात्रं वा शेषशुद्धिमवाप्नुयात् ” ॥ इति ।

स्मृत्यर्थसारे— “ वस्त्रादिसहित उच्छिष्टश्चेत्तदालभ्यागे निधाय तत्सहित आचातः शुध्येत् । निधाय वाचम्य वस्त्रादि प्रोक्षेत् । अन्नपानादिहस्त उच्छिष्टश्चेत् निधायाचम्य प्रोक्षेत् । अन्नादि-

२० रक्षाशक्तौ तदालभ्यागे निधाय वाऽऽशौचाचमने कुर्यात्परिवेषणं कुर्वन्नुच्छिष्टान्नस्पृष्टौ अन्नं निधायाचम्य परिविष्यात् । परिवेषणं कुर्वन्मूत्राद्युच्छिष्टश्चेदन्नादि निधाय शौचाचमने कृत्वाऽ-न्नादि प्रोक्ष्य अग्निमर्कं वा संस्पृश्य परिविष्यात् । परिवेषणे रजो दृष्टौ तत्स्पृष्टान्नत्यागः ” इति । एवं उत्कलक्षणस्य आचमनस्य प्रशंसा माह व्याघ्रपादः—

“ य एवं ब्राह्मणो नित्यमुपस्पर्शं समाचरेत् । ब्रह्मादिस्तं वपर्यतं जगत्स परितर्पयेत् ” ॥

२५ आचमनाकरणे प्रत्यवायो दर्शितः स्मृतिचन्द्रिकायाम् (पृ. ९९ पं. २१)—

“यः क्रियाः कुरुते मोहात् अनाचम्यैव नास्तिकः । भवंति हि वृथा तस्य क्रियाः सर्वा न संशयः” ॥ इति । इत्याचमनप्रकरणम् ॥

अथ दंतधावनविधिः । तत्र आत्रः

“ मुखे पर्युषिते नित्यं भवत्यप्रयतो नरः । तदार्द्रकाष्ठं शुष्कं वा भक्षयेदंतधावने ” ॥

३० भरद्वाजः—

“ प्रक्षाल्य चण्णो हस्तौ मुखं चाथ यथाविधि । आचम्य प्राङ्मुखः स्थित्वा दंतधावनमाचरेत् ॥

“ आयुरित्यादिमंत्रोऽयमुक्तः शास्त्राभिर्मंत्रणे । विनाऽभिर्मंत्रणं तूष्णीं वृथा स्यादंतधावनम् ॥

“ अस्य प्रजापतिर्ऋषिः छंदोऽनुष्टुप् वनस्पतिः । देवतेति हृदि स्मृत्वा मंत्रारंभे वदेद् वुधः ” ॥

बोधाद्यनोपि—

५ “ उत्याद्य नेत्रे प्रक्षाल्य शुचिर्भूत्वा समाहितः । परिजप्य च मंत्रेण भक्षयेदंतधावनम् ” ॥

मंत्रोऽपि—

“आयुर्वलं यशो वर्चः प्रजां पशुवसूनि च । ब्रह्म प्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते” ॥ इति ।

“अभिमन्त्र्य हृतां शाखां मंत्रेणानेन वै द्विजः । अध ऊर्ध्वक्रमेणैव धावयेच्छाखया तथा ॥

“वामभागं समारभ्य प्रादक्षिण्यक्रमेण तु ” ॥

व्यासः— “प्रक्षाल्य पादौ हस्तौ च मुखं चाग्निः समाहितः ।

५

“दक्षिणं बाहुमुद्धृत्य कृत्वा जान्वन्तरं ततः । आचम्य प्राङ्मुखः पश्चादन्तधावनमाचरेत् ” ॥

शांडिल्यः—

“बाहू जान्वन्तरा कृत्वा कुक्कुटासनसंस्थितः । तर्पणाचामनोल्लेख्य दंतशुद्धिं समाचरेत् ” ॥

याज्ञवल्क्यः (आ. ९८)—

“शरीरचित्तां निर्वर्त्य कृतशौचविधिर्द्विजः । प्रातःसंध्यामुपासीत दंतधावनपूर्विकाम् ॥ १०

“कंटकीक्षीरवृक्षोत्थद्वादशांगुलमव्रणम् । कनिष्ठिकाग्रवत्स्थूलं पूर्वार्धकृतकूर्चकम् ॥

“दंतधावनमुद्दिष्टं जिह्वालेखनिका तथा ” ॥ विष्णुः—

“वितस्तिमात्रमृजु च कीटाग्निभिरदूषितम् । प्राङ्मुखस्तूपविष्टस्तु भक्षयेत् वाग्यतोऽत्वरः ” ॥

स्मृत्यन्तरे—

“शाखां विदार्य तस्यास्तु भागेनैकेन वर्जयेत् । जिह्वां ततो द्वितीयेन गृहस्थश्च यतिस्तथा” ॥ इति । १५

हारीतः—

“सर्वे कंटकिनः पुण्याः क्षीरिणश्च यशस्कराः । अष्टांगुलेन मानेन दंतकाष्ठमिहोच्यते ॥

“प्रादेशमात्रमथ वा तेन दंतान्विशोधयेत् । खादिरश्च कदंबश्च करञ्जः कुरवस्तथा ॥

“त्रसिनी वेणुपृथ्वी च जंबुनिर्वस्तथैव च । अपामार्गश्च बिल्वश्च अर्कश्चोदुंबरस्तथा ॥

“एते प्रशस्ताः कथिता दंतधावनकर्माणि ” ॥ शौनकः—

२०

“विज्ञातवृक्षं क्षुण्णाग्रमृजु दुर्गंधवर्जितम् । सत्वक्तु दंतकाष्ठं स्यात्तदग्रेण प्रधावयेत् ” ॥

अंगिराः—

“आम्रपुंनागबिल्वानामपामार्गशिरीषयोः । भक्षयेत्प्रातरुत्थाय वाग्यतो दंतधावनम् ” ॥ इति ।

व्यासः—

“प्रक्षाल्य दंतकाष्ठं वा भक्षयेत्तु विधानतः । मध्यांगुलिसमस्थैल्यं द्वादशांगुलिसंमितम् ॥ २५

“सत्वचं दंतकाष्ठं स्यात्तस्याग्रेण तु धावयेत् ।

“क्षीरवृक्षसमुद्भूतं मालतीसंभवं शुभम् । अपामार्गं च बिल्वं च करवीरं विशेषतः ॥

“तिक्तं कषायं कटुकं सुगंधं कटुकान्वितम् । क्षीरिणो वृक्षगुल्मादीन्भक्षयेदन्तधावनम् ॥

“वर्जयित्वा निषिद्धानि गृहीत्वैकं यथोदितम् । परिहृत्य दिनं पापं धावयेत्तु विधानतः ॥

“नोत्पाटयेदन्तकाष्ठं नांगुल्या धावयेत्क्वचित् । प्रक्षाल्य भुक्त्वा तज्जह्याच्छुचौ देशे समाहितः” ॥ ३०

अत्रिः—

“अंगुल्या दंतकाष्ठं च प्रत्यक्षलवणं तथा । मृत्तिकाभक्षणं चैव तुल्यं गोमांसभक्षणे ” ॥

उशानाः—“नांगुलीभिर्दंतान्प्रक्षालयेत् ” इति । विष्णुः—

“सुसूक्ष्मं सूक्ष्मदंतस्य मध्यदंतस्य मध्यमम् । स्थूलं विषमदंतस्य त्रिविधं दंतधावनम् ॥

“द्वादशांगुलिको विप्रे काष्ठमाहुर्मनीषिणः । क्षत्रविट्शूद्रजातीनां नवषट्चतुरंगुलम् ” ॥

३५

गर्गः—

“दशांगुलं तु विप्राणां क्षत्रियाणां नवांगुलम् । अष्टांगुलं तु वैश्यानां शूद्राणां सप्तसंमितम् ॥

“चतुरंगुलमानं तु नारीणां नात्र संशयः ” ॥ मार्कण्डेयः—

“वटासनार्कखदिरकरवीरांकरंजकम् । दाडिमापार्गमालतीककुभविल्वानामन्यतमम् ” ॥ इति ।

५ भक्षयेदिति शेषः । एतेषु फलमाह गर्गः—

“सर्जे धैर्यं वटे दीप्तिः करंजे विजयो रणे । प्लक्षे चैवार्थसंपत्तिः वदर्या मधुरस्वनः ॥

“खदिरे चैव सौगंध्यं विल्वे तु विपुलं धनम् । औदुंबरे वाक्यसिद्धिर्वधूके च दृढा श्रुतिः ॥

“पौण्ड्रे च कीर्तिसौभाग्यं पालाशे सिद्धिरुत्तमा । कदंबे च तथा लक्ष्मीरात्रे चारोग्यमेव च ॥

“अपामार्गे धृतिर्मेधा प्रज्ञा शक्तिर्वपुः श्रुतिः । आयुः शीलं यशो लक्ष्मीः सौभाग्यं चोपजायते ॥

१० “अक्लेण हंति रोगास्तु बीजपूरेण तु व्यथाम् । ककुभेन तथाऽयुष्मान् भवेत्पलितवर्जितः ॥

“दाडिमे सिंदुवारे च कुब्जके ककुभे तथा । जाती च करमर्दा च दुःस्वप्नं चैव नाशयेत् ” ॥

मार्कण्डेयः—

“सर्वे कंटकिनः पुण्याः क्षीरिणश्च यशस्विनः । उदुंबरेण वाक्सिद्धिर्भवेत्प्लक्षेण वै धनम् ॥

“अर्जुनेन निरोगत्वं वटेन महतीं श्रियम् । अपामार्गेण सर्वार्थैः स्त्रीवश्यं च प्रियंगुभिः ।

१५ “वेणुना चाप्नुयाद्भावः राजवृक्षाज्जयं लभेत् । चूतेन नृपपूजा स्यात् सौभाग्यं पनसेन तु ॥

“दीर्घायुर्जंबुना चेष्टे सिद्धिः स्यादणुजंबुना । जयं कंटकवृक्षात् फलं वै कंकताल्लभेत् ॥

“आरोग्यं कर्णिकारेण पारंत्या शौर्यमुत्तमम् । अशोकेन विशोकः स्यात् लवंगाब्रह्मवर्चसम् ॥

“खदिरादखिलान्कामान् लभेदतिशयो महान् । वाग्यतो निमृजेदंतान् दंतमासमपीडयन् ॥

“जिह्वामलं समुदितं दन्तांतरितमेव च । राक्षस्यामुत्सृजेत्काष्ठं दिशि निर्मृज्य तच्छुचौ ॥

२० “दंतधावनकाष्ठं तु येनोत्सृष्टं तदंततः । स मृष्टाहारमामोति पतत्यभिमुखं यदि ” ॥ इति ।

व्यासोऽपि—

“प्रक्षाल्य च शुचौ देशे दंतधावनमुत्सृजेत् । पतितेऽभिमुखे सम्यक् भोज्यमाप्नोत्यभीप्सितम् ” ॥ इति ।

स एव—

“वर्जयेदंतकाष्ठानि वर्जनीयानि नित्यशः । वर्जयेत् शास्त्रदुष्टानि पर्वस्वपि च वर्जयेत् ” ॥ इति ।

२५ वर्जनीयान्याह मार्कण्डेयः—

“शाल्मल्यश्वत्थभव्यानां धवर्किंशुकयोरपि । कोविदारशमीपीलुश्लेष्मातकविभीतकान् ॥

“वर्जयेदंतकाष्ठेषु गुग्गुलं क्रमुकं तथा ” ॥ उशना—

“दक्षिणाभिमुखो नाद्यान्नीलवंधुकदंबकम् । तिंडुर्केगुदवंधूकमोचामरजवल्बजम् ॥

“कार्पासं दंतकाष्ठं च विष्णोरपि हरेच्छ्रियम् ॥

३० “न भक्षयेत् पालाशं कार्पासं शाकमेव च । एतानि भक्षयेद्यस्तु क्षीणपुण्यः स वै नरः ” ॥

हारीतोऽपि— “कालेयपालाशकोविदारश्लेष्मातकविल्वकाशार्कनिर्गुण्डिशिखाण्डिशिरीषमालती-
करवीरवदरीकरंजवेणुवर्जम् ” इति । गर्गः—

“कुशं काशं पलाशं च मिश्रुपान्यस्तु भक्षयेत् । तावद्भवति चंडालो यावद्वा नैव पश्यति ” ॥

वसिष्ठः— “अज्ञातपूर्वाणि न दन्तकाष्ठान्यद्यान्न पत्रैश्च समन्वितानि ।

३५ “न दुग्धपर्णानि न पाटितानि न चार्द्रशुष्काणि न चात्वचानि ” ॥ इति ।

चन्द्रिकायाम् (पृ. १०६ पं. १९)—

“त्याज्यं सपत्रमज्ञातमूर्ध्वशुष्कं च पाटितम् । त्वघ्नीनं ग्रंथिसंयुक्तं तथा पालाशशिंशुपम्” ॥ इति ।

स्मृत्यर्थसारे— “शाल्मल्यरिष्टभव्यकिंशुकपीलुकविभीतकगुग्गुलूपाकांबधतिदुदकमधूकैगुद-
धुत्तूरपारिभद्राम्लिकाश्च वर्ज्याः ॥

“आसने शयने याने पादुके दंतधावने । पालाशाश्वत्थकौ वर्ज्यौ सर्वकुत्सितकर्मसु” ॥ इति । ५
देवलः—

“आसनानि न कुर्वीत मृत्तिकाश्वत्थगोमयैः । पालाशेन विशेषेण दंतधावनमेव च” ॥ इति ।

आपस्तम्बोऽपि (१।११।३२।९)— “पालाशमासनं पादुके दंतप्रक्षालनं वर्जयेत्” ॥ इति ।

एतेषु केषुचिद्विहितत्वात् प्रतिषिद्धत्वाच्च विकल्पो वेदितव्यः । तथा च स्मृत्यर्थसारे—

“कोविदारशमीक्षारश्लेष्मातकपलाशकाः । निर्गुण्डीशिंशुपाः शाकाः कदंबककुभा वटाः ॥ १०

“विहिताः प्रतिषिद्धाः स्युरिमे तस्माद्विकल्पिताः” ॥ इति । पारिजाते—

“तृणराजसमुत्पन्नैर्न कुर्यादंतधावनम् । नरशृङ्गालयोनिः स्याद्यावद्वा नैव पश्यति ॥

“गुडाकतालहिंतालकेतक्यश्च महावटः । खर्जूरौ नारिकेरश्च सप्तैते तृणराजकाः” ॥ स्मृत्यंतरे—

“तृणराजाव्हयस्तालो नारिकेरस्तु लांगली । खर्जूरः केतकी पूगो हिंतालश्च महावटः” ॥ इति ।

अत्र दिङ्गियममाह मार्कण्डेयः— “उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा कषायं तिक्तकं तथा” ॥ इति । १५

दंतकाष्ठं भक्षयेदिति शेषः । आश्वलायनः— “प्राग्वोदङ्मुख आसीनः प्रागुदङ्मुख एव वा” ॥

शौनकः—

“दंतानां धावनं कुर्यात् वाग्यतः सोमदिङ्मुखः । प्रक्षाल्य भङ्गत्वा तज्जह्यात् शुचौ देशे समाहितः” ॥

इति । मार्कण्डेयः— “प्रतीची दक्षिणाशां च वर्जयेदंतधावने” ॥ कात्यायनः—

“पूर्वमुखो धृतिं विद्यात् शरीरारोग्यमेव च । दक्षिणेन तथा क्रौर्यं पश्चिमेन पराजयम् ॥ २०

“उत्तरेण गवां नाशं स्त्रीणां परिजनस्य च । पूर्वोत्तरे तु दिग्भागे सर्वान्कामानवाप्नुयात्” ॥ इति ।

कालनियममाह मार्कण्डेयः—

“प्रातर्भुत्वा च यतवाक् भक्षयेदंतधावनम् । प्रक्षाल्य भक्षयेत्पूर्वं प्रक्षाल्यैव च संत्यजेत्” ॥

यत्तु व्यासेनोक्तम्—

“यो मोहात्स्नानवेलायां भक्षयेदंतधावनम् । निराशास्तस्य गच्छन्ति देवताः पितृभिः सह” ॥ इति २५

तन्मध्यान्हस्नानविषयम् । “प्रातस्नानं तु कुर्वीत दंतधावनपूर्वकम्” इति दक्षस्मरणात् (२।१०) ।

अत्र दंतधावनवर्ज्यकालमाह विष्णुः—

“प्रतिपत्पर्वषष्ठीषु चतुर्दश्यष्टमीषु च । नवम्यां भानुवारे च दंतकाष्ठं विवर्जयेत्” ॥ इति ।

यमोऽपि—

“चतुर्दश्यष्टमी दर्शः पूर्णिमा संक्रमो रवेः । एषु स्त्रीतैलमांसानि दंतकाष्ठं च वर्जयेत्” ॥ इति ३०

चन्द्रिकायाम् (पृ १०५ पं ७)—

“प्रतिपत्पर्वषष्ठीषु नवम्यामष्टमीतिथौ । दंतानां काष्ठसंयोगो दहत्या सप्तमं कुलम् ॥

“श्राद्धे जन्मदिने चैव विवाहे जीर्णदूषिते । व्रते चैवोपवासे च वर्जयेदंतधावनम्” ॥ इति ।

व्यासोऽपि—

“श्राद्धे यज्ञे च नियमे पत्यौ च प्रोषिते रवेः । वारे पाते च संक्रान्तिनंदभूताष्टपर्वसु ॥ ३५

“तैलाभ्यंगं रतिं मांसं दंतकाष्ठं च वर्जयेत् ” ॥

स्मृत्यन्तरे—“अष्टम्यां च चतुर्दश्यां पंचदश्यां त्रिजन्मसुतैलमांसं व्यवायं च दंतकाष्ठं च वर्जयेत्” ॥
माधवीये—

“श्राद्धे यज्ञे च नियमे नाद्यात्प्रोषितभर्तृका । श्राद्धे कर्तुर्निषेधोऽत्र न तु भोक्तुः कदाचन ” ॥ इति ।
५. स्मृत्यन्तरे—

“उपवासादिने यो वै दंतधावनकृन्नरः । स घोरं नरकं याति व्याघ्रभक्षश्चतुर्युगम् ” ॥
स्त्रिया विशेषमाह मनुः—

“पुष्पालंकारवस्त्राणि स्त्रिया धूपानुलेपनम् । उपवासेन दुष्यन्ति दंतधावनवर्जनम्” ॥ इति ।

वसिष्ठः—

१० “उपवासे तथा श्राद्धे न खादेत् दंतधावनम् । दंतानां काष्ठसंयोगो हन्ति सप्तकुलानि च” ॥ इति ।
दंतधावने प्रायश्चित्तमुक्तं विष्णुपुराणे—

“श्राद्धोपवासदिवसे खादित्वा दंतधावनम् । गायत्र्या शतसंपूतमंबु प्राश्य विशुध्यति ” ॥ इति ।
गार्ग्यः—

“दंतकाष्ठे त्वमावास्या तैलाभ्यंगे चतुर्दशी । अष्टमी ग्राम्यधर्मे च ज्वलंतमपि पातयेत्” ॥

१५ ग्राम्यधर्मो मैथुनम् ।

“स्त्रिसंगं खादनं पानं स्वाध्यायं क्षौरकर्म च । न कुर्यात् दंतकाष्ठं च तैले तु शिरसि स्थिते” ॥
व्यासः—

“नद्यां देवालये गोष्ठे श्मशाने जलमध्यके । यागस्थाने शुचौ देशे न कुर्याद्दन्तधावनम् ” ॥

शौनकः—

२० “अमायां तु न चाश्रीयात् दन्तकाष्ठं कथंचन । दन्ताच्च प्रक्षाल्य विसृजेत् गृहे चेत् तदमन्त्रकम् ॥

“अलाभे दंतकाष्ठानां प्रतिषिद्धदिनेष्वपि । अपां द्वादशगंडूषैः मुखे शुद्धिर्भविष्यति ” ॥

व्यासः—“प्रतिपददर्शषष्ठीषु नवम्यां दंतधावनम् । पर्णैरन्यत्र काष्ठैस्तु जिह्वोल्लेखं सदैव तु ” ॥

अन्यत्रानिषिद्धदिनेषु सदा निषिद्धेष्वनिषिद्धेष्वपि काष्ठेनैव जिह्वोल्लेखः कार्य इत्यर्थः ।

पैठीनसीः—“तृणपर्णोदकेनांगुल्या वा दंतान्धावयेत्प्रदेशिनीवर्जम् ” इति । अङ्गुल्या

२५ अंगुष्ठानामिकाभ्याम् । तथा च वृद्धयाज्ञवल्क्यः—

“इष्टकालोष्टपाषाणैरितरांगुलिभिस्तथा । मुक्त्वा चानामिकांगुष्ठौ वर्जयेद्दंतधावनम् ” ॥ इति ।

एवं च “नाङ्गुलिभिः दंतान्प्रक्षालयेत्” इत्यादीनि वचनानि अनामिकांगुष्ठव्यतिरिक्तविषयानि ।

“अंगुल्या दंतधावयेत् प्रदेशिनीवर्जम् ” इति प्रदेशिनीग्रहणं निषिद्धांगुल्युपलक्षणार्थमित्य-
विरोध इति स्मृतिचांद्रकायाम् (पृ. १०६ पं. २५) व्यवस्थापितम् । स्मृत्यर्थसारे—

३० “अंगुल्या धावयेद्दन्ताच्च वर्जयेत्तु प्रदेशिनीम् । मध्यमानामिकांगुष्ठेर्दंतधावो भवत्यपि” ॥ इति ।
कालादर्गे—

“अलाभे वा निषिद्धे वा काष्ठानां दंतधावनम् । पर्णेनैव विशुद्धेन जिह्वोल्लेखं च कारयेत्” ॥ इति ।

स्मृत्यन्तरे—

“तृणपर्णैः सदा कुर्यादमामेकादशीं विना । तयोरपि च कुर्वीत जंशुप्रक्षाम्रपर्णकैः ॥

३५ “विधवाकन्यकादन्नचाग्निगामास्यशोधनम् ” ॥

भरद्वाजः—“यावन्तो नियमाः प्रोक्ताः द्विजश्रेष्ठस्य भुञ्जतः । तावन्तः प्रेक्ष्य कर्तव्या दंतधावनकर्माणि ॥
“मुखशुद्धिं प्रयत्नेन कृत्वैवाहरहर्दिजः । प्रातः संध्यामुपासीत तां विना न शुचिर्भवेत्” ॥ इति ।

अथ स्नानविधिः । तत्र शौनकः—

“प्रातराचमनं कृत्वा शौचं कृत्वा यथार्थवत् । दंतशौचं तथा कृत्वा प्रातस्नानं समाचरेत्” ॥ इति ।
अत्राचमनं कृत्वेति दंतशौचेऽपि संबध्यते । तथा च कूर्मपुराणे—

५

“प्रातस्तु दंतकाष्ठं वै भक्षयित्वा विधानतः । आचम्य प्रयतो नित्यं प्रातः स्नानं समाचरेत्” ॥ इति ।
व्यासोऽपि—

“प्रातःकाले तु संप्राप्ते कृत्वा चावश्यकं बुधः । स्नायान्नदीषु शुद्धासु शौचं कृत्वा यथाविधि” ॥ इति ।
जाबालिः—

“सततं प्रातरुत्थाय दंतधावनपूर्वकम् । आचरेदुषसि स्नानं तर्पयेद्देवमानुषान्” ॥ इति । १०
स्नानं प्रशंसति योगयाज्ञवल्क्यः—

“अगम्यागमनात्स्तेयात्पापेभ्यश्च प्रतिग्रहात् । रहस्याचरितात् पापान्मुच्यते स्नानमाचरन्” ॥ इति ।

“मनः प्रासादजनकं रूपसौभाग्यवर्धनम् । शोकदुःस्वप्नं स्नानं मोक्षदं ल्हादनं तथा ॥

“स्नानमूलाः क्रियाः सर्वाः श्रुतिस्मृत्युदिता नृणाम् । तस्मात्स्नानं निषेवेत श्रीपुष्ट्यारोग्यवर्धनम् ॥

“याम्यं हि यातनादुःखं प्रातःस्नायी न पश्यति ” ॥ इति । सत्यव्रतोऽपि—

१५

“बलं रूपो यशो धर्मो ज्ञानमायुः सुखं धृतिम् । आरोग्यं परमाप्नोति सम्यक्स्नानेन मानवः” ॥ इति ।

दक्षः— (अ. २)

“क्षुभ्यन्ति हि सुषुप्तस्य इंद्रियाणि स्रवंति च । अंगानि समतां यांति ह्युत्तमान्यधमैः सह ॥

“अत्यंतमलिनः कायो नवच्छिद्रसमन्वितः । स्रवत्येव दिवारात्रं प्रातःस्नानं विशोधनम् ॥

“प्रातःस्नानं प्रशंसन्ति दृष्टादृष्टकरं हि तत् । अस्नात्वा नाचरेत्कर्म जपहोमादि किञ्चन ॥

२०

“सर्वमर्हति शुद्धात्मा प्रातःस्नायी जपादिकम् ॥

“प्रातरुत्थाय यो विप्रः संध्यास्नानं समाचरेत् । सप्तजन्मकृतं पापं त्रिभिर्वर्षैर्व्यपोहति ॥

“गुणा दश स्नानपरस्य साधोः रूपं च तेजं च बलं च शौचम् ।

“आयुष्यमारोग्यमलोलुपत्वं दुःस्वप्नाशश्च धृतिश्च मेधा ॥

“उपव्युषुसि यत्स्नानं संध्यायामुदितेऽपि वा । प्राजापत्येन तत्तुल्यं महापातकनाशनम् ” ॥

२५

अत्रिः—

“अस्नाताशी मलं भुंक्ते ह्यजपी पूयशोणितम् । अहुताशी कृमिं भुंक्ते अदाताऽश्नाति किल्बिषम्” ॥

व्यासोऽपि—

“प्रातः स्नानेन संशुद्धा येऽपि पापकृता जनाः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन प्रातःस्नानं समाचरेत् ॥

“ऋषीणामृषिता नित्यं प्रातःस्नानान्न संशयः ।

३०

“मुखे सुप्तस्य सततं लालाद्याः संस्रवंति हि । ततो वै नाचरेत्कर्माण्यकृत्वा स्नानमादितः ॥

“अलक्ष्मी कालकंठी च दुःस्वप्नं दुर्विचिंतनम् । प्रातःस्नानेन पापानि पूर्यन्ते नात्र संशयः ॥

“न हि स्नानं विना पुंसां प्रायत्यं कर्मसु स्मृतम् । होमे जप्ये विशेषेण ततः स्नानं समाचरेत्” ॥ इति ।

स्मृत्यर्थसारेऽपि—

“संशोध्य दंतानाचम्य विधिवत्स्नानमाचरेत् । स्नानमूलाः क्रियाः सर्वाः श्रुतिस्मृत्युदिता नृणाम् ॥ ३५

“ अस्नातस्तु पुमान्नाहो जपहोमादिकर्मसु । प्रातर्मध्यान्हयोः स्नानं वानप्रस्थगृहस्थयोः ॥

“ यतेस्त्रिषवणस्नानं सकृच्च ब्रह्मचारिणाम् । सर्वे वाऽपि सकृत्कुर्युरशक्तौ चोदकं विना ॥

“सामर्थ्ये चांबुसद्भावे यथाशास्त्रं हि तद्भवेत् । स्नानं च सर्ववर्णानां कार्यं शौचपुरःसरम्” ॥ इति ।

वैयाघ्रपादोऽपि— “ प्रातःस्नायी भवेन्नित्यं मध्यस्नायी भवेदिति ” । शौनकः—

५ “उभयोः संध्ययोः स्नानं ब्राह्मणैश्च गृहाश्रितैः । तिसृष्वपि च संध्यासु स्नातव्यं तु तपस्विनाम्” ॥ कात्यायनोऽपि—

“ यथाहनि तथा प्रातर्नित्यं स्नायादतंद्रितः । दंतान्प्रक्षाल्य नद्यादौ गृहे चेत्तदमंत्रकम् ” ॥ इति ।

अमन्त्रकमिति मंत्रसंक्षेपोऽभिप्रेतः । यतः स एवाह—

“ अल्पत्वान्दोमकालस्य बहुत्वात् स्नानकर्मणः । प्रातः संक्षेपतः स्नानं होमलोपो विगर्हितः ” ॥

१० व्याघ्रपादः—

“ प्रातः संक्षेपतः स्नानं शौचार्थं तु तदिष्यते । मन्त्रैस्तु विधिवत्कार्यं मध्याह्ने तु सविस्तरम् ” ॥

स्नानप्रकारश्च चतुर्विंशतिमते दर्शितः—

“ स्नानमन्त्रैर्वतैर्मन्त्रैर्वारुणैश्च मृदा सह । कुर्याद्ब्याहतिभिर्वाऽथ यत्किंचेदमृचाऽपि च ॥

“ द्रुपदादिवेति वा स्नायात् त्र्यम्बकायेति वा पुनः । पुण्यानि च स्मरेत्तीर्थान्युशना मुनिरब्रवीत् ” ॥

१५ शौनकः—

“ जलमध्ये स्थितो विप्रः शुद्धभावो हरिं स्मरेत् । स्नात्वाऽऽचांतो वारिमग्नस्त्रिपठेदघमर्षणम् ॥

“ ध्यायेन्नारायणं देवं स्नानादिषु च कर्मसु । प्रायश्चित्तेषु सर्वेषु मुच्यते दुष्कृतात्पुमान् ” ॥

दक्षोऽपि—

“ ध्यायेन्नारायणं देवं स्नानादिषु च कर्मसु । ब्रह्मलोकमवाप्नोति न चेहाजायते पुनः ” ॥

२० हारीतोऽपि—

“ सौंस्तर्जलं प्रविश्याथ वाग्यतो नियमेन हि । हरिं संस्मृत्य मनसा मज्जयेच्चोरवज्जले ” ॥ इति ।

मज्जयेच्छरीरमिति शेषः । व्यासोपि—

“ आपो नारा इति प्रोक्तास्ता यदस्यायनं पुनः । तस्मान्नारायणं देवं स्नानकाले स्मरेद्बुधः ” ॥ इति ।

अखंडादर्श—

२५ “अप्रायत्यं निहन्त्येव स्नानेनैकेन मानवः । द्वितीयेन निमज्जेन निर्मलत्वं भजेद् ध्रुवम् ॥

“ तृतीयेनातिवृत्तिः स्यान्निमज्जनफलं त्विति ” ॥ आचारसारे— “प्रातस्तीर्थोवगाहन-
मल्पेन वाक्येन मार्जनं व्याहृतिभिरेव प्राणायामो द्रुपद्या वा ” इति ।

स्मृत्यन्तरे—

“ संकल्पः सूक्तपठनं मार्जनं चाघमर्षणम् । देवतातर्पणं चैव स्नानं पंचांगमुच्यते ” ॥

३० “ इदमापः प्रवहतेति ’ व्याहृतिभिर्जलाभिमंत्रणम् । ‘ आपो हि ऐति ’ मार्जनम् । ‘ द्रुपदादिवे-
द्रायत्री तद्विष्णोः प्रणवैरघमर्षणेन ’ स्नानत्रयम् ” ॥ इति स्मृत्यर्थसारे—

“ प्रातःस्नानं सदा कुर्यात्कृष्णेनैवातुरः सदा । पादौ मुखं च प्रक्षाल्य सावित्रीं प्रणवं स्मरेत् ॥

“ शिखां च ध्वाऽऽचम्य तटं प्रक्षाल्य दर्भान्निधाय दर्भपाणिर्जलं दत्वा प्रयतांजलिः
प्राङ्मुखोऽवगाय कक्षादि निमृज्य स्नात्वा द्विराचम्य दर्भपाणिंरापोहिष्ठायैर्वन्द्यैर्वतैर्मार्जनं कृत्वाऽ

३५ घनमर्षणं कुर्यात् । पुनः स्नात्वा द्विराचम्य तर्पणं कुर्यात् ” ॥ इति ।

“अप्रवाहोदकस्नानं विप्रपादावनेजनम् । गायत्र्या जपमर्घ्यं च आदित्याभिमुखं चरेत् ॥

“स्रोतसोभिमुखः स्नायान्मार्जने चाघमर्षणे । अन्यत्रार्कमुखो रात्रौ प्रागुदङ्मुख एव वा ॥

“संध्यामुखस्तु संध्यायां दैवे देवोन्मुखस्तथा” ॥ इति च ।

कालनियममाह जाबालिः—“आचरेदुषासि स्नानं तर्पयेद्देवमानुषान्” ॥ इति ।

विष्णुरपि (६४।९)—“प्रातःस्नायादरुणकरग्रस्तां प्राचीमवलोक्य” इति । अरुणोदयलक्षणमाह ५

नारदः—“चतस्रो घटिकाः प्रातः अरुणोदयनिश्चयः ” इति । स्कांदेऽपि—

“उदयात्प्राक् चतस्रस्तु नाडिका अरुणोदयः । तत्र स्नानं प्रशस्तं स्यात् स हि पुण्यतमः स्मृतः” ॥ इति ।

यत्तु चतुर्विंशतिमतेऽभिहितम्—

“उपव्युषसि यत्स्नानं संध्यायामुदितेऽपि वा । प्राजापत्येन तत्तुल्यं सर्वपापप्रणाशनम्” ॥ इति ।

तस्यार्थः स्मृतिचंद्रिकामाधवीययोर्वर्णितः (पृ. १११ पं. १४) । यत्संध्यायां स्नानं तदुपव्युषसि १०

यदि बोदिते उदयाभिमुख इत्यर्थः । उदयस्याप्युपरि स्नानं चेत् संध्याप्युत्कृष्येत स्नानपूर्वकत्वात्

संध्यायाः । यदाह विष्णुः (६४।४०)—

“स्नातोऽधिकारी भवति दैवे पित्र्ये च कर्मणि । पवित्राणां तथा जप्ये दाने च विधिबोदिते ” ॥

योगयाज्ञवल्क्यः—“प्रातः सह गोमयेन कुर्यान्मृदा मध्यंदिने सायं शुद्धाभिरद्भिर्न प्रातः-

स्नानात्प्राक् संध्यामुपासीत ” इति । दक्षोऽपि—

“स्नानमूलाः क्रियाः सर्वाः संध्योपासनमेव च । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्नानं कुर्यात्समाहितः” ॥ इति ।

यद्येवं तर्ह्येतद्वचनबलादेव संध्याऽप्युत्कृष्यताम् । एवम् “संधौ संध्यामुपासीत नास्तगे नोद्वते

रवौ ” इति योगयाज्ञवल्क्येन तन्निषेधस्मरणात् । तथा

“रात्र्यंतयामनाडी द्वे संध्यादिः काल उच्यते । दर्शनाद्रविरेखायाः तदंतो मुनिभिः स्मृतः” ॥ इति

दक्षेण कालनियमाच्च । रविरेखाया दर्शनादुपलक्षितः कालः संध्यान्त इत्यर्थः । अत ‘उदितेऽपि वा’ २०

इत्यस्य उदयाभिमुख इत्येवार्थो युक्त इति । दक्षः—

“स्नात्वाऽऽचमेद्यदा विप्रः पादौ कृत्वा जले स्थले । उभयोरप्यसौ शुद्धस्ततः कर्मक्षमो भवेत् ॥

“विन्यस्य दक्षिणं पादं जले वामपदं बहिः । उपवीती समाचामेद्विधिरेष सनातनः ” ॥ इति ।

स्नानाङ्गतर्पणमुक्तं माधवीये—

“नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं स्नानमुच्यते । तर्पणं तु भवेत्तस्य अङ्गत्वेन प्रकीर्तितम्” ॥ २५

चतुर्विंशतिमतेऽपि—“स्नानादनंतरं तावत्तर्पयेत् पितृदेवताः ” इति । व्याघ्रोऽपि—

“स्नाने चैव तु सर्वत्र तर्पयेत्पितृदेवताः । काम्ये नित्ये विशेषेण तत्प्रकुर्यात्प्रयत्नतः ” ॥

अकरणे दोषोऽपि वसिष्ठेन दर्शितः—

“नास्तिक्यभावाद्यस्तास्तु न तर्पयति वै पितृन् । पिबन्ति देहनिस्त्रावं पितरोऽस्य जलार्थिनः ” ॥

देहनिस्त्रावो रुधिरम् । यत्तु आपस्तम्बेनोक्तम्—

“अस्पृश्यस्पर्शने वांतावश्रुपाते क्षुरे तथा । स्नानं नैमित्तिकं ज्ञेयं देवर्षिपितृवर्जितम्” ॥ इति । यदपि

स्मृत्यर्थसारवचनम्—“अस्पृश्यस्पर्शनस्नाने नाघमर्षणतर्पणे” । इति तदस्पृश्यस्पर्शनादिनिमित्त-

प्राथमिकस्नाने तर्पणनिषेधपरम् । “शवानुगमने क्षौरे पुनःस्नानं विधीयत ” इत्युक्तपुनःस्नाने ।

“स्नानार्हस्तु पुनस्तेन त्रयोदश निमज्ज्य च । आचम्य प्रयतः पश्चात्स्नानं विधिवदाचरेत्” ॥

इत्युक्तत्रयोदशनिमज्जनानंतरस्नाने च तर्पणं भवत्येव । “ स्नाने चैव हि सर्वत्र तर्पयेत् ” इति स्मरणात् । यमः—

“ द्वौ हस्तौ युग्मतः कृत्वा पूरयेदुदकांजलिम् । गोशृंगमात्रमुद्धृत्य जलमध्ये जलं क्षिपेत् ” ॥ यत्तु व्याघ्रेणोक्तम्—

५ “ उभाभ्यामपि हस्ताभ्यामुदकं यः प्रयच्छति । स मूढो नरकं याति कालसूत्रमवाकृशिराः ॥ ” इति । तत् श्राद्धादावुदकदानविषयम् । यदाह काष्णार्जिनिः—

“ श्राद्धे विवाहकाले च पाणिनैकेन दीयते । तर्पयेच्चूभयेनैव विधिरेव पुरातनः ” ॥ इति । स्नातश्चार्द्रवासा जलस्थ एव देवर्षिपितृतर्पणं कुर्यात् । तथा च नारायणः—

“ उपवीती वद्धशिखः समाचम्य यथाविधि । देवर्षीस्तर्पयेदप्सु पितृंश्चैव समाहितः ” ॥ इति ।

१० अप्सु स्थित्वा तर्पयेदित्यर्थः । विष्णुः (६४।२४)—“ स्नातश्चार्द्रवासा देवर्षिपितृतर्पणं अंभस्थ एव कुर्वीत ” इति । काष्णार्जिनिः—

“ नाभिमात्रजले स्थित्वा चिंतयन्नूर्ध्वमानसः । देवान् देवगणांश्चापि ऋषीन् ऋषिगणानपि ॥

“ अथ काण्डऋषीनेतानुदकांजलिभिः शुचिः । अव्यग्रस्तर्पयेन्नित्यं मंत्रैरेव स्वनामभिः ॥

“ पितृन् पितृगणांश्चापि नित्यं संतर्पयेत्ततः ” ॥ इति । भरद्वाजः—

१५ “ तर्पणं देवतादिभ्यः स्वस्वतीर्थेन तर्पयेत् । गोशृंगमात्रमुद्धृत्य तर्पणे जलमुत्सृजेत् ॥

“ येन तीर्थेन गृह्णीयात्तेन दद्याज्जलांजलिम् । अन्यतीर्थेन गृह्णीयात्ततोयं रुधिरं भवेत् ॥

“ पूर्वाशाभिमुखो देवानुत्तराभिमुखस्त्वृषीन् । पितृंश्च दक्षिणास्यस्तु जलमध्ये तु तर्पयेत् ” ॥

व्यासोऽपि—

“ तर्पणं तु शुचिः कुर्यात्प्रत्यहं स्नातकस्त्विह । देवेभ्योऽथ ऋषिभ्योऽथ पितृभ्यश्च यथाक्रमम् ॥

२० “ आदावोकारमुच्चार्य नाम्नोऽस्ते तर्पयामि च । देवान्ब्रह्मर्षींश्चैव तर्पयेदक्षतोदकैः ॥

“ पितृंस्तिलोदकैः स्वोक्तविधिना तर्पयेद्बुधः । यज्ञोपवीती देवानां निवीती ऋषितर्पणे ॥

“ प्राचीनावीती पित्र्येषु स्वेन तीर्थेन तर्पयेत् ” ॥ इति । विष्णुपुराणे—

“ शुचिवस्त्रधरः स्नातो देवर्षिपितृतर्पणम् । तेषामेव हि तीर्थेन कुर्वीत सुसमाहितः ॥

“ त्रिरपः प्रीणनार्थाय देवानामपवर्जयेत् । तथर्षीणां यथान्यायं सकृच्चापि प्रजापतेः ॥

२५ “ पितृणां प्रीणनार्थाय त्रिरपः पृथिवीपते ॥

“ पितामहेभ्यश्च तथा प्रीणयेत् प्रपितामहान् । मातामहाय तत्पित्रे तत्पित्रे च च समाहितः ” ॥ इति ।

वृद्धमनुः—

“ मनुष्यतर्पणे स्नानवस्त्रनिष्पीडने तथा । निवीती तु भवेद्विप्रस्तथा मूत्रपुरीषयोः ॥

“ मानुषेष्वंसयोः सक्तं मैथुने षष्ठभागिकम् । तर्पणेऽगुष्ठयोः सक्तं निवीतं त्रिविधं स्मृतम् ” ॥ इति ।

३० प्रयोगपारिजाते— “ प्राङ्मुख उपवीती ब्रह्मादीन् देवान्सकृत् सकृत्तर्पयित्वा अथोदङ्मुखो निवीती सयवाभिरद्भिः प्राजापत्येन तीर्थेन ऋषीन् द्विर्द्विःतर्पयित्वा अथ दक्षिणामुखः प्राचीनावीती पितृतीर्थेन सतिलाभिरद्भिस्त्रिभिस्तर्पयित्वा सोमः पितृमान्यमोगिरस्वानग्निर्व्यवाहनादय इति त्रिस्तर्पयेत् । एतत्स्नानांगतर्पणम् ” ॥ इति । पितृतर्पणं प्रकृत्य कृष्णार्जिनिः—

“ नाभिमात्रे जले स्थित्वा चिंतयेद्बुधमानसः । आगच्छंतु मे पितरो गृह्णन्त्वेतान् जलांजलीम् ॥

“पितृणामंबरस्थानामम्भस्थो दक्षिणामुखः । त्रींस्त्रीन् जलांजलीन् दद्यादुच्चैरुच्चरतान्बुधः” ॥ इति ।
गृह्णन्वेतान् जलांजलीनिति चिंतयेदिति संबंधः । **सुमंतुः—**

“आकाशे निक्षिपेद्वारि जलस्थो दक्षिणामुखः । पितृणां स्थानमाकाशं दक्षिणा दिक् तथैव च” ॥ इति ।
स्मृत्यर्थसारे— “ शुक्लैस्तिलैर्देवानुपवीती देवतीर्थेन प्राङ्मुखस्तर्पयेत् । शबलैस्तिलैः ऋषीन्
निवीती कायेनोदकेनोदङ्मुखस्तर्पयेत् । आचार्यान्पितृन्प्राचीनावीती पित्र्येण कृष्णतिलैः ५
दक्षिणामुखस्तर्पयेत् । यद्वा शुद्धोदकैर्देवानृषींश्च पितृंस्तिलैः सर्वान्वा सर्वतिलैस्तर्पयेत् । यद्वा
देवानक्षतैस्तंडुलैः ऋषींस्तिलैः पितृन् । देवानामेकैकमंजलिं दद्यात् । ऋषीणां द्वौ द्वौ । पितृणां
त्रीन् त्रीन् स्वाचारप्राप्तैर्मंत्रैः ।

“ तिलाभावे स्वर्णरूप्यताम्रदर्भयुतोदकैः । खड्गमौक्तिकहस्तेन कार्यं वा पितृतर्पणम् ॥

“ न जीवत्पितृकः कृष्णैस्तिलैस्तर्पणमाचरेत् ।

१०

“ हस्ताभ्यां रविवारे च जन्मर्क्षदिवसेषु च । गृहे निषिद्धं सतिलं तर्पणं तद्वहिर्भवेत् ” ॥

शोभनग्रहे शोभनदिने न तिलतर्पणं विवाहोपनयनचौलदिनेषु यथाक्रमं वर्षमर्धं तदर्धं च
नैमित्तिकं न तिलतर्पणमिति । अत्र विशेषमाह कौशिकः—

“प्रातःस्नाने विशेषो यत्तद्धि नैव तिलैर्युतम् । नैमित्तिकं च काम्यं च तिलैरेव विधीयते ” ॥ इति ।

‘ ऊर्जं वहन्तीरमृतम् ’ इति तर्पणं तीरे कुर्वन् पितृहन्ता भवेत् । देवर्षिपितृतर्पणानंतरं तीरे १५
यक्षमतर्पणं विहितं स्मृत्यंतरे— “ देवर्षितर्पणं कृत्वा यक्षमाणं तर्पयेत्तटे ॥

“ यन्मया दूषितं तोयं शरीरमलसंचयात् । तद्दोषपरिहाराय यक्षमाणं तर्पयाम्यहम् ” ॥ इति ।

दक्षोऽपि—

“स्नानांगतर्पणं कृत्वा यक्षमाणो जलमाहरेत् । अन्यथा कुरुते यस्तु स्नानं तस्याफलं भवेत्” ॥ इति ।

योगयाज्ञवल्क्यः—

२०

“ यावद्देवानृषींश्चैव पितृन्वै यो न तर्पयेत् । तावन्न पीडयेद्वस्त्रं येन स्नातो भवेन्नरः ॥

“ निराशाः पितरो यांति स्नानवस्त्रे निपीडिते । तस्मान्न पीडयेद्वस्त्रमकृत्वा पितृतर्पणम् ” ॥

वृद्धवसिष्ठः—

“ स्नानार्थमग्निगच्छंतं देवाः पितृगणैः सह । वायुभूतास्तु गच्छन्ति वृषार्त्ताः सलिलार्थिनः ।

“ निराशास्ते निवर्त्तते वस्त्रनिपीडने कृते ” ॥ **शौनकः—**

२५

“ देवादींस्तर्पयेत्पूर्वं वस्त्रं संपीडयेत्परम् । उदकस्याप्रदानाद्धि स्नानवस्त्रं न पीडयेत् ॥

“ निष्पीडयति यः पूर्वं स्नानवस्त्रं तु तर्पणात् । निराशाः पितरस्तस्य यांति देवैः सहर्षिभिः ” ॥ इति ।

जलोत्तरणानंतरकृत्यमाह भरद्वाजः—

“ वस्त्रोदकमपेक्षन्ते ये मृता दासकर्मिणः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन जलं भूमौ निपातयेत् ” ॥ इति

उत्तीर्य कंचित्कालं तटे तिष्ठेदित्यर्थः । तथा च **संग्रहे—**

३०

“ स्नात्वा दूराज्जले तिष्ठेत्प्राचीनावीतवान् द्विजः । यावत्स्रवति देहांबुतूष्णीं भूतादितृप्तये ॥

“ स्नात्वानाच्छाद्य यस्तिष्ठेत्तस्याकंपयतस्तदा । ब्रह्महत्यादिपापानि कंपयन्ति न संशयः ” ॥

अत्रावस्थाने च विशेष उक्तः

“ सुराबिंदुसमाः प्रोक्ताः पृष्ठतः केशबिंदवः । त एव पुरतः प्रोक्ताः सर्वतीर्थोपमा बुधैः ” ॥

चंद्रिकायाम्—(पृ. ११३ पं. ४)

“ अवमृज्यान्न च स्नातो गात्राण्यंवरपाणिभिः । न च निर्धुनुयात्केशान् वासश्चैव न निर्धुनेत् ” ॥
अत्र हेतुमाह व्यासः—

“ तिस्रः कोट्यर्धकोटी च यावत्यङ्गरूहाणि वै । स्रवंति सर्वतीर्थानि तस्मान्न परिमार्जयेत् ” ॥

५ गोभिलः—

“ पिबन्ति शिरसो देवाः पिबन्ति पितरो मुखान् । मध्यतः सर्वगंधर्वा अधस्तात्सर्वजंतवः ॥

“ सुराविंदुसमं चांभः शिखायाः पृष्ठपातितम् । तदेव पुरतोवर्त्ति गंगाविंदुसमं भवेत् ” ॥

स्मृत्यंतरे—

“ शिरोवारि शरीरांबु वस्त्रतोयं यथाक्रमात् । पिबन्ति देवा मुनयः पितरो ब्राह्मणस्य तु ” ॥

१० जावालिनः—

“ स्नानं कृत्वाऽर्द्रवासास्तु विष्णून् कुरुते यदि । प्राणायामत्रयं कृत्वा पुनःस्नानेन शुध्यति ” ॥ इति ।

ततः स्नानवस्त्रं निष्पीडयेत् । तथा च पुलस्त्यः—

“ कृत्वा तर्पणमेवं तु समुत्तीर्य जलाशयात् । पीडयेत्स्नानशार्टी तु तट एव विचक्षणः ” ॥

चतुर्विंशतिमते—

१५ “ स्नानादनंतरं तावत्तर्पयेत्पितृदेवताः । उत्तीर्य पीडयेद्वस्त्रं संध्याकर्म ततः परम् ” ॥ इति ।

अत्र स्मृत्यर्थस्तारे विशेषोऽभिहितः— “ जलादुत्तीर्य वस्त्रप्रातं निष्पीड्यापः परिधानीयोत्तरीये धृत्वा स्नानवस्त्रं निष्पीड्याचम्य संध्यामुपासीत ” इति । स्मृत्यंतरे—

“ चतुःसंवेष्ट्य वासोतं स्नातो निष्पीडयेत् स्थले । ‘ ये के चास्मत्कुले जाता ’ इति मन्त्रेण मानवः ” ॥

मन्त्रश्च कार्णार्जिनिनोक्तः—

२० “ ये के चास्मत्कुले जाता अपुत्रा गोत्रिणो मृताः । ते गृह्णंतु मया दत्तं वस्त्रनिष्पीडनोदकम् ” ॥
संवर्तः— “ उत्तीर्य पीडयेद्वस्त्रं अपसव्यं यथाविधि ” ॥ इति । वृद्धमनुः—

“ वस्त्रं त्रिगुणितं यस्तु निष्पीडयति मूढधीः । वृथास्नानं भवेत्तस्य यश्चैवादशमंबुभिः ” ॥ इति ।

यच्च वस्त्रमदशं यथा भवति तथा निष्पीडयति अंबुनि च निष्पीडयति तस्य स्नानं वृथेत्यर्थः ।

तथा च प्रदीपिकायाम्—

२५ “ जले मध्ये यदा कश्चित् ब्राह्मणो जानदुर्वलः । निष्पीडयति वस्त्राणि स्नानं तस्य वृथा भवेत् ॥

“ वस्त्रं चतुर्गुणीकृत्य निष्पीड्य च जलाद्बहिः । वानप्रकोष्ठे निक्षिप्य द्विराचम्य विशुध्यति ” ॥

जावालिनः—

“ निष्पीडितं घातवस्त्रं यदा स्कंधे विनिक्षिपेत् । तदासुरं भवेत्कर्म पुनः स्नानं विशेषनम् ॥

“ अमंगलानि सर्वाणि आर्द्रवस्त्राणि यानि च । तस्मात्स्कन्धे क्वचिद्भीमानार्द्रवस्त्रं न धारयेत् ” ॥

३० स्मृत्यंतरेऽपि—

“ पादेन न्यापयेद्वस्त्रं स्कन्धेन स्थापयेत्तथा । ब्राह्मणो द्वितयं चैव वर्जयेद्वस्त्रपीडने ” ॥ इति

वसिष्ठः—

“ स्नानशार्दूलं च दानव्या मृदस्तिन्नो विशुद्ध्ये । उत्तीर्य तां च निष्पीड्य तत्र शेषं ममापयेत् ” ॥

स्मृतिसंग्रहे—

“ निमज्ज्य देवर्षिपितृन्संतर्प्याचम्य वाससः । खंडद्वयेन कमशो शिरोऽगं परिमार्जयेत् ॥
“स्नातो नांगानि संमृज्यात् स्नानशाठ्या न पाणिना । न च निर्धुनुयात्केशान्न तिष्ठन्परिमार्जयेत्” ॥

व्यासः—

“ मार्जयेद्वस्त्रशेषेण नोत्तरीयेण वा शिरः । यदि प्रमादान्मृज्येत स पितृन्पातयत्यधः” ॥ इति । ५

शौनकः—

“ स्नानवस्त्रेण यो विप्रः शरीरं परिमार्जयेत् । स्नानं वृथैव भवति पुनःस्नानेन शुध्यति” ॥ इति ।

संवर्त्तः—

“स्नानवस्त्रेण हस्तेन यो द्विजोऽङ्गं प्रमार्जयेत् । वृथा भवति तत्स्नानं पुनःस्नानेन शुध्यति” ॥ इति ।

इति स्नानम् । स्नानानंतरं वासः परिदध्यात् । तथा च मत्स्यपुराणम्—

१०

“ एवं स्नात्वा ततः पश्चादाचम्य तु विधानतः । उत्थाय वाससी शुक्ले शुद्धे तु परिधाय वै ”

द्विराचामेदिति शेषः । तथा च व्याघ्रपादः—“ततो वस्त्रद्वयं शुद्धं गृहीत्वा द्विरुपस्पृशेत्” ॥ इति ।

अत्र विशेषमाह व्यासः—

“ नोत्तरीयमधः कुर्यान्नोपर्याधस्त्यमंवरम् । नांतर्वासो विना जातु निवसेद्वसनं बुधः ” ॥

चंद्रिकायाम् (पृ. ११२ पं.)—

१५

“न चानुलिपेदस्नात्वा स्नातो वासो न निर्धुनेत् । आर्द्र एव तु वासांसि स्नात्वा सेवेत मानवः” ॥

अत्र जाबालिः—

“स्नात्वा निरस्य वस्त्रं तु जंघे शोध्ये मृदंभसा । अपवित्रीकृते ते हि कौपीनास्त्राववारिणे” ॥ इति ।

अत्र हेत्वभिधानाज्जंघाग्रहणमपवित्रीकृतांगोपलक्षणार्थम् । अत एव योगयाज्ञवल्क्यः—

“ स्नात्वैवं वाससी धौते अच्छिन्ने परिधाय च । प्रक्षाल्योरु मृदाऽद्भिश्च हस्तौ प्रक्षालयेत्ततः ” ॥ २०

हारीतोऽपि—

“ जलात्तीरं समासाद्य तत्र शुक्ले च वाससी । परिधायोत्तरीयं च कुर्यात्केशान् न धूनेत् ॥

“ ततः प्रक्षालयेत्पादौ मृत्तोयेन विचक्षणः ” ॥ इति ।

आर्द्रवस्त्रविसर्जने विशेष उक्तः संग्रहे—

“स्नानं कृत्वाऽऽर्द्रवस्त्रं तु ऊर्ध्वमुद्धृत्य विक्षिपेत् । स्नानवस्त्रमधस्ताच्चेत् पुनः स्नानेन शुध्यति” ॥ इति । २५

एतद्व्याख्यादिविषयम् । स्मृत्यंतरे—

“ नद्यादिदेवखातेषु स्नानवस्त्रमधस्त्यजेत् । अन्यत्र तु त्यजेदूर्ध्वं स्नानवस्त्रं द्विजोत्तमः ” ॥ इति ।

वस्त्रविषये विशेषमाह भृगुः—

“ ब्राह्मणस्य सितं वस्त्रं नृपते रक्तमुल्बणम् । पीतं वैश्यस्य शूद्रस्य नीलं मलवदिष्यते ” ॥

याज्ञवल्क्यः (आ. १३१)— “ शुक्लांबरधरो नीचकेशश्मश्रुनखः शुचिः ” इति । भवेदिति शेषः ॥ ३०

हारीतः—

“ न रक्तमुल्बणं वासो न नीलं च प्रशस्यते । मलाक्तं गंधहीनं च वर्जयेदंबरं बुधः ” ॥

आपस्तंबः (१।११।३०।१०)—“सर्वान् रागान्वाससि वर्जयेत् । कृष्णं च स्वाभाविकम् । अनू-

द्भासिवासोवसीता अप्रतिकुष्ठं च शक्तिविषये ” इति । अस्त्यार्थः । कुसंभादयः सर्वे रागा वाससि

वर्जनीयाः । न केनचिद्रक्तं वासो बिभृयात् । यच्च स्वभावतः कंबलादि कृष्णं तदपि न वसीत् । ३५

१ क्ष-यो वस्त्रः शरीरं परिमार्जनी । २ क्ष-ष्टिः ।

उद्भासनशीलं उद्भासि उल्बणं तदन्यदनूद्भासि । छांदसो दीर्घः । एवंभूतं वासो वसीत आच्छादयेत् ।
प्रतिकृष्टं निकृष्टं जीर्णं मलवत्स्थूलं च तद्विपरीतमप्रतिकृष्टं तादृशं च वासो वसीत । शक्तौ
सत्यामिति । गौतमोऽपि (अ. ९ पं. ५)—“ न रक्तमुल्बणं अन्यधृतं वासो बिभृयात् ” इति ।
मनुः (४।३४)—“ न जीर्णमलवद्वासा भवेच्च विभवे सति ” ॥ इति । प्रजापतिः—

५ “क्षौमं वासः प्रशंसन्ति तर्पणे सदृशं यथा । काषायं धातुरक्तं च नोल्बणं तत्र कर्हिचित्” ॥
उशनाः—“ न वेष्टितशिराः कृष्णकाषायवासा वा देवपितृकार्याणि कुर्यात् ” इति । यत्तु “ अहतं
धातुरक्तं च तत्पवित्रमिति स्मृतम् ” इति स्मर्यते तत् अनुद्वणरक्ताभिप्रायम् । देवलः—
“ स्वयं धौतेन कर्तव्या क्रिया धर्म्या विपश्चिता । न तु नेजकधौतेन नाहतेन न कुत्रचित् ” ॥
अहतेनेति समस्तपदम् । अहतस्य लक्षणमाह पुलस्त्यः—

१० “ ईषद्भौतं नवं श्वेतं सदृशं यन्न धारितम् । अहतं ताद्विजानीयात्सर्वकर्मसु पावनम् ” ॥ इति ।
धौतं प्रक्षालितम् । अहतस्य विषयविशेषं दर्शयति सत्यतपाः—
“ अहतं यन्त्रनिर्मुक्तमुक्तं वासः स्वयंभुवा । शस्तं तन्मांगलिक्येषु तावत्कालं न सर्वदा ” ॥ इति ।
मांगलिक्यं विवाहादि ।

“ अधौतं कारुधौतं च कर्मकाले विवर्जयेत् । चंडालनिर्मितं वस्त्रं सर्वदा परिवर्जयेत् ” ॥ इति ।
१५ उशनाः—

“ स्नात्वाऽनुपहतं वस्त्रं परिदध्याद्यथाविधि । अभावे पूर्ववस्त्रं च संप्रोक्ष्य प्रणवेन तु ” ॥
अत्रानुकल्पमाह योगयाज्ञवल्क्यः—

“ अलाभे धौतवस्त्रस्य शाणक्षौमाविकानि च । कुतपं योगपट्टं च विवासास्तु न वै भवेत् ” ॥ इति ।
कुतपं योगपट्टं च न धारयेदिति शेषः । चंद्रिकायाम्—(पृ. ११३ पं. २९)

२० “ अन्यदेव भवेद्वासः शयनाय नराधिप । अन्यद्रथ्यासु देवानामर्चयामन्यदेव हि ॥

“ अन्यच्च लोकयात्रायामन्यदीश्वरदर्शने ” ॥ जातूकर्णिः—

“ काषायं कृष्णवस्त्रं वा मलिनं केशदूषितम् । छिन्नाग्रं चार्पवित्रं च कुत्सितं धर्मतो विदुः ” ॥

भृगुः—“ न रक्तमुल्बणं वासो न नीलं च प्रशस्यते । दशाहीनं जलार्द्रं च वर्जयेदंबरं बुधः ॥

“ अकच्छः पुच्छकच्छश्च तिर्यक्कच्छोर्ध्वकच्छकः । कटिसूत्रे च कच्छश्च नग्नः पंचविधः स्मृतः ॥

२५ “ कटिसूत्रं विना श्रौतं स्मार्तं कर्म करोति यः । सर्वं तन्निष्फलं विद्यात्सोऽपि नग्न इति स्मृतः ॥

“ नग्नो मलिनवस्त्रः स्यान्नग्नश्चार्द्रपटः स्मृतः । नग्नस्तु दग्धवस्त्रः स्यान्नग्नः स्यूतपटस्तथा ॥

“ विकच्छोनुत्तरीयश्च नग्नश्चावस्त्र एव च । श्रौतं स्मार्तं तथा कर्म न नग्नश्चित्तयेदपि ।

“ मोहात्कुर्वन्नधो गच्छेत्तद्भवेदासुरं कृतम् ” ॥ इति । स्मृतिरत्नावल्याम्—

“ सप्तवाताहतं वस्त्रं शुष्कवत्प्रतिपादितम् । आर्द्रं वाऽपि द्विजातीनामाहतं गौतमादिभिः ॥

३० “ जप्ये होमे तथा स्नाने दैवे पित्र्ये च कर्मणि । वध्नीयान्नासुरीं कक्ष्यां शेषकालं यथेच्छया ॥

“ परिधानाद्गृहिः कक्ष्या निवद्धा ह्यासुरी भवेत् । धर्म्ये कर्मणि विद्वद्भिर्वर्जनीयाः प्रयत्नतः ” ॥ इति ।

गौतमः (९।४) “ सति विभवे न जीर्णमलवद्वासाः स्यान् ” इति ।

स्मृत्यर्थसारे—

“ न सर्वरक्तं कृष्णं वा परिदध्यात्कदाचन । यज्ञोपवीतमन्यद्वा द्वितीयं तु भवेद्दिह ” ॥

३५ स्मृत्यन्तरे—‘ शुचीं वो हव्या मरुत ’ इत्युक्त्वा शुद्धमंबरं संप्रोक्ष्य ‘ देवस्य त्वा ’ इति गृहीत्वाऽ-

वधूनयेत् । ‘अवधूत-रक्ष’ इत्यादित्यस्य प्रदर्शयेत् । ‘तरणिरुदुत्यम्’ इति वा ‘अवंहति’ इति चाच्छादयेत्” इति । तथा च बोधायनः—(गृ.सू. ५।४)—“देवानृषीन्पितृस्तर्पयित्वा शुची वो हव्येति वस्त्रमद्भिः प्रोक्ष्य देवस्य त्वेति वस्त्रमादायावधूत-रक्ष इत्यवधूय उदुत्यं जातवेदसम् इति वस्त्रमादित्यं दर्शयित्वा अवहंति इति वासः परिधाय द्विराचामेत्” इति । पूर्वमनिवेशितवासो-विषयो मंत्र इत्याह पारस्करः—(गृ. सू. २।६।३२) “वासच्छत्रोपानहश्चापूर्वाश्वेन्मंत्रः” इति । ५
बोधायनः (३।३।५९)—

“उत्तरं वासः कर्तव्यं पंचस्वेतेषु कर्मसु । स्वाध्यायोत्सर्गदानेषु भुक्त्वाचमनयोस्तथा” ॥ इति । उत्सर्गो मूत्रादेः । एतत्सर्वकर्मोपलक्षणार्थम् । अनूत्तरीयस्य भृगुणा ‘विकच्छेनुत्तरीय’ इति कर्ममात्रस्य निषिद्धत्वात् । योगयाज्ञवल्क्योऽपि—
“स्नानं दानं जपं होमं स्वाध्यायं पितृतर्पणम् । नैकवस्त्रो द्विजः कुर्यात् श्राद्धभोजनसत्क्रियाः” ॥ इति । १०
गोभिलोऽपि—

“एकवस्त्रो न भुञ्जीत न कुर्यात् देवतार्चनम् । न चार्चयेद्विजानग्नौ कुर्यादेवंविधो नरः” ॥
पराशरः—

“होमदेवार्चनाद्यासु क्रियासु पठने तथा । नैकवस्त्रः प्रवर्तेत द्विज आचमने जपे” ॥
एकवस्त्रस्य लक्षणमाह स एव— १५

“सव्यादंसाद्भृष्टपटं कटिदेशभृतांबरम् । एकवस्त्रं तु तं विद्यात् दैवे पित्र्ये च वर्जयेत्” ॥ इति । सव्येऽसे पटहीनं कटिदेश एव भृतमंबरं येन स तथोक्तः । आपस्तम्बः (२।२।४।२१-२२)—

“नित्यमुत्तरं वासः कार्यमपि वा सूत्रमेवोपवीतार्थे” इति । जातुर्कारिणः—“वस्त्रोत्तरीया-भावे ब्यङ्गुलं त्र्यङ्गुलं चतुरङ्गुलं वा सूत्रैर्वस्त्राकृतिपरिमंडलं तदुत्तरीयं कुर्यात्” इति ।

तथा च चंद्रिकायाम्—(पृ. ११४ पं. २८) २०

“यज्ञोपवीते द्वे धार्ये श्रौते स्मार्ते च कर्मणि । तृतीयमुत्तरीयार्थं वस्त्राभावे तदिष्यते” ॥ इति ।

वृद्धमनुः—

“निष्पीड्य स्नानवस्त्रं तु पश्चात्संध्यां समाचरेत् । अन्यथा कुरुते यस्तु स्नानं तस्याफलं भवेत् ॥

“प्रातःसंध्यामुपासीत वस्त्रसंशोधनात्परम् । उपास्य मध्यमां संध्यां वस्त्रसंशोधनं भवेत् ॥

“वस्त्रं चतुर्गुणीकृत्य निष्पीड्य च जलाद्बहिः । वामप्रकोष्ठे निक्षिप्य द्विराचम्य विशुध्यति” ॥ २५

त्यक्तवस्त्रनिष्पीडने विशेषमाह हारीतः—

“वस्त्रनिष्पीडनं तोयं श्राद्धे तूच्छिष्टभागिनाम् । भागधेयं श्रुतिः प्राह तस्मान्निष्पीडयेत्स्थले ॥

“उच्छिष्टभागिनो दासा ये मृतास्ते त्वमंत्रकाः । वृष्यंतु तरुतां प्राप्ता मम संबन्धिनो मृताः” ॥

इति स्नात्वाऽर्द्रवसनं शुचौ देशे प्रपीडयेत् । भरद्वाजोऽपि—

“वस्त्रोदकमपेक्षंते श्राद्धे तूच्छिष्टभोजिनः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन जलं भूमौ निपातयेत्” ॥ इति । ३०

इति वस्त्रपरिधानप्रकरणम् । स्नानभेदाः । प्रातःस्नानप्रसंगेन स्नानांतराण्युच्यंते ।

तत्र शंखः—

“स्नानं तु द्विविधं प्रोक्तं गौणमुख्यप्रभेदतः । तयोस्तु वारुणं मुख्यं तत्पुनः षड्विधं भवेत् ॥

“नित्यं नैमित्तिकं काम्यं क्रियांगं मलकर्षणम् । क्रियास्नानं तथा षष्ठं षोढा स्नानं प्रकीर्तितम्” ॥ इति ।

एतेषां लक्षणमाह स एव—

- “अस्नातस्तु पुमान्नाहो जप्याग्निहवनादिषु । प्रातःस्नानं तदर्थं तु नित्यस्नानं प्रकीर्तितम् ॥
- “चंडालशवधूपादि स्पृष्ट्वा स्नातां रजस्वलाम् । स्नानार्हस्तु यदा स्नाति स्नानं नैमित्तिकं हि तत् ॥
- “पुण्यस्नानादिकं यत्तु दैवज्ञविधिचोदितम् । तद्धि काम्यं समुद्दिष्टं नाकामस्तत्प्रयोजयेत् ॥
- दैवज्ञो ज्योतिर्वित् ।
- ५ “जप्तुकामः पवित्राणि ह्यर्चिष्यन् देवतापितृन् । स्नानं समाचरेद्यत्तु क्रियांगं तत्प्रकीर्तितम् ॥
- “मलापकर्षणं नाम स्नानमभ्यंगपूर्वकम् । मलापकर्षणार्थाय प्रवृत्तिस्तस्य नान्यथा ॥
- “सरस्सु देवस्नानेषु तीर्थेषु च नदीषु च । क्रियास्नानं समुद्दिष्टं स्नानं तत्र मता क्रिया” ॥ इति ।
- स्नानमेव तत्र क्रिया कार्यतया विहितेत्यर्थः । गोभिलोऽपि—
- “नित्यं सततनिर्वर्त्य काम्यं कामाय यद्धितम् । निमित्तादुपजातं तु स्नानं नैमित्तिकं स्पृतम्” ॥ इति ।
- १० अनेन माध्यंदिनस्नानस्यापि नित्यत्वमुक्तम् । तस्यापि सततं निर्वर्त्यत्वात्तदिदानीं प्रसंगेनाभिधीयते ।
- तत्र बोधायनः—
- “ततो मध्यान्हसमये पुनः स्नानं समाचरेत् । सूर्यस्य चाप्युपस्थानं जपहोमादिकं तथा ” ॥
- वसिष्ठः—
- “पवित्रकर एकाग्रः पार्श्वाननवलोकयन् । अरुग्दिवाचरेत्स्नानं मध्यान्हात् प्राग्विशेषतः ” ॥
- १५ अरुक् रोगहीनः । व्यासः—
- “स्नानं मध्यंदिने कुर्यात् सुजीर्णोऽन्ने निरामयः । न भुक्त्वालंकृतो रोगी स्नायादंभसि नाकुलः ” ॥
- विष्णुः—
- “प्रातःस्नातोऽपि विधिवत्स्नानं मध्यंदिने चरेत् । शक्तश्चेदन्यथा रोगी श्राद्धासंमार्जनां चरेत्” ॥ इति ।
- अनेन प्रातःस्नातस्य मध्यान्हस्नानाशक्तौ कापिलस्नानमनुज्ञायते ।
- २० व्यासः—
- “मंत्रपूतेर्जलैः स्नानं ग्राहुः स्नानफलप्रदम् । न वृथा वारिमग्नानां यादसामिव तत्समम्” ॥
- याज्ञवल्क्यः—
- “मत्स्यकच्छपमंडूकास्तोये मग्ना दिवानिशम् । न तेषां हि स्नानफलं तथैव विधिवर्जितम् ” ॥
- कौशिकः—
- २५ “विधिदृष्टं तु यत्कर्म करोत्यविधिना तु यः । फलं न किञ्चिदाप्नोति क्लेशमात्रं हि तस्य तत् ” ॥
- विवस्वान्—
- “अविदित्वैव यः स्मार्तं विधानं स्नानमाचरेत् । स याति नरकं घोरं इति धर्मस्य शासनम्” ॥ इति ।
- विष्णुः—
- “ब्रह्मक्षत्रविशां चैव मंत्रवत्स्नानमिष्यते । तूष्णीमेव हि शूद्रस्य स्त्रीणां च कुरुनंदन” ॥ इति ।
- ३० बोधायनः—
- “अपोवगाहनं स्नानं विहितं सार्ववर्णिकम् । मंत्रवत्प्रोक्षणं चापि द्विजातीनां विशिष्यते” ॥ इति ।
- अथ स्नानार्हजलानि । तत्र मनुः (४।२०३)—
- “नदीषु देवस्नानेषु तट्टाकेषु सरःसु च । स्नानं समाचरेन्नित्यं गर्तप्रसवणेषु च ” ॥
- मनुष्यैरस्नातो जलाशयो देवस्नातः । मनुष्यस्नातः तट्टाकः । ऋषिसेवितं सरः । कुल्या गर्तः । प्रस्र-
- ३५ वणं निर्झरः ।

गर्तलक्षणमुक्तं शौनककात्यायनाभ्याम्—

“धनुःसहस्राण्यष्टौ तु गतिर्यासां न विद्यते । न ता नदीशब्दवहा गर्तास्ताः परिकीर्तिताः” ॥ इति ।
अनेनार्थान्नदीलक्षणमप्युक्तं भवति । विष्णुपुराणे—

“नदीनदतटाकेषु देवखातजलेषु च । नित्यक्रियार्थं स्नायीत गिरिप्रस्रवणेषु च ॥

“कूपेषूद्धृततोयेन स्नानं कुर्वीत वा भुवि” ॥ मार्कण्डेयोऽपि—

५

“पुराणानां नरेन्द्राणामृषीणां च महात्मनाम् । स्नानं कूपतटाकेषु देवतानां समाचरेत् ॥

“भूमिष्ठमुद्धृतात्पुण्यं ततः प्रस्रवणोदकम् । ततोऽपि सारसं पुण्यं तस्मान्नादेयमुच्यते ॥

“तीर्थतोयं ततः पुण्यं गांगं पुण्यं तु सर्वतः” । तीर्थतोयं साधुजुष्टं जलम् ।

उद्धृतात्पुण्यभूमिष्ठमुदकम् । तस्मान्नादेयं तस्मादपि साधुपरिगृहीतं सर्वत एव गांगमिति ॥

विवस्वानपि—

१०

“एकतः सर्वतीर्थानि जान्हव्येकैव चान्यतः । ब्रह्मलोके शशिसरःपतिता या महीतले” ॥

मरीचिरपि—

“भूमिष्ठमुद्धृतं वाऽपि शीतमुष्णमथापि वा । गांगं पयः पुनात्याशु पापमा मरणांतिकम्” ॥

योगयाज्ञवल्क्योऽपि—

“त्रिरात्रफलदा नद्यो याः काश्चिदसमुद्रगाः । समुद्रगास्तु पक्षस्य मासस्य सरितां पतिः” ॥ इति । १५

भरद्वाजः—

“महानदीनदस्रोतस्सरस्त्रिदशखातकाः । नालस्तटाकः कुंडश्च धाराकूपास्त्वमी दश ॥

“चांद्रायणत्रयं कृच्छ्रा गायत्र्या अयुतत्रयम् । आप्लावनं महानद्यां तुल्यमेतच्चतुष्टयम् ॥

“उद्धृता भूधरेऽभोधिं प्रविशत्यंबुसंततिः । या सा महानदी ज्ञेया सर्वपापप्रणाशिनी ॥

“उद्धृता पूर्वदिग्भागे शैले सलिलसंततिः । या प्रत्यक् सागरं याति सो नदस्त्विति गद्यते ॥ २०

“भूदरे भुवि वोद्धृता या मेघरससंततिः । नदीं विशति सा स्रोतः स्वयं वा यत्र लीयते ॥

“पर्वतस्य तटे वाऽग्रे वृत्ताकारजलास्पदम् । अशोध्यं यत्सरस्तत् स्यात् प्रविशालं मुपंकजम् ॥

“भुव्यद्रौ वा तटस्पर्शप्रशोष्यं यज्जलाशयम् । विशालमविशालं वा देवखात इति स्मृतः ॥

“ग्रामार्थं वाऽथ सस्यार्थं नृभिः स्पष्टांबुपद्धतिः । या नद्याद्यंबुधामभ्यः स नालाख्यमिति स्मृतम् ॥

“अर्धचंद्राकृतिर्यस्य संस्थानस्य तु वारिणः । ग्रामे वनेऽपि वा शैले तत्तटाक इति स्मृतम् ॥ २५

“चतुरश्रं शिलाबद्धं ससोपानमधोजलम् । विशालमविशालं वा यत्तत्कुंडमिति स्मृतम् ॥

“गिरिरघ्राद्विनिर्गत्य यां पतत्यंबुसंततिः । अप्रधारमधोभूमौ सा धारेत्यभिधीयते ॥

“पंचहस्तविशालं यत् खातं वृत्तमधोचलम् । दार्विष्टकादिघटितं यत्तत्कूप इति स्मृतः” ॥

व्यासः—

“न मेहेत जलद्रोण्यां स्नातुं च न नदीं तरेत् । नातिक्रमेत् वृथा सिंधुं नानुष्ठातुं नदीं तरेत्” ॥ ३०

सिंधुं नदीमनाचम्य न लंघयेदित्यर्थः । मनुः (४।२०१-२०२)—

“परकीयनिपानेषु न स्नायाद्धि कदाचन । निपानकर्तुः स्नात्वा हि दुष्कृतांशेन लिप्यते ॥

“यानशय्यासनान्यस्य कूपोद्यानगृहाणि च । अदत्तान्युपयुंजाना एनसः स्यात्तुरीयभाक्” ॥

अस्य परस्य तुरीयभाक् चतुर्थीशभाक् । नद्यालाभविषये स एवाह—

“अलाभे देवखातानां सरसां सरितां तथा । उद्धृत्य चतुरः पिंडान्पारक्यास्नानमाचरेत्” ॥ इति । ३५

अनेनैवाभिप्रायेण शौनकोऽपि—

“वापिकृपतटाकेषु यदि स्नायात्कदाचन । उद्धृत्य मृत्तिकापिंडान् दशपंचाथ वा क्षिपेत्” १
जाचालि.—

“न पारक्ये जले स्नायान्न भुंजीत महानिशि । नार्द्रमेकं च वसनं परिद्ध्यात्कदाचन ॥

“पंच पिंडान् समुद्धृत्य पारक्ये स्नानमाचरेत्” ॥ याज्ञवल्क्यः—(आचारे ३५९)

५ “पंच पिंडाननुद्धृत्य न स्नायात्परवारिषु । स्नायान्नदीदेवतातह्रदप्रस्रवणेषु च” ॥

उदकप्रवाहान्निवातकृतः कुलं मध्ययोः सजलो महानिघ्नप्रदेशे ह्रदः ।

“नदीमहानदीनोतः कूलमव्यप्रदेशयोः । सर्वदा यो जलप्रायो ह्रदः स परिकीर्तितः” ॥ इति
भरद्वाजस्मरणात् । योगयाज्ञवल्क्योऽपि—

“परकीयनिषानेषु यदि स्नायात् कदाचन । सप्तपिंडांस्तदोद्धृत्य ततः स्नानं समाचरेत्” ॥ इति ।

१० शौनकः—

“निरुद्धास्तु न कुर्वीरन् अंशभाह् तत्र सेतुकृत् । तस्मात्परकृतान्सेतून्कूपांश्च परिवर्जयेत् ॥

“उद्धृत्य वापि त्रीन्पिंडान्कूर्यादापत्सु नो सदा । निरुद्धास्तु तु त्रीन्पिंडान् कूपास्तु त्रीन्घटांस्तथा ॥

“अनुद्धृत्य तु यत्स्नानं परकीयजलाशये । वृथा भवति तत्स्नानं कर्तुः पापेन लिप्यते ॥

“कूपतोयैरपि स्नायात्सर्वालाभे समुद्धृतैः । स्नानं तु न घटैः कार्यं नासाच्छिद्रविवर्जितैः” ॥ इति ।

१५ कूपात्त्रीन्घटानुद्धृत्य मृन्मयपात्रावर्जितैर्जलैः स्नायादित्यर्थः । तथाऽखंडादर्श—

“शूर्पवायुर्नखाग्रांस्तुस्नानवस्त्रं घटोदकम् । मार्जनीरेणुकेशांस्तु हंति पुण्यं पुरातनम्” ॥ इति ।

उत्पृष्टेषु सर्वार्थत्वादनुद्धरणेऽपि न दोषः । यदाह व्यासः—

“अनुत्पृष्टे तु न स्नायात्तथैवासंस्कृतेष्वपि । आत्मीयेष्वपि न स्नायात्तथैवाल्पजलेषु तु” ॥

सर्वसत्त्वोद्देशेनाकृतमनुत्पृष्टम् असंस्कृततमप्रतिष्ठितम् । अत्र विज्ञानेश्वरोऽपि (पृ. ४४ पं. २९-२४)

२० “सर्वसत्त्वोद्देशेनात्यक्तेषु तटाकादिषु पंच पिंडाननुद्धृत्य स्नायात् । आत्मीयोत्पृष्टाभ्यनुज्ञातेषु
पिंडोद्धरणमंतरेणापि स्नानमभ्यनुज्ञातम्” ॥ इति । अत्र स्वशक्त्यनुसारेण पिंडसंख्याव्यवस्था
द्रष्टव्या । वृद्धमनुः—

“अन्यायोपात्तवित्तस्य पतितस्य च वार्षुषेः । न स्नायादुदपानेषु स्नात्वा कृच्छ्रं समाचरेत्” ॥

शौनकः—

२५ “अंत्यजैः क्षानिताः कूपास्तटाका वाप्य एव वा । तेषु स्नात्वा च पीत्वा च प्राजापत्येन शुच्यति ॥

“अक्रमात् ब्राह्मणः शुष्येद्रह्मकूचोपवासतः” ॥ इति । यत्तु शातातपवचनम्—

“अंत्यैरपि कृते कूपे सेतौ वाप्यादिके तथा । तत्र स्नात्वा च पीत्वा च प्रायश्चित्तं न विद्यते” ॥ इति ।

तदत्यंतापह्निपयम् । चंद्रिकायाम्—(पृ. १२९ पं. १२)

“नद्यां तु विद्यमानायां न स्नायादन्यवारिषु । न स्नायादल्पतोयेषु विद्यमाने बहूदके” ॥

३० शौनकोऽपि—

“प्रभूने विद्यमाने च उदके तु मनोहरे । नाल्पोदके द्विजः स्नायान्नदीं चोत्सृज्य कृत्रिमे” ॥

यन्वापस्तंवेनोक्तम्—(१।१।३२।७) “सशिरावज्जनमप्सु वर्जयेत्” इति तत् तटाकादि-

स्यावगच्छयं अन्यजलविषयं समुद्रविषयम् । तथा च चंद्रिकायाम्—(पृ. १२९ पं. ३०)

“नदरुद्रीषु च स्नायात् प्रविश्यांतःस्थितौ द्विजः । तटाकादिषु तोयेषु प्रत्यर्कः स्नानमाचरेत्” ॥ इति ।

३५ शंखोऽपि—“नाल्पोदके निमज्जेन्न समुद्रोदकमवगाहेत्” इति ।

स्मृत्यन्तरे—

“गृहस्थस्तु स्रवंतीषु निमज्ज्य स्नानमाचरेत् । अन्यत्रासिच्य हस्ताभ्यामितरेषां तु मज्जनम् ॥

“नाल्पांभसि सिरो मज्जन्नावगाहेन्महोदधौ । क्रियास्नाने शिरो मज्जेदन्यत्रापि सरित्सु च” ॥ इति ।

अन्यत्र स्थावरोदके । समुद्रस्नानं तु पर्वकाले विहितं भारते—

“अश्वत्थसागरौ सेव्यौ न स्पृष्टव्यौ कदाचन । अश्वत्थं मंदवारे तु सागरं पर्वणि स्पृशेत् ॥ ५

“अन्यदा तु कुरुश्रेष्ठ देवयोनिरपांपतिः । कुशाग्रेणापि कौंतेय न स्पृष्टव्यो महोदधिः ॥

“आजन्मशतसाहस्रे यत्पापं कुरुते क्वचित् । मुच्यते सर्वपापेभ्यः स्नात्वैव लवणांभसि ॥

“गर्भिणी गृहिणी यस्य दूरयात्रां स वर्जयेत् । वपनं सागरस्नानं शववाहं च वर्जयेत्” ॥ इति ।

भरद्वाजः—

“क्षौरं च सागरस्नानं न कुर्याद्गर्भिणीपतिः । कृतवान्यदि चेत्तस्याः प्रजा न भवति ध्रुवम् ॥ १०

“सौरारवारयोरब्धौ पर्वणोरुभयोरपि । संतानकामी न स्नायात्कुर्यात्तु ग्रहणे तयोः ” ॥

एतच्छुद्धपर्वविषयम् । विद्धायां तु स एवाह—

“विद्धे पर्वणि न स्नायाच्चतुर्दश्यां महोदधौ । सा चेद्भौमयुता स्नायात्तामतिक्रम्य पर्वणि ॥

“चतुर्दश्यंशकं त्यक्त्वा तत्र पर्वीश एव तु । सिंधुस्नानं प्रकुर्वीत गंगास्नानफलं भवेत् ” ॥

संग्रहेऽपि—“सभूमिजा कृष्णचर्तुदशी या तस्यां तु पर्वीशक एव युक्तः । १५

“स्नात्वा समुद्रे तु तदेव पापं निहन्ति जन्मांतरसंचितं यत् ” ॥ भरद्वाजः—

“कृष्णांगारचतुर्दश्यां योऽब्धौ स्नानं समाचरेत् । तस्य जन्मसहस्रेषु सर्वपापं प्रणश्यति” ॥ इति ।

एतत्पर्वसंबन्धरहितचतुर्दशीविषयम् । पुराणे—

“सेतौ कवेरकन्याया गंगायाश्चापि संगमे । न वारदोषमीक्षेत पर्वसु स्नानमाचरेत् ” ॥ इति ।

जैमिनिः—

२०

“सेतुर्नापेक्षते कालं नित्यं स्नानं प्रशस्यते । निषेधः कालभेदस्य सेतोरन्यत्र कर्हिचित्” ॥ इति ।

पराशरः—(१२।४१)

“अग्निचित्कपिला सत्री राजा भिक्षुर्महोदधिः । दृष्टमात्राः पुनृत्येते तस्मात्पश्येत्तु नित्यशः ” ॥

अत्रोदकांतरेणैवाचमनं कार्यम् । न समुद्रोदकेन ‘अक्षाराभिराचामेत्’ इति स्मरणात् ।

“उक्तं च तैत्तिरीयश्रुतौ (*तै. ब्रा. २।२।९।३)—‘तस्मात्समुद्रस्य न पिबन्ति’ । तर्पणादिकं २५

तेनैव कार्यं निषेधाभावात्” इति चंद्रिकायाम् (पृ. १३२ पं. २९) । योगयाज्ञवल्क्यः—

“नद्यामस्तामि ते स्नानं वर्जयेत्तु सदा बुधः । नद्यां स्नात्वा नदीमन्यां न प्रशंसेत धर्मवित् ” ॥

शौनकोऽपि—

“न नदीषु नदीं ब्रूयात् पर्वतेषु न पर्वतम् । नान्यत्प्रशंसेत्तत्रस्थः तीर्थेष्वायतनेषु च” ॥

देवलः—

३०

“एका नदीं समासाद्य नान्यां स्नाने नदीं स्मरेत् । यदि स्मरेत्तदा सम्यक्तस्य पुण्यं विनश्यति” ॥

व्यासः—

“कुरुक्षेत्रं गयां गंगां प्रभासं नैमिषं तथा । तीर्थान्येतानि सर्वाणि स्नानकाले स्मरेद्बुधः ” ॥

संग्रहेऽपि—

“गयां गंगां कुरुक्षेत्रं प्रयागोदधिसंगमान् । तीर्थान्येतानि संस्मृत्य ततो मज्जेज्जलाशये” ॥

वज्र्योदकमाह व्यासः—

“नद्या यच्च परिभ्रष्टं नद्या यच्च विनिःसृतम् । गतप्रत्यागतं यच्च ततोयं परिवर्जयेत्” ॥ इति ।

५ परिभ्रष्टं विच्छिन्नम् । विनिःसृतं अविच्छिन्नम् ।

गर्गः—“प्रत्यावृत्तेऽभसि स्नानं वर्जनीयं द्विजातिभिः” ॥ बोधायनोऽपि—

“अयोवर्णोदके स्नानं वर्ज्यं नद्यां द्विजातिभिः । नद्यां रजकतीर्थं तु दशहस्तेन वर्जयेत् ॥

“स्नानं रजकतीर्थे तु भोजनं गणिकाग्रहे । पश्चिमोत्तरशायित्वं शक्रादपि हरेच्छ्रियम्” ॥

शांडिल्यः—

१० “ग्राहादिसेविते रुक्षे नीचावाससमीपगे । इमं शानपार्श्वगेऽज्ञाते न स्नायान्नोपरोधिते ॥

“न स्नायात्सह शूद्रेण न स्त्रीभिर्न च नास्तिकैः । न पाण्डैश्च बालैश्च न रोग्यशुचिभिर्नरैः” ॥

योगयाज्ञवल्क्यः—

“अग्राह्यास्त्वधमा आपो नद्याः प्रथमवेगिकाः । विक्षोभिता वा केनापि याश्च तीर्थं विना कृताः” ॥

कात्यायनः—

१५ “याः शोषमुपगच्छन्ति ग्रीष्मे कुसरितो भुवि । तासु प्रावृषि न स्नायादपूर्णे दशवासरे ॥

“दशरात्रेण शुद्ध्यन्ति भूमिष्ठं च नवोदकम्” ॥ इति । उष्णोदकं निषेधति शंखः—

“स्नातस्य बन्धितस्तेन तथैव परवारिणा । शरीरशुद्धिर्विशेषा न तु स्नानफलं भवेत्” ॥

याज्ञवल्क्यः—

“वृथा तूष्णोदकस्नानं वृथा जप्यमवैदिकम् । वृथा त्वश्रोत्रिये दानं वृथा भुक्तमसाक्षिकम्” ॥ इति ।

२० यत्तूष्णोदकविधानं

“आप एव सदा पूतास्तासां बन्धिर्विशोधकः । तस्मात्सर्वेषु कालेषु उष्णांभः पावनं स्मृतम्” ॥ इति ।

यदपि च पद्मत्रिंशन्मते—

“आपः स्वभावतो मेध्याः किंपुनर्वन्धिसंयुताः । तेन संतः प्रशंसन्ति स्नानमुष्णेन वारिणा” ॥ इति ।

यदपि स्मृत्यन्तरे—

२५ “आदित्यकिरणैः पूतं पुनःपूतं तु बन्धिना । स्नानं संतः प्रशंसन्ति तस्मादुष्णेन वारिणा” ॥ इति ।

तदातुरस्नानविषयम् । तथा च यमः—

“आदित्यस्य करैः पूतं पुनःपूतं च बन्धिना । आमनातमातुरस्नाने प्रशस्तं तूद्धतोदकम्” ॥

यदा तु नद्यादिकं न लभ्यते तदा अनातुरस्याप्युष्णोदकस्नानमनिषिद्धमित्याह यमः—

“नित्यं नैमित्तिकं चैव क्रियागं मलकर्षणम् । तीर्थाभावे तु कर्तव्यमुष्णोदकपरोदकैः” ॥ इति ।

३० यत्तु वृद्धमनुक्तम्—

“मृते जन्मनि संक्रांतौ श्राद्धे जन्मदिने तथा । अस्पृश्यस्पर्शने चैव न स्नायादुष्णवारिणा ॥

“संक्रान्त्यां भानुवारे च सप्तम्यां राहुदर्शने । आरोग्यपुत्रवितार्थी न स्नायादुष्णवारिणा ॥

“पौर्णमास्यां तथा दर्शयः स्नायादुष्णवारिणा । स गोहत्याकृतं पापं प्रामोत्येव न संशयः” ॥ इति ।

एतेन उक्तेषु मरणादिषु तीर्थाभावेऽपि नोष्णोदकैः स्नायात् । अपि तु परकीयैरुद्धृतैः कूपोदकैर्वा स्नायादित्युक्तमविरोध इति चंद्रिकामाधवीययोः (पृ. १२९ प. २) ।

उष्णोदकस्नाने विशेषमाह व्यासः—

“शीतास्वप्सु निषिच्योष्णा मंत्रसंभारसंभृताः । गेहेऽपि शस्यते स्नानं तद्धीनमफलं बहिः” ॥ इति । संभारा मृदादयः । बहिः तटाकादौ । विवस्वान्—

५

“मंत्रसंभारसंयुक्तमुपस्पर्शनमुच्यते । स्नानेऽवगाहने चैव प्लवनं विधिवर्जितम्” ॥ इति । स्मृत्यर्थसारे—

“सर्वदा नित्यकामार्थं स्नायादेव कथंचन । विना मृत्तिकया वाऽपि सकृदुष्णेन वांऽबुना ” ॥ गौतमः—

“शिवलिंगसमीपे तु यत्तोयं पुरतः स्थितम् । शिवगंगेति विज्ञेया तत्र स्नात्वा शिवं व्रजेत् ॥ १०

“जलं शुद्धमशुद्धं वा विष्णुवास्तुसमीपतः । विष्णुगंगासमं तोयं महापातकनाशनम्” ॥ इति । इति स्नानार्हजलानि । मृदाद्याहरणम् । दक्षः—

“चतुर्थे तु तथा भागे स्नानार्थं मृदमाहरेत् । तिलपुष्पकुशादीनि स्नानं चाकृत्रिमे जले ” ॥

याज्ञवल्क्यः—

“मृत्तिका गोमयं दर्भान् पुष्पाणि सुरभीणि च । आहरेत्स्नानकाले तु स्नानार्थं प्रयतः शुचिः” ॥ १५

शातातपः—

“शुचिदेशात्तु संग्राह्या शर्कराश्मादिवर्जिता । रक्ता गौरा तथा श्वेता मृत्तिका त्रिविधा स्मृता ॥

“वल्मीकाखूत्करालोपात् जलाच्च पथि वृक्षयोः । कृतशौचावशिष्टाच्च न ग्राह्याः सप्तमृत्तिकाः ॥

“मृत्तिकां गोमयं चापि न निशायां समाहरेत् । न गोमूत्रं प्रदोषे तु गृहीयाद्बुद्धिमान्नरः ॥

“न प्रातर्मृत्तिकास्नानं न च भौमार्कवारयोः । मध्यंदिने तु कर्तव्यं नातिमध्यंदिने रवौ ” ॥ २०

व्यासः—

“ततो मध्यान्हसमये स्नानार्थं मृदमाहरेत् । पुष्पाक्षतान्तिलकुशान्गोमयं गंधमेव च ” ॥ इति ।

गृह्यपरिशिष्टे (१।१०)—“शुचौ देशे खनित्रेन भुवं गायत्र्यस्त्रेण स्वात्त्वोपरि मृदं चतुरंगुल-मुदस्याधस्तान्मृदं तथा स्वात्वा गायत्र्यादाय मृदमुपात्तां शुचौ देशे निधाय गायत्र्या प्रोक्षेत्” ॥ इति ।

योगयाज्ञवल्क्यः—

२५

“गत्वोदकांतं विधिवत्स्थापयेत्तत्पृथक्क्षितौ । त्रिधा कुर्यान्मृदं तां तु गोमयं च विचक्षणः ॥

“अधमोत्तममध्यानामंगानां मृदसंकरः ” ॥ शौनकः—

“प्रयतो मृदमादाय दूर्वापामार्गगोमयम् । गत्वोदकांतं विधिवत्स्थापयेत्तत्पृथक् क्षितौ” ॥

माधवीये—

“दशाहीनेन वस्त्रेण स्नायात्कौपीनकाटते । नान्यदीयेन नार्द्धेण न सूच्या ग्रथितेन च ॥

३०

“जलं देवगृहं चैव शयनं च द्विजालयम् । निर्णिक्तपादः प्रविशेन्नानिर्णिक्तः कथंचन” ॥ इति ।

वसिष्ठः—

“मृदैकया शिरः क्षाल्य द्वाभ्यां नाभेस्तथोपरि । अधश्चतसृभिः क्षाल्य षड्भिः पादौ तथैव च ॥

“प्रक्षाल्य सर्वकायं तु द्विराचामेद्यथाविधि ” ॥ इति । —

व्यासः—“षड्भिः पादौ चतुर्भिश्च जंघे नाभिं कटिं त्रिभिः मृदे कया शिरः क्षाल्य ततः कुर्यात्प्रमार्जनम् ।
“मृत्तिका च समादिष्टा त्वार्द्रामलकमात्रतः । गोमयस्य प्रमाणं तत्तेनांगं लेपयेत्ततः ॥

“प्रक्षाल्याचम्य विधिवत्ततः स्नायात्समाहितः” ॥ इति ।

दक्षः—“मृद्गोमयादिभिर्देहो मलदिग्धो विशुध्यति । स्नानकाले तथा विप्रः स्निग्धं लेपं विवर्जयेत् ॥

५ “प्रक्षाल्य यज्ञसूत्रं तु मृद्भिरद्भिः शनैः शनैः । आपादमस्तकं देहं तथैव क्षालयेद्बुधः” ॥ इति ।

कायक्षालनादनंतरकृत्यमाह शौनकः—“गायत्र्या वाऽऽदायाभ्युक्ष्य ‘अतो देवा’ इति ।

मृदमभिर्मंत्रयेत् । ततः ‘यत इन्द्र’ ‘स्वस्तिदा विशस्पतिः’ ‘विरक्षो’ ‘वि मृध’ ‘इदं सुभेजनि तरि’
इति प्रतिमंत्रं प्रतिदिशं क्षिपेत् पूर्वोदिक्रमेण । “ततः संमार्जनं कुर्यान्मृदा पूर्वं तु मंत्रवित्” ।

‘अश्वक्रांत’ इत्याद्या मृद्वहणमंत्राः याजुर्वेदप्रसिद्धाः ।

१० “पुनश्च गोमयेनैवम् ‘अग्रमग्रम्’ इति ब्रुवन् ।

“अग्रमग्रं चरंतीनां औषधीनां वने वने । तासामृषभपत्नीनां सुरभीणां शरीरतः ॥

“उत्पन्नं लोकसौख्यार्थं पवित्रं कायशोधनम् । त्वं मे शोकांश्च रोगांश्च पापानि नुद गोमय” ॥

इति गोमयमंत्रः । ‘कांडात्कांडात्प्रोहंति’ इति द्वाभ्यां अंगमंगमुपस्पृशेत् । द्व्वयेति शेषः ।

“अपपापमपकिल्बिषमपकृत्यामपोरपः । अपामार्गं त्वमस्माकं मम आ दुष्टं भयं नुद स्वाहा”

१५ इत्यंगमंगमपामार्गेणोपस्पृशेत् । अथ ‘हिरण्यशृंगं’ ‘आपोदेवी’ इति अप उपस्थाय ‘सुमित्रा न
आप’ इत्यप उपस्पृश्य ‘दुर्मित्रा’ इति वहिः क्षिपेत् । तत ‘इन्द्रशुद्ध’ इत्यृचा अपः प्रविश्य मनसा
जपेत् । तत्र गायेत सामानि अपि वा व्याहृतीर्जपेत्” ॥ इति ।

वसिष्ठः—‘येते शतम्’ इति द्वाभ्यां तीर्थान्यावाहयेद्बुधः ।

“कुरुक्षेत्रं गयां गंगां प्रभासं नैमिषं तथा । देवांश्च वरदान् सर्वान् सर्वान्पुषदस्तथा” ॥ इति ।

२० शंखः—

“प्रपद्ये वरुणं देवं अंभसां पतिमीश्वरम् । याचितं देहि मे तीर्थं सर्वपापापनुत्तये ॥

“तीर्थमावाहयिष्यामि सर्वाधविनिषूदनम् । सांनिध्यमस्मिंश्चित्तोये क्रियतां मदनुग्रहात् ॥

“रुद्रान्प्रपद्ये वरदान् सर्वान्पुषदस्तथा । आपः पुण्याः पवित्राश्च प्रपद्ये वरुणं तथा ॥

“शमयन्त्वाशु मे पापं रक्षंतु च सदैव माम्” ॥ इति । वसिष्ठः—

२५ “आपोहिष्ठेदमापश्च द्रुपदादिव इत्यपि । तथा हिरण्यवर्णाभिः पावमानीभिरंततः ॥

“ततोऽर्कमीक्ष्य सौंकारं निमज्ज्यांतर्जले बुधः । प्राणायामांश्च कुर्वीत गायत्रीं चाद्यमर्पणम् ॥

“प्रदद्यान्मूर्ध्नि च तथा महाव्याहृतिभिर्जले” ॥ इति ।

संग्रहे—संकल्प्य ‘सहस्रपरमा देवि’ इति दृष्ट्वा शिरसि निधाय ‘अश्वक्रांते रथ-
क्रांते’ इति मृदं गृहीत्वा ‘उन्दृतासि वराहेण’ इति हस्तस्य मृदमभिर्मंत्र्य ‘मृत्तिके हन मे

३० पापम्’ इत्यादिना ‘त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम्’ इत्यंतेन मृत्तिकामंगेष्वालिप्य ‘गंधद्वाराम्’ इति
गोमयेनांगमालिप्य प्रक्षाल्य सलिलमनुप्रविश्य तद्विष्टातारं वरुणं तीर्थं याचेत् । ‘हिरण्यशृंगम्’
इति द्वाभ्यां ततः ‘सुमित्रा न आप ओषधयः संतु’ इत्युदक्रांजलिं शिरसि निधाय ‘दुर्मित्रास्तस्मै’
इत्युदक्रांजलिं नैर्ऋत्यां दिशि निरस्य जलस्थ एव ‘नमोऽग्र्य । इति तीर्थं नमस्कृत्यां पस्थाय

‘यदपां क्रूरम्’ इत्यमेध्यांशं दक्षिणतो निरस्य ‘अत्याशनादतीपानात्’ इति द्वाभ्यां पाणिना प्रदक्षिणमुदकमावृत्य ‘इमं मे गंगे’ इति गंगाया दश नदीः स्वस्नानजले आवाहयेत् । अथ जले पिहितश्रोत्रद्वङ्नासिकामुखो निमज्ज्य ‘ऋतं च सत्यं चेति’ चाधर्मघणसूक्तं च प्राणायामेन त्रिर्जपेत् । अस्य सूक्तस्य माधुछंदसा अधमर्षण ऋषिः । अनुष्टप् छंदः । भाववृत्तः परमात्मा देवता । भावस्य सत्तामात्रस्य ब्राह्मणो वृत्तं जगत्सृष्टिः सूक्तस्य प्रतिपादितम् । तत उत्तराभिस्तिष्ठभिः ‘यत्पृथिव्याम्’ इत्यादिभिः स्नात्वा ‘आर्द्रं ज्वलति’ इत्याचम्य ‘अकार्य-कार्यवकीर्णी’ इति पुनः स्नात्वा रहस्यकृतपापक्षयार्थं ‘रजोभूमिः’ इति पुनः स्नात्वा “आक्रान्तसमुद्र” इति जपेत् ।—“एष स्नानविधिः प्रोक्तः सर्वाधौघनिषूदनः” इति ॥ व्यासः—

“अंगुष्ठांगुलिभिश्चैव श्रोत्रादिङ्नासिकामुखम् । पीड्य मग्नः प्रतिस्नोतास्त्रिर्जपेदधमर्षणम् ॥

“द्रुपदा नाम गायत्री वेदे वाजसनेयिके । सकृदंतर्जले जप्त्वा ब्रह्महत्यां व्यपोहति” ॥ १०

योगयाज्ञवल्क्योऽपि—

“हत्वा लोकानपीमांसुस्त्रिः पठेदधमर्षणम् । अथाश्वमेधावभृथः एवं तं मनुरब्रवीत् ॥

“द्रुपदा नाम गायत्री यजुर्वेदप्रतिष्ठिता । अंतर्जले त्रिरावृत्य मुच्यते ब्रह्महत्याया ॥

“सव्याहृतिकां गायत्रीं प्रणवं वा जले जपेत् । ध्यायेन्नारायणं देवं सर्वपापप्रशान्तये ॥

“अपः प्राणौ समादाय त्रिः पठेद् द्रुपदामृचम् । तत्तोयं मूर्ध्नि विन्यस्य सर्वपापैः प्रमुच्यते” ॥ १५

गौतमः—“गायत्रीं पच्छोर्धर्चशः समस्तामपि त्रिरंतर्जले जपन् सर्वस्मात्पापात्प्रमुच्यते अपि वा प्रणवं त्रिरन्तर्जले जपन् सर्वस्मात्पापात्प्रमुच्यते” इति ।

सुमन्तुरपि—‘हंसःशुचिषत्’ इत्येतामृचं त्रिरन्तर्जले जपन् सर्वस्मात् पापात्प्रमुच्यते ।

अपि वा व्याहृतीः त्रिरन्तर्जले जपन् सर्वस्मात्पापात् प्रमुच्यते” इति ॥ **यमः—**

“अंतर्जले जपेन्मग्नः त्रिः कुत्वस्त्वधमर्षणम् । द्रुपद्रां वा वर्तयेत्त्रिः आयंगौरिति वा ऋचम् ॥ २०

“सव्याहृतिकां सप्रणवां गायत्रीं त्रिर्जपेत्तथा । आवर्त्तयेद्वा प्रणवं स्मरेद्वा विष्णुमव्ययम् ॥

“ध्यायेन्नारायणं देवं स्नानादिषु च कर्मसु । प्रायश्चित्तं हि सर्वस्य दुष्कृतस्येति वै श्रुतिः” ॥

याज्ञवल्क्यः—

“जलमध्ये स्थितो विप्रः शुद्धभावे हरिं स्मरेत् । ‘तद्विष्णो’ इति मंत्रेण मज्जेदप्सु पुनः पुनः ॥

“गायत्री वैष्णवी ह्येषा विष्णोः संस्मरणाय वै” ॥ **चंद्रिकायाम्—**

२५

“विष्णोरायतनं ह्यापः स ह्यपांपतिरुच्यते । तस्यैव मूनवस्त्वेताः तस्मात्तं ह्यप्सु संस्मरेत् ॥

“आपो हिष्ठेति तिसृभिः यथावदनुपूर्वशः । हिरण्यवर्णा इति च ऋग्भिश्च तिसृभिस्तथा ॥

“शं नो देवीरिति तथा शं न आपस्तथैव च । इदमापः प्रवहतेत्येवं च समुदीरयेत् ॥

“एवं संमार्जनं कृत्वा छंद आर्षं च दैवतम् । अधमर्षणसूक्तस्य संस्मरेत् प्रयतः सदा ॥

“ततोऽभसि निमग्नस्तु त्रिः पठेदधमर्षणम् । प्रदद्यान्मूर्धनि तथा महाव्याहृतिभिर्जलम्” ॥ इति । ३०

वासिष्ठः—

“आपोहिष्ठेदमापश्च द्रुपदादिव इत्यापि । तथा हिरण्यवर्णाभिः पावमानीभिरंततः ॥

“ततोऽर्कमीक्ष्य सौंकारं निमज्यांतर्जले बुधः । प्राणायामांश्च कुर्वीत गायत्रीं चाधमर्षणम् ॥

“योऽनेन विधिना स्नाति यत्रकुत्रांभसि द्विजः । स तीर्थफलमामोति तीर्थे तु द्विगुणं फलम्” ॥ इति ।

विष्णुरपि (६४।१९) — “ततोऽप्सु मग्नस्त्रिघमर्षणं तद्विष्णोः परमं पदम्” इति सावित्रीं वायुं ‘जत्ते मन’ इत्यनुवाकं वा पुरुषसूक्तं वा स्नात्वाऽऽर्द्रवासा देवर्षिपितृतर्पणं अंभस्थ एव कुर्यात्” ॥ इति।
व्यासः—

- “मृद्धोमयाभ्यामालिप्य तल्लिंगादेव मंत्रतः । प्रक्षाल्याचम्य विधिवत्ततः स्नायात्समाहितः ॥
५ “प्रोक्ष्य सोंकारमादित्यं त्रिर्निमज्जेज्जलाशये । आचांतः पुनराचामेन्मंत्रेणानेन मंत्रवित् ॥
“अंतश्चरति भूतेषु गुहायां विश्वतो मुखः । त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारः आपोज्योतिरसोऽमृतम् ॥
“ततः संमार्जनं कुर्यादापोहिष्ठामयो भुवः । इदमापः प्रवहत व्याहृतीभिस्तथैव च ॥
“ततोऽभिर्भञ्ज्य तत्तीर्थं आपोहिष्ठादिमंत्रकैः । अंतर्जलगतो मग्नो जपेत्त्रिरर्घषणम् ॥
“द्रुपदां वा त्रिरभ्यस्य व्याहृतिं प्रणवादिकाम् । सावित्रीं वा जपेद्विद्वान् तद्विष्णोः परमं पदम् ॥
१० “आवर्त्तयेद्वा प्रणवं देवं वा संस्मरेद्धरिम् । द्रुपदा हि परो मंत्रो यजुर्वेदे प्रतिष्ठितः ॥
“अंतर्जले त्रिरावृत्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
“यथाऽश्वमेधः ऋतुराट् सर्वपापप्रणोदनः । तथाघमर्षणं सूक्तं सर्वपापापनोदनम् ।
“द्रुपदा नाम गायत्री वेदे वाजसनेयके । सकृदन्तर्जले जप्त्वा ब्रह्महत्यां व्यपोहति ” ॥

- बौधायनः (९।५।१०) — “अथ हस्तौ प्रक्षाल्य कमण्डलुं मृत्पिण्डं च संगृह्य तीर्थं
१५ गत्वा त्रिः पादौ प्रक्षाल्य स्पर्शयते त्रिरात्मानमथ हैके ब्रुवते इमं शानमपो देवगृहं गोष्ठे यत्र चै
ब्राह्मणा अप्रक्षाल्य तु पादौ तान्न प्रवेष्टव्यमित्यथापोऽभिप्रपद्यते ‘हिरण्यशृंगं वरुणं प्रपद्य’ इति
ब्राह्म्यामथाञ्जलिनाप उपहरति ‘सुमित्रा न आप ओषधयः संतु’ इति तां दिशं निरीक्षते यस्यां
दिशि द्वेष्ट्यो भवति ‘दुर्मित्रास्तस्मै भूयासुर्योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्म’ इति अथ उप-
स्पृश्य ‘नमोऽग्नयेऽप्सुमत’ इत्युपस्थाय त्रिः प्रदक्षिणमुदकमावर्त्तयति ‘यदपां क्रूरम्’ इति
२० ‘इमं मे गंगे’ इति तीर्थमावाह्याद्भिर्मार्जयति ‘आपो हिष्ठामयो भुव’ इति तिसृभिः
‘हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका’ इति चतसृभिः ‘पवमानः सुवर्जन’ इत्येतेनानुवाकेन मार्ज-
यित्वाऽन्तर्जलगतोऽघमर्षणेन त्रीन्प्राणायामान् धारयेत् । ‘ऋतं च सत्यं च’ इत्येतद्घमर्षणं
त्रिरंतर्जले पठेत्सर्वस्मात्पापात्प्रमुच्यते । ‘आयंगौः पृश्निरकमीत्’ इत्येतामृचं त्रिरंतर्जले पठेत्सर्व-
स्मात्पापात्प्रमुच्यते । ‘द्रुपदादिवेन्मुमुचान’ इत्येतामृचं त्रिरन्तर्जले पठन् सर्वस्मात्पापात्प्र-
२५ मुच्यते । ‘हंसः शुचिषत्’ इत्येतामृचमुच्यते । ‘अपि वा सावित्रीं गायत्रीं पच्छोर्ध्वं शः
समस्ताम् इति त्रिरंत...च्येत । अपि वा व्याहृतीः समस्ता व्यस्ताश्च त्रिरंत...च्येत । अपि वा
प्रणवमेव त्रिरंतर्जले पठन्सर्वस्मात्पापात्प्रमुच्यते ” इति ।

- मृत्तिकास्नानविधिरुक्तो बौधायनेन (बौ. गृह्यशेषसू. ५।४) — “अथातो मृत्तिकास्नान-
विधिं व्याख्यास्यामः । ब्रह्मचारिगृहस्थवानप्रस्थपरिव्राजकानाम् ‘अश्वक्रांते’ सहस्रपरमा देवी’
३० इति भूमिं दूर्वेत्यभिर्भञ्ज्य ‘उद्धृतासि’ इति नदीतटाट्टोष्ठमादाय ‘कांडात्कांडात्प्ररोहंती’ इति द्वाभ्यां
‘दूर्वामादाय’ मृत्तिके हन मे पापम्’ इति दूर्वा लोष्ठे प्रतिष्ठाप्य ‘यत् इन्द्र भयामहे’ ‘स्वस्तिद्रा
विशस्पतिः’ ‘स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवास्त्रातारमापांतमन्युः परं मृत्यो अनुपरे हि’ इति पट्टिभः
प्रतिमंत्रं प्रतिदिशं लोष्ठमुत्सृज्य ‘गंधद्वाराम्’ इति लोष्ठमादाय ‘उद्धृत्यं जातवेदसम्’ इति लोष्ठमा-
दित्यं दर्शयित्वा ‘श्रीमं भजत्वलक्ष्मीं नश्यतु’ इति शिरः प्रदक्षिणीकृत्य ‘नहस्र्यार्पम्’ इति
शिर आलिप्य ‘विष्णुमुक्ता’ इति मुखम् ‘ओजो ग्रीवाभिः’ इति ग्रीवां ‘महां इन्द्रो वज्रवाहः’ इति

बाहू 'सोमानं स्वरणम्' इति कक्षौ 'शरीरं यज्ञशमलम्' इति शरीरं 'नाभिर्मे चित्तं विज्ञानम्' इति नाभिं 'आपांतमन्युः' इति कटिं 'विष्णोरराट्मासि' इति पृष्ठं 'वरुणस्य स्कंभनम्' इति मेढ्रम् 'आनंदनंदौ' इत्यण्डौ 'ऊरुवोरौज' इत्यूरू 'ऊरू अरत्नी' इति जानुनी 'जंघाभ्याम्' इति जंघयोः 'चरणं पवित्रम्' इति चरणयोः 'इदं विष्णुः' 'त्रीणि पदा' इति द्वाभ्यां पादौ 'सजोषा इंद्र' इति शेषं दूर्वासहितं लोष्ठं शिरसि निधाय 'हिरण्यशृंगम्' इति तीर्थं गत्वा ५
 'सुमित्रा न आप ओषधयः' इत्यात्मानमभिषिंचेत् । उदकांजलिमादाय लोष्ठदेशे निनीय 'दुर्मित्रास्तस्मै भूयासुः' इति प्रथमं 'योऽस्मान् द्वेष्टि' इति द्वितीयं 'यं च वयं द्विष्म' इति तृतीयम् । 'आपो हिष्ठामयो भुवः' इति तिसृभिः 'हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका' इति चतसृभिः 'पवमानःसुवर्जन' इत्यनुवाकेन मार्जयित्वा 'नमोग्रयेऽसुमत' इति नमस्कृत्य 'यदपां क्रूरम्' अत्यद्विस्त्रिरावृत्य 'इमं मे गंग' इत्यपोऽभिमंज्य 'ऋतं च सत्यं च' इत्यध- १०
 मर्षणसूक्तेनापोऽवगाहेत् । देवानृषीन् पितृन्स्तर्पयित्वा 'शुची वो हव्याम्' इति वस्त्रमद्भिः प्रोक्ष्य 'देवस्य त्वा' इति वस्त्रमादाय 'अवधूत-रक्ष' इत्यवधूय 'उदुत्यं जातवेदसम्' इत्यादित्यं दर्शयित्वा 'आवहंती' इति वासः परिधाय द्विराचम्योत्क्रामतः ।

“भूतप्रेतपिशाचा ये ये भूता ये निशाचराः । सर्वेषामविरोधेन ब्रह्मकर्म समारभे” ॥ इति दर्भासनं प्रतिष्ठाप्य त्रीन् प्राणायामान् धारयित्वाऽष्टोत्तरशतं गायत्रीं जपेत् । ब्राह्मणः पूतो भवति । १५
 ब्रह्महत्यागोवधगुरुतल्पगमनस्वर्णस्तेयसुरापानादिसर्वपापप्रणाशनमिति विज्ञायते । ध्यात्वा नारा-
 यणं देवं प्रपद्यत इत्याह भगवान्बोधायनः” । अनुकल्पमाह याज्ञवल्क्यः—

“य एष विस्तरः प्रोक्तः स्नानस्य विधिरुत्तमः । असामर्थ्यान्न कुर्याद्यस्तस्यायं त्रिधिरुच्यते ॥

“स्नानमंतर्जले चैव मार्जनाचमने तथा । जलाभिमंत्रणं चैव तीर्थस्य परिकल्पनम् ॥

“अघमर्षणसूक्तेन त्रिरावृत्तेन नित्यशः । स्नानाचरणमित्येतदुपदिष्टं महात्मभिः” ॥ इति । २०

तीर्थपरिकल्पनमाह वासिष्ठः—

“चतुर्हस्तसमायुक्तं चतुरश्रं समं ततः । प्रकल्प्यावाहयेद्वृंगां मंत्रेणानेन मंत्रवित् ॥

“विष्णोः पादप्रसूताऽसि वैष्णवी विष्णुदेवता । त्राहि नस्त्वेनसस्तस्मादा जन्ममरणांतिकात् ॥

“तिस्रः कोट्यर्धकोटी च तीर्थानां वायुरब्रवीत् । दिवि भुव्यंतरीक्षे च तानि मे संतु जान्हवी” ॥ इति ।

स्मृत्यंतरे—

२५

“चतुरश्रं तीर्थपीठं पाणिनोद्विष्य वारिषु । आवाहयामि त्वां देवीत्यावाह्यात्रैव जान्हवीम् ॥

“इमं मे गंग इत्युक्त्वा पुण्यतीर्थानि च स्मरेत् । स्नानं पुवंगमस्येव कृतं विधिविना कृतम् ॥

“वृथा द्विजन्मनस्तस्माद्विधिना स्नानमाचरेत्” ॥ इति । स्मृत्यर्थसारे—

“नान्योन्यं पृष्ठतो मृज्यान् लिपेत्पृष्ठतो मिथः । स्नात्वा न धावयेदंतात्र मृज्याद्वाससा मुखम् ॥

“अवगाह्य जले नद्यां वस्त्रं यः परिशोधयेत् । क्रुद्धास्तत्र निवर्तते देवताः पितृभिः सह” ॥ ३०

रत्नावल्याम्—

“दर्शे स्नानं न कुर्वीत मातापित्रोस्तु जीवतोः । कुर्वस्तत्र निराचष्टे पित्रोरुन्नतिजीविते ॥

“न रात्रौ मृत्तिकास्नानं नैव भौमार्कवारयोः । संध्ययोर्नैव गोमूत्रं न शुष्यै गोमयं निशि ॥

“दिवांबुगोशकृन्मूत्रैः शुद्धिर्निश्यंबुभस्मभिः । नांबु हन्यान्न निदेन्न तीर्थे तीर्थान्तरं स्मरेत् ॥

“संकल्प्यैव तथा कुर्यात्स्नानदानव्रतादिकम् । अन्यथा पुण्यकर्माणि निष्फलानि भवन्ति वै”॥

भरद्वाजः—

“संकल्परहितं कर्म यच्छ्रुतिस्मृतिचोदितम् । यत्तो यद्यत्फलं तत्स्यात्संकल्प्यातः समाचरेत् ॥

“पादौ करौ च प्रक्षाल्य समुपस्पृश्य वाग्यतः । प्राङ्मुखोदङ्मुखो वाऽपि स्थित्वा दर्भासने शुचिः॥

५ “सदर्भहस्तौ जानूर्ध्वे दक्षिणे दक्षिणोत्तरैः । कृत्वा वारादि संस्मृत्य एतत् कर्म करोमि यत् ॥

“स्वमानसे संस्मरणं तत्संकल्प इतीरितः ।

“स्नानमर्दितनेत्रस्य कर्णरोगातिसारिषु । आध्मानपीनसा जीर्णभुक्तवत्सु च गर्हितम् ।

“अनार्तश्चोत्सृजेद्यस्तु स विप्रः शूद्रसंमितः । प्रायश्चित्ती भवेदेव लोके भवति निन्दितः”॥ इति ।

भृगुः—

१० “नैकवासा न च द्वीपे नांतराले कदाचन । श्रुतिस्मृत्युदितं कर्म न कुर्यादशुचिः क्वचित् ” ॥
तत्र ग्राह्यद्वीपमाह स एव—

“वृषभैकशतं यत्र गवां तिष्ठत्यसंशयम् । न तद्धर्महतद्वीपमिति ब्रह्मविदो विदुः”॥ इति

मनुः—“नित्यं स्नात्वा शुचिः कुर्याद्दिवर्षिपितृतर्पणम्” इति ।

जाबालिः “देवान्ब्रह्मर्षींश्चैव तर्पयेदक्षतोदकैः । तर्पयेत्तु पितृन्भक्त्या सतिलोदकचन्दनैः ” ॥

१५ यमः—“तिलदर्भसमायुक्तं स्वधया यत्प्रदीयते । तत्सर्वममृतं भूत्वा पितृणामुपतिष्ठते ” ॥

इति माध्याह्निकस्नानम् । अथ नैमित्तिकस्नानम् । स्मृत्यर्थसारे—

“उच्छिष्टाद्युपघातेषु अस्पृश्यस्पर्शनेषु च । ग्रहसंक्रमणादौ च स्नानं नैमित्तिकं स्मृतम् ॥

“चंडालादिस्पर्शने तु कार्यं वारुणमेव तु । काम्यं मलापकर्षं च क्रियास्नानं च वारुणम् ।

“इतराणि यथायोग्यदेशकालाद्यपेक्षया” ॥ इति । गार्ग्यः—

२० “कुर्यान्नैमित्तिकं स्नानं शीताद्भिः काम्यमेव च । नित्यं यादृच्छिकं चैव यथारुचि समाचरेत्”॥ इति ।

मनुः (५।८४)—

“दिवाकीर्तिमुदक्यां च सूतिकां पतितं तथा । शवं तत्स्पृष्टिर्न चैव स्पृष्ट्वा स्नानेन शुध्यति”॥ इति ।

दिवाकीर्तिः चंडालः । उदक्या रजस्वला । अंगिराः—

“शवस्पर्शमथोदक्यां सूतिकां पतितं तथा । स्पृष्ट्वा स्नानेन शुद्धिः स्यात्सचैलेन न संशयः ” ॥

२५ गौतमोऽपि—(अ. १४ सू. २७, ३४) “पतितचांडालसूतिकोदक्याश्वस्पृष्टितत्स्पृष्ट्यनुपस्पर्शने

सचैलोदकोस्पर्शनाच्छुध्येत ” इति । अनेन पतितादिस्पृष्टिमारभ्य तृतीयस्यापि सचैलं

स्नानमित्युक्तं भवति । स्मृत्यंतरेऽपि “शवचंडालपतितसूतिकोदक्यास्पृष्टितत्स्पृष्टिस्पर्शे

सचैलस्नानम् ” इति ।

चंद्रिकायाम्—(पृ. ११६ पं. ७)

३० “चंडालसूतिकोदक्यापतितः शव एव च । एतेषामेव संस्पर्शे तत्स्पृष्टिन्याय इष्यते ” ॥ इति ।

एवकारः कटधूमादिस्पृष्टि तन्न्यायनिवृत्त्यर्थः । तथा च तत्रैव—(पृ. ११६ पं. ९)

“कटधूमस्पृष्टं वातं विरक्तं क्षुरकर्मणि । मैथुनाचरितारं च स्पृष्ट्वा स्नानं न विद्यते ” ॥ इति ।

यत्तु संवर्त्त आह—

“तत्स्पृष्टिर्न स्पृशेद्यस्तु स्नानं तस्य विधीयते । ऊर्ध्वमाचमनं प्रोक्तं द्रव्याणां प्रोक्षणं तथा”॥ इति ।

यदपि व्यासः—

“ससूतकं समृतकं प्रसूतां वा रजस्वलाम् । स्पृष्ट्वा स्नायाच्च तत्स्पृष्टं तत्स्पर्शादाचमेत् बुधः” ॥ इति ।

तत् अबुद्धिपूर्वस्पर्शविषयम् । तथा चंद्रिकामाधवीययोः—(चंद्रिका पृ. ११६ पं. १३)

“अबुद्धिपूर्वसंस्पर्शे द्वयोः स्नानं विधीयते । त्रयाणां बुद्धिपूर्वे तु तत्स्पृष्टिन्यायकल्पना” ॥ इति ।

चतुर्थस्य तु आचमनमेव । “उपस्पर्शेच्चतुर्थस्तु तदूर्ध्वं प्रोक्षणं मतम्” इति मरीचिस्मरणात् । ५

यत्तु कूर्मपुराणे—

“चंडालसूतिकाशवैः संस्पृष्टः संस्पृष्टेद्यदि । प्रमादात्तत आचम्य जपं कुर्यात्समाहितः ॥

“तत्स्पृष्टिस्पृष्टिने स्पृष्ट्वा बुद्धिपूर्वं द्विजोत्तमः । आचमेत्तु विशुद्ध्यर्थं प्राह देवः पितामहः” ॥ इति ।

तत् दुर्बलद्वितीयादिविषयम् । अन्यथा गौतमादिवचनविरोधात् । यत्तु याज्ञवल्क्येनोक्तम् (प्रा. ३०)

“उदक्याशुचिभिः स्नायात् संस्पृष्टस्तैरुपस्पृशेत् । अबिलंगानि जपेच्चैव गायत्रीं मनसा सकृत्” ॥ इति । १०

यदपि देवलेनोक्तम्—

“संस्पृश्याशुचिसंस्पृष्टं द्वितीयं वापि मानवः । हस्तौ पादौ च तोयेन प्रक्षाल्याचम्य शुध्यति” ॥ इति ।

यदपि वृद्धशातातपेनोक्तम्—

“अशुचिं यः स्पृशेदन्यं एक एव स दुष्यति । तत्स्पृष्टोऽन्यो न दुष्येत सर्वद्रव्येष्वयं विधिः” ॥ इति ।

एतत्सर्वं दण्डादिस्पर्शविषयमिति माधवीये—चंडालादिव्यतिरिक्ताशुचिस्पर्शविषयमित्यन्ये । १५

तदेव चंडालादिस्पर्शे तृतीयस्याचमनपरं वचनमकामविषयं स्नानपरं वचनं सकामविषयम् ।

द्वितीयस्याचमनवचनं दंडादिस्पर्शविषयं चंडालादिव्यतिरिक्तशवधूमाद्यशुचिस्पर्शे अशुचिस्पृश

एव स्नानं द्वितीयस्य त्वाचमनमेवेति व्यवस्था । अत्र पराशरः (१२।१)—

“दुःस्वप्नं यदि पश्येत्तु वांते च क्षुरकर्मणि । मिथुने प्रेतधूमे च स्नानमेव विधीयते” इति ।

मैथुने स्नानं ऋतुकालविषयम् । तदाह पराशरः—

“ऋतौ तु गर्भं शंकित्वात् स्नानं मैथुनिनः स्मृतम् । अन्ततौ तु यदा गच्छेच्छौचं मूत्रपुरीषवत्” ॥ इति । २०

अन्ततौ च स्नानं क्वचित्स्मर्यते

“अष्टम्यां च चतुर्दश्यां दिवा पर्वणि मैथुनम् । कृत्वा सचैलं स्नात्वा तु वारुणीभिश्च मार्जयेत्” ॥

कात्यायनः—

“चंडालसूतिकोदक्यापतिताशौचकृच्छ्रवान् । स्पृष्ट्वा स्नात्वा शुचिः प्रेतमनुगम्यानलं स्पृशेत्” ॥ इति ।

एतत्प्रमादसंस्पर्शविषयम् । २५

“पतितं सूतिकां त्यं शवं स्पृष्ट्वा च कामतः । स्नात्वा सचैलं स्पृष्ट्वाऽग्निं घृतं प्राश्य विशुध्यति ॥

“शवस्पृशं दिवाकीर्त्यं चितिं यूपं रजस्वलाम् । स्पृष्ट्वा प्रमादतो विप्रः स्नानं कृत्वा विशुध्यति” ॥ इति

स्मरणात् । पराशरोऽपि (१२।२५)—

“चैत्यवृक्षश्चितैर्धूमश्चंडालः सोमविक्रयी । एतांस्तु ब्राह्मणः स्पृष्ट्वा सवासा जलमाविशेत्” ॥ इति ।

चित्तेर्योग्यं श्मशानं चैत्यम् । तत्र समारोपितवृक्षः चैत्यवृक्षः । संवर्तोऽपि—

“चंडालं पतितं स्पृष्ट्वा शवमंत्यजमेव च । उदक्यां सूतिकां नारीं सवासाः स्नानमाचरेत्” ॥ इति । ३०

आपस्तंबः (२।२।८-९)—“चंडालोपस्पर्शने संभाषायां दर्शने च दोषस्तत्र प्रायश्चित्तम् ।

अवगाहनमपामुपस्पर्शने संभाषायां ब्राह्मणसंभाषादर्शने ज्योतिषो दर्शनम्” इति । उपस्पर्शने

सत्यपामवगाहनं प्रायश्चित्तं इत्यर्थः ।

व्यासः—

“चंडालपतितौ दृष्ट्वा नरः पश्येत्तु भास्करम् । स्नातस्त्वेतौ समालोक्य पुनः स्नानेन शुध्यति” ॥ इति ।
चंडालादीनां व्यवधाने देशपरिमाणमाह पराशरः (१२।४७)—

“युगं युगद्वयं चैव त्रियुगं च चतुर्युगम् । चंडालमूतिकादक्यापतितानामधःक्रमात् ॥

५ “ततः संनिधिमात्रेण सचैलं स्नानमाचरेत् । स्नात्वाऽवलोकयेत्सूर्यं अज्ञानात् स्पृशते यदि” ॥ इति ।
अधःक्रमात् विपरीतक्रमात् । युगपरिमाणं लोकव्यवहारादौ अवगंतव्यमिति माधवीये ।
नवपदं रथयुगं अष्टपदं अनोयुगमिति लौकिकाः प्रतीयन्ति । उक्तव्यवधानाभावे सचैलं
स्नानम् । अज्ञानात् गात्रस्पर्शं सूर्यावलोकनमाधिकमित्यर्थः । बुद्धिपूर्वागस्पर्शं तु सचैलं
स्नानमग्निस्पर्शनं घृतप्राशनं च पूर्वोक्तद्रष्टव्यम् । अंगस्पर्शं मज्जनसंख्याऽपि स्मर्यते—

१० “वृषलं चांत्यजातिं च चंडालं पतितं तथा । आर्त्तवाभिप्लुतां नारीं स्पृष्ट्वा स्नानं समाचरेत् ॥
“एकं च दर्शकं चैव द्वाविंशं त्रिंशकं तथा । द्वात्रिंशच्च क्रमेणैव मज्जनं तु विधीयते” ॥ इति ।
स्मृत्यंतरे—

“चंडालस्य चतुःषष्टिपदं श्रेण्याः शतद्वयम् । द्वात्रिंशदथवा तस्य मनःशुद्धिदमाचरेत् ॥

“अविज्ञाते रजःस्त्रावे मलवद्वस्त्रया गृहे । स्पृष्टं यद्वस्तु तद्दुष्टं न दुष्टं संनिकर्षतः” ॥ इति ।

१५ “अस्पृश्यस्पर्शने चैव त्रयोदश निमज्ज्य च । आचम्य प्रयतः पश्चात्स्नानं विधिवदाचरेत्” ॥ इति
भरद्वाजवचनं अंगस्पर्शनाभावविषयं चंडालादिव्यतिरिक्तास्पृश्यस्पर्शविषयम् ।

व्यासः—

“सूतिकापतितोदक्याचंडालश्च चतुर्थकः । यथाक्रमं परिहरेदेकद्वित्रिचतुर्युगम्” ॥ इति ।

अत्र व्यासपराशरवचनयोः विरोधे विकल्पो द्रष्टव्यः । यत्तु

२० “चंडालं पतितं चैव दूरतः परिवर्जयेत् । गोवालव्यजनादर्वाक् सवासा जलमाविशेत्” ॥ इति
वैयाघ्रपादवचनं तत् संकटादिविषयम् । यदाह संवर्त्तः—

“संकटे विषमे चैव दुर्गे चैव विशेषतः । अदृष्टतनमार्गे च यथासंभवमिष्यते ॥

“तृणकाष्ठादिघातेन कुड्येनांतरिते तथा । गोवालव्यजने चापि स्नानं तत्र न विद्यते” ॥ इति ।

प्रचेताः—

२५ “वस्त्रांतरितसंस्पर्शः साक्षात्स्पर्शो विधीयते । साक्षात्स्पर्शं तु यत्प्रोक्तं तद्वस्त्रांतरितेऽपि च” ॥ इति ।

अंगिराः—

“यस्तु छायां श्वपाकस्य ब्राह्मणो ह्यधिरोहति । तत्र स्नानं प्रकुर्वीत घृतं प्राश्य विशुध्यति ॥

“चंडालपतितच्छायां स्पृष्ट्वा स्नानं समाचरेत्” ॥ इति । स्मृतिरत्ने—

“छायामन्वश्वपाकादेः स्पृष्ट्वा स्नानं समाचरेत् । चत्वारिंशत्पदादूर्ध्वं छायादोषो न विद्यते” ॥ इति ।

३० आपस्तंबः—

“एकशाखां समारूढ्य चंडालादिर्यदा भवेत् । ब्राह्मणस्तत्र निवमन् स्नानेन शुचितामियात्” ॥ इति ।

शाखाग्रहणमेवंजातीयद्रव्योपलक्षणार्थम् । अत एव चंद्रिकायाम् (पृ. ११७, पं. २०)—

“तार्णे संस्तर एकस्मिन्नसृष्ट्यैः सह तिष्ठति । अस्पृष्टस्तंगुष्टोऽस्मीत्येवं मृदस्तु मन्यते” ॥ इति ।

तार्णे तृणनिर्मिते । आपस्तंबः (१।५।१५।१३)—

मन्येत । तथा तृणकाष्ठेषु निखातेषु” इति । गौतमः (१४।२७)—“पतितचांडालसूतिकोदक्या-
श्वस्पृष्टितत्स्पृष्टच्युपस्पर्शने सचैलोदकोपस्पर्शनाच्छुध्येत् ” इति । अत्र हरदत्तः—“ तस्मि-
न्विषय इदमुच्यते । शयनतया आसनतया वा सुष्ठु आस्तीर्णः पलाशादिसंघातः स्वस्तरः ।
पृषोदरादित्वात्साधुः । यत्रातिश्लक्ष्णतया पलाशादेर्मूलाग्रविभागो न ज्ञायते स मूढः । मूढश्चासौ
स्वस्तरश्चेति मूढस्वस्तरः । तस्मिन्पतितादिष्वप्रयतेष्वासीनेषु यदाकदाचित्प्रयत उपविशेन्न च ५
तान्स्पृष्टेत्तत्र यथाप्रयत आत्मानं मन्यते प्रयतोऽस्मीति तथैव मन्येत । नैवंविधे विषये
तत्स्पृष्टिन्यायः प्रवर्तते । तथा तृणकाष्ठेषु भूमौ निखातेषु तत्स्पृष्टिन्यायो न भवतीति ।
स्नानस्य निमित्तांतरमुक्तं चतुर्विंशतिमते—

“बौद्धान्पाशुपतान्जैनान्लोकायतिककापिलान् । विकर्मस्थान्द्विजान् स्पृष्ट्वा सचैलो जलमाविशेत् ॥
“ कापालिकांस्तु संस्पृश्य प्राणायामोऽधिको मतः ” ॥ इति । १०

चन्द्रिकायाम् (ब्रह्मांडपुराणे पृ. ११८ पं. २०)—

“जैनान्पाशुपतान् स्पृष्ट्वा लोकायतिकनास्तिकान् विकर्मस्थान् द्विजान् शूद्रान् सवासा जलमाविशेत् ।

“ अवकीर्णिनमंत्यं च स्पृष्ट्वा स्नानेन शुध्यति । स्पृष्ट्वा देवलकं चैव सवासा जलमाविशेत् ॥

“ देवार्चनपरो यस्तु वित्तार्थी वत्सरत्रयम् । स वै देवलको नाम हव्यकव्येषु गर्हितः ” ॥

यमः—“ शुना चैव श्वपाकेन मृतनिर्हरणेन वा । स्पृष्ट्वात्रस्तु कुर्वीत सचैलं प्लावनं द्विजः ॥ १५

“ दुःस्वप्ने दुर्जनस्पर्शेऽभ्युदिते स्नानमाचरेत् ” ॥ अभ्युदिते शयानस्य आदित्योदये ।

स्मृत्यंतरे—“ स्पृष्ट्वा रुद्रस्य निर्माल्यं सवासा आप्लुतः शुचिः ” ॥

संवर्त्तः—“श्ववराहखरानुष्टान्बृकगोमायुवानरान् । काककुक्कुटगृध्रांश्च स्पृष्ट्वा स्नानं समाचरेत्” ॥

हारीतः—

“ चाटकं कुक्कुटं काकं श्वशृगालशिवावृकान् । चित्तिधूमश्मशानानि विद्वुराहखराशुचीन् । २०

“ अवकीर्णिनमंत्यं च स्पृष्ट्वा स्नानं विधीयते ” ॥ पैठीनासिः—“ काकोलूकस्पर्शने

स्नानमनुदकमूत्रपुरीषकरणे सचैलं स्नानं महाव्याहृतिभिर्होमश्च ” ॥ इति । अंगिराः—

“कृत्वा मूत्रं पुरीषं वा यदा नैवोदकं भवेत् । स्नात्वा लब्धोदकः पश्चात् सचैलस्तु विशुध्यति” ॥ इति ।

संग्रहे—

“ गोध्याश्च स्पर्शमात्रे तु सैरटीकुकलासयोः । शुभे वाऽप्यशुभे वाऽपि सचैलं स्नानमाचरेत्” ॥ २५

मनुः (५।८६)—

“नारं स्पृष्ट्वाऽस्थि सस्नेहं सवासा जलमाविशेत् । आचम्यैव तु निःस्नेहं गामालभ्यार्कमीक्षेत्” ॥ इति ।

विष्णुः (२२।६९)—“ भक्ष्यवर्ज्यं पंचनखं तदस्थिसस्नेहं च स्पृष्ट्वा स्नायात् ” इति ।

श्वस्पर्शं विशेषमाह आपस्तम्बः (१।५।१५।१६-१७) “शुनोपहतः सचैलोऽवगाहेत् । प्रक्षाल्य वा तं
देशं अग्निना संस्पृश्य पुनः प्रक्षाल्य पादौ च आचम्य प्रयतो भवति” इति । व्यवस्थितविकल्पोऽयम् । ३०

तथा च मनुः—

“उर्ध्वं नाभेः करौ मुक्ता यदंगमुपहन्यते । तत्र स्नानविधिः प्रोक्तो ह्यधः प्रक्षालनं स्मृतम्” इति

विष्णुरपि—“नाभेरधः कराग्रं वा शुना यद्युपहन्यते । प्रक्षाल्य तदभिज्वालय पुनराचम्य शुध्यति ॥

“ नाभेरुर्ध्वं शुना स्पृष्टो लिप्तो मध्येन वा पुनः । प्रक्षाल्य मृद्गिरंगानि सचैलं स्नानमर्हति ” ॥

शातातपः—

“ रजकश्चर्मकृच्चैव व्याधजालोपजीविनौ । निर्णेजकः सौनिकश्च नटः शैलूषकस्तथा ॥

“ मुत्तेभगस्तथा इवा च ग्राम्यकुक्कुटसूकरौ । एतैर्यदंगं स्पृष्टं स्यात् शिरोवर्जं द्विजातिषु ॥

“ तोयेन क्षालनं कृत्वा आचांतः प्रयतो मतः ” ॥

५ अत्रापि शुना साहचर्यात् शिरोग्रहणं नाभेरूर्ध्वगोपलक्षणार्थम् । जातुकर्णयोऽपि—

“ उर्ध्वं नाभेः करौ सुक्त्वा यदंगं स्पृशते खगः । स्नानं तत्र प्रकुर्वीत शेषं प्रक्षाल्य शुध्यति ” ॥ इति ।

खगः पक्षी । शंखः—

“ रथ्याकर्दमतोयेन धीवनायेन वा तथा । नाभेरूर्ध्वं नरः स्पृष्टः सद्यः स्नानेन शुध्यति ” ॥

व्यासः—

१० “ भासवानरमार्जारखरोष्ट्रानां शुनां तथा । सूकराणाममेध्यं वै स्पृष्ट्वा स्नायात्सचैलकम् ” ॥

विष्णुः—

“ आ जानुभ्यां भवेत्स्नानं अनाभ्युपवसेदहः । ऊर्ध्वं नाभेस्त्रिरात्रं स्यादमेध्यस्पर्शने विधिः ” ॥ इति ।

मनुः—

“ पुच्छे विडालकं स्पृष्ट्वा स्नात्वा विप्रो विशुध्यति । भोजने कर्मकाले च विधिरेष उदाहृतः ॥

१५ इतरांगस्पर्शे तु आचमनमेव “ मार्जालमूषिकस्पर्शे कर्म कुर्वन्नुपस्पृशेत् ” इति बृहस्पति-
स्मरणात् । अन्यकाले मार्जारस्पर्शने नाशुद्धिः । मनुः— “ मार्जारश्चैव दूर्वा च मासुतश्च सदा
शुचिः ” इति । पराशरोऽपि (७।३३)—

“ मार्जारमक्षिकाकीटपतंगकृमिदुर्गुराः । मेध्यामेध्यं स्पृशंतोऽपि नोच्छिष्टं मनुरब्रवीत् ” ॥

यदा पुनरशुद्ध एव इवादीन् स्पृशति तदा विशेषो देवलेन दर्शितः

२० “ इवपाकं पतितं चांत्यं उन्मत्तं श्वदाहकम् । सूतिकां साविकां नारीं रजसा च परिप्लुताम् ॥

“ इवकुक्कुटवराहांश्च ग्राम्यान्त्संस्पृश्य मानव । सचैलः सशिराः स्नात्वा तदानीमेव शुध्यति ॥

“ अशुद्धान्स्वयमेवैतान् अशुद्धस्तु यदि स्पृशेत् । विशुद्धत्युपवासेन तथा कृच्छ्रेण वा पुनः ” ॥

साविका प्रसवस्य कारयित्री । एतद् बुद्धिपूर्वस्पर्शविषयम् । तथा च कूर्मपुराणे—

“ उच्छिष्टोऽद्भिरनाचांतश्चंडालादीन्स्पृशेत् द्विजः । प्रमादाद् जपेत्स्नात्वा गायत्र्यष्टसहस्रकम् ॥

२५ “ चंडालपतिताद्यांस्तु कामाद्यः संस्पृशेत् द्विजः । उच्छिष्टस्तत्र कुर्वीत प्राजापत्यं विशुद्ध्ये ” ॥

अनेनैवाभिप्रायेण विष्णुरपि—

“ अनुच्छिष्टेन संस्पृष्टे स्नानं येन विधीयते । तेनोच्छिष्टसंस्पृष्टः प्राजापत्येन शुध्यति ” ॥ इति ।

संवर्तोऽपि—

“ कृते मूत्रे पुरीषे वा भुक्तोच्छिष्टे तथैव च । इवादिस्पृष्टो जपेद्देव्या सहस्रं स्नानपूर्वकम् ॥

३० “ चंडालाद्यैस्तु संस्पृष्ट उच्छिष्टस्तु जपोत्तमः । गोमूत्रयावकाहारः षड्रात्रेण विशुद्ध्यति ” ॥ इति ।

पराशरः (७।२२-२१)—

“ अनुच्छिष्टेन शूद्रेण स्पर्शं स्नानं विधीयते । तेनोच्छिष्टेन संस्पृष्टः प्राजापत्यं समाचरेत् ॥

“ उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पृष्टः शुना शूद्रेण वा द्विजः । उपोष्य रजनीमेकां पंचगव्येन शुध्यति ” ॥ इति ।

अनुच्छिष्टस्य विप्रस्य अनुच्छिष्टशूद्रस्पर्शं स्नानमात्रं उच्छिष्टशूद्रस्पर्शं कृच्छ्रम् । उच्छिष्टस्य

द्विजस्यान्येनोच्छिष्टेन द्विजेन शुना वा अनुच्छिष्टशूद्रेण वा संस्पर्शो एकदिनोपवासः पंचगव्य-
प्राशनं चेत्यर्थः । स्मृत्यन्तरे—

“चंडालं पतितं श्वानं उदक्यां सूतिकां तथा । दृष्ट्वा भुक्त्यन्तरे स्नात्वा मानस्तोकेत्यृचं जपेत् ॥
“उच्छिष्टवदनो विप्रः शूद्रादीन्नावलोकयेत् । अवलोकेत् प्रमादाच्चेत् सह तैर्भुक्तवान्भवेत्” ॥

भरद्वाजः—

“शवे श्वगृहं गत्वा श्मशाने वाऽतरेऽपि वा । आतुरव्यंजनं कृत्वा दूरस्थोऽप्यशुचिर्भवेत्” ॥
आतुरव्यंजनं मृताविषयविलापादि । पराशरः (१२।२६)—

“अस्थिसंचयनादूर्ध्वं रुदित्वा स्नानमाचरेत् । अंतर्दशाहे विप्रस्य ह्यूर्ध्वमाचमनं भवेत् ॥

“शिशोरभ्युक्षणं प्रोक्तं बालस्याचमनं स्मृतम् । रजस्वलादिसंस्पर्शं स्नानमेव कुमारके ॥

“शिशुरा दंतजननादा चौलाद्बालकः स्मृतः । कुमारः स तु विशेषो बुधैरा मौजिबंधनात्” १०
निमित्तान्तरमाह स एव—

“तस्मिन्नाचमनं कुर्याद्यत्र भांडेऽथ भुक्तवान् । यद्युत्तिष्ठन्न नाचांतो भुक्तवानासनात्ततः ॥

“स्नानं सद्यः प्रकुर्वीत सोऽन्यथा प्रयतो भवेत्” ॥ इति । स एव—

“वृकश्चानशृगालाद्यैर्दष्टो यस्तु द्विजोत्तमः । स्नात्वा जपेत्स गायत्रीं पवित्रां वेदमातरम् ॥

“गवां शृंगोदकस्नानं महानद्योस्तु संगमे । समुद्रदर्शनाद्वाऽपि शुना दष्टः शुचिर्भवेत्” (५।२) १५

“वेदविद्याव्रतस्नातः शुना दष्टो द्विजो यदि । स हिरण्योदके स्नात्वा घृतं प्राश्य विशुध्यति” (५।३)

“सव्रतस्तु शुना दष्टो यस्त्रिरात्रमुपावसन् । घृतं कुशोदकं पीत्वा व्रतशेषं समापयेत् ॥

“अव्रतः सव्रतो वाऽपि शुना दष्टो भवेत् द्विजः । प्रणिपातात् भवेत्पूतो विप्रैश्चक्षुर्निरीक्षितः” (५।५)

“शुना घ्रातावलीढस्य नखैर्विलिखितस्य च । अद्भिः प्रक्षालनं पोक्तं अग्निना चोपचूलनम्” (५।६)

“शुना तु ब्राह्मणी दष्टा जंबुकेन वृकेण वा । उदितं ग्रहनक्षत्रं दृष्ट्वा सद्यः शुचिर्भवेत्” (५।७) २०

“कृष्णपक्षे यदा सोमो न दृश्येत कदाचन । यां दिशं व्रजते सोमः तां दिशं चावलोकयेत्” (५।८)

“असद्ब्राह्मणके ग्रामे शुना दष्टो द्विजोत्तमः । वृषं प्रदक्षिणीकृत्य सद्यः स्नात्वा विशुध्यति” (५।९) इति ।

वृकः औरण्यकश्वा । आदिशब्देन वराहादयो गृह्यन्ते । तैर्दष्टः स्नात्वा गायत्र्यष्टशतं जपेत् ।

एतच्चासमर्थविषयम् । समर्थस्तु गोशृंगोदकस्नानादिकं समाचरेत् । तत्र शृंगोदकस्नानं नाम

शृङ्गपूरितेनोदकेन गायत्र्या शतवारमभिमन्त्रितेन सेचनम् । शृङ्गोदकस्नानसंगमस्नानसमुद्र- २५

दर्शनानामधममध्यमोत्तमभेदेन वा दंशतारतम्येन वा व्यवस्था । सव्रताव्रतावुभावपि विप्रान्प्रणि-

पत्य तैर्निरीक्षितौ यथोक्तप्रायश्चित्ताचरणेन पूतौ भवतः । यस्मिन्ग्रामे ब्राह्मणा न संति तत्र

ब्राह्मणप्रणिपातनिरीक्षणयोः स्थाने वृषभप्रदक्षिणस्नाने द्रष्टव्ये । यस्तु शुना न दष्टः किंतु

नासिकया घ्रातः जिह्वयाऽवलीढः नखैर्वा विलिखितः एते त्रयोऽपि तं देशं प्रक्षाल्य बन्धिना

संताप्य शुद्धा स्युरिति माधवीये व्याख्यातम् । शातातपोऽपि—

“गवां शृंगोदकस्नानात् महानद्युपसंगमात् । समुद्रदर्शनाद्वापि शुना दष्टः शुचिर्भवेत् ॥

“अव्रतः सव्रतो वाऽपि शुना दष्टस्तु यो द्विजः । हिरण्योदकमिश्रं तु घृतं प्राश्य विशुध्यति” ॥ इति ।

वसिष्ठः (२३।३१)—

“ब्राह्मणस्तु शुना दष्टो नदीं गत्वा समुद्रगाम् । प्राणायामशतं कृत्वा घृतं प्राश्य विशुध्यति” ॥

अंगिराः—

“ब्रह्मचारी शुना दष्टस्त्रिरात्रेणैव शुध्यति । गृहस्थस्तु द्विरात्रेण एकरात्रेऽग्निहोत्रिणः ॥

“नाभेरूर्ध्वं तु दष्टस्य तदेव द्विगुणं भवेत् । तदेव द्विगुणं वक्त्रे मूर्ध्नि चेतस्याच्चतुर्गुणम् ॥

“क्षत्रविदृशूद्रयोनिस्तु स्नानेनैव शुचिर्भवेत् । द्विगुणं तु वनस्थस्य तथा प्रव्रजितस्य च ॥

५ “ब्राह्मणी तु शुना दष्टा सोमे दृष्टिं निपातयेत् । यदा न दृश्यते सोमः प्रायश्चित्तं तदा कथम् ॥

“यां दिशं तु गतः सोमस्तां दिशं ह्यवलोकयन् । सोममार्गेण सा पूता पंचगव्येन शुध्यति ” ॥

अरुणोदयात् पूर्वभावि स्नानं निषेधति पराशरः—

“भास्करस्य करैः पूतं दिवा स्नानं प्रशस्यते । अप्रशस्तं निशि स्नानं राहोरन्यत्र दर्शनात् ॥

“स्नानं दानं जपो होमः कर्तव्यं राहुदर्शने । अन्यदा त्वशुची रात्रिस्तस्मात्तां परिवर्जयेत्” ॥

१० मनुः (४।१२९)—

“न स्नानमाचरेद्भुक्त्वा नातुरो न महानिशि । न वासोभिः सहाजस्रं नाविज्ञाते जलाशये ” ॥

स्नानमाचरेद्भुक्त्वेति दृष्टार्थस्य स्नानस्य निषेधः । नातुर इत्यदृष्टार्थस्य च । न वासोभिरिति

सवासा जलामाविशेदित्युक्तविषये प्रातः मध्यंदिनयोश्च सोत्तरीयस्नानम् । अन्यत्र यादृच्छिकादौ

अंतर्वाससैव सह स्नानमित्यर्थः । पराशरः (१२।२४)—

१५ “महानिशा तु विज्ञेया मध्यस्थप्रहरद्वयम् । प्रदोषपश्चिमौ यामौ दिनवत् स्नानमाचरेत्” ॥ इति ।

एतच्चापद्विषयम् । अन्यथा भास्करस्य करैरित्यनेन विरुध्येत । पट्टत्रिंशन्मते—

“अपेयं हि सदा तोयं रात्रौ मध्यमयामयोः । स्नानं तत्र न कुर्वीत तथैवाचमनक्रियाम् ॥

“मूत्रोच्चारे महारात्रौ कुर्यान्नाचमनं तु यः । प्रायश्चित्तीयते विप्रः प्राजापत्यार्धमर्हति ” ॥ इति ।

वृद्धमनुः—

२० “आराध्यं देवमाराध्य बंधून्प्यनुसृत्य च । भुक्त्वा व्याधौ च न स्नायात्तैलेनापि निशास्वपि” ॥

मेधातिथिरपि—

“न स्नायादुत्सवेऽतीते मंगल्यं विनिवर्त्य च । अनुव्रज्य सुहृद्वंधून् अर्चयित्वेष्टदेवताः ॥

“न स्नानमाचरेद्भुक्त्वा नातुरो न महानिशि ” ॥ कालादर्शेऽपि—

“अनुव्रज्य च बंधूंश्च व्याधौ भुक्त्यंतरं निशि । इष्टदेवं समभ्यर्च्य विधाय च महोत्सवम् ॥

२५ “विना निमित्तं न स्नायान्निमित्तेऽपि रुगातुरः” ॥ इति । काम्यनैमित्तिके तु स्नाने महानिश्यपि

अनिषिद्धे । तथा च स्मृत्यर्थसारे—

“न महानिशि नित्यार्थं काम्ये नैमित्तिकं भवेत् । स्नायात्तु पूर्वमस्नातो निश्युष्णेन जलेन न ॥

“अस्पृश्यस्पर्शने स्नानं निश्युष्णेन जलेन च । नद्यान्नास्तमिते स्नायात् विशेषान्मन्ययामयोः ॥

“अग्निं प्रज्वाल्य च स्नायात् वाप्यादिषु महाजले । ब्राह्मणाग्निगवामग्रे स्नानं विज्ञाप्य वृद्धिमान् ॥

३० “निशि स्नानं च दानं च कुर्यादग्निं समिध्य हि ” ॥ इति । मनुः—

“राहुदर्शनसंक्रांतिविवाहात्ययवृद्धिषु । स्नानदानादिकं कुर्यात् निशि काम्यव्रतेषु च” ॥

अत्ययो मरणम् । वृद्धिर्जननम् । योगयाज्ञवल्क्योऽपि—

“ग्रहणोद्वाहसंक्रांतियात्रातिप्रसवेषु च । स्नानं नैमित्तिकं ज्ञेयं रात्रावपि तदिष्यते ” ॥

आर्तिः मरणम् ।

पराशरः (१२।२३)--

“पुत्रजन्मनि यज्ञे च तथा संक्रमणे रवेः । राहोश्च दर्शने स्नानं प्रशस्तं नान्यथा निशि”॥
यज्ञोऽवभृथः । रात्रौ चंडालादिस्पर्शे शुद्धिमाह स एव (७।११)--

“अस्तंगते यदा सूर्ये चंडालं पतितं स्त्रियम् । सूतिकां स्पृशतश्चैव कथं शुद्धिर्विधीयते ॥

“जातवेदः सुवर्णं च सोममार्गं विलोक्य च । ब्रह्मणानुमतश्चैव स्नानं कृत्वा विशुध्यति”॥
शुक्लपक्षे सोमोऽवलोकनीयः । तदभावे वह्निः । तदभावे सुवर्णम् । तस्याप्यभावे सोममार्गः । ५
एतेषामन्यतमं विलोक्य विप्रैरनुज्ञातः स्नायादित्यर्थः । रात्रिस्नाने तु विशेषमाह यमः--

“विप्रः स्पृष्टो निशायां तु उदकया पतितेन वा । दिवानीतेन तोयेन स्नापयेदग्निसन्निधौ”॥
तोयेन स्वर्णसहितेनेति शेषः । तथा च पराशरः (१२।२०)--

“दिवाहृतं तु यत्तोयं कृत्वा स्वर्णयुतं तु तत् । रात्रौ स्नाने तु संप्राप्ते स्नायादनलसन्निधौ”॥
देवलोऽपि--

“दिवाहृतैर्जलैः स्नानं निशि कुर्यान्निमित्ततः । निक्षिप्य च सुवर्णं वै सन्निधाप्य च पावकम्”॥ इति ।
कात्यायनः--

“प्रवेशाद्वरुणस्याप्सु न रात्रौ जलमुद्धरेत् । अन्यत्र धाम्न इत्येवं तत्रस्थे स्नानमिष्यते”॥
‘धाम्नो धाम्न’ इति समंत्रकोद्धारणादन्यत्र रात्रौ जलं नोद्धरेत् । तत्रस्थे जले स्नायादित्यर्थः ।
अत्रापि विशेषमाह पराशरः--

“यदि गेहे न तोयं स्यात् तावच्छुद्धिः कथं भवेत् । धाम्नो धाम्न इति मंत्रेण गृह्णीयादग्निसन्निधौ ॥
“ रात्रौ ग्रहांशुभिः पूतं दिवा पूतं तु भानुना । अनेनैव विशुध्येन तथा रात्रौ यथा दिवा ” ॥
संवर्तः--

“अपो निशि न गृह्णीयात् गृह्णन्नपि कदाचन । उद्धृत्याग्निमुपर्यासां धाम्नो धाम्न इतीरयेत्”॥
मरीचिः--

“दिवाहृतं तु यत्तोयं गृहे यस्य न विद्यते । प्रज्वालयाग्निं ततः स्नायान्नदीपुष्करणीषु च”॥ इति ।
कालादर्शः--

“निमित्ततोऽपि यैः स्नायात् रात्रौ नद्यां दिवाहृतैः । तज्जलैस्तदभावे तु स्वर्णं क्षिप्त्वा तदंभसि ॥
“प्रज्वालय वह्निमभ्यर्णे तदभावे समंत्रकम् । निशाहृतैर्जलैः स्नायादिति शास्त्रीयनिश्चयः”॥ इति ।
ग्रहणस्नानमुक्तं महाभारते--

“गंगास्नानं प्रकुर्वीत ग्रहणे चंद्रसूर्ययोः । महानदीषु चान्यासु स्नानं कुर्याद्यथाविधि”॥
शंखः--

“वापीकूपतटाकेषु गिरिप्रस्रवणेऽपि वा । नद्यां नदे देवखाते सरसीषूद्धतांबुभिः ॥
“ उष्णोदकेऽपि वा स्नायात् ग्रहणे चंद्रसूर्ययोः ” इति । उष्णोदकस्नानमातुरविषयम् ।
“आदित्यकिरणैः पूतं पुनःपूतं च वन्हिना । आर्तो व्याध्यातुरः स्नायात् ग्रहणेऽप्युष्णवारिणा” ॥ ३०
इति व्याघ्रस्मरणात् । पराशरः (१२।२७)--

“सर्वं गंगासमं तोयं राहुग्रस्ते दिवाकरे । सोमग्रहे तथैवोक्तं स्नानदानादिकर्मसु ” ॥
व्यासोऽपि--

“सर्वं गंगासमं तोयं सर्वं ब्रह्मसमा द्विजाः । सर्वं भूमिसमं दानं ग्रहणे चंद्रसूर्ययोः ” ॥ इति ।

शौनकः—

“स्वर्धुन्या तु ममानि स्युः सर्वाण्यभांसि भूतले । कूपस्थान्यपि सोमार्कग्रहणे नात्र संशयः” ॥ इति मार्कण्डेयः—

“शीतमुष्णोदकात्पुण्यं पारक्यमपरोदकात् । भूमिष्ठमुद्धृतात्पुण्यं ततः प्रस्रवणोदकम् ॥

५ “ततोऽपि सारसं पुण्यं ततः पुण्यं नदीजलम् । तीर्थतोयं ततः पुण्यं महानद्यम्नुपावनम् ॥

“ततस्ततोऽपि गङ्गाम्बु पुण्यं पुण्यस्ततोऽम्बुधिः” ॥ इति । वृद्धवसिष्ठः—

“गवां कोटिप्रदानेन सम्यग्दत्तेन यत्फलम् । गङ्गास्नाने तत्फलं स्याद्राहुग्रस्ते निशाकरे ॥

“दिवाकरे पुनस्तत्र दशसंख्यमुदाहृतम् ॥

“चंद्रसूर्यग्रहे चैव योऽवगाहेत जाह्नवीम् । स स्नातः सर्वतीर्थेषु किमर्थमगते महीम्” ॥ इति ।

१० यत्र कापि जले स्नानाकरणे प्रत्यवायमाह वसिष्ठः—

“ग्रहणे संक्रमे वाऽपि न स्नायाद्यदि मानवः । सप्तजन्मनि कुप्यी स्याद्दुःखभागी च जायते” ॥ इति ।

शातातपः— “स्नानं दानं तथा श्राद्धं अनंतं राहुदर्शने” ।

अत्र हिरण्येनामेन वा श्राद्धं कुर्यात्तदाह बोधायनः—

“अन्नाभावे द्विजाभावे प्रवासे पुत्रजन्मनि । हेमश्राद्धं संक्रमे च कुर्याच्छूद्रः सदैव हि” ॥

१५ व्यासः—

“आपद्यनग्नौ तीर्थे च ग्रहणे चंद्रसूर्ययोः । आमश्राद्धं द्विजो दद्याच्छूद्रो दद्यात्सदैव हि” ॥ इति ।

देवलः—

“यथा स्नानं च दानं च सूर्यस्य ग्रहणे दिवा । सोमस्यापि तथा रात्रौ स्नानं दानं विधीयते” ॥

यद्ग्रहणनिमित्ताशौचं तत्स्नानेन निर्वृत्तमित्युक्तम् ब्रह्मांडपुराणे—

२० “अशौचं जायते नृणां ग्रहणे चंद्रसूर्ययोः । राहुस्पर्शे तथा स्नात्वा दानादौ कल्पते नरः ॥

“सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने । स्नात्वा कर्माणि कुर्वीत पक्वमन्नं विवर्जयेत्” ॥

ग्रहणकाले ततः पूर्वं वा यत्पक्वमन्नं तत्सूतकान्नं तत् पश्चादपि न भुंजीत इत्यर्थः ।

वृद्धवसिष्ठः—

“सर्वेषामपि वर्णानां निमित्तं राहुदर्शने । सचैलं तु भवेत्स्नानं सूतकान्नं च वर्जयेत्” ॥

२५ व्याघ्रपादः—

“स्मार्तकर्मपरित्यागो राहोरन्यत्र सूतके । श्रौते कर्माणि तत्कालं स्नानतः शुद्धिमाप्नुयात्” ॥ इति ।

जन्ममरणानिमित्तागौचवानपि स्नानं कुर्यादित्याह वसिष्ठः—

“चन्द्रसूर्यग्रहे स्नायान्मृतके सूतकेऽपि वा । अस्नायी मृत्युमाप्नोति स्नायी मृत्युं न विंदति” ॥

अत्र स्नानं श्राद्धादेरुपलक्षणम् । अत एवांगिराः—

३० “सर्वे वर्णाः सूतकेऽपि मृतके राहुदर्शने । स्नात्वा श्राद्धं प्रकुर्वीरन्दानं शाठ्यविवर्जितम् ॥

“सूर्येद्ग्रहणे यावत् तावत्कुर्याज्जपादिकम् । न स्वपेक्ष च भुंजीत स्नात्वा भुंजीत मुक्तयोः” ॥ इति ।

कालनिर्णयेऽपि—

“नेमित्तिकं तु कर्तव्यं ग्रहणे चंद्रसूर्ययोः । यच्छ्राद्धं बांधवानां तु नारकी स्यान्नतोऽन्यथा ॥

“काम्यानि चैव श्राद्धानि अस्यंते ग्रहणादिषु” ॥ इति ।

ब्रह्मसिद्धान्ते—

“यावान्कालः पर्वणोऽस्ते यावत्प्रतिपदादिमः । रवीन्दुग्रहणानेहा स पुण्यो मिश्रणाद्भवेत्” ॥
ग्रहणानेहा ग्रस्तकालः । आद्यन्तयोः स्नानं विहितं कालनिर्णये—

“ग्रस्यमाने भवेत्स्नानं ग्रस्ते होमो विधीयते । मुच्यमाने भवेद्दानं मुक्ते स्नानं विधीयते” ॥

स्मृत्यन्तरे—“ग्रस्यमाने रवौ स्नायान्मुच्यमाने निशाकरे” ॥ ब्रह्मवैवर्ते—

“स्नानं स्यादुपरागादौ मध्ये होमः सुरार्चनम् । दानं जपश्च मुक्ते तु पुनः स्नानं विधीयते” ॥

आदिमध्यावसानेषु यद्यद्विहितं तस्य तस्य फलातिशय उक्तो ब्रह्मपुराणे—

“उपमर्दे लक्षगुणं ग्रहणे चंद्रसूर्ययोः । पुण्यं कोटिगुणं मध्ये मुक्तिकाले त्वनन्तकम्” ॥

स्मृत्यन्तरे—

“नाड्यः षोडश पूर्वेण संक्रांतेस्तु परेण च । राहोस्तु दर्शनं यावत्पुण्यकाल उदाहृतः” ॥ इति । १०

व्यासः—

“प्राक्पश्चात्संक्रमेषूक्तः पुण्यकालो विभागशः । चंद्रसूर्योपरागे तु यावद्दर्शनगोचरः” ॥ इति ।

यत्तु स्मर्यते—

“त्रिदशाः स्पर्शसमये तृप्यन्ति पितरस्तथा । मनुष्या मध्यकाले तु मोक्षकाले तु राक्षसाः” ॥ इति ।

तद्ग्रहणे स्नानादिना सर्वेषां तृप्तिरित्येवंपरम् । न तु मोक्षकालनिषेधपरं “मुक्तिकाले त्वनन्तकम्” १५

इति स्मरणात् । वारविशेषयोगे फलातिशयमाह व्यासः

“रविग्रहे सूर्यवारे सोमे सोमग्रहे तथा । चूडामणिरिति ख्यातस्तत्रानंतफलं भवेत् ॥

“वारेष्वन्येषु यत्पुण्यं ग्रहणे चंद्रसूर्ययोः । तत्पुण्यं कोटिगुणितं ग्रासे चूडामणौ स्मृतम्” ॥ इति ।

जावालिरपि—

“संक्रांतौ पुण्यकालस्तु षोडशोभयतः कलाः । चंद्रसूर्योपरागे तु यावद्दर्शनमोचनम्” ॥ २०

ग्रस्तास्तमये अस्तमयपर्यंतं दर्शनगोचरत्वात्तावत्पुण्यकालो भवति ।

तत्र मोजनस्नानमाह भृगुः—

“ग्रस्तावेवास्तमानं तु रवीन्दू प्राप्नुतो यदि । ततः परेद्युरुदये स्नात्वाऽभ्यवहरेन्नरः” ॥ इति ।

अन्धि सूर्यग्रहणं रात्रौ चंद्रग्रहणं चेत्येवं प्रसिद्धिः सार्वजनीनां तादृशे ग्रहणे स्नानादिकमुक्तम् ।

यत्तु कालविपर्ययेण प्राप्यमाणं ज्योतिःशास्त्रमात्रप्रसिद्धं ग्रहणं तत्र स्नानादिकं न कर्तव्यम् ॥ २५

तदुक्तं कालनिर्णये—

“सूर्यग्रहो यदा रात्रौ दिवा चंद्रग्रहस्तथा । तत्र स्नानं न कुर्वीत दद्याद्दानं न च क्वचित्” ॥ इति ।

इति ग्रहणस्नानम् । संक्रांतिस्नानाकरणे प्रत्यवायमाह शातातपः—

“सूर्यसंक्रमणे पुण्ये न स्नायाद्यदि मानवः । सप्तजन्मसु रोगी स्यात् दुःखभागी च जायते” ॥

स एव—

“संक्रांत्यां यानि दत्तानि हव्यकव्यानि मानवैः । तानि तस्य ददात्यर्कः सप्तजन्मसु निश्चितम्” ॥ इति ।

मेषादिषु द्वादशराशिषु क्रमेण संचरतः सूर्यस्य पूर्वस्माद्राशेरुत्तरराशौ प्रवेशः संक्रमणम् । तत्र

स्नानार्थं भूतसंक्रातिकालस्य मुख्यस्यासंभवात् तत्संबन्धिनैः पूर्वोत्तरकालौ गृहीतव्यौ ।

तदाह देवलः—

“संक्रांतिसमयः सूक्ष्मो दुर्ज्ञेयः पिशितेक्षणैः । तद्योगादप्यधश्चोर्ध्वं त्रिंशन्नाड्यः पवित्रिताः” ॥ इति । ३५

संक्रान्तेः पूर्वोत्तरे काले एकैकस्मिन् त्रिंशत् घटिकाः पुण्या इति सामान्येनोक्तम् । तत्र विशेषं दर्शयति वृद्धवसिष्ठः—

“अयने द्वे विषुवे द्वे चतस्रः षडशीतयः । चतस्रो विष्णुपद्यश्च संक्रान्त्योर्द्वादश स्मृताः ॥

“मृगकर्कटसंक्रान्ती द्वे तूदग्दक्षिणायने । विषुवे तु तुलामेषौ गोलमध्ये ततोऽपराः ॥

५ “कन्यायां मिथुने मीने धनुष्यपि रवेर्गतिः । षडशीतिमुखाः प्रोक्ताः षडशीतिगुणैः फलैः ॥

“वृषवृश्चिककुम्भेषु सिंहे चैव रवेर्गतिः । एतत् विष्णुपदं नाम विषुवादधिकं फलैः ॥

“अतीतानागते पुण्ये द्वे उदग्दक्षिणायने । त्रिंशत्कर्कटके नाड्यो मकरे विंशतिः स्मृताः ॥

“वर्तमाने तुलामेषे नाड्यस्तूभयतो दश । षडशीत्यामतीतायां षष्टिरुक्तास्तु नाडिकाः ॥

“पुण्यायां विष्णुपद्यां च प्राक् पश्चादपि षोडशम्” ॥ मृगो मकरः । गोलमध्ये अयनविषुव-

१० गोलमध्ये । गोलं चलनम् । अतीतानागत इति उदगयनमतीतं सत्पुण्यं भवति । दक्षिणायनमनागतं पुण्यं त्रिंशदित्यादिना तदेव स्पष्टीक्रियते । कर्कटसंक्रान्तेः प्राचीनाः त्रिंशद्घटिकाः पुण्याः । मकर-संक्रान्तेरूर्ध्वकालीना विंशतिघटिकाः पुण्या इत्यर्थः ।

गालवोऽपि—“स्थिरमे विष्णुपदं षडशीतिमुखं द्वितनुभे तुलामेषे विषुवं तु कर्कटके दक्षिणायनं मृगे सौम्यकं सूर्य ” इति । भशब्दवाच्योऽत्र राशिः । सूर्ये स्थिरराशौ स्थिते सति विष्णुपदं १५ भवति । द्विस्वभावराशौ सूर्ये स्थिते सति षडशीतिमुखं भवति । तुलामेषद्वये स्थिते विषुवं भवति । सूर्ये कर्कटस्थे दक्षिणायनं मृगे मकरे सौम्यकं सोमदिङ्नामकमुत्तरायणम् । तैरैतैः संज्ञाभेदै राशयो व्यवहियन्त इत्यर्थः । बृहस्पतिः—

“अयने विंशतिः पूर्वा मकरे विंशतिः पराः । वर्तमाने तुलामेषे नाड्यस्तूभयतो दश” ॥

नात्र त्रिंशत् घटिका वा दिनवचनेन विरोधः शङ्कनीयः । सामान्यवचनस्याभ्यनुज्ञानपरत्वा- २० द्विशेषवचनोक्तो घटिकासंकोच एव प्रशस्तः । “या याः सन्निहिता नाड्यस्तास्ताः पुण्यतमाः स्मृताः” इतिः देवलस्मरणात् । केनापि निमित्तेन सन्निहितघटिकास्वनुष्ठानासंभवे त्रिंशद्घटिकाः परमावधित्वेनाभ्यनुज्ञायन्ते । षडशीतीषु ततोऽपि दीर्घोऽवधिरभ्यनुज्ञायते । भविष्योत्तरेऽपि—

“दशार्वाङ्नाडिकाः पुण्याः पश्चादपि विषूवति । षष्टिनाड्यो व्यतीतासु षडशीतिषु पुण्यदाः ॥

“विष्णुपद्यां प्रशस्तायां प्राक् पश्चादपि षोडश ” ॥ इति । संक्रान्तीनां पूर्वोत्तरौ पुण्यकालौ २५ निर्णीतौ । ताश्च संक्रान्तयश्च कदाचिदन्हि भवन्ति कदाचिद्रात्रौ तद्भेदेनानुष्ठानभेदमाह वृद्धवसिष्ठः—

“अन्हि संक्रमणे पुण्यमहः कृत्स्नं प्रकीर्तितम् । रात्रौ संक्रमणे भानोः दिनार्धं स्नानदानयोः ॥

“अर्धरात्रादधस्तस्मिन्मध्याह्नस्योपरि क्रिया । ऊर्ध्वं संक्रमणे चोर्ध्वं उदयात्प्रहरद्वयम् ॥

“पूर्णे चेदर्धरात्रे तु यदा संक्रमते रविः । प्राहुर्दिनद्वयं पुण्यं मुक्त्वा मकरकर्कटौ ” ॥ इति ।

३० अन्हि यदि संक्रान्तिर्भवति तदा कृत्स्नमहःपुण्यमिति वदता अर्थात् रात्रौ स्नानादिकं प्रति-पिध्यते । एवं सत्युदयोत्तरकालभाविनि दक्षिणायने पूर्वभागप्राशस्त्यं बाधित्वोत्तरभागोऽनुष्ठानं भवति । अस्तमयप्राचीनक्षणभाविन्युत्तरायणे उत्तरभागप्राशस्त्यं परित्यज्य पूर्वभागोऽनुष्ठानं भवति । पूर्वोत्तरभागप्राशस्त्यवचनं तु मध्याह्नादिसंक्रमणविषयम् । तत्राहन्येव हेयोपादेयभागद्वयसंभवात् ।

स्मर्यते च—

“अहःसंक्रमणे रात्रौ अनुष्ठाननिषेधतः । उक्तकालौ व्यवस्थाप्यौ तद्व्यात्पूर्वपश्चिमौ” ॥ इति । मकरन्यायेनैव अस्तमयप्राचीनभविषु षडशीतिमुखेष्वपि पूर्वभागप्राशस्त्यं द्रष्टव्यम् । उभयभागप्राशस्त्योपेतेषु विषुवविष्णुपदेषु मध्याह्नभाविषु पूर्वोत्तरत्र वा स्वेच्छयाऽनुष्ठातव्यम् । उदयानंतरभाविषु तेषु पूर्वभागे प्राशस्त्यबाधः । अस्तमयप्राचीनेषु तेषु उत्तरभागप्राशस्त्येषु बाध इति विवेकः । यदा रात्रौ संक्रमणं भवति तदा रात्रेः पूर्वस्य दिनस्योत्तरस्य वा अर्धं प्रहरद्वयं स्नानादौ पुण्यम् । कुत्र पूर्वदिनं कुत्रोत्तरमिति विवक्षायां तदुभयमर्धरात्रादित्यनेन वचनेन व्यवस्थाप्यते । द्वितीयप्रहरस्य चरमघटिका तृतीयप्रहरस्य प्रथमघटिकेत्येतत् घटिका-द्वयात्मकः कालोऽर्धरात्रः । तस्मादर्धरात्रादधः संक्रमणे सति पूर्वदिने मध्याह्नस्योपरि प्रहर-द्वये क्रिया कार्या । अर्धरात्रादूर्ध्वं संक्रमणे सत्युत्तरकालीनादुदयादूर्ध्वं प्रहरद्वयं पुण्यम् । ‘पूर्णे १० चेदर्धरात्र’ इति यथोक्तघटिकाद्वये संक्रांतौ पूर्वोत्तरादिनद्वयं कृत्स्नं पुण्यम् । तदुक्तं भविष्योत्तरे— “संक्रमस्तु निशीथे स्यात् षड्यामाः पूर्वपश्चिमाः । संक्रांतिकाले विज्ञेयस्तत्र स्नानादिकं चरेत्” ॥ अत्रेयं व्यवस्था । अर्धरात्रे यदा षडशीतिः स्यादेतद्वचनानुसारेण पूर्वोत्तरादिन-द्वयस्य पुण्यत्वाद्यद्यप्यौत्सर्गिको विकल्पः प्राप्नोति तथाऽप्युत्तरदिने षष्टि घटिका प्राशस्त्य-प्रतिपादकप्रातिस्विकवचनानुग्रहबलात्तत्रैवानुष्ठातव्यम् । विषुवयोर्विष्णुपदेषु च प्रातिस्विकवचनस्य पूर्वोत्तरभागयोः साम्येन प्राशस्त्यप्रतिपादकत्वात् पूर्वस्मिन्नुत्तरस्मिन्वा स्वेच्छयाऽनुष्ठानमिति विकल्प्यते । अयनयोस्तु प्रकारांतरं वक्ष्यते । अयनव्यतिरिक्तासु दशसु संक्रातिषु मध्यरात्रा-दूर्ध्वं प्रवृत्तासु परेद्युरनुष्ठानमित्यत्र न कोऽपि संशयः । अर्धरात्रात्पूर्वं प्रवृत्तासु तासु दशसु मध्ये षडशीतिव्यतिरिक्तानां षण्णां पूर्वदिनेऽनुष्ठानमित्यत्रापि नास्ति संदेहः । षडशीत्यां तु सामान्य-वचनेन पूर्वद्युरनुष्ठानं प्राप्तं षष्टिघटिकाप्राशस्त्यप्रतिपादकप्रातिस्विकवचनेन परेद्युः प्राप्नोति । २० अत्र पूर्वद्युरनुष्ठानमिति निर्णयः ।

“विष्णुपद्यां धनुर्मीनयुगमकन्यासु वै यदा । पूर्वोत्तरगतं रात्रौ भानोः संक्रमणं भवेत् ॥ “पूर्वाह्णे पंचनाड्यस्तु पुण्याः प्रोक्ता मनीषिभिः । अपराह्णे तु पंचैव श्रौते स्मार्ते च कर्मणि” ॥ इति स्मृतेः— धनुर्मीनयुगमकन्यासु । युगं मिथुनम् । यदा रात्रौ पूर्वभागगतं विष्णुपदीषडशीति-संक्रमणं तदा पूर्वद्युरपराह्णे पंचनाड्यः पुण्याः । उत्तरभागगते संक्रमणे परेद्युः पूर्वाह्णे पंच-नाड्यः पुण्याः । न चैवं सति प्रहरद्वयपुण्यत्वविरोध इति वाच्यम् । पंचनाडिकावचने पुण्याति-शयस्य वाच्यत्वात् । प्रहरद्वयवाक्यं तु पुण्यमात्राभिप्रायमिति देवीपुराणे—

“अर्धरात्रे त्वसंपूर्णे दिवा पुण्यमनागतम् । संपूर्णं उभयोर्ज्ञेयमतिरिक्ते परेऽहनि” ॥ इति । देवलोऽपि—

“आसन्नसंक्रमं पुण्यं दिनार्धं स्नानदानयोः । रात्रौ संक्रमणे भानोः विषुवत्ययने दिने” ॥ ३० रात्रौ भानोः संक्रमणे विषुवन्नामके जाते सति संक्रमणप्रत्यासन्नदिनार्धं पुण्यम् । अयननामक-संक्रमणे दिवा जाते सति यथायोगं कर्कटके पूर्वं दिनार्धं मकरे तूत्तरार्धं पुण्यम् । एतच्च मध्यंदिनायनविषयम् । उदयास्तमयप्रत्यासन्ने त्वयने कृत्स्नदिवसपुण्यत्वनिर्णयः पूर्वमेवोक्तः । अयनव्यतिरिक्तेषु दशसु संक्रमणेषु रात्रिभागेषु यो निर्णयः तं सर्वं पर्युदस्यति वृद्धवसिष्ठः— “मुक्त्वा मकरकर्कटौ” इति । “या यः संनिहिता नाड्याः तास्ताः पुण्यतमाः स्मृताः” इति । ३५

सामान्यवचनेन सर्वेषु रात्रिसंक्रमणेषु रात्रावेवानुष्ठानं प्रसक्तं तदपोद्य दशसंक्रांतिषु दिवानुष्ठानं विधाय मकरकर्कटयोः तत्पर्युदासे सति पूर्वप्रसक्तं रात्र्यनुष्ठानमेव पर्यवस्यति ।

एवं सति रात्रौ संक्रांतिस्नानमभ्युपगच्छतो मनुवचनस्यापि कश्चिद्विषयविशेषः संपद्यते ।

तथा च मनुः—

५ “ राहुदर्शनसंक्रांतिविवाहात्ययवृद्धिषु । स्नानदानादिकं कार्यं निशि काम्यव्रतेषु च ” ॥ इति ।

सुमंतुरपि—

“रात्रौ स्नानं न कुर्वीत दानं चैव विशेषतः । नैमित्तिकं तु कुर्वीत स्नानं दानं च रात्रिषु ॥

“यज्ञे विवाहे यात्रायां तथा पुस्तकवाचने । श्रवणे चेतिहासस्य रात्रौ दानं प्रशस्यते” ॥ इति ।

ननु यथोक्तपर्युदासानुगृहीतैः मन्वादिवचनैर्मकरकर्कटयोर्निश्चयानुष्ठानप्रापणं शास्त्रांतर-

१० विरुद्धम् । तथा भविष्योत्तरे—

“ मिथुनात्कर्कसंक्रांतिर्यदि स्यादंशुमालिनः । प्रभाते वा निशीथे वा कुर्यादहनि पूर्वतः ॥

“ कार्मुकं तु परित्यज्य मकरं क्रमते रविः । प्रदोषे वाऽर्धरात्रे वा स्नानं दानं परेऽहनि ” ॥ इति ।

वृद्धगार्ग्योऽपि—

“यदास्तमयवेलायां मकरं याति भास्करः । प्रदोषे वार्धरात्रे वा स्नानं दानं परेऽहनि” ॥ इति ।

१५ “ अर्धरात्रे तदूर्ध्वं वा संक्रांतौ दक्षिणायने । पूर्वमेव दिनं ग्राह्यं यावन्नोदयते रविः ॥

“प्रत्यूषे कर्कटं भानुः प्रदोषे मकरं यदि । संक्रमत् षष्ठिनाड्यस्तु पुण्याः पूर्वोत्तराः स्मृताः” ॥ इति ।

मैवम् । एतेषु वचनेषु रात्र्यनुष्ठानप्रतिषेधाप्रतीतिः । दिवसानुष्ठानविधानेनैवार्थात् रात्र्यनुष्ठानप्रतिषेधकल्पने पर्युदासानुगृहीतरात्रिस्नानविधायकवचनानामानर्थक्यं प्राप्नोति । तस्माच्छास्त्रद्वयेन विरुद्धप्राप्तौ तत्तद्देशप्रसिद्धशिष्टाचारेण व्यवस्थेति कालनिर्णये निर्णीतम् । केचित्तु

२० “ रात्रौ संक्रमणे पुण्यं दिनार्धं स्नानदानयोः । पूर्णे चेद्वर्धरात्रे तु यदा संक्रमते रविः ॥

“ प्राहुर्दिनद्वयं पुण्यं मुक्त्वा मकरकर्कटौ ” ॥ इत्येवं मकरकर्कटयोरपि प्रसक्तौ इति पर्युदासात्

“ रात्रौ मकरकर्कटसंक्रांतौ स्नानं दानं परेहनि । पूर्वमेव दिनं ग्राह्यम् ” इति तयोर्विशिष्य निश्चितत्वात् रात्रौ स्नानादिकं कार्यं रात्रौ संक्रमणं पुण्यं राहुदर्शनसंक्रान्तीत्यादीनि रात्रौ स्नानविधायीनि वचनानि मकरकर्कटान्यसंक्रमविषयाणि । अतस्तयोः पूर्वापरदिन एव स्नानम् ।

२५ तदितरसंक्रमेषु तु “रात्रौ संक्रमणे पुण्यं दिनार्धं स्नानदानयोः” इति विधानाद्विकल्प इति काला दर्शानुसारिण आहुः । उक्तस्य स्नानदानादेरुक्तेष्वपि कालेषु विशेषमाह शातातपः—

“कुर्यात्सदायने मध्ये विष्णुपद्यां विषूवति । षडशीत्यामंत्यभागे स्नानादिविधिमाहृतः” ॥ इति ।

अयनादिषु यत्र यावान् पुण्यकाल उक्तः तावन्तं कालं त्रेधा विभज्य मध्ये विष्णुपद्यामित्याद्यवगंतव्यम् । अयने सदा यावान् पुण्यकाल उक्तः तत्तस्मिन्सर्वत्र कुर्यादित्यर्थः ।

३० तस्मिन्नपि मध्यादिभागे याः सन्निहिता नाड्यस्तासां पूर्वोदाहृतवचनेन पुण्यतमत्वं द्रष्टव्यम् । गालवस्तु—“मध्ये विषूवतिदानं विष्णुपदे दक्षिणायने चादौ षडशीतिमुखेऽतीते तथोदगयने च भूरि फलम् ” । इति । संक्रांतिषु फलमाह वृद्धवसिष्ठः—

“ अयने कोटिपुण्यं च सहस्रं विपुत्रे फलम् । षडशीत्यां सहस्रं तु फलं विष्णुपदेऽपि च ” ॥ इति ।

रजस्वलास्नानमाह अंगिराः—

३५ “ स्नानं रजस्वलायास्तु चतुर्थेऽहनि निर्दिशेत् । कुर्याद्राजासि निर्वृत्ते शौचार्थं तु ततः पुनः ” ॥

योगयाज्ञवल्क्यः—

“हस्तेऽश्रीयान्मुन्मये वा हविर्भुक् क्षितिशायिनी।रजस्वला चतुर्थेऽन्हि स्नात्वा शुद्धिमवाप्नुयात्”॥

पद्धतौ—

“त्रिरात्रं च व्रतं कृत्वा श्रुतिस्मृतिसमीरितम् । चतुर्थे संगवे स्नात्वा स्त्रीधर्मं तु समाचरेत् ” ॥

संग्रहे—

“मृते च सूतके चांते संगवे स्नानमाचरेत् । संगवात्परतः स्नानमार्तवे तु विशिष्यते” ॥ इति ।

कात्यायनः—“रजस्वला चतुर्थेऽन्हि स्नात्वा शुद्धिमवाप्नुयात् ” ॥ मनुरपि (५।६५)—

“रजस्युपरते साध्वी स्नानेन स्त्री रजस्वला ” ॥ इति । रजोनिवृत्त्यनंतरं पुनः स्नानेन साध्वी दैवादिकर्मार्हा स्यादित्यर्थः । यत्पुनः अंगिरोवचनम्—

“शुद्धा भर्तुश्चतुर्थेऽन्हि स्नात्वा नारी रजस्वला । दैवे कर्मणि पित्र्ये च पंचमेऽहनि शुध्यति”॥ इति । १०

तद्रजोनिवृत्तिकालोपलक्षणार्थम् । यतः स एवाह—

“साध्वाचारा न तावत् सा स्नातापि स्त्री रजस्वला।यावत् प्रवर्तमानं हि रजोऽस्या न निवर्तते”॥इति ।

साध्वाचारा दैवादिकर्मयोग्येत्यर्थः । स्पर्शयोग्या तु स्नानादनंतरं भवत्येव ।

“स्नाता रजस्वला या तु चतुर्थेऽहनि शुध्यति । कुर्याद्रजोनिवृत्तौ तु दैवपित्र्यादि कर्म च ”॥ इति

पराशर स्मरणात् (७।१७) । रोगजन्यरजोऽनुवृत्तौ तु नास्त्यशुद्धिः । यदाह अंगिराः— १५

“रजश्चतुर्विधं शैयं रोगजं रागजं तथा । धातुजं कालजं चेति योषितां तु बुधोत्तमैः ॥

“एकादशात् द्वादशाद्वा वर्षादूर्ध्वं भवेद्रजः । पंचाशद्वत्सरादूर्ध्वं स्त्रीणां तत्तु निवर्तते ॥

“रोगेण यद्रजः स्त्रीणामत्यर्थं तु प्रवर्तते । अशुद्धा नैव सा तेन यस्माद्वैकारिकं हि तत्”॥

एवमकाले रागादिजनितरजोदर्शने द्रष्टव्यम् । तथा चंद्रिकायाम्—(पृ. ११८ पं. १)

“अकाले यद्भवेत् स्त्रीणां रक्तमाहुर्मनीषिणः । काले तु यद्रजः प्रोक्तं तस्मात्तत्रैव सा शुचिः” ॥ २०

अंगिराः—

“आ द्वादशाहान्नारीणां मूत्रवच्छौचमिष्यते।आऽष्टादशाहात्स्नानं स्यात् त्रिरात्रात्परतः शुचिः”॥इति ।

विज्ञानेश्वरः (प्रा. पृ. १७६ पं. ३२)—“यदा रजोदर्शनादारभ्य पुनः सप्तदशदिनाभ्यंतरे

रजोदर्शनं तदा अशुद्धिर्नास्त्येव । अष्टादशे त्वेकाहाच्छुद्धिः । एकोनविंशे व्यहात् । तत उत्तरेषु

व्यहाच्छुद्धिः । यस्या विंशतिदिनोत्तरं प्रायशो रजोदर्शनं तस्या विंशतिदिनप्रभृति त्रिरात्रम् । २५

यस्याः पुनः प्रागेवाष्टादशदिनात्प्राचुर्येण रजोनिर्गमस्तस्याः त्रिरात्रम् । तथा अत्रिः—

“रजस्वलायां स्नातायां पुनरेव रजस्वला । अष्टादशदिनादर्वाक् अशुचित्वं न विद्यते॥

“उनविंशदिनादर्वाक् एकाहमशुचिर्भवेत्” । इति । स्मृत्यर्थसारे “रजस्वला चतुर्थेऽन्हि

षष्ठिमृत्तिकाभिः शौचं कृत्वा विधवा चेत् द्विगुणमृत्तिकाभिः शौचं कृत्वा दंतधावनपूर्वं संगवे

सचैलं स्नायात् । स्नातायाः पुनरपि रजो दृष्टावष्टादशदिनादर्वाक् अशुचित्वं नास्ति । अष्टादशदिने ३०

रजोदृष्टौ एकरात्रमशुचिः । एकोनविंशे द्विरात्रम् विंशे त्रिरात्रमेव । प्रायो विंशतिदिनादूर्ध्वं रजः-

स्त्राविणीनामेवम् ” इति । प्रसूतिकाविषये प्रजापतिः—

“प्रसूतिका तु या नारी स्नानतो विंशतेः परम् । आर्तवी रजसा प्रोक्ता प्राक् तु नौमित्तिकं रजः ॥

“रजस्युपरते तत्र स्नानेनैव शुचिर्भवेत् ” ॥

संग्रहे—

“प्रथमेऽहनि चंडाली द्वितीये सूतिका भवेत् । तृतीयेऽह्नि स्वधर्मस्था चतुर्थे पतिता यथा ॥

“संग्रवांते चतुर्थेऽह्नि स्नानाच्छुद्धिमवाप्नुयात् ॥

“एकविंशतिधा लिप्य सर्वांगं शुद्धया मृदा । कृत्वा स्नानशतं पश्चात् शुचिर्भवति नान्यथा ॥

५ “स्नानांते भास्करं दृष्ट्वा पुत्रं प्रार्थ्य सुमंगली । त्रिवारं प्राशयेदन्नं न चेदोषवती भवेत्” ॥ इति ।

बोधायनः—

“रजस्वला तु संस्पृष्टा चंडालान्त्यश्ववायसैः । तावत्तिष्ठेन्निराहारा यावत् कालेन शुध्यति” ॥ इति ।

भोजनकालस्पर्शः स एव—

“रजस्वला तु भुंजाना श्वान्त्यजादीन् स्पृशेद्यदि । गोमूत्रयावकाहारा षट्त्रयेण विशुध्यति ॥

१० “अशक्तौ कंचनं दद्यात् विप्रेभ्यो वाऽपि भोजनम्” ॥ इति । बृहस्पतिः—

“पतितांत्यश्वपाकैश्च संस्पृष्टा चेद्रजस्वला । तान्यहानि व्यतिक्रम्य प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥

“प्रथमेऽह्नि त्रिरात्रं स्यात् द्वितीये ब्रह्मेव च । अहोरात्रं तृतीयेऽह्नि चतुर्थे नक्तमाचरेत् ॥

“रजसा भुंजते नार्यो मोहात् स्पृष्टाः शवादिभिः । त्र्यहे परिसमाप्ते तु कृच्छ्रं चांद्रायणोत्तरम्” ॥

अखंडादर्शः—

१५ “उच्छिष्टेन तु संयुक्ता चंडालादीन्यदि स्पृशेत् कृच्छ्रं सांतपनं कुर्यात् चांद्रायणमथापि वा” ॥ इति ।

विण्मूत्रोत्सर्गे भुक्त्वा वा अकृतशौचाया रजस्वलायाश्चंडालादिस्पर्शे अकामतश्चाद्रायणं कामतः सांतपनमिति व्यवस्था । संग्रहे—

“आर्तवाभिप्लुता नारी शवं स्पृष्ट्वा विमोहिता । आ स्नानकालान्नाश्रीयादासीना वाग्यता बहिः” ॥

भृगुः—

२० “सूतकं प्रेतकं स्पृष्ट्वा श्रुत्वा बंधुषु मारणम् । आ स्नानकालान्नाश्रीयात्पञ्चगव्येन शुध्यति ॥

“आर्तवाभिप्लुतायास्तु शावाशौचं भवेद्यदि । सूतकं वा भवेन्मध्ये स्नात्वा भोजनमिष्यते” ॥ इति ।

स्नात्वा वेत्रादिनिर्मितपात्रेन्द्रततोयैरिति शेषः । पराशरः—

“स्नाने नैमित्तिके प्राप्ते नारी यदि रजस्वला । पात्रांतरिततोयेन स्नानं कृत्वा व्रतं चरेत् ॥

“सिक्तगात्रा भवेद्द्विः सांगोपांगं कथंचन । न वस्त्रपीडनं कुर्यान्नान्यद्वासश्च धारयेत् ॥

२५ “शावे च सूतके चैव ह्यंतरा चेदतुर्भवेत् । नास्नात्वा भोजनं कुर्यात् भुक्त्वा चोपवसेदहः” ॥

अत्र स्नानप्रकारमाह स एव—

“मृतसूतकमध्ये तु रजोदृष्टौ कथं भवेत् । ब्राह्मणानां करैर्मुक्तं तोयं शिरसि धारयेत् ॥

“सर्वतीर्थजलाच्छेष्टं तोयं विप्रकरच्युतम् । दद्याच्छक्त्या ततो दानं पुण्याहेन विशुध्यति” ॥ इति ।

रजस्वलयोरन्योन्यसंस्पर्शं वर्णक्रमेण शुद्धिमाह पराशरः (७।१३-१६)—

३० “स्पृष्ट्वा रजस्वलाऽन्योन्यं ब्राह्मणी ब्राह्मणी तथा । तावत्तिष्ठेन्निराहारा त्रिरात्रेणैव शुध्यति ॥

“स्पृष्ट्वा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मणी क्षत्रिया तथा । अर्धकृच्छ्रं चरेत्पूर्वा पादमेकं त्वनंतरम् ॥

“स्पृष्ट्वा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मणी वैश्यजा तथा । पादहीनं चरेत्पूर्वा पादमेकं त्वनंतरम् ॥

“स्पृष्ट्वा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मणी शूद्रजा तथा । कृच्छ्रेण शुध्यते पूर्वा शूद्रा दानेन शुध्यति” ॥ इति ।

ब्राह्मण्योः स्पर्शं तत आरभ्य स्नानपर्यंतमुभयोराहारत्यागः त्रिरात्रकृच्छ्रं च । एतच्च सहशयनादि-

३५ चिरस्पर्शविषयम् । संहृत्य स्पर्शं तु एकगत्रोपवामेन पंचगव्येन शुद्धिः स्नानपर्यंतमाहारत्यागश्च ।

“ आर्तवाभिप्लुता नारी त्वार्तवाभिप्लुतां स्पृशेत् । स्नात्वोपवासं कुर्यातां पंचगव्येन शुध्यतः ॥
 “ आ स्नानकालान्नाश्रीतो भुक्त्वा चांद्रायणं भवेत् ” ॥ इति स्मरणात् । स्मृत्यर्थसारे—
 “ कृच्छ्रं तस्या यया स्पृष्टमन्यस्यास्तु तदर्धकम् । दांडाद्यंतर्हि ते नो चेत् अन्यस्या अपि कृच्छ्रकम् ” ॥
 इति । कृच्छ्रमत्र त्रिरात्रादि । तत्रैव—

“ स्पृष्टे रजस्वलेऽन्योन्यं सगोत्रे चैकभर्तृके । कामतोऽकामतो वाऽपि त्रिरात्रेणैव शुध्यतः ” ॥ ५
 त्रिरात्रेण त्रिरात्रोपवासेन ।

“ शुना पुष्पवती स्पृष्टा पुष्पवत्यान्यया तथा । शेषाण्यहान्युपवसेत् स्नात्वा शुध्येद् घृताशनात् ” ॥
 इति संवर्तवचनम् अकामकृतस्पर्शविषयम् । वृद्धविष्णुरपि “ रजस्वलां हीनवर्णां रजस्वलां
 स्पृष्ट्वा न तावदश्रीयाद्यावन्न शुद्धिः स्यात् । सवर्णामधिकवर्णां स्पृष्ट्वा सद्यः स्नात्वा शुध्यति ” ॥ इति
 विष्णुः (२२।७२)—

“ रजस्वला हीनवर्णा सार्तवामुत्तमां यदि । स्पृशेत् स्पृष्ट्वा न भुंजीत स्नानादूर्ध्वं तु भोजनम् ” ॥ इति ।
 “ उपवासं ततः कुर्याद् ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ” ॥ स्पर्शं सत्युद्धृतैः स्नात्वा उपोष्य
 चतुर्थाहे स्नानादूर्ध्वं ब्राह्मणान् भोजयित्वा भुंजीतेत्यर्थः । स एव— “ रजस्वलासंस्पृष्टोऽ-
 स्नात्वा भुंजन्नुपवासत्रयं चरेत् । तच्छायां भुक्तिपात्रं वा स्पृष्ट्वा अस्नात्वा भुंजन्नुपवासेन
 शुध्येन्मलिनं तद्वासस्तदन्नं स्पृष्ट्वा अस्नात्वा भुंजन्नुपवासत्रयं चरेत् । उदक्यापात्रे
 अज्ञानात् भुंजन् प्राजापत्यमभ्यस्येत् । उदकयोच्छिष्टं भुंजन् कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ।
 भोजनकाले रजस्वलांतरदर्शने “ आ स्नानकालं नाश्रीयात् ब्रह्मकूर्चं ततः पिबेत् ” । चंडालदर्शने
 उपवासत्रयम् । कामतस्तु प्राजापत्यम् । रजस्वलाश्वादिभिर्दृष्टा यदि पंचरात्रं निराहारा पंचगव्येन
 शुध्यति ” ॥ इति ।

अखंडादर्शे— “ रजस्वलाया भोजनं पाने वा प्रतिलोमप्रसूतानामन्यतमनिरीक्षणे स्नानांतमनशनं
 तदशक्तौ प्रतिनिधिरेकस्य दिनस्य पंच वा त्रीन्वा विप्रान्भोजयेत् ” ॥ इति । अत्रिः—

“ आर्तवा यदि चंडालमुच्छिष्टा संप्रपश्यति । आ स्नानकालात् नाश्रीयादासीना वाग्यता बहिः ॥
 “ पादकृच्छ्रं ततः कुर्यात् ब्रह्मकूर्चं पिबेत्पुनः । ब्राह्मणान्भोजयेद्दद्याद्विप्राणामनुशासनात् ” ॥ इति ।
 ज्वरादिभिरातुरस्य स्नाननिमित्ते प्राप्ते कर्तव्यमाह पराशरः (७।२०)—

“ आतुरस्नान उत्पन्ने दशकृत्वो ह्यनातुरः । स्नात्वा स्नात्वा स्पृशेदेनं ततः शुध्येत्स आतुरः ” ॥ इति । २५
 अत्र प्रतिस्नानमातुरस्य वासो विपरिवर्तनीयम् । उशनाः—

“ ज्वराभिभूता या नारी रजसा च परिप्लुता । कथं तस्या भवेच्छौचं शुद्धिः स्यात्केन कर्मणा ॥
 “ चतुर्थेऽहनि संप्राप्ते स्पृशेदन्या तु तां स्त्रियम् । सा सचैलावगाह्याऽपः स्नात्वा स्नात्वा पुनः स्पृशेत् ” ॥
 “ दश द्वादशकृत्वो वा ह्याचामेच्च पुनः पुनः । अन्यान्यानि च वासांसि ततः शुद्धा भवेन्तु सा ॥
 “ दद्याच्छक्त्या ततो दानं पुण्याहेन विशुध्यति ” ॥ इति । योगयाज्ञवल्क्यः—

“ तूष्णीमेवावगाहेत यदा स्यादशुचिर्नरः । आचम्य प्रयतः पश्चात् स्नानं विधिवदाचरेत् ” ॥
 विष्णुरपि

“ स्नानार्हस्तु निमित्तेन कृत्वा तोयावगाहनम् । आचम्य प्रयतः पश्चात् स्नानं विधिवदाचरेत् ” ॥ इति ।
 शातातपः—

“ मार्गे तु यत्र संस्पृष्टिर्यात्रायां कलहादिषु । ग्रामसंदूषणे चैव स्पृष्टिदोषो न विद्यते ” ॥ ३५

पद्मत्रिंशन्मतेऽपि—

“ देवयात्राविवाहेषु यज्ञेषु प्रकृतेषु च । उत्सवेषु च सर्वेषु स्पृष्टात् स्पृष्टिर्न दुष्यति ” ॥
बृहस्पतिरपि—

“ तीर्थे विवाहे यात्रायां संग्रामे देशविष्टवे । नगरे ग्रामदाहे च स्पृष्टात् स्पृष्टिर्न दुष्यति ” ॥

५ पाञ्चेऽपि—

“ देवालयसमीपस्थान् देवसेवार्थमागतान् । चंडालान्पतितान्वाऽपि स्पृष्ट्वा न स्नानमाचरेत् ” ॥

आपस्तंबः (१।५।१५।८) “ शक्तिविषये न मुहूर्तमप्यप्रयतः स्यात् ” इति ॥

इति नैमित्तिकस्नानानि । अथ काम्यस्नानानि । पुलस्त्यः—

“ पुष्पे च जन्मनक्षत्रे व्यतीपाते च वैधृतौ । अमायां च नदीस्नानं पुनात्या सप्तमं कुलम् ॥

१० “ रव्यंगारशनेर्वारि स्नानं कुर्वति ये नराः । व्याधिभिस्ते न पीडयन्ते मृगैः केसरिणो यथा ॥

“ चैत्रकृष्णचतुर्दश्यां यः स्नायाच्छिवसन्निधौ । न प्रेतत्वमवाप्नोति गंगायां च विशेषतः ” ॥

यमः—

“ कार्तिक्यां पुष्करे स्नातः सर्वपापैः प्रमुच्यते । माघ्यां स्नातः प्रयागे तु मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥

“ सूर्यग्रहणतुल्या तु शुक्लमाषस्य सप्तमी । अरुणोदयवेलायां तस्यां स्नानं महाफलम् ॥

१५ “ पुनर्वसुबुधोपेता चैत्रमाससिताष्टमी । स्रोतःसु विधिवत्स्नात्वा वाजपेयफलं लभेत् ” ॥

शातातपोऽपि—

“ अमावास्या भवेद्वारे यदा भूमिसुतस्य वै । जान्हवी स्नानमात्रेण गोसहस्रफलं लभेत् ॥

“ कार्तिकं सकलं मासं नित्यस्नायी जितेंद्रियः । जपन्हविष्यभुक् स्नातः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

“ तुलायां मकरे मेषे प्रातःस्नायी सदा भवेत् । हविष्यं ब्रह्मचर्यं च महापातकनाशनम् ” ॥

२० चंद्रिकायाम् (पृ. १२३ पं. ७)—“ आषाढादिचतुर्मासं प्रातःस्नायी भवेन्नरः ।

“ विप्रेभ्यो भोजनं दत्त्वा कार्तिक्यां गोप्रदो भवेत् । स वैष्णवपदं याति विष्णुव्रतमिदं स्मृतम् ” ॥

मार्कण्डेयः—

“ सर्वकालं तिलैः स्नानं पुण्यं व्यासोऽब्रवीन्मुनिः । तुष्यत्यामलके विष्णुरेकादश्यां विशेषतः ॥

“ श्रीकामः सर्वदा स्नानं कुर्वीतामलकैर्नरः । सप्तमीं नवमीं चैव पर्वकालं च वर्जयेत् ” ॥ इति ।

२५ योगयाज्ञवल्क्योऽपि—

“ धात्रीफलैरमावास्यासप्तमीनवमीषु च । न स्नायात्तस्य हीयते तेज आयुर्धनं सुतः ” ॥

धात्री आमलकी । चंद्रिकायाम् (पृ. १२६ पं. २)—

“ षष्ठी च सप्तमी चैव नवमी च त्रयोदशी । संक्रांतौ रविवारे च स्नानमामलकैः त्यजेत् ” ॥ इति ।

ज्ञानकोऽपि—

३० “ कल्केनामलकेनासु न विप्रः स्नानमाचरेत् । संपत्कामस्तु सप्तम्यां नवम्यां नष्टशीतगौ ॥

“ अर्थकामी त्रयोदश्यां दशम्यां पुत्रवत्सलः । पुत्रार्थकामो यो विप्रो द्वितीयायां कदाचन ” ॥

माधवीये—

“ गुरुवारेऽप्यमायां च ह्यश्वत्यच्छायवारिणा । स्नानं प्रयागस्नानेन समं पातकनाशनम् ॥

“ शल्मलीति तिणीनिवकरंजौ द्वौ हरीतकी । कोविदारकपित्थार्का वदरी च विभीतकः ॥

३५ “ शेलुश्च खादिरश्चैषां स्नानं छायासु वर्जयेत् ” ॥ इति ।

अथ माघस्नानविधिः । तत्र विष्णुः—

“ बालाश्च तरुणा वृद्धा नरनारीनपुंसकाः । स्नात्वा माघे शुभे तीर्थे प्राप्नुवंतीप्सितं फलम् ॥

“ माघमास्युषसि स्नात्वा विष्णुलोकं स गच्छति ॥

“मकरस्थे रवौ यो हि न स्नात्यनुदिते रवौ । कथं पापैः प्रमुच्येत कथं स त्रिदिवं व्रजेत्” ॥ इति ।

अनेन माघस्नानं उदयात्पूर्वमेव कर्तव्यमिति सिद्धम् । यत्तु महाभारते—

“ माघे ह्यर्धोदिते सूर्ये स्नानं विधिवदाचरेत् । नियतो नियताहारः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

“ किञ्चिदभ्युदिते सूर्ये स्नानं माघे समाचरेत् । यस्तस्य सर्वपापानि विनश्यन्ति न संशयः ।

“ माघमासे रटंत्यापः किञ्चिदभ्युदिते रवौ । ब्रह्मघ्नं वा सुरापं वा कं पतंतं पुनीमहे ” ॥ इति ।

तत्संध्योपासनाद्यनधिकृतस्त्रीशूद्रादिविषयम् ।

“ उषस्युपोदये माघे स्नानमाहुर्द्विजन्मनाम् । स्त्रीशूद्राणां तथाऽन्येषामर्धोदय उपोदये ” ॥ १०

इति स्मरणात् । ब्राह्मणादिविषयत्वे संध्यातिक्रमदोषोऽपि दुर्वारः स्यात् । स्नानपूर्वकत्वात्संध्या-

वन्दनादिः । न ह्युदयात्पूर्वं किञ्चिदुदये च कालद्वये स्नानमिति युक्तम् । मार्जनाद्युपस्थानांतस्यैक-

कर्मत्वेन कर्मांतरानुष्ठानायोगात् । उदयसमये उपस्थानविधानाच्च । न च माघे किञ्चिदुदयस्नाना-

नन्तरमनुष्ठानम् । “ संवौ संध्यामुपासीत नास्तगे नोद्वते रवौ ” इति । योगयाज्ञवल्क्येन

संध्योत्कर्षस्य निषेधात्संध्यातिक्रमे शूद्रत्वादिप्राप्तिस्मरणाच्च । यद्वा ‘ उषस्युषसि यत्स्नानं १५

संध्यायामुदितेऽपि वा ’ इतिवत्स्नानं प्रशंसापरं कैमुत्तिकन्यायप्रदर्शनपरं वेत्याहुः । केचित्तु

“ विवेयतारके काले नित्यस्नानं विधाय च । पुनरभ्युदिते सूर्ये माघे स्नानं समाचरेत् ॥

“ अध्यर्धघटिकापूर्वं परं सूर्योदयात्तथा । स एवाभ्युदितो नाम धर्मशास्त्रे प्रकीर्तितः ” ॥ इति ।

वचनमाचक्षाणा उदयानंतरं सार्धघटिकामध्ये द्वितीयस्नानं कर्तव्यमिति वदन्ति ।

विष्णुः—

“ पौषफाल्गुनयोर्मध्ये प्रातःस्नार्थी सदा भवेत् । दर्शं वा पौर्णमासीं वा प्रारभ्य स्नानमाचरेत् ॥

“ पुण्यान्यहानि त्रिंशत्तु मकरस्थे दिवाकरे । तत्र चोत्थाय नियमं गृहीयाद्विधिपूर्वकम् ॥

“ माघमासमिमं पुण्यं स्नास्येऽहं देवमाधव । तीर्थस्यास्य जलैर्नित्यमिति संकल्प्य चेतसि ॥

“ ततः स्नात्वा शुभे तीर्थे दत्त्वा शिरसि वै मृदम् । स्नात्वा पितृस्तर्पयित्वा उत्तीर्य तु ततो जलात् ॥

“ काष्ठमौनी नमस्कृत्य पूजयेत्पुरुषोत्तमम् । शंखचक्रधरं देवं माधवं पूजयेत्तथा ॥

“ वन्हौ हुत्वा विधानेन ततस्त्वेकाशनो भवेत् । भूशय्यो ब्रह्मचर्येण शक्तः स्नानं समाचरेत् ॥

“ अशक्तस्याधनाढ्यस्य स्वेच्छा सर्वत्र कथ्यते । अवश्यमेव कर्तव्यं माघस्नानमिति श्रुतिः ॥

“ तिलस्नार्थी तिलोद्वर्ती तिलहोमी तिलोदकी । तिलदस्तिलभोक्ता च षट् तिलो नावसीदति ॥

“ तिला आमलकाश्चैव तीर्थे देयास्तु नित्यशः । तथा प्रज्वालयेद्वन्हिर्मिधनाद्यैर्द्विजन्मनाम् ॥

“ एवं स्नानस्यावसाने भोजयेत् द्विजदंपती । विविधानि च देयानि प्रच्छादनपटास्तथा ॥

“ अनेन विधिना दद्यान्माधवः प्रीयतामिति ।

“ पित्रा पितामहैः सार्धं तथैव प्रपितामहैः । मात्रा मातामहैः सार्धं वृद्धमातामहैस्तथा ।

“ एकविंशकुलैः सार्धं भोगान्भुक्त्वा यथेप्सितान् । माघमास्युषसि स्नात्वा विष्णुलोकं स गच्छति ” ॥ ३०

नारदीयपुराणे—

“संप्राप्ते माघमासे तु तपस्विजनवल्लभे । क्रोशंति सर्ववारीणि समुद्रच्छति भास्वति ॥

“पुनीमः सर्वपापानि त्रिविधानि न संशयः” ॥ पाद्मे—

“आपो नारायणो देवः सर्ववेदेषु पठ्यते । मकरस्थे रवौ माघे गोविंदाच्युतमाधव ॥

५ “स्नानेनानेन मे देव यथोक्तफलदो भव । इति मंत्रं समुच्चार्य स्नायान्मौनं समाश्रितः ॥

“वहिः स्नात्वा तु वाप्यादौ द्वादशाब्दफलं लभेत् । तटाके द्विगुणं राजन् नद्यादौ तु चतुर्गुणम् ॥

“दशधा देवस्वातेषु शतधा च महानदी । शतं चतुर्गुणं राजन्महानद्योस्तु संगमे ॥

“सहस्रगुणितं सर्वं तत्फलं मकरे रवौ । गंगायां स्नानमात्रेण लभते मानुषो नृप ॥

“पापानां भूरिभारस्य दाहदेशं प्रजापातिः । प्रयागं विदधे भूप प्रजानां च हिते स्थितः ॥

१० “दुर्जया वैष्णवी माया देवैरपि सुदुस्त्यजा । प्रयागे दह्यते साऽपि माघमासि नराधिप ॥

“मकरस्थे रवौ माघे यत्र कापि वहिर्जले । निष्कामैर्वा सक्रामैर्वा स्नातव्यं हरितुष्टये” ॥ इति ।

प्रकरणपर्यालोचनया माघस्नानं नित्यं काम्यं चेत्याहुः । चंद्रिकायाम् (पृ. १११, पं. २६)—

“नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं स्नानमुच्यते । तर्पणं तु भवेत्तस्य अङ्गत्वेन प्रकीर्तितम्” इति ॥

इति काम्यस्नानम् । अथ मलापकर्षणस्नानम् । तत्र भरद्वाजः—

१५ “अभ्यंगस्नपने योग्या वारा ये तिथिभिः सह । कथ्यन्ते तेऽधुना स्पष्टं पुष्टये बलवृद्धये ॥

“इंदोर्बुधस्य सौरश्च वारेऽभ्यंगः प्रशस्यते । कांतिं श्रियं तथा दद्युर्भोगान् वाराधिपाः क्रमात् ॥

“द्वितीयाद्याश्चतस्रश्च प्रशस्ताः सप्तमी तथा । नवमी दशमी चैव त्रयोदश्यपि च स्मृताः ॥

“भानुभौमामराचार्यशुक्रवारेषु संक्रमे । व्यतीपाते च जन्मर्क्षे नाभ्यंगस्नानमाचरेत् ॥

“एकादश्यां चतुर्दश्यां अष्टम्यां प्रतिपद्यपि । षष्ठ्यां पर्वणि चाभ्यंगस्नानं नैव समाचरेत् ॥

२० “उत्तराफल्गुनी ज्येष्ठा श्रवणार्द्रास्तु रात्रिषु । अभ्यंगस्नपनं धीमान् सुखार्थी वर्जयेत्तथा ॥

“शिशुरोगार्तवृद्धानां यथाकालं शरीरिणाम् । अभ्यंगोष्णोदकस्नानं नैव दोषावहं स्मृतम्” ॥ इति ।

व्यासः—“पंचमीं दशमीं चैव तृतीयां च त्रयोदशीम् ।

“अभ्यंगात्स्पर्शनात्पानात् यश्च तैलं निषेवते । चतुर्णां तस्य वृद्धिः स्यात् धनापत्यबलायुषाम्” ॥ इति ।

यत्तु गर्ग आह

२५ “न च स्पृष्ट्या त्रयोदश्यां तृतीयायां तिथौ तथा । शाश्वतीं भूतिमन्विच्छन्दशम्यामपि पंडितः” ॥ इति ।

यदपि गार्ग्यः—

“त्रयोदश्यां तृतीयायां प्रतिपद्दशमीद्वये । तैलाभ्यंगं न कुर्वीत पिबेत्तु द्वादशीं विना” ॥ इति ।

यदपि वृद्धगार्ग्यः—

“दशमी पुत्रनाशाय धनहान्यै त्रयोदशी । तृतीयोभयनाशाय स्नाने ता वर्जयेदतः” ॥ इति ।

३० एतानि वचनानि क्षत्रियादिविषयाणि ।

“त्रयोदश्यां तृतीयायां दशम्यां चैव सर्वदा । शूद्रविदक्षत्रियाः स्नानं न कुर्युस्तैलसंस्कृतम्” ॥ इति ।

जावालिस्मरणादिति केचित् । अरे तु सर्वेषामपि द्विजानां दशम्यादावभ्यंगस्नाननिषेधपराण्येव गार्गादिवचनानि । जावालिवचनं तु क्षत्रियादीनां दोषाधिक्यप्रतिपादनार्थम् ।

“सामान्येन निषेधेऽपि दोषाधिक्यान्निषेधनम् । तद्दोषभेदे हेतुत्वादिति शास्त्रविदो विदुः” ॥ इति ।

१५ मरीचिस्मरणादित्याहुः ।

तथा चापस्तंबः—

“यादृच्छिकं तु यत्स्नानं भोगार्थं क्रियते द्विजैः । तन्निषिद्धं दशम्यादेर्नित्यं नैमित्तिकं न तु”॥

जाबालिरपि—

“नित्यं न हापयेत्स्नानं काम्यं नैमित्तिकं च यत्। दशम्यामपि कर्तव्यं न तु यादृच्छिकं क्वचित्”॥ इति यादृच्छिकं मलापकर्षणार्थम् । “मलव्यपोहनफलं स्नानं यादृच्छिकं तु तत्” इति । गर्गस्मरणात् । ५
एवं च नित्यनैमित्तिककाम्यस्नानानां दशम्यादावप्रतिषेधः । यादृच्छिकस्यैव निषेधः । यदुक्तं आपस्तम्बेन—“विना तु सततस्नानं न स्नायाद्दशमीषु च” इति । यदपि गर्गेणोक्तम्—
“पुत्रजन्मनि संक्रांतौ श्राद्धे जन्मदिने तथा। नित्यस्नाने च कर्तव्ये तिथिदोषो न विद्यते”॥ इति । तत्काम्यनैमित्तिकयोरपि प्रदर्शनार्थमिति स्मृतिचंद्रिकायाम् (पृ. १२५ पं. २६) ।

व्यासः—“षष्ठ्यष्टमी पंचदशी पक्षद्वयचतुर्दशी । अत्र संनिहितं पापं तैले मांसे क्षुरे भगे” ॥ १०

मनुरपि—

“पक्षादौ च रवौ षष्ठ्यां रिक्तायां च तथा तिथौ । तैलेनाभ्यज्यमानस्तु धनायुर्भ्यां प्रहीयते” ॥

गर्गः—चंद्रिकायाम् (पृ. १२५ पं. १०)—

“पंचदश्यां चतुर्दश्यामष्टम्यां रविसंक्रमे । द्वादश्यां सप्तमीषष्ठ्योस्तैलस्पर्शं विवर्जयेत्” ॥

“कुहुपूणैदुसंक्रांतिचतुर्दश्यष्टमीषु च । नरश्रृंङ्गालयोनिः स्यात्तैलस्त्रीमांससेवनात्” ॥ १५

“उत्पत्तौ च विपत्तौ च दंतकाष्ठेषु मैथुने । अभ्यंगेऽभ्युदयस्नाने तिथिस्तात्कालिकी स्मृता”॥ इति ।

पुराणेऽपि—“चतुर्दश्यष्टमी षष्ठी अमावास्या च पूर्णिमा । पर्वाण्येतानि राजेन्द्र रविसंक्रांतिरेव च॥

“तैलस्त्रीमांससंभोगी पर्वस्वेतेषु यः पुमान् । विण्मूत्रभाजनं नाम प्रयाति नरकं नरः”॥

बोधायनोऽपि—

“अष्टम्यां च चतुर्दश्यां पंचदश्यां विशेषतः । शिरोभ्यंगं वर्जयेत् पर्वसंधौ तथैव च” ॥ इति । २०

वृद्धगाग्योऽपि—

“एकादश्यां दशम्यां च द्वादश्यां पंचपर्वसु । श्राद्धाहे च व्रताहे च स्त्रियं तैलं च वर्जयेत्”॥ इति ।

मरीचिरपि—

“पंचपर्वसु नंदासु व्यतीपाते च संक्रमे । स्त्रियं तैलं च मांसं च दंतकाष्ठं च वर्जयेत्” ॥ इति ।

गर्गः—

“तैलस्नानं सदा पुण्यं कुर्यादामलकैः श्रियै । सप्तमीनवमीदर्शरविसंक्रमणादृते” ॥ २५

शातातपोऽपि—

“अमायां च नवम्यां च सप्तम्यां च विशेषतः । धात्रीकल्केन यत्स्नानं तत्स्नानं च विवर्जयेत्”॥

कालादर्शे—

‘सप्तमी नवमी दर्शसंक्रांतिग्रहणेषु च । धात्रीफलस्य कल्केन तैलस्नानं च नाचरेत्”॥ इति । ३०

वृद्धवसिष्ठः—

“दंतकाष्ठे त्वमावास्या मैथुने च चतुर्दशी । हंति सप्तकुलं पुंसां तैलग्रहणतोऽष्टमी ॥

“दिवा कपित्थलायायां रात्रौ दधिषु सक्तुषु । धात्रीकल्के तु सप्तम्यामलक्ष्मीर्विसते सदा”॥

एवं वारनिषेधोऽपि ज्योतिःशास्त्रे च दर्शितः—

“संतापः कांतिरल्पायुर्धनं निर्धनता तथा । अनारोग्यं सर्वकामा अभ्यंगाद्भास्करादिषु”॥ ३५

वामनपुराणे—चंद्रिकायाम् (पृ. १२५ पं. १४)

“नाभ्यंगमर्के न च भूमिपुत्रे क्षौरं च शुके च कुजे च मांसम् ।

“बुधे च योषित्परिवर्जनीया शेषेषु सर्वाणि सदैव कुर्यात् ” ॥

“तैलाभ्यंगो नार्कवारे न भौमे न संक्रांतौ वैधृतौ नापि षष्ठ्याम् ।

“पर्वण्यष्टम्यां च नेष्टश्चतुर्थ्यां प्रोक्तो मुक्त्वा वासरं सूर्यसूनोः ” ॥ सूर्यसूनुः शनैश्चरः ।

१५ स्मृत्यन्तरेऽपि—“पाते पर्वणि संक्रांत्यां ग्रहणे चंद्रसूर्ययोः तैलाभ्यंगो न दोषः य यदि स्याद्रविन्दनः ” ॥
कालादर्श—

“भौमार्कशुक्रवारेषु नाभ्यंगस्नानमाचरेत् । तापकांतिमृतिद्रव्यारोग्यालक्ष्म्याखिलेप्सितम् ।

“क्रमाद्रव्यादिवारेषु तैलेन स्नास्यतः फलम् ” इति । षट्त्रिंशन्मते—

“हृत्तापकान्ती मरणं धनमारोग्यमेव च । दारिद्र्यं सर्वकामातिरभ्यंगे भास्करादिषु ” ॥

१० वृद्धवसिष्ठोऽपि—

“सूर्यादिसौर्यतदिने नराणां तैलोपभोगात् क्रमशः फलानि ।

“हृत्तापकान्ती मरणं धनं च रोगग्रहाणं विधनत्वमिष्टम् ” इति ॥ चंद्रिकायाम् (पृ. १२५ पं. १०) ।

“चित्रासु हस्ते श्रवणे च तैलं क्षौरं विशाखासु भिषक्षु वर्ज्यम् ॥

“मूले मृगे भाद्रपदे तु मांसं योषिन्मवासूत्तरकृत्तिकासु ” ॥

१५ कालादर्श—“तिथिवारसमायोगे वलीयान्वार इष्यते ” ॥ ब्रह्मसिद्धान्ति—

“तिथिरेकगुणा प्रोक्ता नक्षत्रं च चतुर्गुणम् । करणं षड्गुणं चैव वारश्चाष्टगुणः स्मृतः ” ॥ इति ।

स्मृत्यर्थसारे—

“तैलाभ्यंगनिषेधेषु तिलतैलं निषिध्यते । अभ्यंगस्य निषेधे तु सार्षपादिर्विशील्यते ॥

“स्नेहेनाभ्यंगो भवति सस्नेहः सार्षपादिकः । न भोजनादौ तैलस्य निषेधोऽभ्यंग एव सः ॥

२० “तैलशब्दस्तिलस्नेहे सुखदो नैव यौगिकः । अतस्तिलविकारेषु पिण्याकतिलमोदके ॥

“गण्डुलीकृसरदौ च निषेधो नैव जायते । सार्षपादौ तैलशब्दस्तत्कार्यसदृशत्वतः ” ॥ इति ।

संग्रहे—

“श्राद्धाहे जन्मदिवसे विवाहे सुखदुःखयोः । व्रते चैवोपवासे च तैलाभ्यंगं विवर्जयेत् ॥

“उपोषितस्य व्रतिनः कृत्तकेशस्य नापितैः । तावत्तिष्ठति वै लक्ष्मीर्यावत्तैलं न संस्पृशेत् ” ॥

२५ स्मृतिरत्नावल्याम्—

“सुरया लिप्तदेहस्य प्रायश्चित्तं विधीयते । प्रातरभ्यक्तदेहस्य निष्कृतिर्न विधीयते ” ॥

अयं निषेधो नरकचतुर्दशीव्यतिरिक्तविषयः ।

“प्रन्यूप आश्वयुक् कृष्णचतुर्दश्यामिनोदये । स्नानमभ्यज्य कर्तव्यं नरैर्नरकभीरुभिः ” ॥ इति

रमरणात् । स्मृतिरत्ने—

३० “आश्वयुक् कृष्णपक्षे तु चतुर्दश्यामिनोदये । तैलाभ्यङ्गेन कर्तव्यं स्नानमुष्णेन वारिणा ” ॥

स्मृत्यर्थसारे—

“यस्यां हतश्चतुर्दश्यां नरको विष्णुना निशि । तस्यामभ्यजनं कार्यं नरैर्नरकभीरुभिः ” ॥ इति ।

कालादर्श—

“प्रन्यूप आश्वयुक्कृष्णे कृताभ्यङ्गादिमंगलः । भक्त्या संपूजयेत्तुलसीमलक्ष्मीविनिवृत्तये ” ॥

सारसंग्रहे—“चतुर्दशी याऽश्वयुजस्य कृष्णा स्वात्यर्कयुक्ता तु भवेत्प्रभाते ।

“स्नानं समभ्यज्य नरैस्तु कार्यं सुगंधितैलेन विभूतिकामैः” ॥ इति ।

“तैले लक्ष्मीर्जले गंगा दीपावलिदिने वसेत् । अलक्ष्मीपरिहारार्थमभ्यंगस्नानमाचरेत्” ॥ इति ।

“तत आभरणं वस्त्रं धारयेत्सर्वसंपदः” इति । विष्णुपुराणे—

“स्वातिस्थिते रवाविंदुर्यादि स्वातिगतो भवेत् । पंचत्वगुदकस्नायी कृताभ्यंगविधिर्नरः ॥ ५”

“नीराजितो महालक्ष्मीमन्त्रयंश्चिच्छ्रयमश्रुते । दीपैर्नीराजनादत्र सैषा दीपावली स्मृता” ॥ इति ।

स्मृत्यर्थसारे—

“तैलाभ्यंगे निषिद्धाः स्युः सर्वाश्च तिथयः सदा । द्वितीयां वर्जयित्वैव दृष्टादृष्टद्विदोषतः” ॥ इति ।

प्रायशः सर्वासु तिथिषु अभ्यंगस्य निषेधे प्राप्ते तैलविशेषमभ्यनुजानाति प्रचेताः—

“सार्षपं गंधतैलं च यत्तैलं पुष्पवासितम् । अन्यद्रव्ययुतं तैलं न दुष्यति कदाचन” ॥ १६

यमोऽपि—

“घृतं च सार्षपं तैलं यत्तैलं पुष्पवासितम् । न दोषः पक्वतैलेषु स्नानाभ्यंगेषु नित्यशः” ॥

संग्रहे—

“पक्वतैलं गंधतैलं सार्षपं पुष्पवासितम् । वर्ज्याहिष्वप्यदुष्टं स्यात् द्रव्यांतरयुतं तथा” ॥

स्मृत्यर्थसारे—

“निषिद्धदिवसे वारे रात्रौ च व्याधितस्य च । द्रव्यांतरयुतं तैलं न दुष्यति कदाचन ॥

“शवानुगमनं क्षौरं कृत्वा नाभ्यंगमाचरेत् । स्नानीयं च तथा विप्रो न शुध्यति कदाचन” ॥ इति ।

सत्यव्रतः—“पिष्टपक्कारनालेन घृतेनाथ जलेन वा ।

“आमं वाऽपि युतं तैलं न कदाचन दुष्यति । रोगातुरस्यापि तथा तैलं जातु न दुष्यति” ॥

पुराणे—“तिथिनक्षत्रवारेषु निषिद्धेष्वपि रात्रिषु । तैलमाज्येन संयुक्तमद्भिर्वा शुद्धिमाप्नुयात्” ॥ २०

स्मृत्यंतरे—

“रवौ पुष्पं गुरौ दूर्वा भृगौ गोमयमेव च । भौमे भूमिं विनिक्षिप्य तैलाभ्यंगं समाचरेत् ।

“द्रव्यांतरयुतं तैलं न दुष्येद्ग्रहणं विना । तुलसीदलसंयुक्तं ग्रहणेऽपि न दुष्यति ॥

“शिरोभ्यक्तेन तैलेन नांगं किंचिदुपस्पृशेत् । तिलापिष्टं च नाश्रीयात्तस्य चायुर्न रिष्यति” ॥

गार्ग्यः—

“कुर्यान्नैमित्तिकं स्नानं शीताद्भिः काम्यमेव च । नित्यं यादृच्छिकं चैव यथारुचि समाचरेत्” ॥

सत्यव्रतः—“मंत्रवन्मंत्रहीनं च स्नानं द्विविधमीरितम् ।

“मंत्रैर्यत्क्रियते स्नानं मंत्रवत्तत्प्रकीर्तितम् । मलापनुत्यै तैलाभ्यंगमंत्रहीनं मलापहम्” ॥ इति ।

स्मृतिप्रदीपिकायाम्—“अनुद्धृतैरुद्धृतैर्वा जलैः स्नानं समाचरेत्” ॥ देवलः—

“उद्धृताश्चापि शुध्यन्ति शुद्धैः पात्रैः समुद्धृताः । एकरात्रोषिता आपस्त्याज्याः शुद्धा अपि स्वयम्” ॥ ३०

इति । महाभारते—

“पादाभ्यंगं शिरोभ्यंगं द्विजोच्छिष्टावमार्जनम् । एकैकं पाण्डवश्रेष्ठ राजसूयाद्विशिष्यते” ॥

नारदीये—

“तैलाभ्यंगं महाराज ब्राह्मणानां करोति यः । स स्नातोऽब्दशतं साग्रं गंगायां नात्र संशयः” ॥ इति ।

- इति मलापकर्षणस्नानम् ।

अथ क्रियास्नानम् । तत्र शंखः—“क्रियास्नानं प्रवक्ष्यामि यथावद्विधिपूर्वकम् ॥

“सरःसु देवस्वातेषु तीर्थेषु च नदीषु च । क्रियास्नानं समुद्दिष्टं स्नानं तत्र क्रिया मता ॥

“मृद्भिरद्भिश्च कर्तव्यं शौचमादौ यथाविधि । जले निमग्न उन्मज्ज्य उपस्पृश्य यथाविधि ॥

“तीर्थस्यावाहनं कुर्यात्तत्प्रवक्ष्याम्यतः परम् । प्रपद्य वरुणं देवमंभसां पतिमूर्जितम् ।

५ “याचितं देहि मे तीर्थं सर्वपापापनुत्तये ॥

“तीर्थमावाहयिष्यामि सर्वाषविनिषूदनम् । सांनिध्यमस्मिन्स्वे तोये स्थीयतां मदनुग्रहात् ॥

“रुद्रान्प्रपद्ये वरदान् सर्वान्पुषदस्त्वहम् । देवमपुषदं वन्हिं प्रपद्येऽघनिषूदनम् ॥

“अपः पुण्याः पवित्राश्च प्रपद्ये शरणं तथा । रुद्राश्चाग्निश्च सर्वश्च वरुणश्चाप एव च ॥

“शमयन्त्वाशु मे पापं रक्षन्तु च सदैव माम् । इत्येवमुक्त्वा कर्तव्यं ततः संमार्जनं कुशैः ॥

१० “आपोहिष्ठेति तिसृभिर्यथावदनुपूर्वशः । हिरण्यवर्णा इति च ऋग्भिश्च तिसृभिस्तथा ॥

“शं नो देवीरिति तथा शं न आपस्तथैव च । इदमापः प्रवहतेत्येवं च समुदीरयेत् ॥

“एवं संमार्जनं कृत्वा छंद आर्षं च दैवतम् । अघमर्षणसूक्तस्य संस्मरेत्प्रयतः सदा ॥

“ततोऽभसि निमग्नस्तु त्रिः पठेदघमर्षणम् । प्रदद्यान्मूर्धनि तथा महाव्याहृतिभिर्जलम्”॥

तीर्थयात्रायां वर्जनीयमाह व्यासः—

१५ “छत्रं च हरते पादं अर्धं हरति पादुका । यानं हरेत्रिपादं तु सर्वं हरति डोलिका ॥

“ऐश्वर्याल्लोभमोहाद्वा गच्छेद्यानादिभिस्तु यः । निष्फलं तस्य तत्तीर्थं तस्माद्यानादि वर्जयेत्”॥

विष्णुः—

“गोभिर्युक्तेन यानेन तीर्थयात्रां करोति यः । स याति नरकं घोरं यावद्गोरोमसंख्यया ”॥ इति ।

पैठीनसिः—

२० “षोडशांशं स लभते यः परार्थेन गच्छति । अर्धतीर्थफलं तस्य यं प्रसंगेन गच्छति ॥

“तीर्थं प्राप्यानुषंगेण यस्तत्र स्नानमाचरेत् । स्नानार्धफलमाप्नोति तीर्थयात्राश्रुतं न तु ॥

“नृणां पापकृतां तीर्थे पापस्य शमनं भवेत् । यथोक्तफलदं तीर्थं भवेच्छुद्धात्मनां नृणाम् ” ॥

व्यासोऽपि—

“यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम् । विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते”॥

२५ वृद्धवसिष्ठोऽपि—

“पितरं मातरं वाऽपि भ्रातरं सुहृदं गुरुम् । निमज्जेत्तु यमुद्दिश्य द्वादशांशं लभेत सः ॥

“तत्प्रार्थिते त्वष्टमांशं लभेत् स्नानफलं नरः ” ॥ पैठीनासिः—

“प्रतिकृतिं कुशमयीं तीर्थवारिणि मज्जयेत् । मज्जयेत्तु यमुद्दिश्य अष्टभागं लभेत सः ”॥

अत्रायं मंत्रः—

३० “कुशोऽसि त्वं पवित्रोऽसि ब्रह्मणा निर्मितः पुरा । त्वयि स्नाते स च स्नातो यस्येतद्गन्धिर्वधनम्”॥ इति ।

तीर्थफलं न विक्रीणीयात् । तथा चापस्तंबः (१।२०।१२-१३) । “मांसमायुधं सुकृताशां च तिलतंडुलास्त्वेव धान्यस्य विशेषेण न विक्रीणीयात्” इति । सुकृताशां तीर्थस्नानादिसुकृत-फलम् । धर्मदानं तु विषयविशेषे स्मर्यते ।

“देवतानां गुरुणां च मातापित्रोस्तथैव च । पुण्यं देयं प्रयत्नेन नापुण्यं चोदितं क्वचित्”॥ इति ।

शाण्डिल्यः—

“जीवनार्थं हतं तीर्थं जीवनार्थं हतं व्रतम् । संदिग्धोऽपि हतो मन्त्रो व्यग्रचित्तो हतो द्विजः ॥
“पृथिव्यां यानि तीर्थानि तानि सर्वाणि सागरे । सागरे यानि तानि स्युः पादे विप्रस्य दक्षिणे” ॥ इति ।
आश्वमेधिके भारते—“हरिरचिन्त्यात्मा यत्रैव मधुसूदनः । तत्तीर्थं तत्परं ब्रह्म तत्पुण्यं तत्तपोवनम् ॥
“आचारवस्त्रान्न विशोधितेन सत्यप्रसन्नक्षमशीतलेन ।

५

“ज्ञानांबुना स्नाति हि यश्च नित्यं किं तस्य भूयः सलिलेन कृत्यम् ” ॥ शाण्डिल्यः—

“कुटुंबिनो विनाऽन्येषां दृष्टं तीर्थादिसेवनम् । कुटुंबिनां गृहे सर्वं विकलो निर्गतो गृहात् ॥
विकलः शून्यनित्यक्रमः ।

अथ नदीनां रजोदोषनिर्णयः । तत्र कात्यायनः—

१०

“संप्राप्ते श्रावणे मासि सर्वा नद्यो रजस्वलाः । तासु स्नानं न कुर्वीत वर्जयित्वा तु जान्हवीम्” ।
योगयाज्ञवल्क्यः—

“यावन्नोदेति भगवान् दक्षिणाशाविभूषणम् । तावद्रेतो महानद्यो वर्जयित्वा तु जान्हवीम्” ॥ इति ।
यावन्नोदेत्यगस्त्यः तावद्रेतोवहा रजस्वला इत्यर्थः । उदयोऽपि तस्य शरद्येव ज्योतिःशास्त्रे
दर्शितः । एवं च वर्षाकाले रजस्वला इत्युक्तं भवति । मरीचिः—

१५

“कर्कटे सरितः सर्वा भवंतीह रजस्वलाः । अप्रशस्तं तदा स्नानं वर्षादौ नववारिणा” ॥

वृद्धगाग्योऽपि—

“वर्षादौ सरितः सर्वा भवंतीह रजस्वलाः । तासु स्नानं न कुर्वीत वर्जयित्वा तु जान्हवीम्” ॥ इति ।
मार्कण्डेयः—

“द्विमासं सरितः सर्वा भवंतीह रजस्वलाः । अप्रशस्तं ततः स्नानं वर्षादौ नववारिणि ” ॥ २०

कात्यायनोऽपि—

“नभोनभस्ययोर्मध्ये सर्वा नद्यो रजस्वलाः । तासु स्नानं न कुर्वीत देवर्षिपितृतर्पणम् ” ॥ इति ।
एतत्सर्वं कर्कटादिमासद्वयाभिप्रायम् । यदाहात्रिः—

“सिंहकर्कटयोर्मध्ये सर्वा नद्यो रजस्वलाः । न स्नानादीनि कर्माणि तासु कुर्वीत मानवः ” ॥
सिंहकर्कटमासद्वयमध्ये सर्वा नद्यो रजस्वला इत्यर्थः । योगयाज्ञवल्क्यः—

२५

“रजोदृष्टेभ्यो स्नानं वर्ज्यं नद्यादिषु द्विजैः । कदर्थितं रजस्तेषां संध्योपास्तिश्च तर्पणम्” ॥ इति ।
कदर्थितं कुत्सितम् । व्याघ्रपादः—

“सिंहकर्कटयोर्मध्ये सर्वा नद्यो रजस्वलाः । तासु स्नानं न कुर्वीत वर्जयित्वा समुद्रगाः ” ॥ इति ।
समुद्रगाः महानदीः । तत्र विशेषो दर्शितो भविष्यत्पुराणे—

“आदौ कर्कटके सर्वा महानद्यो रजस्वलाः । त्रिदिनं तु चतुर्थेऽन्वि शुद्धाः स्युर्जान्हवी यथा” ॥ ३०

महाभारतेऽपि—

“महानद्यो देविका च कावेरी नर्मदा तथा । रजसा तु प्रदुष्टाः स्युः कर्कटात्तु ज्यहं नृप” ॥
महानद्यो दर्शिता ब्रह्मपुराणे—

“गोदावरी भीमरथी तुंगभद्रा च वेणिका । तापी पयोष्णिगा विंध्यदक्षिणे तु प्रकीर्तिताः ॥

“ भागीरथी नर्मदा च यमुना च सरस्वती । विशोका च वितस्ता च विंध्यस्योत्तरसंज्ञिताः॥

“ द्वादशैता महानद्यो देवर्षिक्षेत्रसंभवाः ” ॥ वामनपुराणे—

“ गोदावरी भीमरथी कृष्णवेणी सरस्वती । तुंगभद्रा सुप्रयोगा वेण्णा कावेरिकेति च ॥

“ दुग्धोदा नलिनी रेवा वारिगीता कउस्वना । एता अपि महानद्यः सद्यमूलाद्विनिःसृताः ” ॥ इति ।

५ चृसिंहपुराणेऽपि—

“ गंगा च यमुना गोदावरी स्यात्तुंगभद्रका । कावेरी च महापुण्या नहानद्यः प्रकीर्तिताः ” ॥ इति ।

भरद्वाजः—

“ उद्भूत्वा भूधरेऽभोधिं प्रविशत्यंबुसंततिः । या सा महीनदी ज्ञेया सर्वपापप्रणाशिनी ” ॥ इति ।

एवं महानदीत्वेन परिगणितानामेव दिनत्रयं रजोदोषः । अन्यासां तु समुद्रगानामपि मासद्वयं

१० रजोदोष इत्यभिप्रेत्याह कात्यायनः—

“ प्रावृट्काले महानद्यः संति नित्यं रजस्वलाः । तासु स्नानं न कुर्वीत वर्जयित्वा तु जान्हवीम् ” ॥ इति ।

स एव—

“ कर्कटादौ रजोदुष्टा गोमती वासरत्रयम् । चंद्रभागा सती सिंधुः सरयूर्नर्मदा तथा ” ॥ इति ।

अत्रापवादमाह मरीचिः—

१५ “ आदित्यदुहिता गंगा पृथ्वजाता सरस्वती । रजसा नाभिभूयंते ये चान्ये नदसंज्ञिताः ” ॥

मार्कण्डेयः—

“ कालिंदी गौतमी गंगा वेणिका च सरस्वती । सामर्थ्यादाभिजात्याच्च रजो नाभिभवंत्यमूः ” ॥

आभिजात्यं देवसंभूतत्वम् । कात्यायनोऽपि—

“ जान्हव्यादित्यसंभूता पृथ्वजाता सरस्वती । रजसा नैव दुष्यंति नदाः कृष्णा च वेणिका ” ॥

२० वामनपुराणे—

“ सरस्वती नदी पुण्या तथा वैतरणी नदी । आपगा च महापुण्या गंगा मंदाकिनी तथा ॥

“ मधुप्रवाहांशुमती कौशिकी पापनाशिनी । दृषद्वती महापुण्या तथा वैतरणी नदी ॥

“ एतासामुदकं पुण्यं वर्षाकाले प्रवर्धितम् । रजस्वलात्वमेतासां विद्यते न कदाचन ” ॥

यमः—

२५ “ गंगा धर्मोद्भवा पुण्या यमुना च सरस्वती । अंतर्गतरजोयोगाः सर्वाहः स्वपि चामलाः ” ॥

कालादर्गे— “ सिंहकर्कटयोर्नद्यः सर्वा एवा रजस्वलाः ।

“ त्रिदिनं स्युर्महानद्यो गोदां वेण्यां सरस्वतीम् । भागिरथी च कालिन्दीं नदान् शोणादिकान्विना ” ॥

कात्यायनस्तु गंगाया अपि रजोदोषमाह

“ प्रवृत्ते श्रावणे मासि त्र्यहं गंगा रजस्वला । चतुर्थेऽहनि संप्राप्ते शुद्धा भवति जान्हवी ” ॥ इति ।

३० योगयाज्ञवल्क्योऽपि— “ प्रथमं कर्कटादौ तु त्र्यहं गंगा रजस्वला ” इति । अत्र जान्हव्या

रजोयोगाभाववचनानां भूयस्वात् रजोदोषो नास्तीत्येव युक्तम् । केचित्तु

“ या निःसृता नदाः प्रोक्ताः याश्च गंगेति कीर्तिताः । एतासां कर्कटे भानौ रजोदोषो न विद्यते ॥

“ कावेरी तुंगभद्रा च कृष्णवेणी च गौतमी । भागीरथी च विख्याता पंचगंगाः प्रकीर्तिताः ” ॥ इति

वचनमुदाहरंतः कावेर्या रजोदोषो नास्तीत्याहुः ।

अपरे पुनः

“कालिंदी गौतमी गंगा वेणिका च सरस्वती । सामर्थ्यादाभिजात्याच्च रजो नाभिभवंत्यमूः” ॥
इत्यविद्यमानरजोदोषासु गौतमीभागीरथीकृष्णवेणीषु गंगाभिधानासु “याश्च गंगेति कीर्तिता” इति
वचनस्य सावकाशत्वात्

“महानद्यो देविका च कावेरी नर्मदा तथा । रजसा तु प्रदुष्टाः स्युः कर्कटादौ व्यहं नृप” ॥ इति । ५
प्रातिस्विकमहाभारतवचनाच्च दिनत्रयं रजोदोषोऽस्तीत्याहुः ।

“एवमुक्तरजोदोषस्य क्वचित्क्वचिदपवादमाह कात्यायनः—

“उपाकर्मणि चोत्सर्गे प्रेतस्नाने तथैव च । चंद्रसूर्यग्रहे चैव रजोदोषो न विद्यते ॥

“महदंबुसमं वाऽपि यदि तिष्ठेत्पुरातनम् । नवांबुमिश्रितं तेन न दुष्टमिति सूरयः” ॥

व्याघ्रपादः—

“अभावे कूपवापीनां अनपायिपयोभृताम् । रजोदुष्टेऽपि पयसि ग्रामभोगो न दुष्यति” ॥ इति ।

इति नदीरजोनिर्णयः ॥ अथ गौणस्नानानि । तत्र दक्षः—

“अशिरस्कं भवेत् स्नानं कटीमात्रमशक्तितः । आर्द्रेण वाससा वाऽपि सर्वांगपरिमार्जनम्” ॥

जाबालिः—“अशिरस्कं भवेत्स्नानं स्नानाशक्तौ तु कर्मिणः ।

“नाभिमात्रं निमज्ज्याप्सु कटिं वा क्षालयेज्जलैः । आर्द्रेण वाससा वाऽपि मार्जनं कापिलं विदुः” ॥ १५

पराशरः (१२।९-११)—

“स्नानानि पंच पुण्यानि कीर्तितानि महर्षिभिः । आग्नेयं वारुणं ब्राह्मं वायव्यं दिव्यमेव च ॥

“आग्नेयं भस्मना स्नानं अवगाह्य तु वारुणम् । आपोहिष्ठेति च ब्राह्मं वायव्यं गोरजः स्मृतम् ॥

“यत्तु सातपवर्षेण तत्स्नानं दिव्यमुच्यते । तत्र स्नात्वा तु गंगायां स्नातो भवति मानवः” ॥

दक्षोऽपि—

“आग्नेयं वारुणं ब्राह्मं वायव्यं दिव्यमेव च । पंच स्नानानि पुण्यानि मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत्” ॥

व्यासः—“अशक्तावशिरस्कं वा स्नानमस्य विधीयते ।

“आर्द्रेण वाससा वाऽंगमार्जनं कापिलं स्मृतम् । ब्राह्मादीन्यथवाऽशक्तौ स्नानान्याहुर्मनीषिणः ॥

“ब्राह्ममाग्नेयमुद्दिष्टं वायव्यं दिव्यमेव च । वारुणं यौगिकं चैव षोढा स्नानं प्रकीर्तितम् ॥

“ब्राह्मं तु मार्जनं मंत्रैः कुशैः सोदकबिंदुभिः । आग्नेयं भस्मना पादमस्तकाद्देहधूलनम् ॥ २५

“गवां हि रजसा प्रोक्तं वायव्यं स्नानमुत्तमम् । यत्तु सातपवर्षेण दिव्यं तत्स्नानमुच्यते ॥

“वारुणं चावगाहस्तु मानसं चात्मवेदनम् । यौगिकं स्नानमाख्यातं यद्योगो विष्णुर्चितनम् ॥

“आत्मतीर्थमिति ख्यातं सेवितं ब्रह्मवादिभिः । मनःशुद्धिकरं पुंसां नित्यं तत्स्नानमाचरेत् ।

“शक्तश्चेद्धारुणं विद्वानप्रायत्ये तथैव च” ॥ इति ।

गर्गः—

“दिव्यं वायव्यमाग्नेयं ब्राह्मं सारस्वतं तथा । मानसं चेति विज्ञेयं गौणस्नानं तु षड्विधम्” ॥ इति ।

योगयज्ञवल्क्यः—

“असामर्थ्याच्छरीरस्य कालशक्त्याद्यपेक्षया । मंत्रस्नानादिकान्सप्त केचिदिच्छन्ति सूरयः ॥

“मांत्रं भौमं तथाऽग्नेयं वायव्यं दिव्यमेव च । वारुणं मानसं चेति सप्त स्नानान्यनुक्रमात् ॥

“ आपोहीत्यादिभिर्मंत्रं मृदालंभस्तु पार्थिवम् । वारुणं चावगाहस्तु मानसं विष्णुचिंतनम् ॥
 “ मानसं प्रवरं स्नानं सर्वे शंसन्ति सूरयः । आत्मतीर्थप्रशंसायां व्यासेन पठितं यतः ” ॥

स्मृतिरत्नेऽपि—

“ चतुर्भुजं महादेवं शंसच्चक्रगदाधरम् । मनसा ध्यायते विष्णुं स्नानं मानसमुच्यते ॥

५ “ गायत्र्या जलमादाय दशकुत्वोभिर्मन्त्रं च । शिरस्यंगानि सर्वाणि प्रोक्षयेत्तेन वारिणा ॥

“ स्नानं गायत्रिकं नाम सर्वपापप्रणाशनम् ” ॥ विष्णुः—

“ वृचाभिर्मन्त्रितं तोयं प्रोक्षयेत् मूर्ध्नि सर्वतः । अनुकल्पमिदं स्नानं सर्वपापहरं वृणाम् ” ॥ इति ।

दक्षः— “ आग्नेयं वारुणं ब्राह्मं वायव्यं दिव्यमेव च ॥

“ मानसं पार्थिवं चैव त्वष्ट्रं कृपिलं स्मृतम् । सारस्वतं तथा प्रोक्तं नवमं स्नानमुत्तमम् ” ॥ इति ।

१० तत्र आग्नेयस्नानप्रकारमाह भरद्वाजः—

“ प्राङ्मुखश्चरणौ हस्तौ प्रक्षाल्याचम्य पूर्ववत् । प्राणानायम्य संकल्प्य भस्मस्नानं समाचरेत् ॥

“ आदाय भसितं श्वेतं अग्निहोत्रसमुद्भवम् । ईशानेन तु मंत्रेण स्वमूर्धनि विनिक्षिपेत् ॥

“ तत आदाय तद्भस्म मुखे तत्पुरुषेण तु । अधोराख्येन हृदये गुह्ये वामाह्वयेन च ॥

“ सद्योजाताभिधानेन भस्म पादद्वये क्षिपेत् । सर्वांगं प्रणवेनैव मंत्रेणोद्धूनयेत्ततः ॥

१५ “ एतदाग्नेयकं स्नानं उदितं परमर्षिभिः । सर्वकर्मसमृद्ध्यर्थं कुर्यादादाविदं बुधः ” ॥ इति ।

आपस्तंबोऽपि—

“ भस्म स्यादग्निहोत्राग्नेरावसथ्यादथापि वा । अभावे चानयोर्विप्रः स्वगृह्याग्नेरथापि वा ॥

“ भस्म त्वादाय विधिवत् स्नानमाग्नेयमाचरेत् । भस्म स्थाप्य करे वामे विध्युक्तं प्राग्यथोदितम् ॥

“ सौवर्णे राजते वाऽपि तात्रे पात्रांतरेऽपि वा । अग्निरित्यादिभिर्मन्त्रैः प्रणवेन तथैव च ॥

२० “ षड्भिर्मन्त्रैः प्रजप्तेन कास्यहृद्गुह्यपद्वये । ईशाद्यैः पंचभिर्मन्त्रैः क्रमादुद्धूलयेत्ततः ” ॥ इति ।

अग्निरित्यादयो मंत्रा अथर्वशिरस्यभिहिताः । “ अग्निरिति भस्म । वायुरिति भस्म । जलमिति

भस्म । स्थलमिति भस्म । व्योमेति भस्म । सर्वं ह वा इदं भस्म ” इति । कं शिरः ।

लिंगपुराणे— “ ईशानेन शिरोदेशं मुखं तत्पुरुषेण तु ।

“ उरोदेशमधोरेण गुह्यं वामेन सुव्रतः । सद्येन पादौ सर्वांगं प्रणवेन विशोधयेत् ॥

२५ “ कृत्वापि चातुलं पापं मृत्युकालेऽपि यो द्विजः । भस्मस्नायी भवेत्कश्चिद्विप्रं पापैः प्रमुच्यते ” ॥ इति ।

स्मृतिसारसमुच्चये—

“ व्यायुषैश्चैव मन्त्रैस्तु लिप्तमा पादमस्तकम् । गोशकुद्भस्म यत्पुण्यं भस्मस्नानं तदुच्यते ” ॥ इति ।

वारुणस्नानप्रकारमाह व्यासः—

“ स्नानमव्द्वैतैर्मन्त्रैर्जले मज्जनगाहनैः । तर्पणं पितृदेवानां स्नानं वारुणमुच्यते ” ॥

३० बोधायनः—

“ जलावगाहनं स्नानं वारुणं सार्ववर्णिकम् । मंत्रवत्प्रोक्षणं चापि द्विजातीनां विशिष्यते ” ॥ इति ।

ब्राह्मस्नानप्रकारमाह कात्यायनः—

“ आपोहिष्टादिभिर्वाक्मं मंत्रस्नानं हि तत्स्मृतम् । कुशाग्रैर्मर्जनं कुर्याद्वैवतीर्थेन वा द्विजः ॥

“ ऋगंते मार्जनं कुर्यात्पादांते वा समाहितः । वृचस्यांतेऽथ वा कुर्यात् शिष्टानां मतमीरितम् ” ॥

पदांतमार्जनप्रकारमाह ब्रह्मा—

“भुवि मूर्ध्नि तथाकाशे मूध्न्याकाशे तथा भुवि आकाशे भुवि मूर्ध्नि स्यान्मंत्रस्नानं विधीयते”॥ इति भुवि पादयोः । आकाशे हृदि । प्रकारांतरमुक्तं स्मृत्यंतरे—

“पच्छोप्यर्धर्चशोऽप्यृक्शः आपोहिष्ठेत्यृचेन च । कुशाग्रैर्मार्जनं कुर्याद्देवतीर्थेन वा द्विजः ॥

“पादादिप्रणवं कुर्यादर्थर्चादि तथैव च । ऋगादिप्रणवं कुर्यान्मंत्रस्नाने विशेषतः ” ॥ इति । ५

गृह्यपरिशिष्टे (१।२१) “अथाशक्तस्य मंत्रस्नानम् । शुचौ देशे शुचिराचांतः प्राणानायम्य दर्भपाणिस्तिसृभिरापोहिष्ठाभिः पच्छः प्रणवपूर्वं दर्भोदकैर्मार्जयेत् । पादयोर्मूर्ध्नि हृदये पादयोर्हृदये पादयोर्मूर्ध्नि चाथार्धर्चशो मूर्ध्नि हृदये पादयोर्हृदये पादयोर्मूर्ध्नि चाथ ऋक्शो हृदये पादयोर्मूर्ध्नि च । अथ तृचेन मूर्ध्नि मार्जयित्वा गायत्र्या दशधाभिर्मन्त्रिता आपः प्रणवेन पीत्वा द्विराचामेदित्येतन्मंत्रस्नानम् ” ॥ इति । योगयाज्ञवल्क्यस्तु—

१०

“शं न आपस्तु द्रुपदा आपोहिष्ठाधमर्षणम् । एतैश्च पंचभिर्मन्त्रैर्मंत्रस्नानमुदाहृतम् ” ॥ इति । वायव्यसारस्वते दर्शयति बृहस्पतिः—

“वायव्यं गोरजः प्रोक्तं अस्तं गच्छति गोपतौ । विद्वत्सरस्वतीप्राप्तं स्नानं सारस्वतं विदुः”॥ इति । गोपतौ सूर्ये । विदुषां सरस्वती वाणी । तथा प्राप्तं सारस्वतमित्यर्थः । तत्स्वरूपमाह व्यासः—

“स्वयमेवोपसन्नाय विनयेन द्विजातये । तज्ज्ञः संपादयेत्स्नानं शिष्याय च सुताय च ॥ १५

“दाक्षायणमयैः कुंभैर्मन्त्रवज्जान्हवीजलैः । कृतमंगलपुण्याहैः स्नानमस्तु तदर्थिनाम् ॥

“आदौ तावत्प्रभासे बहुगुणसलिले मध्यमे पुष्करे च ।

“गंगाद्वारे प्रयागे कनखलसहिते गव्यकर्णे गयायाम् ।

“राहुग्रस्ते तु सोमे दिनकरसहिते सत्यपत्याविशेषात् ।

“एतैर्विख्यातरूपैस्त्रिभुवनविदितैः स्नानमच्छिद्रमस्तु ॥

२०

“प्राप्य सारस्वतं तीर्थं भवेन्मुदितमानसः । सर्वतीर्थाभिषेकान्द्वि पवित्रं विदुषां हि तत्”॥ इति ।

स एव—

“शुचौ देशे मृदं गृह्य कुर्याद्वात्रोपलंभनम् । मन्त्रैः पार्थिवसंयुक्तैः भौमस्नानं तदुच्यते ” ॥

मृत्तिके हन मे पापमित्यादयः पार्थिवसंयुक्ता मन्त्राः ।

“गोखुराद्रज आदाय गोसावित्रीं जपेद्बुधः । गात्रेष्वधि तदालिप्य स्नानं वायव्यमुच्यते ॥ २५

“उत्तरायणमध्ये तु यदा वर्षति वासवः । आतपेन सह स्नानं दिव्यं स्नानं तदुच्यते ॥

“हृत्स्थितं सर्वभूतानां रविमंडलसंस्थितम् । नीलजीमूतसंकाशं वासुदेवं चतुर्भुजम् ॥

“शंखचक्रगदापद्मधारिणं वनमालिनम् । तत्पादोदकजां गङ्गां निपतंतीं स्वमूर्धनि ॥

“चिंतयेत् ब्रह्मरंध्रेण प्रविशंतीं स्विकां तनूम् । तथा प्रक्षालितं सर्वं स्वदेहं परिचिंतयेत् ॥

“इदं स्नानवरं मन्त्रात्सहस्रादधिकं मतम् । एवं स्नात्वा विशेषेण सर्वपापैः प्रमुच्यते”॥

३०

कूर्मपुराणे—

“अप्रायत्ये समुत्पन्ने स्नानमेव सदाचरेत् । ब्राह्मादीन्यन्यथाशक्तौ स्नानान्याहुर्मनीषिणः ” ॥

जाबालिः—

“अशिरस्कं भवेत्स्नानं स्नानाशक्तौ तु कर्मिणः । तस्याप्यसामर्थ्यविधौ मंत्रस्नानोदिकं चरेत्”॥

स्मृत्यंतरे—

३५

“असामर्थ्याच्छरीरस्य वैषम्याद्देशकालयोः । स्नानान्येतानि तुल्यानि वारुणेन भवंति हि ” ॥

मनुः (११।३०)—

“ प्रभुः प्रथमकल्पेऽपि योऽनुकल्पे प्रवर्तते । न सांपरायिकं तस्य दुर्मतेर्वर्तते फलम् ” ॥ इति । सांपरायिकमामुष्मिकम् । इति गौणस्नानानि । अथोर्ध्वपुण्ड्रधारणाविधिः ॥

तत्र वासुदेवोपनिषत्—अथ गोपीचंदनं नमस्कृत्योद्धृत्य

- ५ “ गोपीचंदनं पापघ्नं विष्णुदेहसमुद्भव । चक्रांकितं नमस्तुभ्यं धारणान्मुक्तिदो भव ” ॥ इमं मे गंगेति जलमादाय विष्णोर्नुकमिति मर्दयेत् । अतो देवा अवंतु न इत्येताभिः विष्णुगायत्र्या च त्रिवारमभिमंज्य

“शंखचक्रगदापाणे द्वारकानिलयाच्युत । गोविंदं पुंडरीकाक्षं रक्ष मां शरणागतम्” ॥ इति मां ध्यात्वा गृहस्थो ललाटादिषु द्वादशस्थानेष्वनामिकांगुल्याद्विष्णुगायत्र्या केशवादिद्वादश-
१० नामभिर्वा धारयेत् । ब्रह्मचारी वानप्रस्थो वा ललाटकंठहृदयबाहुमूलेषु वैष्णव्या गायत्र्या कृष्णादिनामपंचभिर्वा धारयेत् । यतिस्तर्जन्या शिरोललाटहृदयेषु प्रणवेन धारयेत् । परमहंसो ललाटे प्रणवेनैकमूर्ध्वपुंड्रं धारयेत् । तत्र दीपप्रकाशं स्वात्मानं पश्यन् ब्रह्माहमस्मीति भावय-
न्योगी मत्सायुज्यमाप्नोति । ऊर्ध्वदण्डचूर्ध्वरेता य ऊर्ध्वपुण्ड्री ऊर्ध्वयोगवान्स ऊर्ध्वं पदम-
वाप्नोति यतिरूर्ध्वचतुष्कवान् ।

- १५ “ ब्राह्मणानां तु सर्वेषां वैदिकानामनुत्तमम् । गोपीचंदनवारिभ्यां ऊर्ध्वपुंड्रं विधीयते ॥ “ यो गोपीचंदनाभावे तुलसीमूलमृत्तिकाम् । मुमुक्षुर्धारयेन्नित्यं अपरोक्षं आत्मसिद्धये ” ॥ इति । महोपनिषदि—“ धृतोर्ध्वपुंड्रः परमेशितारं नारायणं सांख्ययोगाधिगम्यम् ॥

“ ज्ञात्वा विमुच्येत नरः समस्तैः संसारभारैरिह चैति विष्णुम् ” ॥

कठशाखायाम् “ धृतोर्ध्वपुंड्रो धृतचक्रमीशं विष्णुं परं ध्यायति यो महात्मा ।

- २० “ स्वरेण मंत्रेण सदा हृदि स्थितं परात्परं यो महतो महन्तम् ” ॥ इति ॥

आथर्वणे च “ हरेः पादाकृतिमात्मनो हिताय मध्येच्छिद्रमूर्ध्वपुंड्रं यो धारयति स परस्य प्रियो भवति स पुण्यभाक् भवति स मुक्तिर्भाक् भवति ” इति । अत्रोपबृंहणानि स्मृति-पुराणवचनानि लिख्यन्ते । उपबृंहणत्वं च तेषां महाभारतेऽभिहितम्—

“ इतिहासपुराणाभ्यां वेदार्थमुपबृंहयेत् ” इति । स्कांदेऽपि—

- २५ “ पुराणैरेव विस्पष्टो वेदार्थो ज्ञायते खलु । विभेति मानवाद्देवः पुराणाभ्यां सजीवितात् ” ॥ सुदर्शनाचार्योऽपि “ वेदार्थनिर्णयविधौ हि पुराणमङ्गं निर्णीतवेदविषयाः स्मृतयो भवन्ति ” ॥ इति । सूतसंहितायामपि—

“ अनंतशाखासापेक्षे वैदिकार्थविनिर्णये । स्वबुद्धिकल्पितान्यायाद्वरीयो ह्युपबृंहणम् ” ॥ विष्णुस्मृतौ—

- ३० “ उपवीतं शिखाबंधं ऊर्ध्वपुंड्रं विनाकृतम् । अपवित्रकृतं कर्म विप्रस्य विफलं भवेत् ॥ “ यागो दानं जपो होमं स्वाध्यायः पितृतर्पणम् । भस्मीभवति तत्सर्वं ऊर्ध्वपुंड्रं विना कृतम् ॥ “ अशुचिश्चाप्यनाचारो मनसा पापमाचरन् । शुचिरेव भवेन्नित्यमूर्ध्वपुण्ड्रस्य धारणात् ” ॥ भृगुः—

“ उपवीतविहीनेन पवित्ररहितेन च । तथोर्ध्वपुण्ड्रहीनेन यत्कृतं तन्निरर्थकम् ” ॥

मार्कण्डेयः—“अमंत्रेण कृतं कर्म ह्यपवित्रेण वा कृतम् ।

“ऊर्ध्वपुंड्रं विना वाऽपि कर्म यद्वि द्विजैः कृतम् । तत्सर्वमासुरं विद्यात् कर्तापि नरकं व्रजेत्” ॥

दक्षः—

“कुशपाणिः सदा कुर्यात् सोत्तरीयोर्ध्वपुंड्रधृक् । वेदोक्तमखिलं विद्वानन्यथा स्यान्निरर्थकम्” ॥

मरीचिः—

“सपवित्रकरः स्वस्थः सोत्तरीयोर्ध्वपुंड्रधृक् । कुर्यादहरहः कर्म वेदोक्तं विप्रसत्तमः ॥

“सर्पं दध्वा यथा लोके दर्दुरा भयविह्वलाः । ऊर्ध्वपुंड्रांकितं तद्वत् कंपते यमाकिंकराः” ॥

व्यासः—

“जान्हवीतीरसंभूतां मृदं मूर्ध्ना बिभर्ति यः । बिभर्ति रूपं सोऽर्कस्य तमोनाशाय वै स्मृतः ॥

“ऊर्ध्वपुंड्रो मृदा शुद्धो ललाटे यस्य दृश्यते । स चंडालोऽपि शुद्धात्मा पूज्य एव न संशयः” ॥ १०

स्मृतिसारे—“स्वाध्याये भोजने चैव होमे मंगलकर्मणि । ऊर्ध्वपुंड्रधरो भूयाद्रक्षसां चापनुत्तये” ॥

आत्रेये—“ऊर्ध्वपुंड्रविहीनं यत् शरीरं श्वसन्निभम् । ऊर्ध्वपुंड्रविहीनं तु श्वपाकमिव संत्यजेत् ॥

“ऊर्ध्वं नयति यत्पुंड्रं प्राणिनः पापकारिणः । तस्याख्या ह्यूर्ध्वपुंड्रेति तस्मात्तद्धारयेत् द्विजः” ॥ इति ।

स्मृत्यंतरे—“विष्णवर्पणविहीनं यत् पवित्ररहितं तथा । उत्तरीयोर्ध्वपुंड्राभ्यां रहितं तन्निरर्थकम् ॥

“होमपूजादिसमये सायं प्रातः समाहितः । ऊर्ध्वपुंड्रधरो विप्रो भवेच्छुद्धो न चान्यथा ॥ १५

“निरूर्ध्वपुंड्रस्तु भवेन्न कदाचिदपि द्विजः । वैष्णवश्चोद्विशेषेण सर्वकर्माणि सोऽर्हति ॥

“ऊर्ध्वपुंड्रं ललाटे तु कुर्वीत चतुरंगुलम् । उदरे हृदि कण्ठे च दशाष्टचतुरंगुलान्” ॥ इति ।

अग्निवैश्वानिः—

“त्रिपुंड्रं ब्राह्मणो विद्वान् लीलयाऽपि न धारयेत् । धारयेद्ब्राह्मणः सम्यगूर्ध्वपुंड्रं प्रयत्नतः” ॥

संग्रहे—

“श्रौतस्मार्तक्रियाः सर्वाः ऊर्ध्वपुंड्रमकुर्वतः । जायंते विफलाश्चैव बाधिताश्च भवंति ताः” ॥ इति ।

पुराणेषु । ब्रह्मांडपुराणे ब्रह्माणं भगवानाह—

“ऊर्ध्वपुंड्रप्रमाणानि द्रव्याण्यंगुलिभेदतः । वर्णानि मंत्रदेशांश्च प्रवक्ष्यामि फलानि च ॥

“पर्वताग्रे नदीतीरे मम क्षेत्रे विशेषतः । सिंधुतीरे च वल्मीके तुलसीमूलमाश्रिते ॥

“मृद एतास्तु संग्राह्या वर्जयेदन्यमृत्तिकाः ॥

“श्यामं शांतिकरं प्रोक्तं रक्तं वश्यकरं भवेत् । श्रीकरं पीतमित्याहुर्वैष्णवं श्वेतमुच्यते ॥

“अंगुष्ठः पुष्टिदः प्रोक्तो मध्यमाऽऽयुष्करी भवेत् । अनामिकाऽन्नदा नित्यं मुक्तिदा च प्रदेशिनी ॥

“एतैरंगुलिभेदैस्तु कारयेन्न नखैः स्पृशेत् । वर्तिदीपाकृतिं चापि वेणुपत्राकृतिं तथा ॥

“पद्मस्य मुकुलाकारं तथैव कुमुदस्य च । मत्स्यकूर्माकृतिं वापि शंखाकारमथापि वा ॥

“दशांगुलप्रमाणं तदुत्तमोत्तममुच्यते । नवांगुलं मध्यमं स्यादष्टांगुलमतः परम् ॥

“सप्तषट्पंचाभिः पुंड्रं मध्यमं त्रिविधं स्मृतम् । चतुस्त्रिद्व्यंगुलैः पुंड्रं कनिष्ठं त्रिविधं भवेत् ॥

“ललाटे केशवं विद्यात् नारायणमथोदरे । माधवं हृदि विन्यस्य गोविंदं कंठकूर्परे ॥

“उदरे दक्षिणे पार्श्वे विष्णुं विद्याद्विजस्तथा । तत्पार्श्वे बाहुमध्ये तु स्मरेत्तु मधुसूदनम् ॥

“त्रिविक्रमं कंठदेशे वामे कुक्षौ तु वामनम् । श्रीधरं बाहुके वामे हृषीकेशं तु कंठके ॥

“ पृष्ठे तु पद्मनाभं तु ककुद्दामोदरं स्मरेत् । द्वादशैतानि नामानि वासुदेवेति मूर्धनि ॥

“ पूजाकाले च होमे च सायं प्रातः समाहितः । नामान्युच्चार्य विधिवद्धारयेद्धूर्ध्वपुंड्रकम् ॥

“ ऊर्ध्वपुंड्रधरो मर्त्यो भ्रियते यत्रकुत्रचित् । श्वपाकोऽपि विमानस्थो मम लोके महीयते ” ॥

वामनपुराणेऽपि नारदं प्रति भगवानाह—

५ “ श्रुतिस्मृत्युक्तमार्गेण मृदो धारणमुच्यते । शृणु वत्स विधानेन मृत्साधारणमुत्तमम् ॥

“ मम क्षेत्रे कुरुक्षेत्रे पुण्यक्षेत्रे तथैव च । पर्वताग्रे नदीतीरे तुलसीमूलमाश्रिते ॥

“ अश्वत्थविल्ववल्मीकवकुलाः पनसास्तथा । एतेषु मृत्तिकाः प्रोक्ता यथाविधि समाहरेत् ” ॥

इत्यादि । पाद्मेऽपि—

“ ऊर्ध्वपुंड्रस्य माहात्म्यं वक्ष्यामि तव पार्वति । धारणादेव मुच्येत भवबंधात् द्विजोत्तमः ॥

१० “ ऊर्ध्वपुंड्रस्य मध्ये तु विशाले सुमनोहरे । लक्ष्म्या सार्धं समासीनो देवदेवो जनार्दनः ॥

“ तस्माद्यस्य शरीरे तु ऊर्ध्वपुंड्रं धृतं भवेत् । तस्य देहं भगवतो विशालं मंदिरं शुभम् ॥

“ धारयेद्धूर्ध्वपुंड्रं तु त्रिसंध्यासु द्विजोत्तमः । सर्वपापविशुद्ध्यर्थमिष्टापूर्तफलाप्तये ॥

“ यज्ञदानतपश्चर्याजपहोमादिकं च यत् । ऊर्ध्वपुंड्रधरः कुर्यात् तस्य पुण्यमनंतकम् ॥

“ ऊर्ध्वपुंड्रविहीनस्तु किञ्चित्कर्म करोति यः । इष्टापूर्तादिकं सर्वं निष्फलं स्यान्न संशयः ॥

१५ “ यच्छरीरं मनुष्याणामूर्ध्वपुंड्रविजर्जितम् । द्रष्टव्यं नैव तद्यस्मात् इमंशानसंदृशं भवेत् ॥

“ ऊर्ध्वपुंड्रविहीनो यः संध्याकर्मादिकं चरेत् । तत्सर्वं राक्षसैर्नीतं नरकं चाधिगच्छति ॥

“ ऊर्ध्वपुंड्रं द्विजैः कार्यं श्यामया पीतया मृदा । श्वेतमृत्तिकया धार्यं वैष्णवैश्च विशेषतः ” ॥ इति ।

नारदीये—

“ ऊर्ध्वपुंड्रं यः करोति तुलसीमूलमृत्स्नया । तत्रैव नेत्रं तस्य स्यान्मूर्ध्नि दोर्बिभृयात्कलाम् ॥

२० “ ब्राह्मणस्योर्ध्वपुंड्रं स्यात् क्षत्रियस्यार्धचंद्रकम् । वैश्यस्य वर्तुलाकारं शूद्रस्यैव त्रिपुंड्रकम् ॥

“ ऊर्ध्वपुंड्रं द्विजः कुर्याद्धारिमृद्भस्मचंदनैः । जपकाले मृदा कुर्यात्संध्याकाले तु वारिणा ॥

“ भस्मना होमकाले तु चंदनं सार्वकालिकम् ” ॥ इति

विष्णुधर्मोत्तरे—

“ विभर्ति नितिले मूर्ध्नि जान्हवीतीरमृत्तिकाम् । विभृयाच्चक्षुरेकत्र मूर्ध्निदोर्बिभृयात्कलाम् ॥

२५ “ गंगामृदोर्ध्वपुंड्रं तु यो विभर्ति नरो यदा । तदैव तस्य पितरो ब्रह्मलोकमवाप्नुयुः ॥

“ गंगाकूलमृदा यस्तु विभृयाद्धूर्ध्वपुंड्रकम् । तदंगं ये निरीक्षन्ते ते यांति त्रिदिवं नराः ” ॥

वासिष्ठे—

“ ऊर्ध्वपुंड्रं तु विप्राणां सततं श्रुतिचोदितम् । मुमुक्षुभिर्वीतरागैरप्रमत्तैः समाहितैः ॥

“ ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोऽथ वा यातिः । अवश्यं धारयेत्पुण्यमूर्ध्वपुंड्रं सुशोभनम् ॥

३० “ ऊर्ध्वपुंड्रं द्विजः कुर्याद्विंदाकारं सुशोभनम् । मध्ये छिद्रं वैष्णवस्तु नमोतैः केशवादिभिः ” ॥

पाद्मे ब्रह्मगुरुसंवादे—

“ गृहे यस्य सदा तिष्ठेत् गोपीचंदनमृत्तिका । द्वारका विहिता तत्र कृष्णेन सहिता कलौ ॥

“ यो मृत्तिकां द्वारवती समुद्रवां करे समादाय ललाटपट्टके ।

“ करोति नित्यं तनुशुद्धिहेतोः क्रियाफलं कोटिगुणं सदा भवेत् ॥

३५ “ क्रियाविहीनं यदि मंत्रहीनं श्रद्धाविहीनं यदि भक्तिवर्जितम् ।

“ कृतं ललाटे यदि गोपिचंदनं प्राप्नोति तत्पुण्यफलं सदाऽक्षयम् ॥

“ यस्यांतकाले खग गोपीचंदनं बाह्योर्ललाटे यदि मस्तको वा ।

“ प्रयाति लोकं कमलासनस्य गोबालघाती यदि ब्रह्महा भवेत् ॥

“ अस्नातो यः क्रियां कुर्यादशुचिः पापशंकितः । पूतः सद्यो भवेन्नित्यं गोपीचंदनधारणात् ॥

“ द्वारवत्युद्धवं गोपीचंदनं चोर्ध्वपुंड्रकम् । धारयेन्नित्यमेवं हि पापं हंति दिने दिने ॥

“गोपीचंदनलिप्तांगो यं यं पश्यति चक्षुषा । तं तं पूतं विजानीयान्नात्र कार्या विचारणा”॥ इति ।

पाराशरेऽपि—

“ मृदं मंत्रेणाभिमन्त्र्य चोर्ध्वपुंड्राणि धारयेत् । ललाटादिषु चांगेषु धरेत्पुंड्रं शुभावहम् ॥

“ आरभ्य नासिकामूलं ललाटान्तं लिखेन्मृदम् ” ॥

ब्रह्मांडपुराणे—

“ मृत्तिकाचंदनं भस्म तोयं चैव चतुर्थकम् । एभिर्द्रव्यैर्यथाकालं ऊर्ध्वपुंड्रं भवेत्सदा ॥

“ स्नात्वा पुंड्रं मृदा कुर्याद्ध्रुत्वा चैव तु भस्मना । देवानभ्यर्च्य गंधेन सर्वपापापनुत्तये ” ॥

वैखानससूत्रे—

“ समिद्धिर्गोमयैः स्वेन हवने विहिते सति । तद्भस्म संगृह्य करे मंत्रेणैवाभिमन्त्र्य च ॥

“ यदूर्ध्वपुंड्रकरणमाग्नेयं स्नानमेव तत् ” । भूति भस्मेति भस्म गृहीत्वा ललाटबाहुहृदय- १५
कंठादिनादित्यः सोमो नम इत्यूर्ध्वागलिप्यापोहिष्ठेति प्रोक्षयते अग्ने तेजस्तेनेत्यग्निमुद्वैमित्यादिभि-
रादित्यं चोपतिष्ठेत् भूतिमालभते नित्यं सर्वयज्ञं कृतं भवेत् ” इति । पाद्मेऽपि—

“ समिद्धादिहुतानां च होमीयस्य हुतस्य च । सितेन भस्मनाऽंगेषु ललाटादिषु च क्रमात् ॥

“ यदूर्ध्वपुंड्रकरणं मंत्रोच्चारणपूर्वकम् । तदाग्नेयं भवेत् स्नानं शोधनं परमं स्मृतम् ” ॥ इति ।

पाद्मोत्तरे—

“ श्रौतं वैखानसं प्रोक्तं स्मार्तं वासिष्ठमुच्यते । पांचरात्राद्यागमोक्तमागमोक्तं तदिष्यते ” ॥ इति ।

स्मृतिसंग्रहे तु—

“ त्रिपुंड्रं भस्मना तिर्यगूर्ध्वपुंड्रं मृदा न्यसेत् । उभयं चंदनेनैव वर्तुलं न कदाचन ॥

“ न कदाचिन्मृदा तिर्यक् न्यसेदूर्ध्वं न भस्मना । तुषादिभस्मपाषाणरजो धार्यं च न क्वचित् ” ॥ इति ।

गरुडपुराणे—

“ भस्मना तूर्ध्वपुंड्रं च तिर्यक्पुंड्रं तथा मृदा । ब्रह्महत्यासमं प्रोक्तं मुनिभिर्वेदपारगैः ” ॥

एवं च भस्मोर्ध्वपुंड्रस्य विधिप्रतिषेधाभ्यां यथाकुलाचारं न्यवस्थितो विकल्प इत्याहुः ।

ननु क्वचित् क्वचित् ऊर्ध्वपुंड्रं निषिध्यते । तथाहि पाराशरोपपुराणे—

“ श्रौतं लिंगं च विज्ञेयं त्रिपुंड्रोच्छूलनात्मकम् । अश्रौतमूर्ध्वपुंड्रादि नैव तिर्यक् त्रिपुंड्रकम् ॥

“ नराणामुत्थिता जातिः येषां तंत्रोक्तवर्त्मना । ललाटे तैः सदा धार्यं मृदा पुंड्रान्तरं द्विज ॥ ३०

“ जन्मना लब्धजातिस्तु वेदपंथानमाश्रितः । पुंड्रांतरं भ्रमाद्वाऽपि ललाटे नैव धारयेत् ” ॥ इति ।

मानवोपपुराणे च—

“ ऊर्ध्वपुंड्रं च शूलं च वर्तुलं चार्धचंद्रकम् । तंत्रनिष्ठेन धार्यं स्यान्न धार्यं वेदिकैर्जनैः ॥

“ सोर्ध्वपुंड्रमुखं दृष्ट्वा व्रतं चांद्रायणं चरेत् ” ॥ इति ।

कूर्मपुराणेऽपि—

“गोपीचन्दनधारी तु शिवं स्पृशति यो द्विजः । सस्वैकविंशतिकुलः सोऽक्षयं नरकं व्रजेत्”॥ इति सूतसंहितायामपि—

“स्वमातुः सोदरायांश्च गमनं तद्वदेव तु ।

५ “मातृष्वसुर्मातृसख्यादुहितुर्गमनं तथा । मातुलानीस्नुषाश्वश्रूगमेनं च तथैव च ॥

पुराणांतरेऽपि—

“ऊर्ध्वपुंड्रं त्रिशूलं च श्रद्धया श्रुत्यचोदितम् । धारयंति ललाटे तु मनुष्याः पापकर्मिणः”॥ इति ।

लैंगेऽपि—

१० “त्रिपुंड्रं सुरविप्राणां वर्तुलं नृपवैश्ययोः । अर्धचंद्रं तु शूद्राणां अन्येषामूर्ध्वपुंड्रकम् ॥

“अश्रौतमूर्ध्वपुंड्रादि ललाटे श्रद्धया सह । धारयिष्यंति मोहेन युगान्ते समुपस्थिते”॥ इति ।

सत्यम् एतादृशानि बहूनि वचनानि श्रूयन्ते । तेषु कानिचिद्वचनानि पाशुपतादिशैवतंत्र-
पतितस्योर्ध्वपुंड्रनिषेधपराणि कानिचित्तु वैदिकस्य श्रौतपांचरात्राद्यागमोक्तशूलादिरूपोर्ध्वपुंड्र-
शंखचक्रादिधारणसहितोर्ध्वपुंड्रधारणनिषेधपराणि । तथा च पाराशरे—

१५ “तंत्रनिष्ठः शिवे भक्तः तंत्रसिद्धेन वर्त्मना । त्रिपुंड्रं धारयेन्नित्यं ललाटे भस्मनैव तु ॥

“तंत्रनिष्ठस्तथा विष्णौ भक्तस्तंत्रैकवर्त्मना । त्रिशूलं चतुरस्रं वा धारयेदूर्ध्वपुंड्रकम् ॥

“तंत्रनिष्ठो महादेवे भक्तस्तिर्यक् त्रिपुंड्रकम् । विना पुंड्रांतरं मोहात् धारयन्नरकी भवेत्”॥

सूतसंहितायामपि—

२० “शैवागमोक्ताश्रमनिष्ठमानवः त्रिपुंड्रलिङ्गं तु सदैव धारयेत् ।

“तदुक्तमंत्रेण ललाटमध्येके तत्तंत्रसिद्धेन सितेन भस्मना ॥

“विष्वागमोक्ताश्रमनिष्ठमानवस्तथैव पुंड्रांतरमूर्ध्वरूपतः ।

२० “त्रिशूलरूपं चतुरश्रमेव मृदा ललाटे तु सदैव धारयेत् ॥

“ब्रह्मागमोक्ताश्रमनिष्ठमानवो ललाटमध्येऽपि च वर्तुलाकृति ।

“तदुक्तमंत्रेण सिते च भस्मना मृदाऽथ वा चंदनतस्तु धारयेत्”॥

कौर्मपि—

२५ “सर्वागमेषु निष्ठानां शंभोलिंगमनुत्तमम् । सितेन भस्मना कार्यं ललाटे च त्रिपुंड्रकम् ॥

“यस्तु नारायणं देवं प्रपन्नः परमं पदम् । धारयेत्सर्वदा शूलं ललाटे गंधवारिणा ॥

“प्रपन्ना ये जगद्धीजं ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् । तेषां ललाटे तिलकं धारणीयं तु सर्वदा ॥

“ऊर्ध्वपुंड्रं त्रिशूलं च वर्तुलं चार्धचंद्रकम् । तंत्रनिष्ठेन धार्यं स्यान्न धार्यं वैदिकैर्जनैः”॥ इति ।

त्रिशूलरूपमूर्ध्वपुंड्रमित्यर्थः । पांचरात्रे भगवतोक्तम्—

३० “एकांतिनो महाभागा मत्स्वरूपविदोऽमलाः । सांतरालान्प्रकुर्वीरन्पुंड्रांन्मम पदाकृतीन् ॥

“परमैकांतिनोऽप्येवं मत्पादैकपरायणाः । हरिद्राचूर्णसंयुक्ताञ्छूलाकारांस्तु निर्मलान् ॥

“अन्ये तु वैदिकाः पुंड्रानच्छिद्रानपि भक्तितः । प्रकुर्वीरन्दीपलिगवेणुपत्रोपमाकृतीन् ॥

“अच्छिद्रान्वाऽथ सच्छिद्रान्कुर्युः केवलवैष्णवाः । अच्छिद्रकरणे तेषां प्रत्यवायो न विद्यते ॥

“एकांतिनां प्रपन्नानां परमैकांतिनामपि । अच्छिद्रकरणे तेषां प्रत्यवायो महान्भवेत् ॥

“पवित्राणि गदाब्दादिशंखचक्रादिकं तथा । धारयेन्नोपहन्येत कदाचित्किंकरादिभिः ॥

३५ “ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो नारी तथेतारः । चक्राद्यैरंकयेद्वात्रमात्मनः परया मुदा ॥

“ अनिष्टानां निवृत्त्यर्थमैकांत्याय जगत्पतौ । सिध्यर्थं कर्मणां चैव धार्यं चक्रादिलांछनम् ॥

“ विष्णोरायतनाग्नौ वा गुरोरात्मन एव वा । हुते होमे ततस्तप्तैः स्वरूपारचितैः क्रमात् ॥

“ चक्रांबुजगदाशार्ङ्गखड्गैर्मन्त्रेण दाहयेत् । अंकितः शंखचक्राभ्यां सर्वैरंकित एव वा ॥

“ शंखचक्रप्रधानं हि सर्वमन्यद्गदादिकम् । अग्नीषोमौ हि चक्राब्जे सर्व एव तदात्मकाः ॥

“ दक्षिणे तु भुजे विप्रो विभूयाद्वै सुदर्शनम् । सव्ये तु शंखं विभूयादिति ब्रह्मविदो विदुः ” ॥ इति । ५

एवं च पांचरात्राद्यागमविहितं शंखचक्रगदाद्यंकनसहितमूर्ध्वपुंड्रवेदानधिकृतस्त्रीशूद्रद्विजबन्धु-
विषयं वेदितव्यम् । तेषामेव ह्यवैदिककर्मस्वधिकारः । तथा च भारते “ स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी
न श्रुतिगोचरा ” इति । **मनुरपि**

“ वेदश्च वेदमूलानि स्मृत्यादीन्यखिलानि च । स्वतः प्राप्तानि मर्त्यानां भ्रमादन्यानि सर्वशः ॥

“ मार्गो वेदविरुद्धो यः स तु सत्यं तपोधनाः । वेदप्रस्खलितस्यैव न प्रोक्तो वैदिकस्य तु ” ॥ इति । न च १०

“ ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो नारी तथेतरः । चक्राद्यैरंकयेद्वात्रं आत्मनः परया मुदा ” ॥ इति

ब्राह्मणादीनधिकृत्य भगवतोक्तं शंखचक्रगदादिधारणं कथं स्त्रीशूद्रादिविषयमिति वाच्यम् ।
मोहनायैव तंत्रस्य प्रवर्तितत्वात् । तथा च पाद्मे हरिः—

“ एष मोहं सृजाम्याशु यो जनान् मोहयिष्यति । त्वं च रुद्र महाबाहो मोहशास्त्राणि कारय ॥

“ अतथ्यानि च तथ्यानि दर्शयित्वा फलानि तु ” ॥ **कूर्मपुराणे च—**

१५

“ तस्मात्तु वेदबाह्यानां रक्षणार्थाय पापिनाम् । विमोहनानि शास्त्राणि करिष्यावो वृषध्वज ॥

“ एवं संचोदितो रुद्रो माधवेन मुरारिणा । चकार मोहशास्त्राणि केशवोऽपि शिवेरितः ॥

“ कापालं काकुलं वामं भैरवं पूर्वपश्चिमम् । पांचरात्रं च कौलं च अथान्यानि सहस्रशः ” ॥

भागवतेऽपि—

“ त्रिवक्राया उपश्लोकः पुत्रः कृष्णमनुव्रतः । शिष्यः साक्षान्नारदस्य दधौ व्रतमखंडितम् ॥

२०

“ तेनोक्तं सात्वतं तंत्रं यज्ज्ञात्वा भक्तिमान्भवेत् । यत्र स्त्रीशूद्रदासानां संस्कारो वैष्णवः स्मृतः ” ॥ इति ।
वसिष्ठलैंगेऽपि— “ ततो विष्णोः प्रसादेन वेदमार्गातिवर्तिनाम् ।

“ शांडिल्यः संहितां चक्रे वैष्णवीं महतीं मुने । तस्यां चक्रुर्मने दीक्षां पाषंडाः पापयोनयः ” ॥ इति ।

कौर्मे शिवः—

“ अन्यानि चैव शास्त्राणि लोकेऽस्मिन्मोहनाय वै । वेदवादविरुद्धानि मयैव कथितानि तु ॥

२५

“ वामं पाशुपतं धोरं लांगुलं चैव भैरवम् । न सेव्यमेतत्कथितं वेदबाह्यं तथेतरत् ” ॥

तत्रैव—

“ अथैव सात्वतो नाम विष्णुभक्तः प्रतापवान् । महात्मा दाननिरतो धनुर्वेदविदां वरः ॥

“ स नारदस्य वचनात् वासुदेवार्चने रतः । शास्त्रं प्रवर्तयामास कुंडगोलादिभिः श्रुतम् ॥

“ तस्य नाम्ना तु विख्यातं सात्वतं नाम शोभनम् । प्रवर्तते महाशास्त्रं कुंडादीनां हितावहम् ” ॥ ३०

सूतसंहितायाम्— “ श्रेयान्वेदोदितो धर्मः परधर्मो भयावहः ।

“ वेदं वेदेतरं मार्गं समं पश्यन्भवोदधौ । निमग्नः सर्वदा मर्त्यो भवेन्नात्र विचारणा ” ॥

मानवे च—

“ अतश्च वेदा वेदांतास्तन्मूलान्यखिलानि च । धारणीयानि संशुध्यै त्याज्यान्येवापराणि च ॥

“इतोऽन्यानि तु शास्त्राणि लोकेऽस्मिन्यानिकानि च । न तेषु रमते धीरः पाषंडो रमते यदि” ॥ इति । तत्रैव—

“ब्राह्मणैश्च पुरा सर्वैर्गौतमेन सुरक्षितैः । विचार्यै कार्यं संभूय स्वदेशगमनोद्यतैः ॥

“गौर्हता गौतमेनेति निर्घृणैः पुरुषाधमैः । कृतो मिथ्याभिशापस्तु महामोहवशेन तु ॥

“तच्छ्रुत्वा स मुनिः श्रीमान् गौतमो मुनिसत्तमः । महाक्रोधेन संयुक्तः शशाप ब्राह्मणाधमान् ॥

५ “यद्यत्तु रुद्रसंबन्धि तत्र तत्रापि दुर्जनाः । भवतानुन्मुखा यूयं सर्वथा ब्राह्मणाधमाः ॥

“स्वाध्याये च जपे चैव तथा प्रवचनेऽपि च । भवतानुन्मुखा यूयं सर्वथा ब्राह्मणाधमाः ॥

“श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तेष्वर्थेषु सकलेषु च । शंखचक्रगदापद्मदंडपाशांकुशादिभिः ॥

“अंकिताः श्रद्धया यूयं भवतो ब्राह्मणाधमाः ॥

“बौद्धे चाप्यार्हते चैव तथा पाशुपतेऽपि च । शांभवे दीक्षिता यूयं.....धमाः ॥

१० “पाषंडेषु तथाऽन्येषु मार्गेष्वश्रौतकेषु च । श्रद्धया दीक्षिता यूयं.....धमाः ॥

“वर्तुलाश्वत्थपत्रार्धचंद्रशूलादिलिंगिनः । भवत श्रद्धया सार्धं ललाटे ब्राह्मणाधमाः ॥

अश्वत्थपत्रलिंगी बौद्धः ।

“पंचरात्रे च कापाले तथा कालामुखेऽपि च । शाक्ते च दीक्षिता यूयं भवत ब्राह्मणाधमाः” ॥ इति ।

तंत्राधिकारी निरूपितः पाराशर्ये—

१५ “श्रुतिब्रह्मः स्मृतिप्रोक्तप्रायश्चित्तेऽभयं गतः । क्रमेण श्रुतिसिद्धचर्यं मनुष्यस्तंत्रमाश्रयेत् ॥

“तंत्राणि तंत्रनिष्ठानां रक्षकाण्यपि च क्रमात् । बाधकानि विशेषेण वेदमार्गैकवर्तिनाम्” ॥

मानवे च—

“वेदप्रस्खलितो मर्त्यो वेदोक्तेनैव वर्त्मना । प्रायश्चित्तोऽबुधो भीतो विरुद्धं मार्गमाश्रयेत् ॥

“मार्गो वेदविरुद्धो यः सोऽपि कालेन देहिनाम् । तत्तन्मार्गभिमानिन्या देवतायाः प्रसादतः ॥

२० “हेतुः स्याद्देवमार्गस्य प्राप्तये न निरर्थकः” ॥ इति । कौर्मैऽपि—

“सृष्ट्वा तानूचतुर्देवौ कुर्वाणास्तंत्रचोदितम् । पतंतो निरये घोरे बहून्कालान्पुनः पुनः ॥

“जायंते मानुषे लोके क्षीणपापचयास्ततः । ईश्वराराधनबलात् गमिष्यथ सतां गतिम्” ॥ इति ।

स्कांदे—

“अत्यंतस्खलितानां तु प्राणिनां वेदमार्गतः । पांचरात्रादयो मार्गाः कालेनैवोपकारकाः ॥

२५ “शंखचक्रगदापूर्वरंकनं नान्यदेहिनाम् । दीक्षितानां तु तंत्रेषु नराणामंकनं प्रजाः ॥

“उपकारकमेवोक्तं क्रमेण मुनिपुंगवाः । बाधकं तु विशेषेण वेदमार्गैकवर्तिनाम्” ॥ इति ।

विष्णुस्मृतौ—

“शंखचक्राद्यंकनं च नृत्यगीतादिकं तथा । एकजातेरयं धर्मो न द्विजातेः कथंचन ॥

“यस्तु संतप्तशंखादिलिंगचिन्हतनुर्द्विजः । स सर्वयातनाभोगी चंडालः कोटिजन्मसु ॥

३० “चक्रांकिततनुर्वाऽपि तथा लिंगांकितोऽपि वा । नाधिकारी स विज्ञेयः श्रौतस्मार्तेषु कर्मसु” ॥ इति ।

गोभिलोऽपि—

“श्रौतस्मार्तक्रियो विप्रो नांकयेदंगमंककैः । अपि विष्णवादिसंबन्धैस्तप्तेर्वा पतितो भवेत् ॥

“अज्ञानादथवा लोभाद्रागतो वा मुदर्शनम् । धत्ते कुलघ्नं तं दृष्ट्वा सवासा जलमाविशेत् ॥

“ भुजाग्रे सलिलेनैव विलिखेद्यः सुदर्शनम् । वेदाग्निज्ञानवान् सोऽपि दहत्या सप्तमं कुलम् ॥

“ शंखं चक्रं च पद्मं च यो मूढो धारयेत्तनौ । पाषण्डः स हि विज्ञेयः सर्वकर्मबहिष्कृतः ” ॥ इति ।

शातातपः—

“ अंगेषु नांकयेद्विप्रो देवतायुधलाञ्छनैः । अंकयेद्यदि वा मोहात् पतत्येव न संशयः ” ॥ इति ।

यमोऽपि—

“ नांकयेन्न दहेद्वात्र देवतायुधलाञ्छनैः । दहनाल्लेखनाद्विप्रः पातित्यं याति तत्क्षणात् ” ॥

बोधायनोऽपि—

“ नांकयेन्न दहेद्देहं दहेच्चेत्कामकारतः । नाधिक्रियेत दग्धांगः श्रौतस्मार्तेषु कर्मसु ” ॥ इति ।

चक्रोपनिषदि “ तस्माच्छूद्राणामेव शंखं चक्रं द्विभुजे धारयेत् ” इति । स्मृतिरत्ने—

“ भूदेवस्तप्तमुद्राभिश्चिह्नं कृत्वा विमूढधीः । इह जन्मनि शूद्रः स्यात् प्रेत्य च श्वा भविष्यति ” ॥ १०

स्मृत्यन्तरे—

“ यानि शास्त्राणि दृश्यन्ते लोकेऽस्मिन्विधानि तु । श्रुतिस्मृतिविरुद्धानि निष्ठा तेषां हि तामसी ॥

“ शंखं चक्रं मृदा यस्तु कुर्यात्तप्तायसेन वा । स शूद्रवद्वहिष्कार्यः सर्वस्मात् द्विजकर्मणः ॥

“ यथा स्मशानगं काष्ठमनर्हं सर्वकर्मसु । तथा चक्रांकितो विप्रो ह्यनर्हः सर्वकर्मसु ” ॥ इति ।

ब्राह्मपुराणे—

“ तप्तमुद्रा त्वन्त्यजाय हरिणा निर्मिता पुरा । गोपीचंदनसंलिप्तफालकाश्चान्त्यजाय ते ” ॥ इति ।

मानवे च—

“ आयुधैः शंखचक्राद्यैर्न दहेच्च कदाचन । मनुष्याणां तु नाम्नैव न लिखेच्चोरसि भ्रमात् ॥

“ दग्धांगश्चायुधैर्दिव्यैर्लिख्यते नरनामतः । श्रौतस्मार्तसमाचारे नाधिकारी कदाचन ॥

“ दग्धांगा लिखितांगाश्च न संभाष्या द्विजातिभिः । न द्रष्टव्याश्च तान् राजा देशाच्छ्रीघ्रं प्रवासयेत् ” ॥ २०

नारदीये—

“ स्वकर्मत्यागिनो राजन् वेदमार्गबहिष्कृताः । आगमान् पांचरात्रादीन् विशन्ते नारका नराः ॥

“ शैवान् पाशुपतान् चैव पांचरात्रान् जनेश्वर । स्पृष्ट्वा स्नाप्य जपेत्सूक्तं दृष्ट्वा सूर्यं तु पश्यति ” ॥

सूक्तं पौरुषम् ।

“ ब्राह्मणस्य तनुर्जेया सर्वदेवसमाश्रया । सा चेत्सन्तापिता राजन् किं वक्ष्यामि महैनसः ॥ २५

“ अनिमित्तं दहेद्देहं यः पुमान् व्याधिवर्जितः । हव्यकव्यादिदानेषु तं त्यजेदन्त्यजं यथा ” ॥

कौर्मेऽपि—

“ बुद्धश्रावकनिर्ग्रथाः पांचरात्रविदो जनाः । कापालिकाः पाशुपताः पाषण्डा ये च तद्विधाः ॥

“ यस्याश्रन्ति हवींष्यते दुरात्मानस्तु तापसाः । न तस्य तद्भवेच्छ्राद्धं प्रेत्य चेह फलप्रदम् ॥

“ सर्वे पुनरभोज्यान्ना अदानार्हाश्च कर्मसु । ब्रह्मभावाग्निरस्ताश्च वर्जनीयाः प्रयत्नतः ॥ ३०

“ पाषण्डिनो विकर्मस्था निर्मर्यादास्तथैव च । पांचरात्रान् पाशुपतान् वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ” ॥

श्रावकाः जैनाः । निर्ग्रथा दिगंबराः । श्रावका गुरवः ।

तत्रैव—“ अंकितो यः स्वदेशात्तं राजा शीघ्रं प्रवासयेत् ॥

“ अतीव पतितानां हि श्वपदाद्यंकनं नृणाम् । विधीयते न शुद्धानां ततः शुद्धं न चांकयेत् ॥

“अध्यापने चाध्ययने श्रौतस्मार्तेषु कर्मसु । संभाषणेषु संबंधे नाधिकारी च लांछितः” ॥ इति ।
पुराणांतरे—

“वेदमूलतया नित्यं प्रवृत्ता अपि सत्तमाः । कचित्कदाचित्स्मर्तारस्तंत्रार्थं च ब्रुवन्ति वै ॥

“कचित्तंत्रानुसारेण धर्मं पौराणिका अपि । वदन्ति तादृशोऽशस्तु ग्राह्यस्तंत्रावलंबिना ॥

५ “पुराणे धर्मशास्त्रे वा योऽशः श्रुत्या विरुध्यते । स तंत्रार्थं इति ज्ञेयः समासेन महर्षिभिः ॥

“यश्च वेदविरुद्धोऽर्थः पुराणेष्वखिलेषु च । तदंशस्तु परित्याज्यः सर्वथा सकलैरपि” ॥ इति ।
तस्मात्तंत्रसिद्धतत्समुद्रादिसहितोर्ध्वपुंड्रं वैदिकैर्न धार्यम् । केवलोर्ध्वपुंड्रं तु उक्तानेकश्रुतिस्मृति-
पुराणसिद्धत्वान्धार्यमेव । न च तासां श्रुतीनां अप्रामाण्यशङ्का

“ऊर्ध्वपुंड्रं तु विप्राणां सततं श्रुतिचोदितम् । श्रुतिस्मृत्युक्तमार्गेण मृदो धारणमुच्यते ॥

१० “श्रौतं वैखानसं प्रोक्तम्” इति च वासिष्ठवामनपद्मपुराणादिषु तदुपबृंहणादूर्ध्वपुंड्रमात्रस्य
च तांत्रिकत्वाभिधाने उक्तानां बहुश्रुतिस्मृतिपुराणवचनानां वैदिकाधिकारप्रवृत्तानां अनन्य-
गतिकानां व्याकोपप्रसंगः । ‘अश्रौतमूर्ध्वपुंड्रादि’ इत्युदाहृतानि तु वचनानि तत्समुद्रासहितोर्ध्व-
पुंड्रविषयतया सावकाशानि ।

ननु तांत्रिकैस्तत्समुद्राविषयापि श्रुतिरुदाह्रियते (तै. आरण्यके १।११) “पवित्रं ते विततं

१५ ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः । अतस्ततनूर्न तदामो अश्रुते शृतास इद्वहंतस्तत्समाशत” इति
नास्यास्तत्समुद्राविषयत्वम् ॥ “तस्मिन्नुदीचीनदशं पवित्रं वितत्यमानमभिमंत्रयते यजमान” इति
कल्पसूत्रकारैर्दशापवित्रास्तरणाभिमंत्रणे विनियोगप्रदर्शनात् । तथा च विद्यारण्यभाष्यम्—

“पवित्रं त इति दशापवित्रास्तरणाभिमंत्रणे चेयं विनियुज्यते पवित्रं सर्वपावनम् । ते तवात्मभूतं
तेजः परमात्माख्यम् । विततं विस्तृतम् । सर्वत्र हे ब्रह्मणस्पते ब्राह्मणानां स्वामिन् । एष वो

२० भरता राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा ‘तस्मात्सोमराजानो ब्राह्मणा’ इति दर्शनात् । प्रभुस्त्वं
गात्राणि अंगाणि पात्राणां पर्येषि गच्छसि विह्वतस्त्वया व्याप्तेनातप्ततनूः अशोधितशरीरः अत
एवामः न तद्विततं पवित्रमश्रुते । असोमपस्य शुद्धभावात् ज्ञानद्वारा परमात्मप्राप्तिर्नास्तीति । शृतास
इत् पक्वा एव त्वया वहंतो यज्ञं जनाः समाशत समश्रुवते तत्पवित्रमिति । यापि चमूषच्छयेनः
शकुनो विभृत्वा गोविंदुर्द्रप्स आयुधानि विभृत्” (ऋ. सं. ७।४।९) इति सापि श्रुतिः सोम-

२५ विषयेति भाष्ये भाषितम् ।

ननु सोमविषयत्वेऽपि तयोस्तत्प्रशंसचक्रांकनविषयत्वमप्यस्त्विति चेन्न । तथात्वे तन्निषेधः ।

पराणां श्रुतिस्मृतिपुराणानां निर्विषयत्वप्रसंगात् । किंच

“पवित्रमिति मंत्रेण यदि चक्रांकनं भवेत् । शूलांकनं वा किं न स्याद्यत्ते गात्रादिति श्रुतेः” ॥

इति प्रसंजितं शूलांकनमपि श्रौतं स्यात् । अन्यपरस्य श्रुतिभागस्यान्यविषयत्वकल्पनामात्रे-

३० णार्थांतरपरत्वनिर्णये । ‘यऽईवहंतऽआशुभिः पिबंतो मदिरं मधु । अत्र श्रवांसि दधिरे’ (ऋ. सं. ४।१।२८) इति पीतसोममरुत्प्रशंसापरस्यास्य शाक्तैः स्वीयतंत्रविषयत्वेन कल्पितार्थस्यापि
तदर्थपरत्वेन शाक्ततंत्रस्यापि वैदिकत्वापत्तिः ।

ननु ‘विष्णोरराटमंत्रेण विन्यसेत्केशवाय च’ इत्यादिना वेदोक्तमन्त्रैर्ललाटादिस्थानेषु त्रिशूलादि-
रूपोर्ध्वपुण्ड्रस्याभिहितत्वेनास्य वैदिकत्वमिति शाक्तवैषम्यमिति चेन्न । शक्तितन्त्रेऽपि ‘आर्द्रं
ज्वलति ज्योतिरहमस्मि’ इत्यनेन मन्त्रेण मद्यपानस्याभिहितत्वेन तत्तंत्रस्यापि वैदिकत्वापत्तेः ।

तथा च

“पांचरात्रे च कापाले तथा कालामुखेऽपि च । शाक्ते च दीक्षिता यूयं भवत ब्राह्मणाधमाः”॥
इति गौतमादिकृतशापोऽप्यनुग्रहाय स्यात् । अतस्तत्तमुद्रादिसहितमूर्ध्वपुंड्रं तांत्रिकमेव ।
तद्रहितमूर्ध्वपुंड्रं श्रुतिपुराणशिष्टाचारत्वेन वैदिकैर्धार्यमेवेति निर्णयः । 15827

अथ त्रिपुंड्रविधिः । कालाग्निरुद्रोपनिषदि—“आग्नेयं भस्म ‘सद्यो जातमिति’ पंचब्रह्म- ५
मंत्रैः परिगृह्य अग्निरित्यनेन चाभिर्मन्त्र्य मानस्तोक इति समुद्धृत्य जलेन संस्पृज्य शिरोललाटवक्ष-
स्कंधेषु त्र्यायुषैश्च्यंबकैस्तिर्यक् तिस्रो रेखाः प्रकुर्वीत व्रतमेतच्छाम्भवं सर्ववेदेषु वेदवादिभिरुक्तं
भवति । तस्मात्तत्समाचरेत् मुमुक्षुरपुनर्भावाय त्रिविधा रेखा त्रिपुंड्रप्रमाणं त्रिधा ललाटादा
चक्षुषोरा भ्रुवोरिति । तत्रैवं प्रशंसा च श्रूयते— “त्रिपुंड्रं भस्मना करोति यो विद्वान् ब्रह्मचारी
गृहस्थो वानप्रस्थो यतिर्वा समस्तमहापातकोपपातकेभ्यः पूतो भवति स सर्वान् देवान् ध्यातो १०
भवति स सर्वेषु तीर्थेषु स्नातो भवति सर्वसंपत्समृद्धो भवति सततं सर्वरुद्रमंत्रजापी भवति
सकलभोगभुग्देहं त्यक्त्वा शिवसायुज्यमाप्नोति न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते इत्याह
भगवान्कालाग्निरुद्रः” ॥ इति ।

अथर्वशिरसि जावालोपनिषदि च— “अग्निरिति भस्म । वायुरिति भस्म ।
जलमिति भस्म । स्थलमिति भस्म । व्योमेति भस्म । सर्वं ह वा इदं भस्म । मन इत्येतानि १५
चक्षूंषि भस्मानि । अग्निरित्यादिना भस्म गृहीत्वा विमृज्यांगानि संस्पृशेत् तस्मादेतद्व्रतं पाशुपतं
पशुपाशविमोक्षाय” ॥ इति । स्मृत्यंतरे—

“मानस्तोकेतिमंत्रेण मंत्रितं भस्म धारयेत् । ऊर्ध्वपुंड्रं भवेत्साम मध्यपुंड्रं यजूंषि च ॥

“अधःपुंड्रमृचः साक्षात्तस्मात्पुंड्रं त्र्यायुषम् । त्र्यायुषेण कुरुते ललाटे च भुजद्वये ॥

“नाभौ शिरसि हृत्पार्श्वे ब्राह्मणो वैदिकः सदा” ॥ इति । त्र्यायुषं त्र्यायुषसंज्ञितम् । तथा २०
च वायुपुराणे—“ततस्त्रिपुंड्रं रचयेत् त्र्यायुषसमाव्हयम्” ॥ इति । तैत्तिरीयश्रुतौ च (प्र. ७ अनु.
११ शीक्षोपनिषदि) शिष्यानुशासने “सत्यान्न प्रमदितव्यम् । धर्मान्न प्रमदितव्यम् । कुशलान्न
प्रमदितव्यम् । भूत्यै न प्रमदितव्यम् । स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम् । देवपितृकार्यभ्यां
न प्रमदितव्यम् । मातृदेवो भव” इत्यादि । अत्र भूतिशब्दस्य भस्मार्थत्वं बोधायनेनोक्तम्—

“अथातो द्विजातीनां त्रिपुंड्रधारणविधिं व्याख्यास्यामो भूत्यै न प्रमदितव्यमिति विज्ञायते । २५
तथाप्युदाहरंति

“मध्यमानामिकांगुष्ठैस्त्रिपुंड्रं भस्मना कृतम् । तत्रिपुंड्रं भवेद्धस्तं महापातकनाशनम्” ॥ इति ।

अथ च्यंबकमिति सर्वांगं संस्पृजेत्पूतो भवति दशपूर्वान् दशपरानात्मानं चैकविंशतिं पङ्क्तिं च
पुनाति । ब्रह्मणः सायुज्यं सलोकतामाप्नोतीत्याह भगवान् बोधायन इति” ।

वामनपुराणे श्रुत्युपबृंहणं दृश्यते—

“सत्यात्प्रमदितव्यं वै धर्माच्च कुशलाच्च न । भूत्या अग्निसमूत्थायास्ततो देहावकुंठनात् ॥

“ललाटे हृदि दोर्द्वे त्रिपुंड्रस्य च धारणात् । नैव प्रमदितव्यं वै भ्रमाद्वाऽपि कदाचन ॥

“स्वाध्यायाध्ययनं नित्यं कुरु प्रवचनं तथा” ॥ इति । भाष्यकारेण यद्यपि भूतिशब्द एश्वर्य-
परतया व्याख्यातः तथापि बोधायनेन ‘भूत्यै न प्रमदितव्यम्’ इत्यस्याः श्रुतेः भस्मत्रिपुंड्र-
प्रमाणतयोदाहृतत्वात् तदुपबृंहणपुराणवाक्यानां च सत्त्वात् भूतिशब्दस्य भस्मपरत्वमेव

युक्तम् । भूतिशब्दस्य नानार्थत्वेन ऐश्वर्यपरतया व्याख्यानेऽपि नेह कश्चित् विरोधः । उप-
 वृंहणस्य सत्वे तदपि व्याख्यानांतरमस्तु । बोधायनः—“ अथातो विभूतिसंपादनधारणविधिं
 व्याख्यास्यामो शुचिर्भूत्वा विकटांगामुन्मत्तामशिवां हीनातिरिक्तां गां वंध्यामस्थिवहुलामशुद्ध-
 भक्षणो विहाय सुलक्षणाया गोगोमयमादाय पिंडं कृत्वा संशोष्य श्वेतपचनीयैः संभारैः प्रच्छाद्य
 ५ गृह्याग्नौ वैताने वा पचनेवोपोषयेत् बिल्वफलपात्रे मृन्मये वा स्थापयेत् । अथ तद्भस्म समादा-
 याभिमंत्रयते । ईशानः सर्व...शिवो । तत्पुरुषाय...चोदयात् । अघोरेभ्यो...रूपेभ्यः । वाम-
 देवाय...मनोन्मनायनमः । सद्योजातं...भवोद्भवाय नमः...पुनरेवाभिमृशति । सद्योजातमिति
 पंचभिः मानस्तोक इति मध्यमानामिकांगुष्ठैः समादाय तूष्णीमद्भिः समुदायुत्य त्र्यायुषमिति
 त्रिपुंड्रं धारयेत् । अथाप्युदाहरंति

१० “ललाटे हृदि दोर्द्वे गले कुक्षौ शिरस्यथ । धारयेच्च सितं भस्म द्विजो नित्यमतंद्रितः” ॥ इति ।
 बोधायनस्मृतौ च—

“ सद्येन गोशकुद्गृह्य वामेन त्वभिमंत्रयेत् । अघोरेण दहेत्पिंडं पुरुषेण तु शोधयेत् ॥

“स्नानमीशानमंत्रेण कुर्यान्मूर्धादिपादतः । आचम्य कूर्च आसीनः शिवो भूत्वा शिवं जपेत् ॥” इति
 भरद्वाजः—

१५ “ प्राङ्मुखश्चरणौ हस्तौ प्रक्षाल्याचम्य पूर्ववत् । प्राणानायम्य संकल्प्य भस्मस्नानं समाचरेत् ॥

“ आदाय भसितं श्वेतं अग्निहोत्रसमुद्भवम् । ईशानेन तु मंत्रेण स्वमूर्धनि विनिक्षिपेत् ॥

“ तत आदाय तद्भस्म मुखे तत्पुरुषेण तु । अघोराख्येन हृदये गुह्ये वामावहयेन च ॥

“ सद्योजाताभिधानेन भस्मपादद्वये क्षिपेत् । सर्वांगं प्रणवेनैव मंत्रेणोद्धूयेत्ततः ॥

“ एतदाग्नेयकं स्नानं मुदितं परमर्षिभिः । सर्वकर्मसमुद्भवार्थं कुर्यादादाविदं बुधः ॥

२० “ ततः प्रक्षाल्यहस्तादीनुपस्पृश्य यथाविधि । तिर्यक् त्रिपुंड्रं विधिना ललाटे हृदये गले ॥

“ धृत्वाऽग्निहोत्रजेनैव भस्मना तु प्रसन्नधीः । पंचभिर्ब्रह्मभिर्वाऽपि कृतेन भसितेन च ॥

“ धृतमेतत्त्रिपुंड्रं स्यात्सर्वकर्मसु पावनम् । त्रिपुंड्रं धारयेन्नित्यं सर्वपापविशुद्धये ॥

“ शूद्रहस्तस्थितं भस्म न हि धार्यं द्विजातिभिः । शूद्रैरंत्यजहस्तस्थं न धार्यं भस्म जातुजित् ॥

“ अतोऽग्निहोत्रजेनैव भस्मना तु त्रिपुंड्रकम् । नित्यं द्विजैः प्रमोदेन धार्यं कर्मविवृद्धये ॥

२५ “ अन्यथा सर्वकर्माणि न फलंति कदाचन ” इति ॥ कात्यायनोऽपि—

“ श्राद्धे यज्ञे जपे होमे वैश्वदेवे सुरार्चने । धृतत्रिपुंड्रः पूतात्मा मृत्युं जयति मानवः ॥

“ त्रिपुंड्रं यद्यद्धृत्वा तु कुर्याद्यत्कर्म तद्वृथा ” ॥ इति । स्मृत्यंतरे च—

“ अग्निरित्यादिभिर्मन्त्रैः भस्मनोद्धूलनं तथा । त्रिपुंड्रधारणं कृत्वा संध्यावंदनमाचरेत् ॥

“ त्रिपुंड्रं परमं पुण्यं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् । ये घोरा राक्षसाः प्रेता ये चान्ये क्षुद्रजंतवः ।

३० “ त्रिपुंड्रधारिणं दृष्ट्वा पलायंते न संशयः ” ॥ इति । लोकाक्षिरपि—

“ मध्यमानामिकांगुष्ठैर्ललाटे भस्मना कृतः । स त्रिपुंड्रो भवेच्छस्तो महापातकनाशनः ॥

“ त्रिपुंड्रं धारयेद्यस्तु शिवप्रवणमानसः । भूर्भुवस्त्रयो लोका धृतास्तेन महात्मना ॥

“ त्रिपुंड्रधृग्विप्रवरो यो रुद्राक्षधरः शुचिः । स हंति रोगदुरितव्याधिदुर्भिक्षतस्करात् ॥

“ स प्रमोति परं ब्रह्म यतो नावर्तते पुनः ॥

“ स पंक्तिपावनः श्राद्धे पूज्यो विप्रैः सुरैरपि ” ॥ इति । शातातपः—

“ सत्यं शौचं तपो होमस्तीर्थं देवादिपूजनम् । तस्य व्यर्थमिदं सर्वं यस्त्रिपुंड्रं न धारयेत् ” ॥

स्मृतिरत्नावल्याम्—

“ मध्यमानामिकांगुष्ठैर्ललाटे यत् त्रिपुंड्रकम् । तत् त्रिपुंड्रं भवेच्छस्तं महापातकनाशनम् ” ॥ इति ।

स्मृतिसारसमुच्चये—

“ अशक्तः समयाचारे मनसा पापमाचरन् । शुचिरेव भवेन्नित्यं त्रिपुंड्रस्य तु धारणात् ” ॥ इति ।

स्मृतिभास्करे—

“ वनस्पतिगते सोमे भस्मोद्धूलितविग्रहः । अर्चितं शंकरं दृष्ट्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

“ भासनाद्भसितं प्रोक्तं भस्म कल्मषभक्षणात् । भूतिभूतिकरी पुंसां रक्षा रक्षाकरी पराम् ” ॥ इति ।

धर्मसारसुधानिधौ—

“ त्रिपुंड्रकं सदा कुर्यान्मंत्रपूतेन भस्मना । वेदोक्तेन विधानेन शिवसायुज्यमाप्नुयात् ” ॥ इति ।

महाभारतेऽपि

“ आयुष्कामोऽथ वा राजन् भूतिकामोऽथवा नरः । नित्यं वै धारयेत् भस्म मोक्षकामी च वै द्विजः ” ॥ इति ।

क्रियासारे—

“ मध्यांगुलित्रयेणैव स्वदक्षिणकरस्य तु । षडंगुलायतं मानमथवाऽधिकमानकम् ” ॥

“ नेत्रयुग्मप्रमाणं वा फालेदीप्तं त्रिपुंड्रिकम् । कदाचिद्भस्मना कुर्यात्स रुद्रो नात्र संशयः ॥

“ अकारोऽनामिका प्रोक्ता ह्युकारो मध्यमांगुलिः । मकारस्तर्जनी तस्मात् त्रिभिः कुर्यात्त्रिपुंड्रकम् ” ॥ इति ।

सांख्यायनगृह्ये—“ त्र्यायुषमिति पंचभिर्मंत्रैर्ललाटे हृदये च दक्षिणस्कंधे वामे च ततः

पृष्ठे च पंचसु भस्मना त्रिपुंड्रं करोति स एषां वेदानां एकं द्वौ त्रीन्सर्वानधीते ” ॥ इति ।

माध्यंदिनगृह्ये—“ भस्मना ललाटे ग्रीवायां दक्षिणेंऽसे हृदि च त्र्यायुषमिति प्रतिमंत्रम् ” ॥ इति । २०

स्कांदे—

“ भस्मना वै त्रिसंध्यं च तांत्रिकाणां जलैर्युतम् । धार्यं त्रिपुंड्रं स्त्रीणां च यतीनां जलवर्जितम् ॥

“ वनस्थव्रतिकन्यानां दीक्षाहीननृणां तथा । मध्याह्नात् प्राक्जलैर्युक्तं परतो जलवर्जितम् ” ॥ इति ।

आदित्यपुराणे—

“ त्रिपुंड्रधारी सततं ब्राह्मणः सर्वकर्मसु । भस्मनैवाग्निहोत्रस्य शिवाग्निजनितेन वा ” ॥ इति । २५

वासिष्ठलैंगेऽपि वासिष्ठं प्रति महादेवः—

“ भस्म विद्धि परं ब्रह्म सत्यबोधसुखावहम् । भस्म तद्वेदनाल्लभ्यं मुख्यं तदपरं बुधैः ॥

“ आग्नेयं गौणमज्ञानध्वंसकं ज्ञानसाधकम् । गौणं नानाविधं विद्धि ब्रह्मन्ब्रह्मविदां वर ॥

“ अग्निहोत्राग्निं तद्वद्विरजानलजं मुने । औपासनसमुत्पन्ने समिदग्निमुद्भवम् ॥

“ त्रैवर्णिकानां सर्वेषामग्निहोत्रसमुद्भवम् । विरजानलजं चैव धार्यं भस्म महामुने ॥

“ औपासनसमुत्पन्नं गृहस्थानां विशेषतः । समिदग्निमुत्पन्नं धार्यं वै ब्रह्मचारिणाम् ॥

“ शूद्राणां श्रोत्रियागारे पचनाग्निमुद्भवम् । अन्येषामपि सर्वेषां दावानलसमुद्भवम् ॥

“ अग्निरित्यादिभिर्मंत्रैः षड्विधैर्वर्णैस्तथा । जाबालैः सप्तभिर्वाऽपि गौणेनैव तु भस्मना ॥

“ उद्धूलयेत् स्वकं देहं पापपुंजभयापहम् । त्र्यायुषेण मंत्रेण मेधावीत्यादिनाऽथ वा ॥

“ गौणेन भस्मना धार्यं त्रिपुण्ड्रं ब्रह्मचारिणाम् । त्र्यम्बकेण मन्त्रेण सतारेण तथैव च ॥

“ पञ्चाक्षरेण मन्त्रेण प्रणवेन युतेन च । ललाटे हृदये चैव दोर्द्वे च महामुने ॥

“ त्रिपुण्ड्रं धारयेन्नित्यं गृहस्थश्च वनाश्रमी । आत्ममन्त्रेण हंसेन प्रणवेन समाहितः ॥

“ त्रिपुण्ड्रं धारयेन्नित्यं संन्यासाश्रममाश्रितः । नमोतेन शिवेनैवं शूद्रः शुश्रूषणप्रियः ॥

५ “ उद्धूलनं त्रिपुण्ड्रं च नित्यं भक्त्या समाचरेत् ॥

“ अन्येषामपि सर्वेषां विना मन्त्रेण सुव्रत । उद्धूलनं त्रिपुण्ड्रं च कर्तव्यं भक्तितो मुने ” ॥ इति ।

ब्रह्मचारिणां धारणप्रकारमाह बोधायनः— “ यस्मिन्नग्नौ कर्म कृत्वोपतिष्ठते तस्मात्तूष्णीं भस्मादाय तूष्णीमभिमृश्य ‘ मा नस्तोक ’ इति मन्त्रेणादाय धारयेत् । ‘ मेधावीति ’ ललाटे । ‘ तेजस्वीति ’ दक्षिणे वाहौ । ‘ वर्चस्वीति ’ सव्ये । ‘ ब्रह्मवर्चसीति ’ हृदये । ‘ आयुष्मानिति ’

१० कंठे । ‘ भूयासं स्वस्तीति ’ सर्वत्रानुषजति ” ॥ गारुडे—

“ श्रुतयः स्मृतयः सर्वाः पुराणान्यखिलानि च । वदन्ति भूतिमहात्म्यं तैस्तितां धारयेत् द्विजः ॥

“ उद्धूलनं त्रिपुण्ड्रं च मनसाऽपि न संत्यजेत् । श्रुत्या विधीयते यस्मात्तत्यागी पतितो भवेत् ” ॥ इति ।

पाराशरे—

“ भस्मना वेदमन्त्रेण त्रिपुण्ड्रं चावकुण्ठनम् । यस्य सिध्येत्प्रयत्नेन ब्राह्मण्यं तस्य पुष्कलम् ॥

१५ “ भस्मना वेदमन्त्रेण त्रिपुण्ड्रस्य तु धारणम् । आश्रमाणां च सर्वेषां धर्मत्वेनाहुरास्तिकाः ॥

“ शिवस्य विष्णोर्देवानां ब्रह्मणस्तुतिकारणम् । पार्वत्याश्च महालक्ष्म्याः भारत्यास्तुतिकारणम् ॥

“ भस्मना वेदमन्त्रेण त्रिपुण्ड्रस्य तु धारणम् । भस्मसंछन्नसर्वाङ्गं त्रिपुण्ड्राङ्कितमस्तकम् ॥

“ ये निन्दन्ति नरा राजा हन्यात्तानविचारतः ॥

“ वैष्णवीं धारयेद्यष्टिं सोदकं च कमण्डलुं । पवित्रमुपवीतं च त्रिपुण्ड्रोद्धूलनं द्विजः ॥

२० “ यथा विशिष्टे मानुष्ये ब्राह्मणे पशुविग्रहे । यज्ञदानाद्यनुष्ठानं दुर्लभं सर्वदेहिनाम् ॥

“ तथा श्रौतेषु धर्मेषु त्रिपुण्ड्रं भस्मकुण्ठनम् । रुद्रलिंगार्चनं चापि दुर्लभं हि शरीरिणाम् ॥

“ त्रिपुण्ड्रधारणं तिर्यक् भस्मनैवावकुण्ठनम् । सुदुर्लभमिति ज्ञात्वा खलु सर्वेश्वरोऽकरोत् ॥

“ अनिष्पन्नस्य कर्तव्यं त्रिपुण्ड्रादेस्तु धारणम् । विशेषेण स्वलाभाय नान्यलाभाय सत्तम ॥

“ स्वलाभमन्तरेणापि पराचारार्थमास्तिकः । निष्पन्नेनापि कर्तव्यं यथा सर्वेश्वरेण तत् ” ॥ इति ।

२५ मानवोपपुराणे—

“ त्रिपुण्ड्रधारिणं दृष्ट्वा भूतप्रेतपुरःसराः । भीताः प्रकंपिताः शीघ्रं गच्छन्त्येव न संशयः ॥

“ त्रिपुण्ड्रधारणं भूत्या तथा देहावकुण्ठनम् । यो न कुर्यात्तु मन्त्रेण स साक्षात्पतितो भवेत् ” ॥ इति ।

कूर्मपुराणेऽपि—

“ सृष्टासृष्टिच्छलेनाह त्रिपुण्ड्रस्य प्रशस्तताम् । ससर्जं स ललाटे हि तिर्यगूर्ध्वं न वर्तुलम् ॥

३० “ तीर्थग्रेखाः प्रकाशन्ते ललाटे सर्वदेहिनाम् । तथापि मानवा मूर्खा न कुर्वन्ति त्रिपुण्ड्रकम् ॥

“ वेदस्याध्ययने शूद्रो नाधिकारी यथा भवेत् । त्रिपुण्ड्रेण विना विप्रो नाधिकारी स्वकर्मसु ॥

“ यथा राजा स्वचिन्हांकं स्वजनं मन्यते सदा । तथा शिवस्त्रिपुण्ड्राङ्कं नरं स्वमिति मन्यते ॥

“ द्विजातिर्वाऽन्त्यजातिर्वा सितशुद्धेन भस्मना । धारयेद्यन्त्रिपुण्ड्राङ्कं रुद्रस्तेन वशीकृतः ” ॥ इति ।

लिंगे—

३५ “ त्रिपुण्ड्रं चतुर्विप्राणां वर्तुलं नृपवैश्ययोः । अर्धचन्द्रं तु शूद्राणामन्येषामूर्ध्वपुण्ड्रकम् ” ॥ इति ।

ब्रह्मकैवर्ते—

“धार्यं भस्म सदाग्निहोत्रजनितं यद्वैदिकं वैदिकैस्तिर्यक् पुंङ्गतया ललाटफलके वक्षस्स्थले मस्तके ॥
“बाव्होर्मैत्रपुरःसरं क्रतुशतं तैरेव सम्यक्कृतं स्नातं तीर्थसहस्रकोटिषु धरा दत्ता नवद्येखिला” ॥ इति ।

शंकरसंहितायाम्—

“यत्र भुंजीत भस्मांगी मूर्खो वा पण्डितोऽपि वा । तत्र भुंक्ते महादेवः सपत्नीको वृषध्वजः ॥ ५
“भूतिरेवौषधं पुंसां मुक्तिस्त्रिविध्यकर्मणि ” ॥ इति । सौरसंहितायाम्—
“भस्मना छन्नसर्वांगमनुगच्छति यः पुमान् । सर्वपातकयुक्तोऽपि स सद्यः पूयते नरः ॥
“यथा पुरेषु सर्वेषु पुरी वाराणसी शुभा । तथा शुभ्रं त्रिपुंङ्गं च सर्वपुंङ्गेषु कथ्यते ” ॥

मानवीयसंहितायाम्—

“प्रातःकाले च मध्याह्ने सायान्हे च त्रिपुंङ्गकम् । सितेन भस्मना कुर्यात्स रुद्रो नात्र संशयः” ॥ इति । १०

स्तुतसंहितायाम्—

“ललाटे चैव दोर्द्वे तथैवोरसि बुद्धिमान् । त्रिपुंङ्गं धारयेन्नित्यं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥
“भस्मनोद्धूलनं चैव तथा तिर्यक् त्रिपुंङ्गकम् । प्रमादादपि मोक्षार्थी न त्यजेदिति हि श्रुतिः” ॥ इत्यादि ।
पुरुषार्थबोधेऽपि—“विभूतिधारणविधिं प्रवक्ष्यामि समासतः ॥

“भस्माग्निहोत्रजं वाऽथ विरजाग्निसमुद्भवम् । आदरेण समादाय शुद्धे पात्रे निधाय तत् ॥ १५

“प्रक्षाल्य हस्तौ पादौ च द्विराचम्य समाहितः । गृहीत्वा भस्म तप्तं च ब्रह्ममंत्रैः शनैः करे ॥

“प्राणायामत्रयं कृत्वाऽग्निरित्यादिमंत्रतः । तैरेव सप्तभिर्मंत्रैस्त्रिवारमभिमन्त्र्य तत् ॥

ओमापोज्योतिरित्युक्त्वा ध्यात्वा विष्णुं जलाधिपमा संयोज्य भस्मना तोयं अग्निरित्यादिभिः क्रमात् ॥

“निमृज्ज्य सांबं ध्यात्वा समुद्धूल्यापादमस्तकम् । तेन भावनया ब्रह्मभूतेन सितभस्मना ॥

“ललाटवक्षः स्कंधेषु स्वाश्रमोचितमंत्रतः । मध्यमानामिकांगुष्ठैः अनुलोमविलोमतः ॥ २०

“त्रिपुंङ्गं धारयेन्नित्यं त्रिकालेष्वपि भक्तितः । उद्धूलनस्य स्नानत्वाद्धस्तौ प्रक्षाल्य तत्परम् ॥

“द्विराचामेत् त्रिपुंङ्गस्य धारणांते तथैव च ” ॥ इति । क्रियासारे—

“शूद्रहस्तस्थितं भस्म द्विजातिर्नैव धारयेत् । तथैवांत्यजहस्तस्थं शूद्रैर्धार्यं न जातुचित् ॥

“यावन्तः पतिता भूमौ भस्मनः परमाणवः । तावद्वर्षसहस्राणि रौरवं नरकं व्रजेत् ” ॥ इति ।

पाराशरे—

“श्रौतधर्मकनिष्ठानां लिंगं तु श्रौतमेव हि । अश्रौतधर्मनिष्ठानां लिंगं त्वश्रौतमेव हि ॥

“श्रौतं लिंगं च विज्ञेयं त्रिपुंङ्गोद्धूलनात्मकम् । अश्रौतमूर्ध्वपुंङ्गादि नैव तिर्यक् त्रिपुंङ्गकम् ॥

“वेदसिद्धो महादेवः साक्षात्संसारमोचकः । उमार्धविग्रहः शुक्लश्चंद्रार्धकुतशेखरः ॥

“लोकानामुपकाराय श्रौतं लिंगं दधाति च । वेदसिद्धस्य विष्णोश्च श्रौतं लिंगं न चेतरेत् ॥

“प्रादुर्भावविशेषाणामपि तस्य तदेव हि ” ॥ इति । भविष्यत्पुराणे—

“पापानामपि बाहुल्यात् दधीचस्य च शापतः । गौतमस्य मुनेः शापात् श्रौतं लिंगं न रोचते” ॥

आदित्यपुराणेऽपि—

“दूर्वाससो मुनेः शापात् कुपितस्य महात्मनः । कण्वशापाद्भृगोः शापादुपमन्योश्च शापतः ॥

“दधीचस्य मुनेः शापात् गौतमस्य च शापतः ॥

“विप्राणां दाक्षिणात्यानां पापोपहतचेतसाम् । शिवे भस्मानि रुद्राक्षे किञ्चिच्छ्रद्धा न विद्यते”॥ इति ।
 “त्रिपुंङ्गोद्धूलनार्थानि वचनानि सहस्रशः । संति तानि न लिख्यन्ते ग्रंथविस्तरभीतितः ” ॥

यत्तु ब्रह्मरातनवचनम्—

“ब्राह्मणस्योर्ध्वपुंङ्गं स्यात्क्षत्रियस्यार्धचंद्रकम् । वैश्यस्य वर्तुलाकारं शूद्रस्यैव त्रिपुंङ्गकम्”॥ इति ।

५ यदपि पाद्मवचनम्—

“कपालकेशभस्मास्थिशुक्तिपाषाणधारिणम् । त्रिपुंङ्गधारिणं विप्रं चंडालमिव संत्यजेत् ॥

“बालेंदुवत्क्षत्रियाणां वैश्यानां वर्तुलाकृतिः । त्रिपुंङ्गं शूद्रजातीनां विधिरेष सनातनः ॥

“कुलीनो ब्राह्मणो विद्वान् भस्मग्राही भवेद्यदि । वर्जयेत्तादृशं देवि मद्योच्छिष्टघटं यथा ॥

“त्रिपुंङ्गं ब्राह्मणो विद्वान् लीलयाऽपि न धारयेत् । त्रिपुंङ्गधारणाद्विप्रः पतत्येव न संशयः ॥

१० “तामसेषु पुराणेषु मोहनार्थं सुरादिषाम् । त्रिपुंङ्गधारणं प्रोक्तं तामसैर्मुनिसत्तमैः ॥

“तामसानि पुराणानि दृष्ट्वा मोहाच्च यो द्विजः । त्रिपुंङ्गधारणं कृत्वा तमस्यंधे निमज्जति ॥

“तिर्यक्पुंङ्गं न कुर्वीत संप्राप्ते मरणेऽपि च । तिर्यक्पुंङ्गाद्वतिस्तिर्यक् ऊर्ध्वपुंङ्गात्तथोर्ध्वगा ॥

“शस्त्रधार्यसिधारी च धनुर्धारी धनापहः । तिर्यक्पुंङ्गधरो विप्रः चंडालसदृशो भवेत् ॥

“ब्राह्मणः कुलजो विद्वान् तिर्यक्पुंङ्गधरो यदि । तं गर्दभं समारोप्य राजा राष्ट्रात्प्रवासयेत्”॥ इति ।

१५ यदपि वसिष्ठसंहितायाम्—

“यत्तु रुद्रार्चनं प्रोक्तं त्रिपुंङ्गं वापि सत्तमाः । तद्ब्राह्मण्यविषयं न तु विप्रस्य कर्हिचित् ॥

“न त्रिपुंङ्गं द्विजैर्धार्थं पट्टिकाकारमेव च । न चान्यदेवताभक्तिरापद्यपि कदाचन”॥ इति ।

यदपि ब्रह्मांडपुराणवचनम्— “त्रिपुंङ्गं शूद्रकल्पानां शूद्राणां च विधीयते ” ॥ इति ।

एवमादीनि त्रिपुंङ्गनिषेधवचनानि पाशुपतादितंत्रदीक्षाप्रविष्टब्राह्मणनिंदापराणि । अत एव

२० वाशहे गौतमः— “शशाप तान् जटाभस्मदीक्षाव्रतधरांस्तथा ॥

“त्रिपुंङ्गधारिणो नित्यं भस्मोद्धूलनतत्पराः । भविष्यथ त्रयीबाह्या मिथ्याज्ञानप्रलापिनः ॥

“बौद्धे चाप्यार्हते चैव तथा पाशुपतेऽपि च । शांभवे दीक्षिता यूयं भवत ब्राह्मणाधमाः ”॥

षट्त्रिंशतिमते—

“बौद्धान्पाशुपतान्जैनान्लोकायतिककापिलान् । विकर्मस्थान्द्विजान् दृष्ट्वा सचैलो जलमाविशेत्”॥ इति

२५ चंद्रिकायामपि—

“जैनान्पाशुपतान्सृष्ट्वा लोकायतिकनास्तिकान् । सृष्ट्वा देवलकं चैव सवासा जलमाविशेत्”॥ इति ।

नारदीये पुराणे—

“शैवान्पाशुपतांश्चैव पाचरात्रान् जनेश्वराः । सृष्ट्वा स्नायाज्जपेत्सूक्तं यतो निन्दन्ति वैदिकान्”॥ इति ।

कौर्मे—

३० “कापालिकाः पाशुपताः पाण्डा ये च तद्विधाः । ब्रह्मभावान्निस्तास्ते वर्जनीयाः प्रयत्नतः”॥

वासिष्ठलैंगेऽपि—

“केचित्कापालमिच्छन्ति केचित्पाशुपतं मुने । केचिद्गान्धर्वं प्रशंसन्ति केचिद्गंगवरं मुने ॥

“केचिल्लोकायतं ब्रह्मन्केचिद्वामं महामुने । केचिद्भैरवमिच्छन्ति केचिच्छाक्तं तथैव च ॥

“शांभवं केचिदिच्छन्ति यामलं भुवि केचन ॥

“अन्यानि यानि शास्त्राणि विरुद्धानि महामुने । स्वतः प्रमाणभूतेन वेदेन मुनिसत्तम ॥

“तान्येव श्रद्धया युक्ताः परिगृह्य द्विजातयः । आचरन्ति महामूढा युगांते समुपस्थिते” ॥ इति ।

विष्णुपुराणेऽपि—

“येन केनापि योगेन द्विजातिर्दीक्षितः कलौ । यैव सैव च मैत्रेय प्रायश्चित्तं कलौ क्रिया ॥

“यदा यदा हि पाण्डवृद्धिर्मैत्रेय लक्ष्यते । तदा तदा कलेर्द्विद्विरनुमेया विचक्षणैः ” ॥ इति । ५

द्विजबन्धूनां तन्त्रे अधिकार उक्तो जातिनिर्णयसंग्रहे—

“ब्राह्मणात् द्विजकन्यायां जातो नाम शिवद्विजः । महादेवस्य पूजार्थं उपनेयः समन्त्रकम् ॥

“शिवागमं पठेन्नित्यं शिवशेषान्नभाक्तेमान् । दीक्षाधर्मविधानं च द्विजो धर्ममिवाचरेत् ॥

“ब्राह्मण्यां सधवायां तु विप्राज्जातस्तु कुण्डकः । विधवायां तु गोलः स्यादेतौ श्रान्दबहिष्कृतौ ॥

“तौ च देवस्यै पूजार्हावुपनेयौ च मन्त्रतः । आरामपोषणः कुण्डो गोलको हिंगुविक्रयी ॥ १०

“सवर्णेष्वधमावेतौ कानीनत्वाच्छिवद्विजः” ॥ इति । यत्तु शंखवचनम्—

“दीपाग्निं दीपतैलं च भस्म चास्थिरजस्वलाम् । एतानि ब्राह्मणः स्पृष्ट्वा सवासा जलमाविशेत्” ॥ इति ।

तद्दीपाग्निपदसन्निधानात्तदग्निजवर्तिभस्मविषयम् । भस्ममात्रपरत्वे तु पूर्वोक्तभस्मधारणविधायक-

श्रुतिस्मृतीतिहासपुराणविरोधः स्यात् । तस्माद्भूलं त्रिपुण्ड्रं च वैदिकैर्धार्यमिति स्थितम् ॥

अत्र विकल्पमाह व्यासः— “ऊर्ध्वपुण्ड्रं त्रिपुण्ड्रं वा धारयेत्सर्वकर्मसु ” ॥ इति । १५

शैवेऽपि—

“ऊर्ध्वपुण्ड्रं त्रिपुण्ड्रं वा धृत्वा कर्माणि वै द्विजः । इष्टापूर्तानि कुर्वीत नान्यथा तत्फलं लभेत्” ॥ इति

अन्यत्रापि— “आचम्य धारयेद्दूर्ध्वपुण्ड्रं पुण्यस्थलीमृदा ।

“अथवा धारयेद्विप्रो भस्मना तु त्रिपुण्ड्रकम् । यज्वा तु धारयेन्नित्यं भस्मनैव त्रिपुण्ड्रकम्” ॥ इति

अत्र व्यवस्था माधवीये दर्शिता— “ऊर्ध्वपुण्ड्रं त्रिपुण्ड्रं वा धारयेत्तु यथाकुलम् ” ॥ इति । २०

पारिजाते—

“अपवित्रेण यज्जप्तमस्नानेन कृतं हुतम् । यच्च शून्यललाटेन तदत्यल्पफलं भवेत् ॥

“ऊर्ध्वपुण्ड्रं त्रिपुण्ड्रं वा धारयेत्तु यथाकुलम् ” ॥ इति । पाद्मेऽपि—

“आचम्य भस्मना धार्यं त्रिपुण्ड्रं गोपिचंदनात् । ऊर्ध्वपुण्ड्रं यथापूर्वमनुष्ठानं समाचरेत्” ॥ इति ।

तत्रैव समुच्चयोऽप्यभिहितः

“ऊर्ध्वपुण्ड्रं मृदा पूर्वमनुष्ठाय समाचरेत् । अग्निहोत्रसमुद्भूतभस्मनाऽपि त्रिपुण्ड्रकम् ॥

“ऊर्ध्वपुण्ड्रं त्रिपुण्ड्रं च द्वावेतौ धारयेत् द्विजः । तयोरेकं परित्यज्य रौरवं नरकं व्रजेत्” ॥ इति ।

यत्तु वचनम्—

“गोपीचंदनसंयुक्तं भूत्या तिर्यक् त्रिपुण्ड्रकम् । पष्ठिवर्षसहस्राणि नरकं तं प्रवेशयेत् ” ॥

तत् त्रिपुण्ड्रोपरि ऊर्ध्वपुण्ड्रधारणानिषेधपरम् । “ऊर्ध्वपुण्ड्रे त्रिपुण्ड्रं स्यात् त्रिपुण्ड्रे नोर्ध्वपुण्ड्रकम्” ॥

स्मरणात् । तथा च ब्रह्मकैवर्ते वृद्धगिरिमाहात्म्ये—

“तिर्यग्भस्ममृदं तथोर्ध्वमुदितां धत्तेऽनयोर्व्यत्ययोर्विप्रध्वंसनमन्यधारणकृता भस्मापि धार्यं ततः

“अन्यन्नोपरि भस्मधारणकृता मोहाद्दधन्निष्येत्यत्तच्चंदनकुंकुमाद्यपि च मृत्स्यालौकिकी

भस्म तिर्यगेव धारयेत् । तथा ग्राह्यत्वेनोदितां उक्तां गोपीचंदनादिकां मृदमूर्ध्वाग्रामेव धारयेत्

अनयोर्व्यत्ययः व्यत्यासः । भस्मना ऊर्ध्वपुण्ड्रकरणं मृदा तिर्यक्पुण्ड्रकरणं च विप्रध्वंसनकरं ब्राह्मण्यहानिकरम् । अन्यधारणकृता गोपीचंदनादिमृद्धारणकृता तत उपरि भस्माभिधार्य भस्मधारयता तदुपरि अन्यत् गोपीचंदनादि न धार्यम् । मोहान्धारयन्पतितः स्यात् । एवं लौकिकी केवलमलंकारार्थं मृच्चंदनकुंकुमकस्तूरिकादिकं च भस्मोपरि न धार्यमित्यर्थः ।

५ स्मृत्यंतरे—

“वैदिकैर्मन्त्ररहितं चंदनागरुकुंकुमम् । तिर्यक्पुण्ड्रात्मना धार्यं कांतिसौख्याभिलाषिभिः ॥

“पुण्ड्रोद्धृतं चंदनाद्यैरिति भस्म न संत्यजेत् ॥

“दद्येत भस्मसंत्यागी श्रुतिचक्रोत्थवन्हिना । चंदनादुपरि प्राज्ञो धारयेद्भस्म वैदिकम् ॥

“लौकिकं चंदनाद्यं तु भस्मोपरि न धारयेत् ॥” इति ।

१० “प्रातःकाले जलैर्युक्ता मध्याह्ने चंदनैर्युता । सायमंभोविरहिता भूतिरंहोविनाशिनी ” ॥ इति स्मरणात् । भस्मोपरि भस्ममिश्रं चंदनं धार्यमित्याहुः । तथा च स्मृतिरत्ने—

“ब्राह्मणानां नृपाणां च भस्ममिश्रं च चंदनम् । नेत्रैर्युग्मप्रमाणं तु त्रिपुण्ड्रोपरि चेष्यते ॥” इति । एवं च

“ऊर्ध्वपुण्ड्रं त्रिपुण्ड्रं वा धारयेत्तु यथाकुलम् । उभयं वा यथाचारं धारयेद्वैदिको द्विजः ॥

१५ “तत्रनिष्ठस्तु तत्तत्रसिद्धमेवेति निर्णयः ” । श्राद्धे ऊर्ध्वपुण्ड्रधारणमुक्तं हेमाद्रौ —

“जपे होमे तथा दाने स्वाध्याये पितृकर्मणि । तत्सर्वं नश्यति क्षिप्रं ऊर्ध्वपुण्ड्रं विना कृतम् ” ॥

श्राद्धे वर्तुलपुण्ड्रनिषेधः स्मर्यते तत्रैव

“वामहस्ते तु दर्भाश्च रंगवल्ली तथा गृहे । ललाटे तिलकं दृष्ट्वा निराशाः पितरो गताः ” ॥

संग्रहे—

२० “वर्जयेत्तिलकं फाले श्राद्धकर्मणि सर्वदा । तिर्यग्वाऽप्यूर्ध्वपुण्ड्रं वा धारयेच्छ्राद्धकर्मणि ” ॥

विष्णुपुराणे—

“यागो दानं जपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् । भस्मीभवति तत्सर्वं ऊर्ध्वपुण्ड्रं विना कृतम् ॥” इति ।

चंद्रिकायाम्—

“श्रौतस्मार्तक्रियाः सर्वा ह्यूर्ध्वपुण्ड्रमकुर्वतः । जायन्ते विफला ब्रह्मन् वाधिताश्च भवंति ताः ॥

२५ “संध्याकाले जपे होमे स्वाध्याये पितृतर्पणे । श्राद्धकाले विशेषेण कर्त्ता भोक्ता च न त्यजेत् ॥”

स्मृत्यंतरे—

“इवोभूते नित्यकर्माणि नद्यादौ विमले जले । कृत्वा श्राद्धं मृदा शुभ्रमूर्ध्वपुण्ड्रं तु धारयेत् ॥” इति ।

पाद्मे—

“ऊर्ध्वपुण्ड्रविहीनं तु यः श्राद्धे भोजयेत् द्विजः । अश्रंति पितरस्तस्य विष्णून् नात्र संग्रहः ॥

“ऊर्ध्वपुण्ड्रविहीनस्तु यः श्राद्धं कुरुते द्विजः । सर्वं तद्राक्षसेर्नीतं नरकं च स गच्छति ” ॥

३० त्रिपुण्ड्रधारणमाह लौगाक्षिः—

“त्रिपुण्ड्रधृग्विप्रवरो यो रुद्राश्रयः शुचिः । स पंक्तिपावनः श्राद्धे पूज्यो विप्रैः सुरैरपि ॥

“श्राद्धे यजे जपे होमे वैश्वदेवे सुगर्चने । धृतत्रिपुण्ड्रः पूतात्मा मृत्युं जयति मानवः ॥

“त्रिपुण्ड्रं यद्यधृत्वा तु कुर्यात्तत्कर्म तद्वृथा ” ॥ इति ।

त्रिपुंड्रनिषेधः हेमाद्रौ—

“तिर्यक्पुंड्रं तथा दृष्ट्वा स्कंधे मालां तथैव च । निराशाः पितरो यांति दृष्ट्वा च वृषलीपतिम्” ॥ इति ।

वसिष्ठः—

“कांस्यपात्रे हविर्दृष्ट्वा कंठे चैव तु मालिकाम् । ललाटे तिलकं दृष्ट्वा निराशाः पितरो गताः” ॥ इति ।

तिलकं वर्तुलम् । मालिकामिति पुष्पमालानिषेधः । तथा च पद्धतौ—

“ऊर्ध्वपुंड्रं त्रिपुंड्रं वा नित्यमेव तु धारयेत् । श्राद्धकाले च संप्राप्ते कर्ता भोक्ता च वर्जयेत्” ॥ इति ।

“आयसं घंटनादं च त्रिपुंड्रं च विशेषतः । पुष्पमालां च मुद्रां च निराशाः पितरो गताः ॥

“मृत्पात्रगतमर्घ्यं च मृत्तिकागंधलेपनम् । आज्येन धूपं दृष्ट्वाऽथ निराशाः पितरो गताः ॥

“रुद्राक्षधारिणं श्राद्धे भोजयित्वा तथा द्विजम् । पितृलोकमवाप्नोति नात्र कार्यं विचारणा ॥

“त्रिपुंड्रेण तु संयुक्तो यं श्राद्धं कुरुते द्विजः । राक्षसास्तद्विलुपंतीत्याह वैवस्वतो मनुः ॥ १०

“त्रिपुंड्रं वर्तुलाकारं ऊर्ध्वपुंड्रं च धारयन् । श्राद्धं कुर्वन्स पापी स्यात् रौरवं नरकं व्रजेत् ॥

“विप्राग्निमंत्रयित्वा तु त्रिपुंड्रं यस्तु धारयेत् । स कर्ता नरके घोरे पितृभिः सह मज्जाति ॥

“त्रिपुंड्रं चैव सर्वेषां अग्निहोत्रसमो विधिः । श्राद्धकाले तु संप्राप्ते कर्ता भोक्ता च तत्त्यजेत्” ॥

अत्र विधिनिषेधाभ्यां यथाकुलाचारं व्यवस्थितो विकल्पो द्रष्टव्यः । केचित्तु श्राद्धे त्रिपुंड्रोर्ध्व-
पुंड्रविधिः शैववैष्णवतंत्रावलंबिद्विजविषयः तन्निषेधो वैदिकविषय इत्याहुः । अन्ये तु निषेधः । ५
प्रेतश्राद्धविषयः

“त्रिपुंड्रधारिणं दृष्ट्वा भूतप्रेतपुरःसराः । भीताः प्रकंपिताः शीघ्रं गच्छंत्येव न संशयः ॥

“ये घोरा राक्षसाः प्रेता ये चान्ये क्षुद्रजंतवः । त्रिपुंड्रधारिणं दृष्ट्वा पलायंते न संशयः” ॥

इत्यादिपुराणवचनात् । ‘निराशाः पितरो गता’ इति तु वचनं पितृत्वं प्राप्तस्यापि अब्दपूर्ति-
पर्यंतं प्रेतभावस्यानिवृत्तेः सर्पिडानंतरभाविनि मासिकश्राद्धे पुंड्रं न धार्यमित्येवंपरम् २०

“सर्पिंडीकरणादूर्ध्वं प्रेतत्वस्यानिवृत्तितः । तावद्भस्म न धार्य स्याद्यावदब्दो न पूर्यते” ॥

इति स्मरणादित्याहुः । शिष्टाचारानुसारेण यथोचितमत्र ग्राह्यम् ।

ननु देवतोत्कर्षनिकर्षप्रतिपादकानि पुंड्रस्तुतिनिंदापराणि च वचनानि परस्परविरुद्धानि
बहूनीतिहासपुराणेषु दृश्यंते । अतः परस्परविरुद्धार्थाभिधायकत्वादितिहासपुराणान्यप्रमाणा-
नीति चेद्भवेदयं दोषो भेदवादीनां शैवानां वैष्णवानां च शिवादन्त्यो विष्णुः विष्णोरन्यः शिव
इति अवगच्छताम् । अभेदवादिनां तु सिद्धांतिनां नायं दोषः । ईश्वरस्यैकत्वाभ्युपगमात् । तथा २५
ह्येक एवेश्वरो जगत्सष्ट्यादिकरणाय मायया ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्रादिविग्रहान् स्वीकृत्य तत्तद्विग्रहे
भक्तान् तेन तेन रूपेणानुगृह्णन् वर्तते । अष्टादशपुराणानां कर्ता व्यासोऽपि तत्तद्विग्रहभक्तानां
तत्र तत्र भक्त्यतिशयोत्पादनाय तत्तद्रूपं स्तोति । अयमेव सर्वज्ञः सर्वेश्वरः सर्वात्मा नान्ये
अतोऽयमेक एव सेव्य इति । सा तु निंदा तेषां न निंदापरा भवति । किंतु प्रकृतविग्रहस्तुतिपरा
यथा अनुदितहोमनिंदा उदितहोमस्तुतिपरा । “न हि निंदा निन्द्यान्निदितुं अपि तु स्तुत्यान् ३०
स्तोतुम्” इति न्यायात् । अन्यथा प्रकृतविग्रहस्य स्तुत्यस्य वचनांतरेण निंदितत्वेन तेन
वचनांतरेणास्य विरोधात् । तस्माद्रूपांतरनिंदया एकैकं रूपं स्तुवन् तद्द्वारा स्वरूपमेकमेव
सर्वेश्वरं दर्शयति । तस्य च स्वरूपस्यैकत्वात्सर्वेषां इतिहासपुराणानां तत्रैव पर्यवसानादेकार्थ-
त्वेनाविरोधात् । पुराणानामद्वैतपरत्वेन वेदांतानुसारित्वेन च तन्मूलत्वात्प्रामाण्यम् ।

भेदवादिपक्षे तु परस्परविरुद्धार्थत्वाभिधानात् पौरुषेयत्वेन मूलप्रमाणापेक्षायां तदनि-
रूपणादप्रामाण्यम् । तस्मादेकस्यैवैश्वरस्य सर्वदेवमयत्वात् देवतांतरनिंदावर्जितैरेवैश्वर आराध्यः
शिवो विष्णुरन्यो वा देवः । पुंद्मपि तत्तद्देवताप्रीतिकरं पुंद्मांतरनिंदावर्जितैरेव धार्यम् । तथा च
पाद्मे कौर्मे च विष्णुशंकरादिवचनानि—

- ५ “ मद्भक्तः शंकरद्वेषी मद्द्वेषी शंकरप्रियः । तावुभौ नरकं यातो यावदाभूतसंप्लवम् ॥
“ परात्परतरं यांति नारायणपरायणाः । न ते तत्र गमिष्यंति ये द्विषंति महेश्वरम् ॥
“ अयं नारायणो योऽहं ईश्वरो नात्र संशयः । नांतरं ये प्रपश्यंति तेषां देयमिदं परम् ॥
“ ममैव परमा मूर्तिर्नारायणसमाह्वया । सर्वभूतात्मभूतस्था शांता चाक्षरसंज्ञिता ॥
“ ये त्वन्यथा प्रपश्यंति लोके भेददृशो जनाः । न ते मां संप्रपश्यंति जायन्ते च पुनः पुनः ॥
१० “ ये त्विमं विष्णुमव्यक्तं वामदेवं महेश्वरम् । एकीभावेन पश्यंति न तेषां पुनरुद्भवः ॥
“ तस्मादनादिनिधनं विष्णुमात्मानमव्ययम् । मामेव संप्रपश्यध्वं पूजयध्वं तथैव च ॥
“ येऽन्यथा मां प्रपश्यंति मत्वेमं देवतांतरम् । ते यांति नरकान् घोरान् नाहं तेषु व्यवस्थितः ॥
“ मूर्त्तिं वा पण्डितं वाऽपि ब्राह्मणं वा मदाश्रयम् । मोचयामि श्वपाकं वा न नारायणनिन्दकम् ॥
“ तस्मादेव महायोगी मद्भक्तैः पुरुषोत्तमः । अर्चनीयो नमस्कार्यो मत्प्रीतिजननाय हि ॥
१५ “ अहंतामात्रशरणाः केचिद्वैदिकमानिनः । भेददृष्ट्याऽपि निंदन्ति युगशक्तिकृतं तु तत् ” ॥

तथा च कूर्मपुराणे—

- “ विनिन्दन्ति महादेवं ब्राह्मणं पुरुषोत्तमम् । आम्रायं धर्मशास्त्राणि पुराणानि कलौ युगे ॥
“ कुर्वन्ति चावताराणि ब्राह्मणानां कुलेषु वै । दधीचशापनिर्दग्धाः पुरा दक्षाध्वरे द्विजाः ॥
“ निन्दन्ति च महादेवं तमसाविष्टचेतसः । ये चान्ये शापनिर्दग्धाः गौतमस्य महात्मनः ॥
२० “ सर्वे तेऽवतरिष्यन्ति ब्राह्मणाद्यासु योनिषु । विनिन्दन्ति हृषीकेशं ब्राह्मणान्ब्रह्मवादिनः ” ॥ इति ।

इति पुंद्मधारणम् । सन्ध्याविधिः—

- “ अहोरात्रस्य यः संधिः सूर्यनक्षत्रवर्जितः । सा तु संध्या समाख्याता मुनिभिस्तच्चदर्शभिः ॥
इति दक्षवचनम् । पितामहः—

- “ नक्षत्रज्योतिर्गारभ्य सूर्यस्योदयदर्शनात् । प्रातःसंध्येति तां प्राहुः श्रुतयो मुनिसत्तमाः ” ॥
२५ अत्र व्यवस्थामाह दक्षः—

“ रात्र्यंत्ययामनाडी द्वे संध्यादिः काल उच्यते । दर्शनाद्रविरेखायाः तदंतो मुनिभिः स्मृतः ” ॥ इति ।
यद्यपि कालत्वेन अत्र संध्याशब्दः प्रतीयते तथापि तस्मिन् काले उपास्या देवता संध्याशब्देनोप-
लक्ष्यते । अत एव योगयाज्ञवल्क्यः— “ संधौ संध्यामुपासीत नास्तगे नोद्वेगे रवौ ।

“ ब्रह्मणोपास्यते संध्या विष्णुना शंकरेण च । कस्मान्नोपासयेद्देवो श्रेयस्कामो द्विजोत्तमः ” ॥ इति ।

- ३० शंखः—

“ प्रातःसंध्यां सनक्षत्रां मध्यमां स्नानकर्मणि । सादित्यां पश्चिमां संध्यां उपासीत यथाविधि ” ॥ इति ।
स्नानकर्मणि मध्याह्नस्नानान्तरमित्यर्थः । संवर्तोऽपि—

“ प्रातःसंध्यां सनक्षत्रामुपासीत यथाविधि । सादित्यां पश्चिमां संध्यामर्धास्तमितभास्कर्म ” ॥

काश्यपः—

“ ब्रह्मणो हृदयं विष्णुः विष्णोश्च हृदयं शिवः । शिवस्य हृदयं संध्या तेनोपास्या द्विजोत्तमैः ” ॥ इति ।

व्यासोऽपि—

- “ उपासते तु यां संधौ निशाया दिवसस्य च । तामेव संध्यां तस्मात्तु प्रवदन्ति मनीषिणः ॥
 “ अनागतां तु ये पूर्वमनातीतां तु पश्चिमाम् । संध्यां नोपासते विप्राः कथं ते ब्राह्मणाः स्मृताः ॥
 “ योऽन्यत्र कुरुते यत्नं धर्मकार्येऽपि वै द्विजः । विहाय संध्याप्रणतिं स याति नरकायुतम् ॥
 “ अतिक्रामति यो मोहात् संध्यामन्यपरायणः । स साधुभिर्बाहिष्कार्यः सर्वस्मात् द्विजकर्मणः ॥ ५
 “ उत्तमा तु सनक्षत्रा मध्यमा लुप्ततारका । अधमा सूर्यसहिता प्रातःसंध्या त्रिधा मता ” ॥
 सूर्यसहितेति गौणकालाभिप्रायेण स एव—
 “ यः सूर्यसहितां सन्ध्यां सदा कुर्वीत मोहतः । न तस्य विद्यते संध्या सर्वकर्मबहिष्कृतः ॥
 “ विधिनाऽपि कृता संध्या कालातीताऽफला भवेत् । अयमेव हि दृष्टान्तो वंध्यास्त्रीमैश्वर्यं यथा ॥
 “ अकाले चेत् कृतं कर्म कालं प्राप्य पुनः क्रिया । कालातीतं तु यः कुर्यादकृतं तद्विनिर्दिशेत् ” ॥ १०
 अकाले स्वकालात्पूर्वस्मिन्काले ।

- “ यः संध्यां कालतः प्राप्तां आलस्यादतिवर्तते । सूर्यहत्यामवाप्नोति उलूकत्वमियात्ततः ॥
 “ सायं प्रातः सदा संध्यां ये विप्रा नो उपासते । कामं तान् धार्मिको राजा शूद्रकर्मसु योजयेत् ॥
 “ संध्याहीनोऽशुचिर्नित्यं अनर्हः सर्वकर्मसु । यदन्यत्कुरुते कर्म न तस्य फलभाग् भवेत् ॥
 “ अनन्यचेतसः शांता ब्राह्मणा वेदपारगाः । उपास्य विधिवत्संध्यां प्राप्ता पूर्वं परां गतिम् ॥ १५
 “ या संध्या सा जगत्सूतिर्मायातीता तु निष्फला । ऐश्वरी केवला शक्तिस्तत्त्वत्रयसमुद्भवा ॥
 “ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन संध्योपासनमाचरेत् । उपासितो भवेत्तेन देवो योगतनुः परः ” ॥ इति ।
 यमः—

- “ संध्यामुपासते ये तु सततं संशितव्रताः । विधूतपापास्ते यांति ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥
 “ यदन्हा कुरुते पापं कर्मणा मनसा गिरा । आसीनः पश्चिमां संध्यां प्राणायामैस्तु हन्ति तत् ॥ २०
 “ यद्रात्र्या कुरुते पापं कर्मणा मनसा गिरा । पूर्वा संध्यामुपासीनः प्राणायामैर्व्यपोहति ” ॥
 मनुः (४।९४)—

- “ ऋषयो दीर्घसंध्यत्वात् दीर्घमायुरवाप्नुयुः । प्रज्ञां यशश्च कीर्तिं च ब्रह्मवर्चसमेव च ” ॥
 यागादिकर्मकृता ख्यातिर्यशः । त्यागादिकृता कीर्तिः । गोभिलः—
 “ संध्या येन न विज्ञाता संध्या येनानुपासिता । जीवमानो भवेच्छूद्रो मृतः श्वा चाभिजायते ” ॥ २५
 चंद्रिकायाम्—

- “ उपास्य पश्चिमां संध्यां सादित्यां वै यथाविधि । गायत्रीमन्त्रसेत्तावद्यावद्वक्षाणि पश्यति ॥
 “ पूर्वा संध्यां सनक्षत्रां उपक्रम्य यथाविधि । गायत्रीमन्त्रसेत्तावत् यावदादित्यदर्शनम् ” ॥ इति ।

छंदोगश्रुतिरपि— “ ब्रह्मवादिनो वदन्ति कस्माद्ब्राह्मणः सायमासीनः संध्यां उपास्ते कस्मात् प्रातस्तिष्ठन् का च संध्या कश्च संध्यायाः कालः किं च संध्यायाः संध्यात्वं देवाश्च ३० वा असुराश्चास्पर्धन्ते ते असुरा आदित्यमभिद्रवन् स आदित्योऽबिभेत् तस्य हृदयं कूर्मरूपेणातिष्ठन् । स प्रजापतिमुपाधावन् तस्य प्रजापतिरेतत् भेषजमपश्यदतं च सत्यं च ब्रह्म चोकारं च त्रिपदां च गायत्रीं ब्रह्मणो मुखमपश्यत् । तस्मात् ब्राह्मणोऽहोरात्रस्य संयोगे संध्यामुपास्ते सज्ज्योतिष्याज्योतिषो दर्शनात् । सोऽस्य संध्याकालः सा संध्या तत्संध्यायाः संध्यात्वं

यत्सायमासीनः संध्यामुपास्ते तथा वीरस्थान जयत्यथ यदपः प्रयुङ्क्ते ता विप्रुषो वज्रीभूत्वा असुरानपघ्नन्ति ” ॥ इति ।

तैत्तिरीयकेऽपि (तै. आ. प्र. २।२।२ सहस्रैः) “रक्षांसि ह वा पुरोनुवाके तपोग्रमतिष्ठन्त तान् प्रजापतिर्वरेणोपामंत्रयत तानि वरमवृणीतादित्यो नो योद्धा इति । तान्प्रजापतिरब्रवीद्योधयध्व-
५ मिति । तस्मादुत्तिष्ठन्तं ह वा तानि रक्षांस्यादित्यं योधयन्ति यावदस्तमन्वगात्तानि ह वा एतानि रक्षांसि गायत्रियाभिमंत्रितेनांभसा शाम्यन्ति तदुह वा एते ब्रह्मवादिनः पूर्वाभिमुखाः संध्यायां गायत्रियाऽभिमंत्रिता आप ऊर्ध्वं विक्षिपन्ति ता एता आपो वज्रीभूत्वा तानि रक्षांसि मंदेहारुणे द्विपे प्रक्षिपन्ति यत्प्रदक्षिणं प्रक्रमन्ति तेन पाप्मानमवधून्वन्ति ” ॥ इति ।
अत्र हारीतः—

१० “आदित्येन सह प्रातर्मंदेहा नाम राक्षसाः । युध्यन्ति वरदानेन ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥
“उदकांजलिनिक्षेपा गायत्र्या चाभिमंत्रिताः । निघ्नन्ति राक्षसान् सर्वान् मंदेहारुणान् द्विजेरिताः ॥
“ततः प्रयाति सविता ब्राह्मणैरभिरक्षितः । मरीच्याद्यैर्महाभागैः सनकाद्यैश्च योगिभिः ॥
“तस्मान्न लंघयेत्संध्यां सायप्रातः समाहितः । उलंघयति यो मोहात्स याति नरकं ध्रुवम्” ॥ इति ।
योगयाज्ञवल्क्योऽपि—

१५ “त्रिंशत्कोऽयस्तु विख्याता मंदेहा नाम राक्षसाः । प्रद्रवंति सहस्रांशुमुदयन्तं दिने दिने ॥
“अहन्यहनि ते सर्वे सूर्यमिच्छन्ति खादितुम् । अथ सूर्यस्य तेषां च युद्धमासीत्सुदारुणम् ॥
“ततो देवगणाः सर्वे ऋषयश्च तपोधनाः । संधौ संध्यामुपासीना यत्क्षिपन्त्यन्वहं जलम् ॥
“ब्रह्मव्याहृतिसंयुक्तं गायत्र्या चाभिमंत्रितम् । तेनादह्यन्त ते दैत्या वज्रीभूतेन वारिणा ॥
“एतद्विदित्वा यः संध्यामुपास्ते संशितव्रतः । दीर्घमायुः स विंदेत सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
२० “यस्तु तां केवलां संध्यां उपासीत स पुण्यभाक् । तां परित्यज्य कर्माणि कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥
“स हन्ति सूर्यं संध्याया नोपास्ति कुरुते तु यः ॥
“ये हिंसन्ति सदा सूर्यं मोक्षद्वारमनुत्तमम् । कथं मोक्षस्य संप्राप्तिर्भवेत्तेषां द्विजन्मनाम् ॥
“कामान्मोहाद्ब्राल्लोभात् संध्यां नातिक्रमेत् द्विजः । संध्यातिक्रमणाद्विप्रो ब्राह्मण्यात्पतितो यतः” ॥ इति ।
संध्यात्रयमाह अत्रिः— “संध्यात्रयं तु कर्तव्यं द्विजेनात्मविदा सदा ” ॥ इति ।

२५ अत्र संध्याशब्देन संध्योपासनरूपं कर्मोपलक्ष्यते । अन्यथा देवतायाः कर्तव्यतायोगात् ।
एतदभिप्रेत्य पाराशरोऽप्याह—

“संध्या स्नानं जपो होमो देवतानां च पूजनम् । आतिथ्यं वैश्वदेवं च पट्टकर्माणि दिनेदिने” ॥ इति ।
तत्र कालभेदेन देवताया नामादिभेदमाह व्यासः—
“गायत्री नाम पूर्वाह्णे सावित्री मध्यमे दिने । सरस्वती च सायान्हे सैवं संध्या त्रिषु स्मृता ॥
३० “प्रतिग्रहादन्नशेषात् पातकादुपपातकात् । गायत्री प्रोच्यते तस्मात् गायन्तं त्रायेत यतः ॥
“मन्वितृयोतनाञ्चैव सावित्री परिकीर्तिता । जगतः प्रसावित्री वा वाग्रूपत्वात् सरस्वती ॥
“गायत्री तु भवेद्रक्षा सावित्री शुक्रवर्णिका । सरस्वती तथा कृष्णा उपास्या वर्णभेदतः ॥
“गायत्री ब्रह्मरूपा तु सावित्री रुद्ररूपिणी । सरस्वती विष्णुरूपा उपास्या रूपभेदतः ॥

“ उदये ब्रह्मरूपं तु मध्यान्हे तु महेश्वरम् । सायान्हे विष्णुरूपं तु त्रिरूपं वै दिवाकरम् ॥

“ अनुसंध्यमुपासीत संध्यारूपं रविं द्विजः ” ॥ याज्ञवल्क्यः—

“ या संध्या सा तु गायत्री त्रयीरूपा प्रतिष्ठिता । संध्या ह्युपासिता येन विष्णुस्तेन ह्युपासितः ” ॥ इति ।

उपासनमभिधानम् । अत एव तौत्तिरीये ब्राह्मणम् (तै. आरण्यके २।२ पृ. १२१)

“ उद्यन्तमस्तं यन्तमादित्यमभिधायन् कुर्वन् ब्राह्मणो विद्वान् सकलं भद्रमश्नुतेऽसावादित्यो ५

ब्रह्मेति ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति य एवं वेद ” इति । अयमर्थः । कुर्वन् प्राणायामं कुर्वन् । यथो

यथोक्तनामवर्णरूपोपेतैः संध्याशब्दवाच्यः । असौ आदित्यः ब्रह्मेति संध्याभिन्नमादित्यं ब्रह्मत्वेन

ध्यायन् ऐहिकामुष्मिकं सकलं भद्रमश्नुते । य एवमुक्तध्यानेन शुद्धांतःकरणो वेदब्रह्म साक्षात्कुरुते

स पूर्वमपि ब्रह्मैव सन् अज्ञानाज्जीवभावं प्राप्तो यथोक्तज्ञानेन तैतोऽज्ञानापगमे ब्रह्मैव प्राप्नोतीति ।

अत एव व्यासः—

“ प्राक्कूलेषु ततः स्थित्वा दर्भेषु सुसमाहितः । प्राणायामत्रयं कृत्वा ध्यायेत्संध्यामिति श्रुतिः ॥

“ न भिन्नां प्रतिपद्येत गायत्रीं ब्रह्मणा सह । साऽहमस्मीत्युपासीत विधिनाऽनेन वै द्विजः ” ॥

ध्यानदेशोऽपि चंद्रिकायां दर्शितः—

“ गायत्रीं चिंतयेद्यस्तु हृत्पदे समुपस्थितम् । धर्माधर्मविनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम् ” ॥ इति ।

एवं च संध्यामुपासीतेत्यनेन संध्यामुक्तरूपां अर्कमंडलान्तर्गतामादित्याख्यां ब्रह्मात्मिकां देवतां १५

हृदि साऽहमस्मीत्युपासीत ध्यायेदित्युक्तं भवति । तेनात्रोपासनमेव प्रधानमन्यत्सर्वं मार्जना-

द्यगमित्यनुसंधेयमिति चंद्रिकामाधवीयादौ । अत एव व्यासः—

“ देशक्षोभे महापत्तौ मार्जनाध्यायसंभवे । संध्यागतं सहस्रांशुमंत्रैः कुर्यादुपस्थितम् ” ॥ इति ।

अत एव च युधिष्ठिरादिभिर्बुद्धोद्यतैः सांगानुष्ठानासमर्थैः सकलांगपरित्यागेन आदित्योपस्थान-

मात्रमनुष्ठितम् । तदुक्तं महाभारते—

“ ते तथैव महाराज दंशिता रणमूर्धनि । संध्यागतं सहस्रांशुमादित्यमुपतस्थिरे ” ॥

संध्यागतं संधिमागतम् । अपरे तु अर्घ्यदानं संध्याध्यानं गायत्रीजप उपस्थानं च प्रधानमिति वदन्ति ।

तदेवं गायत्र्यादिनामोपेतसंध्याशब्दप्रतिपाद्यः सवितैवोपास्यः । संध्योपासनकालश्च प्रागुदयाद्

घटिकाद्वयात्मकः

“ रात्र्यंतयामनाडी द्वे संध्याकाल उदीरितः । उदर्यात्प्राक्तनी संध्याघटिकाद्वयमीरिता ॥ २५

“ संध्यामुद्धर्तमात्रैव ऋषासवृद्धौ समा स्मृता ” ॥ इति दक्षगर्गबोधयनस्मरणात् ।

यत्तु “ प्रातःसंध्या त्रिनाडी स्यात् सायंसंध्या तथाविधा ” इति स्मरणात्संध्याकाल-

विहितकर्मतराभिप्रायमित्याहुः । यत्तु

“ द्विघटी तूदयादर्वाक् प्रहरार्धं तथोपरि । संध्याकालः स विज्ञेयो ह्यन्यथा लंघनं स्मृतम् ” ॥ इति ।

तद्राष्ट्रक्षोभजलालाभाशक्त्याद्यापत्सु अनुकल्पाभ्यनुज्ञापरम् । यदाह वृद्धमनुः—

“ न प्रातर्न प्रदोषं च संध्याकालोऽतिपद्यते । मुख्यकल्पोऽनुकल्पश्च सर्वस्मिन् कर्मणि स्मृतः ” ॥ इति ।

माध्यान्हसंध्याया गौणकालमाह दक्षः “ अध्यर्धयामादा सायं संध्या माध्याह्निकीष्यते ” ॥ इति ।

याज्ञवल्क्यः—

“ अनार्तश्चोत्सृजेद्यस्तु स विप्रः शूद्रसंमितः । प्रायश्चित्ती भवेच्चैव लोके भवति निन्दितः ” ॥

१ क्ष-तु सावित्रिन्निधामूतानुतिष्ठत । २ ख-रूपभेदतः । ३ ग-दज्ञा । ४ क्ष-येनकेनचित् ।

५ ख-पासितं । ६ खग-द्विनाडिका भवेत्सन्धा । ७ ख-व्रतं ।

अत्रिरपि—

“नोपतिष्ठन्ति ये संध्यां स्वस्थावस्थास्तु ये द्विजाः । हिंसन्ति ते सदा पापा भगवंतं दिवाकरम्” ॥ इति ।
विष्णुपुराणे—

“उपतिष्ठन्ति वै संध्यां ये न पूर्वा न पश्चिमाम् । व्रजन्तीह दुरात्मानस्तामिस्रं नरकं वृष ॥

५ “तस्मान्न लघनं कार्यं संध्योपासनकर्मणः । स हन्ति सूर्यं संध्याया नोपास्तिं कुरुते तु यः ॥

“सर्वकालमुपस्थानं संध्ययोः पार्थिवेष्यते । अन्यत्र सूतकाशौचविभ्रमातुरभीतितः” ॥ इति ।

सूतकादौ तु सत्यपि सामर्थ्ये संध्योपासनं न कार्यमित्याह मरीचिः—

“सूतके कर्मणां त्यागः संध्यादीनां विधीयते” ॥ इति ।

संग्रहेऽपि—“राष्ट्रक्षोभे नृपाक्षिते रोगातौ शावसूतके । संध्यावन्दनविच्छित्तिर्न दोषाय कदाचन” ॥

१० यत्तु पुलस्त्येनोक्तम्—

“संध्यामिष्टिं चरुं होमं यावज्जीवं समाचरेत् । न त्यजेत्सूतके वाऽपि त्यजन् गच्छेद्धो द्विजः” ॥ इति ।

तत् मानससंध्याभिप्रायम् । यतस्तेनैवोक्तम्

“सूतके मृतके चैव संध्याकर्म न संत्यजेत् । मनसोच्चारयेन्मंत्रान् प्राणायाममृते^१ द्विजः” ॥ इति ।

एवं च यानि सूतकादौ संध्याकर्मनिषेधप्रतिपादकानि तानि वचनानि मंत्रप्रयोगनिषेधपराणीति

१५ मन्तव्यम् । अत्र विशेषमाह व्यासः—

“प्रक्षिपेत्सूतके त्वर्घ्यं गायत्रीं तु समुच्चरन् । दत्त्वा प्रदक्षिणं कुर्यात् सूर्यं ध्यायेत्ततो द्विजः” ॥ इति ।

पैठीनसिरपि—

“सूतके सावित्र्या चांजलिं प्रक्षिप्य प्रदक्षिणं कृत्वा सूर्यं ध्यायन् नमस्कुर्व्यात्” ॥ इति ।

एतन्मार्जनादिसकलसंध्याकर्मोपलक्षणार्थमिति केचित् । यदत्र संध्याकर्माणि श्रौतं जलांजलि-

२० दानादि तदेवानुष्ठेयं नान्यदित्येवंपरमित्यपरे । यथाशिष्टाचारं व्यवस्था ।

शक्तस्य मुख्यकालातिक्रमे प्रायश्चित्तमाह संग्रहकारः—

“आचांतो विधिवत् प्राणानायम्यार्घ्यं चतुर्थकम् । कालात्ययविशुद्ध्यर्थं दत्त्वा संध्यां समाचरेत्” ॥

स्मृत्यन्तरे—

“चतुर्थमर्घ्यं गायत्र्या दद्याद्ब्राह्मणसिं पुटम् । कालात्ययविशुद्ध्यर्थं त्रिसंध्यासु समाचरेत् ॥

२५ “प्राणायामत्रयं कृत्वा संध्याकर्म समाचरेत् । प्रातःकालं त्रयं कुर्यात् संगवे द्वौ दशोपरि ॥

“षट्त्रिंशन्मध्यमे काले ततो न प्राणसंयमः । कालात्यये त्वकृत्वैवं कृता संध्या तु निष्फला” ॥ इति ।

संवर्तः—

“अर्घ्यप्रदानतः पूर्वं उदयेऽस्तमयेऽपि वा । गायत्र्यष्टशतं जप्यं प्रायश्चित्तं द्विजातिभिः” ॥

गौणकालातिक्रमेऽपि स एवाह—

३० “उपासिता न चेत्संध्या अग्निकार्यं न चेत्कृतम् । गायत्र्यष्टसहस्रं तु जपं कृत्वा विशुद्ध्यति” ॥ इति ।

ऋग्विधाने—

“यदादीध्ये जपेन्मंत्रं दशवारं दिनेदिने । अकाले नित्यकर्माणि काले काले कृतानि वा” ॥ इति ।

मंत्रश्च (क.मं. ७।८।३)—“यदादीव्येनदविषाण्येभिः परायद्रचोवहीये सखिभ्यः । न्युप्ताश्च

वभ्रवोवाचमक्रतंऽमीदिषानिष्कृतंजारिणीव ” ॥ इति । बोधायनस्तु (२।४।१६)—

“सायमतिक्रमे रात्र्युपवासः । प्रातरतिक्रमेऽहरुपवासः” । इतीदमबुद्धिपूर्वविषयम् । बुद्धिपूर्वं तु “वेदोदितानां नित्यानां कर्मणां समातिक्रमे । स्नातकव्रतलोपे च प्रायश्चित्तमभोजनम्” ॥ इति (११।२०) मन्त्रादिनोपवासः कार्यः । शङ्खेऽपि—

“सन्ध्यादिनित्यलोपे तु दिनमेकमभोजनम् । दिनद्वये त्रिरात्रं स्यात् कृच्छ्रार्धं तु दिनत्रये ॥
“दशाहे कृच्छ्रमेकं स्यादूर्ध्वं चान्द्रायणं चरेत् । चान्द्रायणं पराकं च मासादूर्ध्वं विधीयते” ॥ ५
“ततोऽप्येवं प्रकल्प्यं स्याद्वासस्य वचनं तथा” ॥ इति ।

संध्यात्रयस्य तारतम्येन देशविशेषमाह व्यासः—

“गृहे त्वेकगुणा संध्या गोष्ठे दशगुणा स्मृता । शतसाहस्रिका नद्यां अनन्ता विष्णुसन्निधौ ॥
“बहिः संध्या दशगुणा गर्तप्रस्रवणेषु च । ख्याततीर्थे शतगुणा सहस्रं जलान्द्वीजले” ॥ इति ।

शातातपः—

“अनृतं मद्यगंधं च दिवा मैथुनमेव च । पुनाति वृषलस्यान्नं बहिः संध्या उपासिता” ॥
हारीतोऽपि—“ततः संध्यामुपासीत बहिर्गत्वा विधानतः” । इति बहिःसंध्यायामुपासीताया-
माहिताग्नेर्यदा विहरणाद्यंगलोपः तदा विहरणादिदेश एव संध्याद्वयं कर्तव्यम् । एतदेवाभि-
प्रेत्योक्तं अत्रिणा—

“संध्यात्रयं तु कर्तव्यं द्विजेनात्मविदा सदा । उभे संध्ये तु कर्तव्ये ब्राह्मणैश्च गृहेष्वपि” ॥ इति । १५
आपस्तम्बोऽपि (१।१।३०।८-९)—“संध्योश्च बहिर्ग्रामादासनं वाग्यतश्च । विप्रतिषेधे श्रुति-
लक्षणं बलीय” इति । अहोरात्रयोः संधानं संधिः । तौ च द्वौ सायंप्रातश्च तयोः संध्योग्रामात् बहिः
संध्यामुपासीत वाग्यतश्च भवेत् । लौकिकीं वाचं न वदेत् । आहिताग्निविषये अस्यापवादः ।
विप्रतिषेधे इति । श्रुतिविरोधे विप्रतिषेधः । अग्निहोत्रिणो बहिरासनमग्निहोत्रहोमाश्च विरुध्यते ।
तत्र श्रुतिलक्षणमग्निहोत्रमेव कर्तव्यम् । न स्मार्तं बहिरुपासनम् । तस्य कल्पमूलत्वादितरत्र २६
कृत्तमूलत्वादित्यर्थः । इति संध्यानिर्णयः । अथ प्रातःसंध्या । तत्र याज्ञवल्क्यः (आ.९८)—
“शरीरार्चितां निर्वर्त्य कृतशौचविधिर्द्विजः । प्रातःसंध्यामुपासीत दंतधावनपूर्वकम्” ॥ इति ।

“प्राणानायम्य संप्रोक्ष्य वृचेनाब्देवतेन तु” ॥ इति । व्यासः—

“आपोहिष्ठैस्तृचैः कुर्यात् मार्जनं तु कुशोदकैः । प्रणवेन तु संयुक्तं क्षिपेद्वारि पदे पदे ॥
“विप्रुषोऽष्टौ क्षिपेदूर्ध्वं अधो यस्य क्षयाय च । रजस्तमोमोहजातान् जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिजान्” ॥ २५
“वाङ्मनःकायजान् दोषान्नवैतान्नवभिर्दहेत्” ॥ योगयाज्ञवल्क्यः—
“नवप्रणवयुक्ताभिः जलं शिरसि निक्षिपेत् । आपोहिष्ठेति तिसृभिः ऋग्भिः संप्रयतः शुचिः” ॥

नारायणः—

“प्राङ्मुखोदङ्मुखो वाऽपि संध्योपासनमाचरेत् । नवप्रणवसंयुक्तमापो हि षस्तृचेन तु ॥
“शिरस्यष्टभिरभ्युक्षेत् भूमौ यस्य क्षयाय च । संध्यात्रयेऽपि कर्तव्यं आपो हि षे तु मार्जनम्” ॥ ३०
भूमौ पादयोः । अत एव योगयाज्ञवल्क्यः—“आचमनं स्वकीयमार्गेण कृत्वा ऋषिछन्दो-
देवतास्मरणपूर्वकं आपोहिष्ठादिवृचस्यादितः सप्तभिः पादैरूर्ध्वं सप्तविप्रुष उत्क्षिप्य अष्टमेनैकां
विप्रुषमधःशरीरे निक्षिप्य नवमेनैकां विप्रुषमूर्ध्वं उत्क्षिपेत्” इति ।
प्रणवयुक्तेन मंत्रेण प्रोक्षणे फलविशेषमाह शौनकः—

“नवप्रणवयुक्तेन आपोहिष्ठेवृत्तेन तु । संवत्सरकृतं पापं मार्जनाति विनश्यति” ॥ इति ।

ब्रह्मा—

“ऋगंते मार्जनं कुर्यात्पादान्ते वा समाहितः । वृत्तस्यांतेऽथ वा कुर्याच्छिष्टानां मतमीदृशम्” ॥ इति ।
बहुप्रमाणानुगुण्यात् शिष्टाचाराच्च पादांतमार्जनमेव कार्यम् । स्मृत्यर्थसारे—

५ “आपो हिष्ठे त्यूचा सम्यगुल्लेख्यं न तु वेत्ति यः । न तस्य विद्यते संध्या यथा शूद्रस्तथैव सः ॥

“आपोहिष्ठेत्यूचामेकमुल्लेख्यं त्रिषु कारयेत् । चतुर्थं कारयेद्यस्तु ब्रह्महत्यां स विंदति” ॥
प्रतिपादमेवोल्लेख्यं कार्यम् । एवं च प्रत्यूचं मार्जनत्रयमेव न चतुर्थमित्यर्थः । उल्लेख्यं मार्जनम् ।
तथा तत्रैव—

“उत्तानदेवतीर्थेन दर्भाग्रे मूर्ध्नि विप्रुषाम् । स्पृष्ट्वाऽप ऊर्ध्वं विक्षेपमुल्लेख्यामिति सूरयः ॥

१० “भूमिष्ठमुदकं स्पृष्ट्वा प्रसव्येन करेण तु । मार्जनान्याचरेद्विद्वान् संध्याकर्मसु सर्वदा” ॥ इति ।
हारीतः—“मार्जनार्चनबलिकर्मभोजनानि देवतीर्थेन कुर्यात्” । इति ।

तच्च मार्जनं धाराच्युतेन न कार्यम् । तथा च ब्रह्मा—

“धाराच्युतेन तोयेन संध्योपास्तिर्विगर्हिता । न प्रशंसन्ति पितरो न प्रशंसन्ति देवताः” ॥ इति ।
अत्र हेतुमाह स एव—

१५ “मंत्रपूतं जलं यस्मात् आपोहिष्ठाभिमन्त्रितम् । पतत्यशुचिदेशेषु तस्मात्तत् परिवर्जयेत्” ॥ इति ।
अनेन मार्जनजलविंदुः क्षितितले यथा न च्युतो भवति तथा शिरस्येव मार्जनं यत्नतः कुर्या-
दिति च गम्यते । कथं तर्हि मार्जनमिति चेत् तत्राह स एव—

“नद्यां तीर्थे हृदे वापि भाजने मृन्मयेऽपि वा । औदुम्बरेऽथ सौवर्णे राजते दारुसभवे ॥

“कृत्वा तु वामहस्ते वा संध्योपास्तिं समाचरेत्” ॥ इति । औदुम्बरे ताम्रमये कृत्वा

२० उदकमिति शेषः । यत्त्विदं वचनं

“वामहस्ते जलं कृत्वा ये तु संध्यामुपासते । सा संध्या वृषली श्रेया असुरास्तेन तर्पिताः” ॥ इति ।
तत मृन्मयादिपात्रसंभवविषयम् । मृन्मयाद्यभावे तु ‘कृत्वा तु वामहस्ते वा’ इति वामहस्तविधान-
मिति माधवीये । व्यासः—

“उपवीती बद्धशिरः स्वाचांतो द्विरनाकुलः । प्राङ्मुखः सततं विप्रः संध्योपासनमाचरेत् ॥

२५ “आपोहिष्ठादितिसृभिः मार्जयेत्तु कुशोदकैः ॥

“सिंधुद्वीपऋषिच्छंदो गायत्र्यापो हि देवता । मार्जने विनियोगश्च अर्द्धैवत्ये प्रकीर्तितः ॥

“अविदित्वा ऋषिच्छंदो देवतं योगमेव च । नाध्यापयेज्जपेद्वाऽपि पापीयान् जायते तु सः” ॥ इति ।
योगो विनियोगः । याज्ञवल्क्योऽपि—

“ब्राह्मणं विनियोगं च छंद आर्षं च दैवतम् । अज्ञात्वा पंच यः कुर्यान्न स तत्फलमश्नुते” ॥ इति ।

३० मंत्रार्थश्च प्रतिपत्तव्यः । यतः अविदितार्था मन्त्रा नानुष्ठेयार्थप्रकाशनसमर्थाः अतः प्रतिपन्न-
मंत्रार्थानुष्ठेतैव कर्मफलानि प्राप्नोति । न च प्रत्यवेतीति न्यायसिद्धम् । मनुरपि—

“यदधीतमविज्ञातं निगदे नैव शब्दयते । अनग्नाविव शुष्कंधो न तज्ज्वलति कर्हिचित्” ॥

व्यासोऽपि—“पाठमात्रावसानस्तु पंके गौरिव सीदति” ॥ इति । श्रूयते च

“यदेव विद्यया करोति तदेव वीर्यवचनं भवति” इति । “अर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमश्नुते म

नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा” (निरुक्ते १।१८) इति च । अत्र हरदत्तेन मन्त्रार्थोऽभिहितः । ‘आपो हि ष्ठामयो भुवः’ हे आपः यूयं मयोभुवः स्थ । मय इति सुखं नाम । तस्य भावयिष्यः स्थ । हि शब्दः प्रसिद्धौ । ‘ता न उर्जे दधातन’ । ताः यूयं नः अस्मान् उर्जे अन्नाय दधातन धत्त । अन्नमस्मभ्यं दत्तेत्यर्थः । ‘महे रणाय चक्षसे’ महे महते रणाय रमणीयाय चक्षसे दर्शनाय दधातन मह-
प्रमणीयं ज्ञानमस्मभ्यं दत्तेत्यर्थः । ‘यो वः शिवतमो रसः’ । वः युष्माकं संबंधी यः शिवतमो ५
रसः सुखातिशयहेतुः रसनैन्द्रियग्राह्यः । ‘तस्य भाजयतेह नः’ । तस्येति द्वितीयार्थे षष्ठी । रसं भाजयत । इह लोके । नः अस्मान् । किमिव ‘उशतीरिव मातरः’ उशतीरुशत्यः कामयमाना मातरः पुत्रान् यथा क्षीरादिरसेन भाजयन्ति तथा युष्मदीयं रसमस्मभ्यं दत्तेत्यर्थः । अपि च ‘तस्मा अरं गमाम वः’ तस्मै द्वितीयार्थे चतुर्थी । तं रसं अरं अलं पर्याप्तं गमाम प्राप्नुयामेत्यर्थः । छांदसं रूपम् । वः युष्माकं । ‘यस्य क्षयाय जिन्वथ’ । यस्य तृतीयार्थे षष्ठी । येन रसेन क्षयाय १०
निवासाय निवासवचनोऽयमाद्युदात्तत्वात् द्वितीयार्थे चतुर्थी । क्षयं निवासमस्मदीयं जिन्वथ प्रीणयथ । ‘आपो जनयथा च नः’ । हे आपः येन च पुत्रपौत्रादिप्रजा नः अस्माकं जनयथा संपादयथेति ” । व्यासः—

“आपो हि ष्ठाः सुप्रसिद्धा नवपादा भवंति ते । पादे पादे क्षिपेद्वारि ब्रह्महत्यां व्यपोहति”॥ इति । श्रूयते च (तै. ब्रा. ३।९।७।५ पृ. १२६९) “आपोहिष्ठामयो भुव इत्याद्विर्मार्जयन्ते । आपो वै १५
सर्वा देवताः । देवताभिरेवात्मानं पवयन्ते” । इत्येवमुक्तिविधिना मार्जयित्वा सूर्यश्चेत्यपः पिबेत् । तथा च शौनकः—

“अग्निश्चेत्यनुवाकेन सायंकाले अपः पिबेत् । सूर्यश्चेत्यनुवाकेन प्रातःकाले पिबेदपः”॥

“आपः पुनंत्वित्येतेन मध्यान्हे च जलं पिबेत् । अब्जिगाभिः पवित्राभिः प्रोक्षयेत्कुशवारिणा”॥ इति । व्यासोऽपि—

२०

“सायमग्निश्च मेत्युक्त्वा प्रातः सूर्येत्यपः पिबेत् । आपः पुनंतु मध्यान्हे ततस्त्वद्विद्विराचमेत्”॥

“ततः सुरभिमत्या च मार्जनं तु कुशोदकैः । कुर्याद्विरण्यवर्णाभिः यथाशाखं तु मार्जनम्” ॥

बोधायनोऽपि (ध. सू. २।४।१-२)—

“अथातः संध्योपासनविधिं व्याख्यास्यामः । तीर्थं गत्वा प्रयतोऽभिषिक्तः प्रक्षालितपाणिपादोऽप आचम्याब्जिगाभिः प्रोक्ष्य अग्निश्च मा मन्युश्चेति सायमपः पीत्वा सूर्यश्च मा मन्युश्चेति २५
प्रातः सपवित्रेण पाणिना सुरभिमत्याऽब्जिगाभिर्वारुणीभिः हिरण्यवर्णाः पावमानीभिर्व्याहृतिभि-
रन्यैश्च पवित्रैरात्मानं प्रोक्ष्य प्रयतो भवति”॥ इति

पितामहोऽपि—

“सूर्यश्चेत्यनुवाकेन अपः पीत्वा समाहितः । आत्मानं प्रोक्षयेत्पश्चात्सपवित्रकरौ द्विजः ॥

“प्रोक्षेत्सुरभिमत्या च आपोहिष्ठादिभिस्तथा । प्रदक्षिणं परिषिच्य त्वारभेच्छ्रुतिचोदितः”॥ इति । ३०

सुरभिमती दधिक्राव्ण इति ऋक् । ‘दधि क्राव्णो अकारिषम्’ इति सुरभिमतीमृचं वदन्ति ।

“प्राणा वै सुरभयः प्राणानेवात्मं दधत”॥ इति श्रुतेः (तै. ब्रा. ३।९।७ पृ. १२६८)—

मरद्वाजः—

“सूर्यानुवाकस्याग्नि ऋषिः छंदो गायत्र्यमंशुमान् । देवता विनियोगोऽपां प्राक्षाने स उपस्पृशेत् ॥

“ ऋषिरग्निश्च मेत्यस्य सूर्यो वा वामनोऽपि वा । छंदो गायत्रमित्युक्तं देवताग्निं समीरितः ॥

“ आपः पुनंतु मंत्रस्य विश्वेदेवास्तथर्षयः । छंदोऽनुष्टुप् देवतापो बृहस्पतिरथापि वा ॥

“ आत्मानं प्रोक्षयेत्पश्चाद्दधिकावृण इत्यृचा । आपोहिष्ठादितिसृभिः ऋग्भिश्च सकुशैर्जलैः ॥

“ दधिकावृण इत्यस्य वामदेव ऋषिः स्मृतः । छंदोऽनुष्टुप् देवता विश्वेदेवाः प्रोक्षणे स्मृताः ॥

५ “ व्याहृत्या तत आत्मानं परिषिचेत्समस्तया ” । इति । चर्यापादे—

“ पादौ हस्तौ च संक्षाल्याचम्य वद्धाश्लिखः शुचिः । प्राणानायम्य संकल्प्य संध्योपास्तिं समाचरेत् ॥

“ प्रोक्ष्यान्लिंगैर्व्याहृतिभिः परिषिच्य समंत्रकम्पत्वाऽऽचम्य दधिकावैः प्रोक्ष्यद्भिः परिषिच्य च ” ॥

इति । स्मृत्यंतरे—

“ सूर्यश्चेत्यनुवाकस्य छंदो गायत्रमुच्यते । सविता देवता त्वस्य ऋषिरग्निरिति स्मृतः ॥

१० “ दधिकाव ऋचोऽनुष्टुप् वामदेव ऋषिः स्मृतः । विश्वेदेवा देवता स्याद्दधिकावेति वा स्मृतः ” ॥ इति ।

छंदोगानां त्वाचमनमंत्रौ गौतमेनोक्तौ (ध. सू. २५।९)—

“ अहश्च माऽऽदित्यश्च पुनात्विति प्रातः । रात्रिश्च मा वरुणश्च पुनात्विति सायम् ” इति ।

मन्त्रार्थस्तु—सूर्यश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च । सूर्यो नाम अन्होऽधिपतिर्मंडलांतर्वर्ती देवः ।

अन्हि करिष्यमाणानां कर्मणां तदधीनत्वात् तत्प्रार्थना । मन्युः क्रोधः । तदधीनत्वात् पापप्र-

१५ वृत्तेरिति तत्प्रार्थना । मन्युपतयश्च । मन्युः क्रोधः पतिः नियोजको येषामिन्द्रियाणां तानीन्द्रियाणि

मन्युपतयः । तैश्चक्षुरादीन्द्रियबलैर्विषयदुरंतसूनास्थानेषु स्वस्याकर्षणाभावाय तद्विषयप्रार्थना ।

सर्वत्र चकारः समुच्चयार्थः । मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षताम् ।

“ काम एष क्रोध एष रजो गुणसमुद्भवः । महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ” (भ. गी. ३।३७) ॥

इत्यादिशास्त्रप्रसिद्धक्रोधाख्यमन्युकृतेभ्यः । तन्निमित्तेभ्यः पापेभ्यः सर्वेभ्यो रक्षतां माम् । यथाऽहं

२० मन्युवशो भूत्वा पापं न करिष्यामि तथा सूर्यादयो रक्षंत्वित्यर्थः । किंच । यद्वाच्या पापमकार्षम् ।

रात्र्या सप्तम्यर्थे तृतीया । रात्रावित्यर्थः । यद्वा रात्रिश्चन्द्रेण तदभिमानिनी देवतोच्यते । रात्र्याऽभि-

मानिन्या देवतया प्रेरितः सन् यत्पापं रात्रौ कृतवानस्मि तदेव साधनतो विशिनष्टि । मनसा वाचा

हस्ताभ्याम् । पद्भ्यामुदरेण शिश्रेति । मनसा परहिंसादिचित्तनेन । वाचा अनृतभाषणादिभिः ।

हस्ताभ्याम् ब्राह्मणापगुरुणादिभिः । पद्भ्यामनाक्रमितव्यकल्मषदेशाद्याक्रमणादिभिः । उदरेणा-

२५ भक्ष्यभक्षणादिभिः । शिश्रा शिश्रेण । ‘ सुपां सुलुक् ’ (व्या. सू. ७।१।३९) इत्याकारः । अगम्या-

गमनादिभिः । उपलक्षणत्वादन्योद्विष्यैश्च यच्च पापमकार्षम् रात्रिस्तदवलुपतु । रात्र्याभिमानिनी

देवताग्निश्चंद्रमा वा तत्सर्वमवलुपतु छिनत्तु विनाशयतु । किंच यत्किंच दुरितं मयि । इदमहं

माऽमृतयोनौ सूर्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा । इह जन्मानि जन्मांतरे वा कृतं यत्किंचनापि

दुरितं पापराशिर्मयि वर्तते । इदं पापजातं सर्वं मां चास्य पापस्य कर्तारं लिंगशरीराभिमानिनं

३० अमृतयोनौ । अमृतं तदेव योनिश्चेति अमृतयोनिः । तस्मिन्मृते अमरणधर्मके नित्ययोनौ सर्व-

कारणे सूर्ये सुषु इत्यति प्रेरयतीति सूर्यः । तस्मिन्नादित्यात्मके ज्योतिषि स्वयंप्रकाशबोधक-

ताने आत्मानि अहं जुहोमि प्रक्षिपामि आत्मबन्धौ प्राक्षिप्य तेनाग्निना पूर्वोक्तं पापं सर्वं भस्मी-

करोमीति यावत् । अग्निश्चेत्यस्य सूर्यश्चेत्यनेन समानोऽर्थः । इयांस्तु विशेषः । अग्निः गत्र्यधिपतिः ।

यदन्हा अहस्तदवलुपतु । इत्यत्र च अन्हः पतिरादित्योऽहरित्युच्यते । सत्ये ज्योतिषीति ।

अबिधत्स्वभावे ज्योतिषीति । आपः पुनर्वित्ति । आपः अभिमंत्रिताः । पुनंतु शोषयंतु

पृथिवीं पृथिव्यंशस्य बहुलत्वात् पृथिवीशब्देन स्थूलशरीरमुच्यते । पृथिवी पूता पूतं शरीरं लिंग-
शरीराभिमानिनं मां पुनातु । तद्गतरागद्वेषपापादिमलनिरासेन शोधयतु । पुनंतु ब्रह्मणस्पतिः ।
एकवचनस्य बहुवचनं ब्रह्मणस्पतिश्च भगवान् मां पुनातु । परं ब्रह्म विश्वतः पूतं प्रथमक-
वचनस्याकारः । वेदो वा ब्रह्म यद्वाच्छिष्टं अप्रायत्यकरं मूत्रलेपनादि यच्चाभोज्यं पतिताद्यन्नं
यच्च मम संबंधिं दुश्चरितं परदारगमनादिकं तन्निमित्तं सर्वमघजातं पुनन्तु आपः । असतां च ५
द्रव्यप्रतिग्रहनिमित्तं पापं शोधयन्तु नाशयन्तु अपास्ताशेषपापं मां स्वाहा प्रक्षिपामि निरस्त-
समस्तोपप्लवे परमात्मनि एकीकरोमीत्यर्थः । अत्र विष्णुः—

“जानुभ्यानुपरिष्ठान्तु शुष्कवासा स्थितो जलोऽसंध्यामाचमनं कुर्वन् शुचिः स्यादशुचिः स्वयम्॥” इति ।
मंत्राचमनानंतरं नारायणस्तु विशेषमाह—

“स्पृष्टा चाभिष्टुता तोयं मूर्ध्नि ब्रह्ममुखेन तु । आपो हि धेति सूक्तेन दर्भैर्मार्जनमाचरेत्” ॥ इति । १०
अभिष्टुत् ॐकारः । ब्रह्ममुखमपि मनुनोक्तम् (२।८१)—

“ॐकारपूर्विकास्तिस्रो महाव्याहृतयस्तथा । त्रिपदा चैव गायत्री विज्ञेया ब्रह्मणो मुखम्” ॥ इति ।
तेन तोयं स्पृष्टा तेन तोयेन आपो हि धेति सूक्तेन दर्भैर्मूर्ध्नि मार्जनमाचरेत् ॥ इत्यर्थः

कात्यायनस्तु—

“शिरसो मार्जनं कुर्यात्कुशैः सोदकबिंदुभिः । प्रणवो भूर्भुवस्वश्च गायत्री च तृतीयका ॥ १५

“अब्दैवतं तृचं चैव चतुर्थमिति मार्जनम्” ॥ इति । मंत्राचमनानंतरं प्रोक्षणं बहुस्मृत्यनु-
रोधात् शिष्टाचाराच्च सुरभिमत्याब्जिगाभिश्च तिसृभिरवश्यं कर्तव्यमधिकं तु यथा स्वाचारं
ग्राह्यम् । अर्थस्तु । दधिकावृणो अकारिषम् । दधि क्रामति प्राप्नोतीति दधिकावा । एतन्नामको
दधिप्रियः कश्चिद्देवताविशेषः । अग्निरित्यन्ये । तस्य देवस्य अकारिषं अहं कर्म कृतवानस्मि ।
कीदृशस्य जिष्णोर्जयशीलस्य अश्वस्य व्यापिनः वाजिनोऽन्नवतः । स देवः नः अस्माकं मुखा २०
मुखं सुरभिं करत् कर्पूरादिद्रव्यसमृद्धिप्रदानेन सुगंधोपेतं करोतु । नः अस्माकं आयूंषि च प्रता-
रिषत् प्रवर्धयत्विति शुद्धिहेतुत्वं च श्रूयते । “दधिकावृणा पुनातीति” ।

मार्जनानंतरं । प्रजापतिः—

“जलपूर्णं तथा हस्ते नासिकाग्रे समर्पयेत् । ऋतं चेति पठित्वा तु तज्जलं तु क्षितौ क्षिपेत्” ॥ ततः
सूर्यायाधर्यं निवेदयेत् । तत्र शौनकः—“व्याहृत्या सह सावित्र्या संध्यां प्रत्यंजलिं क्षिपेत्” ॥ इति । २५
व्यासोऽपि—

“कराभ्यां तोयमादाय गायत्र्या चाभिमंत्रितम् । आदित्याभिमुखस्तिष्ठन् त्रिरूर्ध्वमथ चोत्क्षिपेत्” ॥
इति । अत्र विशेषमाह हारीतः—“सावित्र्याभिमंत्रितमुदकं पुष्पमिश्रमञ्जलिना क्षिपेत्” ॥ इति ।

पितामहः—

“उभाभ्यां तोयमादाय हस्ताभ्यां सुसमाहितः । गायत्र्या मंत्रिता आपः प्रणवव्याहृतिपूर्व्या ॥ ३०

“रवेरभिमुखस्तिष्ठन् ऊर्ध्वं त्रिःसंध्ययोः क्षिपेत्” ॥ शंखोऽपि—

“सूर्यायैव तु गायत्र्या त्रिसंध्यास्वांजलिं क्षिपेत् । प्रातर्मध्यान्हयोस्तिष्ठन् सायमासीन एव वा ॥

“मंदेहानां वधार्थाय प्रक्षिपेदुदकांजलिम् । प्रायश्चित्तार्थमाचम्य मुच्यते दैत्यहत्यया ॥

“प्रणवव्याहृतिभिश्च कृत्वाऽत्मानं प्रदक्षिणम् । आचम्यैव च ततस्तिष्ठन् ध्यायेत्संध्यां समाहितः” ॥ इति ।

पारिजाते—

“ ईषन्नम्रः प्रभाते तु मध्याह्ने तु ऋजुः स्थितः । गायत्र्या प्राक्षिपेदर्घ्यं सायं तूपाविशन्भुवि ॥
 “गोशृंगमात्रमुद्धृत्य रविं दृष्ट्वा जलांजलिम् । द्वौ पादौ तु समौ कृत्वा पाष्णीं उद्धृत्य उत्क्षिपेत्” ॥
 संग्रहेऽपि—“ द्वौ हस्तौ युग्मतः कृत्वा पूरयेदुदकांजलिम् ।

“ गोशृंगमात्रमुद्धृत्य जलमध्ये जलं क्षिपेत् । जलेष्वर्घ्यं प्रदातव्यं जलाभावे शुचिस्थलम् ॥

५ “ संग्रोक्ष्य वारिणा सम्यक् ततोऽर्घ्याणि प्रदापयेत् । मुक्तहस्तेन दातव्यं मुद्रां तत्र न कारयेत् ॥

“ तर्जन्यंगुष्ठयोयोगे राक्षसी मुद्रिका स्मृता । राक्षसीमुद्रिकादत्तं तत्तोयं रुधिरं भवेत् ” ॥

भेरद्वोजः—

“ ततः प्रदक्षिणीकृत्य त्वद्भिः संग्रोक्षते शुचौ । देशे च दर्भसंकल्ले वाग्यतः प्राङ्मुखः स्थितः ॥

१० “ दर्भान्धारयमाणः सन् आत्मनो ध्यानमाचरेत् । उपविश्य द्विराचम्य महादींस्तर्पयेत्ततः” ॥ इति ।
 योगयाज्ञवल्क्यः—“ बाह्यानि करणानि प्रत्याहृत्यान्तःकरणं चात्मानि प्रतिष्ठाप्य स्फटिक-
 मणिकल्पे चित्तदर्पणे प्रतिबिम्बमात्मनमुपाधोर्निष्कृष्य स्वे महिम्नि स्थितं सच्चिदानन्दमहमस्मीति
 किञ्चित्कालं ध्यायेत् ” ॥ इति । पितामहः—

“ पाणिना जलमादय सकृत्कुर्यात्प्रदक्षिणम् । आदित्यादीन् ग्राहंस्तत्र तर्पयेत्सुसमाहितः” ॥ इति ।

१५ जावालियोगयाज्ञवल्क्यौ—

“संध्योरुभयोः काले ध्यात्वा विष्णुं सनातनम् । निर्मलात्मा स्थितो दर्भे गायत्रीमारभेत्ततः” ॥ इति ।

अर्घ्यदाने मन्त्रातरमुक्तं विष्णुना—“ कराभ्यामंजलिं कृत्वा जलपूर्णं समाहितः ।

“ उद्धृत्यमिति मंत्रेण तत्तोयं च क्षिपेद्भुवि । ततः प्रदक्षिणं कृत्वा जलं स्पृष्ट्वा विशुध्यति ॥

“ जलाभावे महामार्गे बंधने त्वशुचावपि । उभयोः संध्ययोः काले रजसा वाऽर्घ्यमुक्षिपेत् ॥

२० “ तदभावेऽपि सूर्यस्य ध्यानमेव समाचरेत् ” ॥ कात्यायनस्तु—

“ उत्थायार्कं प्रतिप्राप्त्य त्रिकमंजलिमंभसः । उच्चित्रमित्यनेनैवमुपतिष्ठेदनंतरम् ” ॥

स्मृत्यंतरे—

“ उद्धृत्य चित्रं तच्चक्षुरुपस्थाय त्रिभिः सदा । संध्योरुभयोः सूर्यं गायत्रीजपमारभेत् ” ॥

शातातपः—

२५ “ दर्भहीना तु या संध्या यच्च दानं विनोदकम् । असंख्यातं तु यज्जप्तं तत्सर्वं स्यान्निरर्थकम् ॥

“संध्यातिक्रमणे यस्य सप्तरात्रं गमिष्यति । उन्माददोषयुक्तोऽपि पुनः संस्कारमर्हति” ॥ इति । अत्र

प्रयोगक्रमः—“पादौ हस्तौ च प्रक्षाल्य द्विराचम्य दर्भपाणिः प्राणानायम्य प्रातःसंध्यामुपासिष्य

इति संकल्प्य वारिणा पुंहुं धृत्वा आपो हि छेति मंत्रस्य सिंधुदीप ऋषिः गायत्री छंदः । आपो

देवता इति शिरोमुखहृदयदेशेषु विन्यस्य प्रोक्षणे विनियोगः—इति विनियोगं स्मृत्वा मंत्रार्थस्मरण-

पूर्वकं आपो हि छेति वृत्तस्यादितः सप्तभिः पादैः सप्रणवैस्तद्रहितैर्वा सप्तविप्रुषः शिरस्युत्क्षिप्य

३० “अष्टमेनैकां विप्रुषं पादयोर्निक्षिप्य नवमेनैकां शिरस्युत्क्षिप्य सप्रणवव्याहृत्या आत्मानं परि-

षिचेत् । ततः सूर्यस्येत्यनुवाकस्य अग्निर्ऋषिः । गायत्रं छंदः । सूर्यो देवता । आचमने विनियोग

इति पूर्ववद्विन्यस्य विनियोगं च स्मृत्वा अर्थस्मरणपूर्वकं सूर्यश्चेत्यनेनाभिमंत्रिता अपः पीत्वा

द्विराचामेत् । दधिकावृण इत्यस्य मंत्रस्य वामदेव ऋषिः अनुष्टुप् छंदः विश्वेदेवा देवता

दधिक्रावा वा देवता मार्जने विनियोग इति पूर्ववद्विन्यस्य एतया सुरभिमत्या आपो हि घ्रादिभि-
स्तिष्ठभिश्च पादशो मार्जयित्वा पूर्ववदात्मानं परिषिंचेत् । तत अर्घ्यप्रदानं करिष्य इति संकल्प्य
गायत्र्याश्च वक्ष्यमाणऋष्यादिकं विन्यस्य तदर्थं च स्मृत्वा अभिमंत्रितं जलांजलिं सूर्यायार्घ्यं
त्रिरुत्क्षिपेत् । तत आचम्य सजलेन पाणिना सकृदात्मप्रदक्षिणं कृत्वा असावादित्यो ब्रह्मे-
त्यात्मानं ध्यात्वा हृदयमभिमृश्याचम्य यथाचारं ग्रहादींस्तर्पयेत् ॥ इति । ५

जपदेशमाह योगयाज्ञवल्क्यः—

“अग्न्यागारे जलांते वा जपेद्देवालयेऽपि वा । पुण्यतीर्थे गवां गोष्ठे सिंधुक्षेत्रेऽथ वा गृहे ॥

स्मृतिरत्ने—

“सूर्याग्निरुद्देवानां गुरुणामपि सन्निधौ । अन्येषां च प्रशस्तानां मंत्रानभिमुखो जपेत् ॥

“अश्वत्थबिल्वतुलसीवने पुष्पान्तरावृते ॥ स्मृतिसारे—

१०

“सूर्यस्याग्नेर्गुरोरीदोर्दीपस्य च जलस्य च । विप्राणां च गवां चैव सन्निधौ शस्यते जपः ॥

शंखः—

“गृहे त्वेकगुणं प्रोक्तं नद्यादौ द्विगुणं स्मृतम् । गवां गोष्ठे दशगुणं अग्न्यागारे शताधिकम् ॥

“सिंधुक्षेत्रेषु तीर्थेषु देवतायाश्च संनिधौ । सहस्रं शतकोटीनां अनंतं विष्णुसन्निधौ ॥

व्यासोऽपि—

१५

“गुह्यका राक्षसाः सिद्धा हरंति प्रसभं यतः । एकांते गुह्यदेशे तु तस्माज्जप्यं समाचरेत् ॥

अंगिरा अपि—

“प्रच्छन्नानि च दानानि ज्ञानं च निरहंकृतम् । जप्यानि च सुगुप्तानि तेषां फलमनंतकम् ॥ इति ।

शौनकः—

“आ ब्रह्मलोकादा शेषादा लोकालोकपर्वतात् । येऽपसंति द्विजा देवास्तेभ्यो नित्यं नमो नमः ॥ २०

“इति मंत्रं समुच्चार्य नमस्कुर्यात् सुरान् द्विजान् ॥

“अपसर्पितु ते भूता ये भूता भूवि संस्थिताः । ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यंतु शिवाज्ञया ॥

“तैलेन वामपादस्य भूमौ घातत्रयं चरेत् ।

“उग्रभूतपिशाचाद्याः ये च वै भूमिभारकाः । एतेषामविरोधेन ब्रह्मकर्म समारभे ।

“संकल्प्यैवं जपेत्सम्यक् मंत्रार्थगतमानसः ।

२५

“कुशाजिनांबरेणाढ्यं कल्पयेदासनं बुधः । वंशेष्टकाश्मधरणीवृणपल्लवनिर्मितम् ॥

“वर्जयेदासनं धीमान् दारिद्र्याधुःखदम् । सर्वसिद्धयै व्याघ्रचर्म ज्ञानसिद्धयै मृगाजिनम् ॥

“नादीक्षितस्य गृहिणः कृष्णसाराजिनं स्मृतम् । विशेष्यतिर्वनस्थस्य ब्रह्मचारी मृगाजिने ॥

“वस्त्रासनं रोगहरं कंबलं दुःखमोचनम् । स्वस्तिकाद्यासनेनाथ विशेषत्र निराकुलः ॥

“वीरासनं स्वस्तिकं वा बध्वाऽन्यतरदासनम् । पद्मं वा मुक्तकं वाऽपि बध्वा जपमथाचरेत् ॥ ३०

आसनलक्षणमुक्तं तत्रैव—

“एकं पादमथैकस्मिन् विन्यस्योरुणि संस्थितः । पादेऽन्यस्मिंस्तथा चोरुं वीरासनमुदाहृतम् ॥

“जानुवोरंतरे सम्यक् कृत्वा पादतले उभे । ऋजुकायः समासीनः स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते ॥

“उर्वोरुपरि विप्रेन्द्र कृत्वा पादतले उभे । पद्मासनं वदेदेतत्सर्वेषामपि पूजितम् ॥

“ संपीडय सीवनीं सूक्ष्मां गुल्फेनैव तु सव्यैतः । सव्यं दक्षिणगुल्फेन मुक्तासनमुदीरितम् ॥

“ एवमासनयुक्तः सत् भूतशुद्धिं समाचरेत् ” ॥ इति । मंत्रदेवताप्रकाशिकायाम्—

“ आसनमन्त्रस्य पृथिव्या मेरुपृष्ठऋषिः सुतलं छंदः । श्रीकूर्मो देवता । आसने विनियोगः ।

“ पृथिव त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता । त्वं च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चासनम् ” ॥

५ इत्यासनं परिकल्प्य उरसि गुरुभ्यो नम इत्यंजलिं कृत्वा ज्ञाननालैश्वर्याष्टदलवैराग्यकर्णिकाहृदया-
वुजमुकुलं प्रणवेन विकसितं ध्यात्वा कर्णिकासं चैतन्यात्मकं जीवं प्लुतप्रणवोच्चारणेन
सुषुम्नानाडीमार्गतो निःसार्य तं जीवं द्वादशांतःस्थितसहस्रदलकमलनिष्ठपरमात्मना सह हंस इति
मंत्रेणैकीकृत्य स्वशरीरस्थकल्मषजातं पुरुषाकारेण विचिंत्य शोषणदाहनप्लावनानीत्यं कुर्यात्

“ ब्रह्महत्याशिरस्कं च स्वर्णस्तेयभुजद्वयम् । सुरापानहृदा युक्तं गुरुतल्पकटिद्वयम् ॥

१० “ तत्संयोगपदद्वंद्वं प्रत्यंगसमपातकम् । उपपातकरोमाणं नखश्मश्रुविलोचनम् ॥

“ खड्गचर्मधरं कृष्णं कुक्षौ पापं विचिंतयेत् ” ॥ तं पापपुरुषं नाभिदेशस्थितषट्कोणांतर्गतं यं इति
वायुबीजोत्थवायुना शोषयित्वा पुनस्तं हृदयदेशस्थितत्रिकोणगतं—रं इत्यग्निबीजोत्थवाहिना
दाहयित्वा तद्भस्म दक्षिणानासापुटान्निःसार्य भ्रूमध्यस्थार्धचंद्रकारामृतमंडलान्तस्थ—वं इत्यमृत-
बीजोत्थितामृतधारया निष्कलंकं सशरीरमाप्नाव्य शुद्धिं कृत्वा द्वादशांतर्हितमात्मनं सुषुम्ना-

१५ नाडिमार्गेण हृदयकमले ओं सोहमिति मंत्रेण स्थापयेत् । एवंभूतशुद्धिं कृत्वा प्राणप्रतिष्ठां
कुर्यात् । प्राणप्रतिष्ठामंत्रस्य ब्रह्माविष्णुमहेश्वरा ऋषयः । ऋग्यजुःसामाथर्वाणि छंदांसि ।
प्राणशक्तिः परा देवता प्राणप्रतिष्ठार्थे जपे विनियोगः ।

“ रक्तांभोधिस्थपोतोष्ठसदरुणसरोजाधिरूढा कराब्जैः

“ पाशं कोदंडमिक्षूद्रवमलिगुणमप्यंकुशं पंचवाणान् ।

२० “ विभ्राणासृक्पालं त्रिनयनविलसिता पीनवक्षोरुहाढ्या

“ देवी बालार्कवर्णा भवतु सुखकरी प्राणशक्तिः परा नः ” ॥

इति ध्यात्वा प्राणप्रतिष्ठामंत्रं जपेत् । आं ह्रीं क्रौं यरलवशषसहो हंसः सोहं सोहं हंस-

अमुष्य प्राणा इह प्राणा अमुष्य जीव इह स्थितः । अमुष्य सर्वेन्द्रियाणि अमुष्य बाह्यमनश्चक्षुः-
श्रोत्रत्वक्चक्षुजिह्वाघ्राणप्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठंतु स्वाहेति अमुष्य स्थाने ममेत्युच्चारयन्

२५ प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात् । ततो मातृकान्यासं कुर्यात् । मातृकासरस्वतीमंत्रस्य ब्रह्मा ऋषिः गायत्री
छंदः । मातृकासरस्वती देवता । मातृकान्यासे विनियोगः

“ पंचाशद्वर्णभेदैर्विहितवदनदोः पादहृत्कुक्षिवक्षो

“ देशांभास्वत्कपर्दीकलितशशिकलामिदुंकुंदावदाताम् ।

“ अक्षत्रकुंभचिंतालिलितवरकरामब्जसंस्थां त्रिनेत्राम्

३० “ अच्छाकल्पामतुच्छस्तनजघनभरां भारतीं तां नमामि ” ॥ इति ध्यात्वा

त्रिंदुसहिता मातृकां न्यसेत् । प्रपंचसारे न्यासस्थलमभिहितम्—

“ काननवृत्तं व्यश्रुतिनासिकगण्डोष्ठदंतमूर्धस्ये । दोःपत्सन्व्यग्रेषु च पार्श्वद्वयपृष्ठनाभिजठरेषु ॥

“ हृद्गोर्मूलावरगलकक्षेषु हृदादिपाणिपादयुगे । जठराननयोर्व्यापकसंख्यातानक्षरान् न्यसेत्क्रमतः ” ॥

इति । केति कं शिरः । द्विशब्दः अक्षिश्रोत्रनासिकागण्डोष्ठदन्तेषु प्रत्येकं संवध्यते । दोः
पत्संध्यग्राणि विंशति दोर्मूलं दक्षिणं या दीक्षांता व्यापकसंज्ञाः तैर्व्यापकन्यासमपि कुर्यादित्यर्थः ॥

अथ प्राणायामविधिः । तत्र योगयाज्ञवल्क्यः—

“एवं संमार्जनं कृत्वा बाह्यशुद्ध्यर्थमादरात् । तथाभ्यन्तरशुद्ध्यर्थं प्राणायामं समाचरेत्” ॥

बृहस्पतिः—

“बध्वासनं नियम्यासून् स्मृत्वा चर्ष्यादिकं तथा।संनिमीलितदृष्टमौनी प्राणायामं समभ्यसेत्” ॥ इति ।

आसनं त्वत्र स्वस्तिकादि । यत्तु दक्षवचनम्

“संध्यात्रयेऽपि कर्तव्यं प्राणायामत्रयं द्विजैः । आसीनस्तु भवेत्सायं मध्याह्ने स्थित एव वा ।

“तिष्ठन्नेव तथा कुर्यात्प्रातःकाले समाहितः” ॥ इति । तत् ‘असावादित्यो ब्रह्मेति’ ध्यानात् पूर्वकालिकविषयम् ।

“प्राक्कूलेषु ततः स्थित्वा दर्भेषु सुसमाहितः।प्राणायामत्रयं कृत्वा ध्यायेत्संध्यामिति श्रुतिः” ॥ इति व्यासस्मरणादिति केचित् । अन्ये तु बध्वासनमिति सायंकालविषयम् । ‘प्रातस्तिष्ठन् प्राणा- १० यामेन शुध्यति’ इति ‘सायमासीनः प्राणायामेन शुध्यति’ इति अखंडादर्शवचनात् प्रातस्तिष्ठतैव प्राणायामाः कर्त्तव्या इत्याहुः । संवर्तः— “प्राणायामैस्त्रिभिः पूतो गायत्रीं तु जपेत्ततः” ॥ इति । कर्मप्रदीपे—

“देवार्चने जपे होमे स्वाध्याये श्राद्धकर्मणि । स्नाने दाने तथा ध्याने प्राणायामास्त्रयस्त्रयः ॥

“आदावन्ते च गायत्र्याः प्राणायामास्त्रयः स्मृताः । संध्यायामर्घ्यदाने च स्मृत एकोऽसुसंयमः” ॥ १५

“अंगुष्ठानामिकाभ्यां तु तथैव च कनिष्ठया । प्राणायामस्तु कर्त्तव्यो मध्यमां तर्जनीं विना ॥

“तर्जनीमध्यमायोगं प्राणायामे तु वर्जयेत् । तर्जनीमध्यमां स्पृष्ट्वा कुर्वन्शूद्रसमो भवेत्” ॥ इति ।

तत्रैव—

“वामहस्तेन गणयन् प्राणायामं जपेद् द्विजः । कुर्याद्धोमे च सर्वत्र तथा कुत्सितकर्मकृत्” ॥ इति ।

प्राणायामलक्षणमाह मनुः—

“सव्याहृतिकां सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह । त्रिः पठेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते” ॥

पठेन्मनसेति शेषः । तथा च संवर्तः—

“प्रणवेन तु संयुक्ता व्याहृतीः सप्त नित्यशः । सावित्री शिरसा सार्धं मनसा त्रिः पठेद्द्विजः” ॥ इति ।

याज्ञवल्क्योऽपि (आ. २३)—

“गायत्रीं शिरसा सार्धं जपेद्व्याहृतिपूर्विकाम् । प्रतिप्रणवसंयुक्तां त्रिरयं प्राणसंयमः” ॥ इति । २५

‘प्रतिव्याहृतिप्रणवेन संयुक्तां गायत्रीं मुखनासिकां संचारिणं वायुं निरुधन् मनसा त्रीन्वारान् जपेदित्ययं सर्वत्र प्राणायामः’ इति विज्ञानेश्वरः (पृ. ७ पं. १-३) । योगयाज्ञवल्क्योऽपि—

“भूर्भुवस्वर्महर्जनस्तपः सत्यं तथैव च । प्रत्योकारसमायुक्तं तथा तत्सवितुः परम् ॥

“ओमापोज्योतिरित्येतत् शिरः पश्चात्प्रयोजयेत् । ओमापोज्योतिरित्येष मंत्रो वै तैत्तिरीयकः ॥

“त्रिरावर्तनयोगात्तु प्राणायामस्तु शब्दितः” ॥ इति । यमोऽपि—

“ओंकारपूर्विकाः सप्त जपेत्तु व्याहृतीस्तथा । शिरसा सह गायत्रीं प्राणायामः परं ततः” ॥ इति ।

अशक्तस्य जपमाह भरद्वाजः—

“अशक्यः स्याद्यदि प्रोक्तः प्राणायामे’ द्विजन्मनः । बालस्य चेतरेषां च दशकृत्वो जपः स्मृतः” ॥

अत्यंताशक्तौ स एव—

“सतैव व्याहृतीरेताः केवला वा द्विजो जपेत् । जपक्रमोऽयमेवं स्यात् सर्वपापप्रणाशनः” ॥ इति ।

स च प्राणायामः पूरककुंभकरेचकभेदेन त्रिविधः । तथा च योगयाज्ञवल्क्यः—

“पूरकः कुंभको रेच्यः प्राणायामस्त्रिलक्षणः ॥

“नासिकाकृष्ट उच्छ्वासो ध्मातः पूरक उच्यते । कुंभको निश्चलः श्वासो रिच्यमानस्तु रेचकः ॥

५ “बाह्यस्थितं घ्राणपुटेन वायुमाकृष्य यत्नेन शनैः समस्तम् ॥

“नाड्यश्च सर्वाः परिपूरणीयाः स पूरको नाम महान्निरोधः” ॥

कुंभकरेचकयोर्विशेषमाह अत्रिः—“आ केशाग्रान्नास्त्राग्रान्निरोधः शस्यते बुधैः ।

“निरोधाज्जायते वायुः वायोरग्निश्च जायते । अग्रेरापश्च जायते ततोऽतः शुध्यते त्रिभिः ॥

“शनैर्नासापुटे वायुमुत्सृजेन्न तु वेगतः । न कंपयेच्छरीरं तु स योगो परमो मतः” ॥ इति ।

१० व्यासः—“नाभिमध्ये स्थितं ध्यायेत्कं रक्तं पूरकेण तु ॥

“नीलोत्पलाभं हृत्पद्मे कुंभकेन जनार्दनम् । ललाटस्थं शिवं श्वेतं रेचकेनाभिचिंतयेत् ।

“शुद्धस्फटिकसंकाशं निर्मलं पापनाशनम् । शंकरं त्र्यम्बकं श्वेतं ध्यायन्मुच्येत बंधनात्” ॥

योगयाज्ञवल्क्यः—

“पूरके विष्णुसायुज्यं कुंभके ब्रह्मणोऽतिकम् । रेचकेन तृतीयेन प्राप्नुयादैश्वरं पदम् ॥

१५ “इडया वायुमारोप्य बाह्यं द्वादशमात्रकम् । पूरयित्वोदरं तेन नासाग्रनयनद्वयम् ॥

“ध्यायन्विरेचयेत्पश्चान्मदं पिंगलया पुनः” । इडा वामनाडी । पिंगला दक्षिणनाडी । कुंभको

मानसजपः । स्मृतिरत्ने—

“दक्षिणे रेचकं कुर्याद्दामेनापूरितोदरः । कुंभकेन जपं कुर्यात् प्राणायामस्य लक्षणम्” ॥ इति ।

नारदः—

२० “प्राणो वायुः शरीरस्थ आयामस्तस्य निग्रहः । प्राणायाम इति प्रोक्तो द्विविधः प्रोच्यते हि सः ॥

“अगर्भश्च सगर्भश्च द्वितीयस्तु तयोर्वरः । अपि ध्यानं विना गर्भः सगर्भस्तत्समन्वितः” ॥ इति ।

भरद्वाजः—

“समाहितमनाः प्राणानायम्यैव तदाकृतिम् । दशकृत्वो जपित्वैवं प्राग्गायत्रीं ततो जपेत् ॥

“जपक्रमोऽयमेवं स्यात्सर्वपापप्रणाशनः” ॥ इति । तदाकृतिं कुंभकजपोक्तरूपाम् ।

२५ स्मृत्यंतरे—

“सप्तव्याहृतिसंयुक्तां गायत्रीं शिरसा सह । दशवारं जपित्वैव गायत्रीं तु ततो जपेत्” ॥ इति ।

ऋष्यादिकमाह भरद्वाजः—

“प्रणवस्य ऋषिर्ब्रह्मा परमात्मा च देवता । छंदस्तु देवी गायत्री विनियोगः क्रियावशः” ॥

पितामहः—

३० “प्रणवस्य ऋषिर्ब्रह्मा देवताग्निस्त्रयी च सा । छंदस्तु देवी गायत्री वेदादौ विनियुज्यते ॥

“जपकालत्रयी देवो होमकाले हुताशनः । ध्यानकाले परं ब्रह्म विश्वेदेवास्ततोऽन्यदा” ॥

व्याहृतीनामृष्यादिकमाह स एव—

“अत्रिर्भृगुश्च कुत्सश्च वसिष्ठो गौतमस्तथा । काश्यपश्चांगिरश्चैव ऋषयः स्युर्यथाक्रमम् ॥

“गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च बृहती पंक्तिरेव च । त्रिष्टुप् च जगती चैव छंदांस्येतानि सप्त वै ॥

“अग्निर्वायुस्तथाऽर्कश्च वागीशो वरुणस्तथा । इंद्रश्च विश्वेदेवाश्च देवताः समुदाहृताः ॥

“ब्राह्मी स्वाहा वाहिनी च तथा नित्या विलासिनी । प्रभावती च लोला च सप्तव्याहृतिशक्त्यः ॥

“ श्वेतं शामं च पीतं च पिशंगं नीललोहितम् । नीलं कनकवर्णं च वर्णान्येतान्यनुक्रमात् ॥

“ विश्वामित्रस्तु गायत्र्या ऋषिछंदः स्वयं स्मृतम् । सविता देवता चैव ब्रह्मा शिरऋषिः स्मृतः ॥

“ अनुष्ठुवेव छंदः स्यात् परमात्मा च देवता ” । योगज्ञावलक्यस्तु—

“ व्याहृतीनां तु सर्वासां ऋषिश्चैव प्रजापतिः । अग्निर्वायुस्तथादित्यो बृहस्पत्याप एव च ॥

“ इंद्रश्च विश्वेदेवाश्च देवताः समुदाहृताः । शिरसः प्रजापतिऋषिर्यजुश्छंदो विवाक्षितम् ॥ ५

“ ब्रह्मअग्निर्वायुसूर्याश्च देवताः समुदाहृताः । प्राणायामप्रयोगे तु विनियोग उदाहृतः ” ॥

न्यासमाह स एव—

“ पादयोर्जघयोर्जान्वोस्तथैव जठरेऽपि च । कंठे मुखे तथा मूर्ध्नि क्रमेण व्याहृतीर्न्यसेत् ॥

“ भूर्गुष्ठद्वये न्यस्य भुवस्तर्जनीकाद्वये । ज्येष्ठांगुलिद्वये धीमान् स्वः पदं विनियोजयेत् ॥

“ अनामिकाद्वये धीमान् न्यसेत्तत्पदमग्रतः । कनिष्ठिकाद्वये भर्गः पाण्योर्मध्ये धियः पदम् ॥ १०

“ भूःपदं हृदि विन्यस्य भुवः शिरसि विन्यसेत् । शिखायां स्वःपदं न्यस्य कवचे तत्पदं न्यसेत् ॥

“ अक्ष्णोर्भर्गःपदं न्यस्य न्यसेद्दिक्षु धियः पदम् । शिरस्तस्यास्तु सर्वांगे प्राणायामपरो न्यसेत् ।

“ विन्यस्यैवं ततः कृत्वा मुद्रां ध्यात्वा क्रमेण तु । पूरकादिक्रमेणैव प्राणायामान्समाचरेत् ॥

“ पद्ममुद्रा सौरभेयी शंखमुद्रा वराहकौ । वासुदेवात्मसंविच्च सप्तव्याहृतिमुद्रिकाः ” ॥ इति ।

प्रणवध्यानमुक्तं मंत्रदेवताप्रकाशिकायाम्—

“ विष्णुं भास्वात्किरीटांगदवलयगलाकल्पहारोदराङ्घ्रि—

“ श्रोणीभूषं सुवक्षो मणिमुकुटमहाकुंडलामंडितांगम् ।

“ हस्तोद्यच्छंखचक्रांबुजगदममलं पीतकोशेयमांशा—

विद्योतद्भासमुद्याद्दिनकरसदृशं पद्मसंस्थं नमामि ” ॥

व्यासः—

“ स्वस्वोक्तवर्णतनवो रूपयौवनसंयुताः । क्षौमवस्त्रपरीधानाः सर्वाभरणभूषिताः ॥

“ दिव्यचंदनलिप्तांगा दिव्यमाल्यैरलंकृता । सितोपवीतहृदयाः सपवित्रचतुष्कराः ॥

“ उन्निद्रवदनांभोजप्रभामंडलमंडिताः । जटाकलापपूर्णैदुप्रभापूरितदिङ्मुखाः ॥

“ अभयाक्षस्त्रगण्यात्र वरहस्तसरोरुहाः । एवं होमजपारंभे ध्येया व्याहृतयो द्विजैः ” ॥

गायत्रीध्यानम्

“ मुक्ताविद्धमहेमनीलधवलच्छायैर्मुखैस्त्रीक्षणैर्युक्तामिंदुकलानिबद्धमुकुटां तत्त्वार्थवर्णात्मिकाम् ॥

“ गायत्रीं वरदाभयांकुशकशाः शुभ्रं कपालं गुणं शंखं चक्रमथारविंदयुगलं हस्तैर्वहन्ती भजे ” ॥

इत्येवं कुर्वतः फलमाह संवर्तः—

“ मानसं वाचिकं पापं कायेनैव तु यत्कृतम् । तत्सर्वं नश्यति क्षिप्रं प्राणायामत्रये कृते ” ॥

योगज्ञावलक्योऽपि—

“ प्राणायामत्रयं कृत्वा सूर्यस्योदयनं प्रति । निर्मलः स्वर्गमायांति संतः सुकृतिनो यथा ” ॥ इति ।

मनुः—(६।७०—७१, ११।२४८)

“ प्राणायामा ब्राह्मणस्य त्रयोऽपि विधिवत्कृताः । व्याहृतिप्रणवैर्युक्ता विज्ञेयं परमं तपः ॥

“ दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः । तथैन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥

“ सव्याहृतिकाः सप्रणवाः प्राणायामास्तु षोडश । अपि भ्रूणहणं मासात् पुनंत्यहरहः कृताः ” ॥ इति ।

शौनकोऽपि—“प्राणायामान्धारयेत् त्रीन्यथाविधि समाहितः ।

“अहोरात्रकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति । आत्मा शुध्येद् द्वादशभिश्चतुर्विंशत्परंतप” ॥ इति ।

यमोऽपि—

“दशप्रणवसंयुक्तैः प्राणायामैश्चतुर्दशैः । मुच्यते ब्रह्महत्याया मासाच्चैवोपपातकैः” ॥

५ व्यासः—“सव्याहृतिकां सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह । ये जपन्ति सदा तेषां न भयं विद्यते क्वचित्” ॥

योगयाज्ञवल्क्योऽपि—

“य एता व्याहृतीः सप्त संस्मरेत् प्राणसंयमे । उपासितं भवेत्तेन विश्वं भुवनसप्तकम् ॥

“सर्वेषु चैव लोकेषु कामचारश्च जायते । षोडशाक्षरकं ब्रह्म गायत्र्यास्तु शिरः स्मृतम् ॥

“सकृदावर्त्तयन् विप्रः संसारादपि मुच्यते” इति ॥ इति प्राणायामविधिः ॥

१० गायत्र्यावाहनम् । भरद्वाजः—

“आयात्वित्यनुवाकेन हृदये वाऽर्कमंडले । देवीमावाह्य गायत्रीं ततो ध्यायेत् द्विजोत्तमः” ॥

पितामहः—

“आयात्वित्यनुवाकेन देवीमावाहयेत्ततः । आयात्वित्यनुवाकस्य वामदेव ऋषिः स्मृतः ॥

“छंदोऽनुष्टुप् भवेदस्य गायत्री देवता स्मृता । अनेन चानुवाकेन देवीमावाहयेत्ततः ॥

१५ “गायत्रीं विमलां देवीं हृदि वा सूर्यमंडले । ध्यानयोगेन संपश्येद्वर्णरूपसमन्विताम् ॥

“प्राणानायम्य चावाह्य स्मृत्वर्ष्यादि ततो न्यसेत् । मुद्राः प्रदर्श्य ध्यात्वाऽथ जपेन्मंत्रमयं क्रमः” ॥

शौनकः—“आवाहनं तैत्तिरीये उक्तं चापि विसर्जनम्” ॥ इति । मंत्रांतरमाह गोभिलः—

“आयातु वरदा देवी अक्षरं ब्रह्मवादिनि । गायत्रि छंदसां माता ब्रह्मयौने नमोऽस्तु ते” ॥

व्यासोपि—“आवाहयेत्तु गायत्रीं सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥

२० “आगच्छ वरदे देवि जप्ये मे संनिधौ भवेः । गायन्तं त्रायसे यस्मात् गायत्री त्वं ततः स्मृता” ॥ इति ।

बृहस्पतिः—“ऋषि छंदो देवता च ध्यात्वा मंत्रार्थमेव च ॥

“गायत्र्यास्तु सगस्ताया ऋषिछंदोधिदेवताः । स्मृत्वा प्रत्यक्षं पश्चाद्व्यादीनथ संस्मरेत्” ॥ इति ।

पितामहः—

“सविता देवता यस्या मुखमग्निस्त्रिपाच्च या । विश्वामित्रऋषिछंदो गायत्री सा विशिष्यते” ॥

२५ व्यासः—“विश्वामित्रऋषिछंदो निचृद्वायत्रमुच्यते ।

“देवता परमात्मा च सविता वा प्रकीर्तितः । प्राणायामे जपेत्त्वर्घ्यदाने च विनियुज्यते” ॥ इति ।

ॐ भूरित्यादीनामयमर्थः । अकारोकारमकारात्मकस्य प्रणवस्य ब्रह्मविष्णुमहेश्वरात्मकः

परमात्मा प्रतिपाद्योऽर्थः । तेन सह सप्तव्याहृतिप्रतिपाद्यार्थस्यैकत्वमुच्यते । ॐ भूः सत्तास्वभावः

प्रणवार्थः । एवं ॐ भुवः स्थितिकाले सर्वमस्मिन्भवतीति भुवः सर्वस्थितिकारणमपि प्रणवार्थः ।

३० ॐ सुवः सुपूर्वस्य वृत्रवरण इत्यस्य रूपं शोभनैः सनकादिभिर्व्रतं सुष्टु सर्वं वृणोति व्याप्नोतीति

वा सुवः ब्रह्म । ॐ महः महतेः पूजाकर्मणो रूपं मुमुक्षुभिः पूजनीयत्वाद्ब्रह्मेव मह इत्युच्यते ।

ॐ जनः जनेन्तर्भावितण्यर्थस्य रूपम् सर्वस्य जगतो जनकं ब्रह्मेत्यर्थः । ॐ तपः तपतेरंत-

र्भाविण्यर्थस्य रूपं सूर्यात्मना स्थित्वा जगत्तापयति प्रकाशयतीति वा तपः । तदपि

प्रणवार्थ एव । ॐ सत्यं क्वचिदपि देशे काले वस्तुनि केनापि प्रमाणेनावधितं ‘सच्चत्यच्चेति’

वा सत्यं कारणं कार्यमप्यदः प्रत्यक्षं च परोक्षं च यद्वा सत्यमितीरितम् । तदपि प्रणवार्थ एव ।

यद्वा भूरित्यधोलोकानां उपलक्षणम् । भूप्रभृतयश्च सप्तोपरि लोकाः पातालाद्याश्चाधो लोकाः सप्त चतुर्दशलोका अपि ब्रह्मकार्यत्वात्तदुपादानभूतब्रह्मात्मका इत्यर्थः ।

अथ गायत्र्यर्थः । सवितुः सर्वजगतः प्रसवितुः जगत्कारणस्य देवस्य द्योतनस्वभावस्य स्वयं प्रकाशचिदेकरसस्य वरेण्यं वरणीयं सर्वैः प्रार्थनीयं सुखैकतानरूपं सर्वैः सुखस्यैव प्रार्थनीयत्वात् । भर्गः भ्रस्जदाहे प्रकृतिप्राकृतलक्षणसंसारस्य दाहकं यः धियः धी वृत्तीः प्रचोदयात् ५ सदा प्रेरयति । तस्य बुध्यादिप्रेरकस्य सवितुः देवस्य वरेण्यं परमानन्दैकरसं भर्गः सकारान्तः संसारदाहकं निर्गुणं ब्रह्म धीमहि ध्यायाम । इति ।

स्मृतिभास्करे—

“ तदित्येतत्परं ब्रह्म ध्येयं तत्सूर्यमंडले । सवितुः सकलोत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणः ॥

“ वरेण्यमाश्रयणीयं यदाधारादिदं जगत् । भर्गः स्वसाक्षात्कारेणाविद्या तत्कार्यदाहकम् ॥ १०

“ देवस्य ज्ञानरूपस्य स्वानंदात् क्रीडतोऽपि वा । धीमह्यहं स एवेति तेनैवाभेदसिद्धये ॥

“ धियोऽन्तःकरणे वृत्तीः प्रत्यक् प्रवणकारिणीः । य इत्यरूपमव्यक्तं सत्यज्ञानादिलक्षणम् ॥

“ नोऽस्माकं बहुधाध्यस्तभेदेनानेकदेहिनाम् । प्रचोदयात्प्रेरयतुः सत्यज्ञानादिलक्षणम्” ॥ इति ।

विश्वामित्रः—

“ देवस्य सवितुस्तस्य धियो यो नः प्रचोदयात् । भर्गो वरेण्यं तद्ब्रह्म धीमहीत्यर्थ उच्यते ” ॥ १५

अगस्त्यः—

“ यो देवः सविताऽस्माकं धियो धर्मादिगोचरः । प्रेरयेत्तस्य यद्भर्गस्तद्वरेण्यमुपास्महे ” ॥

मंत्रदीपिकायाम्—

“ देवस्य सवितुस्तेजो वरेण्यं भर्गसंज्ञितम् । ध्यायेमहीति शब्दोक्तौ धीमहीत्यर्थ उच्यते ॥ २०

“ यःशब्दश्च यदित्यर्थे लिंगव्यत्ययतो भवेत् ” ॥

वरदराजीये नित्यमंत्रव्याख्याने—तच्छब्दश्रुतेर्यच्छब्दोऽध्याहार्यः । सवितुः जगतां प्रसवितुः ‘ सविता वै प्रसवानामीशे उतेशिषे प्रसवस्य त्वमेक ’ इत्यादिश्रुतेः () वरेण्यं वृद्धं संभक्तौ एण्यप्रत्ययः । सर्वेषां भजनीयं भर्गः प्रकाशप्रदानेन जगतो बाह्यांतर-तमोभजनाद्वा कालात्मकतया सकलकर्मफलपाकहेतुत्वेन भर्जनाद्वा वृष्टिप्रदानेन भूतानां २५ भरणाद्वा भर्गः देवस्य द्योतमानस्य धीमहि । ध्यै चिंतायां । देवस्य सवितुर्वरेण्यं यद्भर्गस्तत् ध्यायामि । तच्छब्दो ब्रह्मवाचकत्वेन प्रसिद्धः “ ओं तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ” इति भगवद्गीतास्मरणात् (१७।२३) । आदित्यमंडलांतर्वर्तिनं पुरुषमनुचिंतयामः । “ य एषोऽतरादित्ये हिरण्यमयः पुरुषः । अथ य एष एतस्मिन् मंडलेर्चिषि पुरुषः ” इत्यादि तैत्तिरीय-श्रुतेः (तै. आ. १०।१४ पृ. ८३५-३६) यः सविता नोऽस्माकं धियः हानोपादानादिविषयाणि ३० ज्ञानानि प्रचोदयात् प्रचोदयति प्रवर्तयति तस्य सवितुस्तत् भर्गं चिंतयाम इति ।

मार्कंडेयोऽपि—

“ कुशवृत्त्यां निविष्टस्तु कुशपाणिर्जितेन्द्रियः । अर्कमव्यगतं ध्यायेत् पुरुषं तु महाद्युतिम् ” ॥ इति ॥

निरुक्तभाष्येऽपि—

“ यद्ब्रह्म नित्यं हृदि संनिविष्टं मां प्रेरयतिष्ठति नः सुबुद्धिः ।

भर्गस्तदाख्यं भजनीयमेतत् ध्यायामि नित्यं रविमंडलस्थम् ॥

- “ देवस्य सवितुर्मध्ये यो भर्गो नो धियः स्वयम् । प्रचेदयात् तत् वरेण्यं धीमहीत्यन्वयक्रमः ॥
 “ बुस्थानात् द्योतनाद्वाऽपि भानुर्देव उदाहृतः । जगत्प्रसवहेतुत्वात् स एव सविता भवेत् ॥
 “ तत्संबंधी च यो भर्गः पापानां भंजकत्वतः । अस्माकं कार्यविषये बुद्धीः प्रेरयतीह यः ॥
 “ तद्ब्रह्म प्रार्थनीयं स्याद्वरणीयमुपास्महे ।

५ “ ध्येयः सदा सवितृमंडलमध्यवर्ती नारायणः सरसिजासनसंनिविष्टः ॥

“ केयूरवान्मकरकुण्डलवान् किरीटी हारी हिरण्मयवपुर्धृतशंखचक्रः ” ॥ इति ।

अथ गायत्रीशिरसोऽर्थः— ओमित्युक्तार्थः । आप्नोतीत्यापः । अखंडसत्तास्वरूपेण सर्वव्यापकः स एव ज्योतिः स्वयंप्रकाशचैतन्यज्योतिः रसः स एवानंदस्वभावः तदेवामृतं अमरणधर्मकं तदेव ब्रह्म देशाद्यनवच्छिन्नम् । एवंभूतस्यार्थस्य व्याहृतित्रयार्थेनैक्यमुच्यते
 १० भूरित्यादिना । भूः सत्तास्वभावः सृष्टिकाले सर्वस्मिन् भवतीति स्थितिकाले सर्वस्मिन् भवतीति च । भुवः सर्वोपादानं सर्वस्थितिकारणं चेति यावत् । सुवः सर्वसंहर्तृ अयं शिरसोऽर्थः प्रणवार्थ एव । प्रणवसहितसप्तव्याहृतिभिः प्रणवसहितगायत्र्या प्रणवसहितशिरसा च प्रतिपादितमखंडैकरसं ब्रह्मप्रत्यगात्मतयाऽनुजानामि । ॐ इति ।

आयात्वित्यनुवाकस्यार्थः—आयातु आगच्छतु । वरमीप्सितं भक्तेभ्यो ददातीति
 १५ वरदा । देवी द्योतनस्वभावा । न क्षरति सर्वमश्रुत इति वाऽक्षरम् ब्रह्म अपरिच्छिन्नम् संमितं सम्यङ्मितमगवतं भावे निष्ठा । ज्ञानस्वभावं यदेवंभूतं तदायात्वित्यर्थः । गायत्री प्रथमार्थे द्वितीया । गायत्री छंदसां माता छंदसां वेदानामुष्णिगादीनां च माता । गायत्री त्वं इदमपरौक्षैकरसं पूर्वोक्तं ब्रह्म नः अस्माकं जुषस्व अंतर्भावितण्यर्थः । सेवया गायत्र्यात्मकं परं ब्रह्म स्तूयते ओजोसि इत्यादिना । ओजस्तेजः । तदसि । सहः पराभिभवशक्तिः । तदसि ।
 २० महाप्रलयादौ सर्वाभिभवसामर्थ्यस्य सत्त्वात् । वलं प्राणाः । भ्राजो दीप्तिः । देवानां वस्वादीनां धाम स्थानमसि नामाख्यनिखिलशब्दराशिरपि त्वमेवासि । किं बहुना । विश्वमसि । विश्वं परिदृश्यमानं प्रपंचजातम् । विश्वायुः विश्वस्य जीवनहेतुत्वात् । सर्वमसि सर्वं सर्गांतरादिकार्यम् । तदसि सर्वायुः असीति संबन्धः । विश्वायुः इत्येनं व्याख्यातः । अभिभूः । सर्वं सर्गजातं अभिभवतीत्यभिभूः । ओं प्रणवार्थश्चासि । अथवा ओं गायत्रीमावाहयामि गायत्र्यात्मकं
 २५ परं ब्रह्मावाहयामि सोहमिति ममात्मतया प्रापयामीति ।

अथ ऋण्यादिन्यासः । स्मृतिरत्ने—

- “ छंदो गायत्री गायत्र्याः सविता चैव देवता । मुखमग्निस्त्रिपाच्चैव विश्वामित्र ऋषिस्तथा ॥
 “ त्रयी शिरः शिखा रुद्रो विष्णुर्हृदयमेव च । उपनयने विनियोगः सांख्यायनसंगोत्रिका ॥
 “ त्रैलोक्यं चरणं ज्ञेयं पृथिवी कुक्षिरेव च । एवं ध्यात्वा तु गायत्रीं जपेत् द्वादशलक्षणम् ” ॥

३० अथ द्वादशाक्षरपयः—

- “ विश्वामित्रो भरद्वाजो गौतमः कुत्स एव च । भृगुः शांडिल्यकश्चैव लोहितो गर्ग एव च ॥
 “ शातातपः सनत्कुमास्तथा सत्यतपः स्मृतः । भार्गवः पगशश्च पुंडरीकः क्रतुस्तथा ॥
 “ दक्षश्च काश्यपश्चैव जमदग्निश्च वत्सकः । विमलश्रांगिराश्चैव अत्रिः कुंडस्तथैव च ॥

“कुंभयोनिश्चतुर्विंशं ऋषयः परिकीर्तिताः” ॥ अथ छंदांसि—

“गायत्र्युष्टिगनुष्टुप् च बृहती पंक्तिरेव च । त्रिष्टुप् च जगती चैव अनुष्टुप् पङ्क्तिरेव च ॥

“जगती विष्टरा पंक्तिरनुष्टुप् पंक्तिरेव च ॥

“अक्षरपंक्तिरनुष्टुप् जगती त्रिष्टुभौ तथा । जगत्यनुष्टुभे चैव अनुष्टुप् त्रिष्टुभे तथा ॥

“त्रिष्टुप् च जगती चैव देवी गायत्रमुच्यते । गायत्र्याश्च चतुर्विंशच्छंदांस्यक्षरशः क्रमात्” ॥ इति । ५

अथाक्षरदेवताः—

“अग्निः प्रजापतिश्चैव सोम ईशान एव च । आदित्योऽथ गुरुश्चैव इंद्रश्चैव भगस्तथा ॥

“अर्यमा चैव सविता त्वष्टा पूषा च देवता । इंद्राग्नी चैव वायुश्च वामदेवस्तथैव च ॥

“मित्रश्च वरुणश्चैव क्रमशो देवताः स्मृताः । वैश्वदेवं ततश्चैव वैष्णवं वासवं तथा ॥

“मारुतं चैव कौबेरं आश्विनं ब्राह्ममेव च । सावित्र्यास्तु चतुर्विंशदेवताः समुदाहृताः” ॥ १०

चंद्रिकायाम् (पृ. १४४ प. २०)—

“अक्षराणां च सर्वेषां प्रजापतिक्रषिः स्मृतः । छंदो गायत्रमेव स्याद्देवो ब्रह्मैव कीर्तितः” ॥ इति ।

विश्वामित्रः—

“अथ तत्त्वानि वक्ष्यामि अक्षराणां विभागशः । पृथिवी चोदकं तेजो वायुरंबरमेव च ॥

“गंधो रसश्च रूपं च स्पर्शः शब्दोऽथ वागिति । हस्तावुपस्थं पायुश्च पच्छेत्रे त्वक् च चक्षुसी ॥ १५

“जिह्वा घ्राणं मनस्तत्त्वमहंकारो महत्तथा । गुणत्रयं च क्रमशो वर्णतत्त्वविनिश्चयः” ॥

अथाक्षरशक्तयः—

“प्रल्हादिनी प्रभानित्या विश्वा भद्रा विलासिनी । ईश्वरी च जया शांता कांतिर्दुर्गा सरस्वती ॥

“विरूपा विशदा चेशा व्यापिनी विमला तथा । तमोपहारिणी सूक्ष्मा विश्वयोनिर्जयावहा ॥

“पद्मालया परा शोभा गदा रूपेतिशक्तयः” ॥

अथाक्षरन्यासः । विश्वामित्रः—

“आदावध्वेण संशोध्य करौ न्यासं ततश्चरेत् । दक्षिणां तर्जनीमादिं कृत्वा पर्वसु विन्यसेत् ॥

“क्रमाद्वामकनिष्ठांतं अक्षराणि करद्वये । तत्कारं विन्यसेत्स्वांगपादांगुष्ठद्वये द्विजः ॥

“सकारं गुल्फदेशे तु विकारं जंघयोर्न्यसेत् । जान्वोस्तु विद्धि तुःकारं वकारं चोरुदेशतः ॥

“रेकारं विन्यसेद्गुह्ये णिकारं वृषणे न्यसेत् । कटिदेशे तु यंकारं भकारं नाभिमंडले ॥

“गौंकारं जठरे योगी देकारं स्तनयोर्न्यसेत् । वकारं ह्यादि विन्यस्य स्यकारं कंठ एव तु ॥ २५

“धींकारमास्ये विन्यस्य मकारं तालुमध्यतः । हिकारं नासिकाग्रे तु धिकारं नयनद्वये ॥

“भ्रुवोर्मध्ये तु योकारं ललाटे तु द्वितीयक्रमः । पूर्वानने तु नःकारं प्रकारं दक्षिणानने ॥

“उत्तरास्ये तु चोकारं दकारं पश्चिमानने । विन्यसेन्मूर्ध्नि यात्कारं सर्वव्यापिनमीश्वरम् ।

“ओंकारमादावुच्चार्य नमोऽस्तं चाक्षरं न्यसेत्” ॥ इति ।

अथ वर्णध्यानम् । ब्रह्मा—

“कृत्वा चैवाक्षरन्यासं अशेषाघविनाशनम् । पश्चात्समाचरेत् ध्यानं वर्णरूपसमन्वितम् ॥

“तत्कारं चम्पकापीतं ब्रह्माविष्णुशिवात्मकम् । शांतं पद्मासनारूढं ध्यात्वा दहति पातकम् ॥

“सकारं चिंतयेच्छाममतसीपुष्पसनिभम् । पद्ममध्यस्थितं सौम्यमुपपातकनाशनम् ॥

“विकारं पिंगलं नित्यं कमलासनसंस्थितम् । ध्यायेच्छांतं द्विजश्रेष्ठो महापातकनाशनम् ॥

- “ तुःकारं चिंतयेत्प्राज्ञः इंद्रनीलसमप्रभम् । निर्दहेत्सर्वदुःखं तु ग्रहरोगसमुद्भवम् ॥
 “ वकारं बन्धिदीप्त्याभं चिंतयेत्तु विचक्षणः । भ्रूणहत्याकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥
 “ रेकारं विमलं ध्यायेत् शुद्धस्फाटिकसंनिभम् । अभक्ष्यभक्षजं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥
 “ णिकारं चिन्तयेद्योगी विद्युत्स्फुरितसप्रभम् । गुरुतल्पकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥
 ५ “ यकारं तारकावर्णं इंद्रशेखरभूषणम् । योगिनां वरदं ध्यायेद्ब्रह्महत्याविनाशनम् ॥
 “ भकारं कृष्णवर्णं तु नीलमेघसमप्रभम् । ध्यात्वा पुरुषहत्यादिपापं नाशयति द्विजः ॥
 “ गौंकारं रक्तवर्णं तु कमलासनसंस्थितम् । गोहत्याया कृतं पापं नाशयंतं विचिंतयेत् ॥
 “ देकारं मरकतस्यामं कमलासनसंस्थितम् । सततं चिंतयेद्योगी स्त्रीहत्यादहनं परम् ॥
 “ वकारं शुक्लवर्णं तु जातिपुष्पसमप्रभम् । गुरुहत्याकृतं पापं ध्यात्वा दहति तत्क्षणात् ॥
 १० “ स्यकारं चिंतयेत्पीतं सुवर्णद्युतिसंनिभम् । मनसा यत्कृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥
 “ घीकारं चिंतयेदिन्दुकुंदपुष्पसमप्रभम् । पितृमातृवधात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥
 “ मकारं पद्मरागाभं चिंतयेद्दीप्ततेजसम् । पूर्वजन्मार्जितं पापं तत्क्ष० ॥
 “ हिकारं शंखवर्णं तु पूर्णचंद्रसमप्रभम् । अशेषपापदहनं ध्यायेन्नित्यं विचक्षणः ॥
 “ घिकारं पांडुरं ध्यायेत् पद्मस्योपरि संस्थितम् । प्राणिहत्याकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥
 १५ “ योकारं रक्तवर्णं तु इंद्रकोपकसंनिभम् । प्रतिग्रहकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥
 “ द्वितीयश्चैव यः प्रोक्तो योकारो रुक्मसंनिभः । निर्दहेत्सर्वपापानि नान्यैः पापैश्च लिप्यते ॥
 “ नःकारं तु मुखं पूर्वं आदित्योदयसंनिभम् । सकृत् ध्यात्वा द्विजश्रेष्ठः स गच्छेद्देवतं पदम् ॥
 “ नीलोत्पलदलस्यामं प्रकारं दक्षिणामुखम् । सकृत् ध्यात्वा द्विजश्रेष्ठः स गच्छेद्ब्रह्मणः पदम् ॥
 “ सौम्यं गोरोचनापीतं चोकरं चोत्तराननम् । सकृत् ध्यात्वा द्विजश्रेष्ठः स गच्छेद्द्वैष्णवं पदम् ॥
 २० “ शंखकुंदेदुसंकाशं दकारं पश्चिमाननम् । सकृत् ध्यात्वा द्विजश्रेष्ठः स गच्छेद्दैश्वरं पदम् ॥
 “ यात्कारस्तु शिरः प्रोक्तः चतुर्वदनसंभवः । प्रत्यक्षफलदो ब्रह्माविष्णुरुद्र इति स्थितिः ॥
 “ इति ध्यात्वा तु मेधावी जपं होमं करोति यः । न भवेत्सूतकं तस्य मृतकं च न विद्यते ॥
 “ साक्षाद्भवत्यसौ ब्रह्मा स्वयंभूः परमेश्वरः ॥
 “ यस्त्वेतां न विजानाति गायत्रीं तु यथाविधि । कथितं सूतकं तस्य मृतकं च सदैव हि ॥
 २५ “ नैव दानफलं तस्य नैव यजफलं भवेत् । नैव तीर्थफलं प्रोक्तं तस्यैवं सूतके सति ॥
 “ पादादिकुक्षिपर्यंतं शिरःप्रभृतिवक्षसि । कर्तव्यः कामिभिर्न्यासो गृहस्थैरिति निर्णयः” ॥ इति ।
 पादन्यासमाह स एव—
 “ दक्षिणांगुष्ठमारभ्य यावद्दामकनिष्ठिका । दशैतानि पदन्यासान् क्रमेणैव न्यसेत्सुधीः ॥
 “ शिरोभूमध्यनयनवक्त्रकंठेषु वै क्रमात् । हन्नाभिगुह्यदेशेषु जानुपादद्वये न्यसेत्” ॥
 ३० “ चंद्रिकायाम् (५ १४४) प्रतिपादमृष्यादिकमुक्तम् । तत्सवितुः इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः गायत्री छंदः ब्रह्मा देवता । ‘ भर्गो देवस्य ’ इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः गायत्री छंदः विष्णुदेवता ।
 ‘ धियो यो न ’ इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः गायत्रीछन्दः रुद्रो देवता इति ।
 पादन्यासमाह विश्वामित्र ऋषिः—“ एतैस्त्रिभिः पदैः कुर्यात् करगृद्धिं द्विजो नम ।
 “ अनामिकाद्वये धीमान् न्यमेनत्पदमग्रतः । कनिष्ठिकाद्वये भर्गः पाण्योर्मध्ये धियः पदम् ॥

“शिरसि प्रथमं पादं द्वितीयं नाभिमध्यतः । तृतीयं पादयोर्न्यस्य सर्वं सर्वाङ्गके न्यसेत् ” ॥ इति चन्द्रिकायाम् (पृ. १४५) । गायत्र्या व्यापकं कृत्वा करन्यासपूर्वकं षडङ्गन्यासं कुर्यात् । तत्र व्यासः—

“हृदि तत्सवितुर्न्यस्य न्यसेन्मूर्ध्नि वरेणियम् । भर्गो देवस्येति खंडं शिखायां तु ततो न्यसेत्” ॥ इति ।

“ धीमहीति न्यसेद्वर्मं धियो योनश्च नेत्रयोः । प्रचोदयादिति पदमस्त्रार्थे विनियोजयेत् ॥ ५

“ अङ्गन्यासस्तु यैर्मन्त्रैः करन्यासोऽपि तैः स्मृतः ” ॥

गायत्रीसारे तु विशेषोऽभिहितः—“ तत्सवितुर्ब्रह्मात्मने हृदयाय नमः । वरेणियं त्रिष्णवात्मने शिरसे स्वाहा । भर्गो देवस्य रुद्रात्मने शिखायै वषट् । धीमहीश्वरात्मने कवचाय हूं । धियो यो नः सदा शिवात्मने नेत्रत्रयाय वौषट् । प्रचोदयात्परमात्मने अस्त्राय फट् ” ॥

पितामहः—

“ॐ भूर्विन्यस्य हृदये ॐ भुवः शिरसि न्यसेत् । ॐ सुवः शिखायां विन्यस्य गायत्र्या प्रथमं पदम् ॥

“ विन्यसेत्कवचे धीमान् द्वितीयं नेत्रयोर्न्यसेत् । तृतीयेनास्त्रविन्यासः चतुर्थं सर्वतो न्यसेत् ॥

‘ परो रजसि सावदोम् ’ इति गायत्र्याश्चतुर्थं पादम् । सर्वतः मूर्धादिपादपर्यन्तं न्यसेदित्यर्थः ।

न्यासप्रकारमाह भरद्वाजः—

“ अङ्गुष्ठादिकनिष्ठांतमङ्गुलीषु न्यसेत्ततः । प्रकोष्ठांतर्बहिः पाण्योस्तलयोस्तलपृष्ठयोः ॥

“ हन्मस्तकशिखाबाहुनेत्रप्रहरणानि षट् । अङ्गान्यमून्युक्तानि पल्लवानि षडेव हि ॥

“ अङ्गुलीभिश्च तिसृभिर्द्वयोर्हृदयशीर्षयोः । मुष्टेरङ्गुष्ठशिरसा पश्चिमे तस्य वर्मणः ॥

“ बहिः कराभ्यां दृक्फालमध्ये मध्याङ्गुलैस्त्रिभिः । अङ्गुष्ठतर्जन्यग्राभ्यां सशब्दं दिक्षु पार्श्वयोः ॥

“ षडङ्गन्यासमित्युक्तं इदमेतत्प्रकारतः ।

“ एवं विन्यस्य गायत्रीमावाह्य च यथाविधि । ध्यात्वोपचारं सकलं कृत्वाऽथो जपमाचरेत् ” ॥ २०

एवं भरद्वाजेन षडङ्गन्यासमुक्त्वाऽन्तरं जपविधानात् नित्यजपे ऋष्यादिषडङ्गन्यासमावश्यकं फलाधिक्यापेक्षायां तु शक्तस्याक्षरन्यासादयः कार्या इत्याहुः । अत एव गृह्यपरिशिष्टे (१।५ पृ. २६८)—“ एषोऽङ्गन्यासः एवंविधिमप्येके नेच्छन्ति स हि विधिरवैदिकः ” ॥ इति ।

चन्द्रिकायाम्—“ अङ्गुष्ठे चैव गोविंदं तर्जन्यां तु महीश्वरम् ।

“ मध्यमायां हृषीकेशमनामिक्यां त्रिविक्रमम् । कनिष्ठिक्यां न्यसेद्विष्णुं करमध्ये तु माधवम् ॥ २५

“ यत्कृतं च हृतं जप्तं दत्तमिष्टं विशेषतः । हस्तन्यासप्रभावेन सर्वं भवति चाक्षयम् ।

हृदये भूरिति मुखे भुव इति शिरसि सुवरिति सर्वाङ्गे न्यसेदेतद्गायत्रीकवचं ततो यथाविधि गायत्रीमभ्यसेदिति । एवं कुर्वतः फलमाह व्यासः—

“ विन्यस्यैवं जपेद्यस्तु गायत्री वेदमातरम् । ब्रह्मलोकमवाप्नोति व्यासस्य वचनं तथा ॥

“ स्वरूपं यः पुनस्तस्या ज्ञात्वोपास्ते यथाविधि । गृह्णन् दोषैर्न लिप्येत रत्नपूर्णं वसुंधराम् ॥ ३०

“ यथाकथंचिज्ज्ञाता सा देवी परमपावनी । सर्वकामप्रदा प्रोक्ता किंपुनर्विधिना नृप ” ॥ इति ।

अथ मुद्राः । तत्र ब्रह्मा—

“ अथातो दर्शयेन्मुद्राः संमुखं संपुटं तथा । ततो विततविस्तीर्णे द्विमुखत्रिमुखे ततः ॥

“ चतुर्मुखं पञ्चमुखं षण्मुखाधोमुखे ततः । व्यापकाञ्जलिकारव्यं च शकटं तदनन्तरम् ॥

“ यमपाशं च ग्रथितं ततः स्यात्संमुखोन्मुखम् । विलंबो मुष्टिको मीनः ततः कूर्मवराहकौ ॥ ३५

“सिंहाक्रांतं महाक्रांतं ततो मुद्गरपल्लवौ” ॥ इति ।

एतासां लक्षणमाह स एव—“संमुखं संहतौ हस्तावुत्तानौ कुंचितांगुली” । कुंचिता वक्रा अंगुलयः ययोरुक्तलक्षणयोर्हस्तयोस्तौ संमुखं नाम मुद्रा ।

“संपुटं पद्मकोशभौ करावन्योन्यसंहतौ” । पद्ममुकुलाभौ करौ संपुटं नाम मुद्रा ।

५ “विततं संहतौ हस्तावुत्तानावायतांगुली” । आयताः प्रसारिता अंगुलयोर्ययोः उक्तलक्षणयोस्तौ विततं नाम मुद्रा ।

“विस्तीर्णसंहितौ पाणी मिथौ मुक्तांगुलिद्वयौ” । मुक्तमंगुलिद्वयं याभ्यां पाणिभ्यां तौ मिथः संहतौ विस्तीर्णं नाम मुद्रा ।

“संमुखासक्तयोः पाण्योः कनिष्ठाद्वययोगतः । शेषांगुलीनां वैरल्ये द्विमुखत्रिमुखादयः” ॥

१० मिथः संमुखासक्तयोः पाण्योः कनिष्ठाद्वययोगतः शेषांगुलीनां वैरल्ये अंगुष्ठद्वयमारभ्यानामिकांतं यावत् द्विमुखं त्रिमुखं चतुर्मुखं पंचमुखं नाम मुद्रा भवन्ति । तत्र वकारे द्विमुखं रेकारे त्रिमुखं णिकारे चतुर्मुखं यंकारे पंचमुखं

‘शेषांगुलीनां संयोगात् पूर्वयोगविनाशतः । तिर्यक्संयुज्यमानाग्रौ संयुक्तांगुलिमंडलौ ॥

“हस्तौ षण्मुखमित्युक्ता मुद्रा मुद्राविशारदैः” । पूर्वयोगकनिष्ठाद्वयसंयोगः । तद्विनाशेनोत्तरांगुलीनां

१५ संयोगात्तिर्यक्संयुज्यमानमग्रं ययोस्तथा संयुक्तमंडलं ययोस्तौ षण्मुखं नाम मुद्रा ।

“आकुंचिताग्रौ संयुक्तौ न्युवजौ हस्तावधोमुखम्” । ईषद्वक्रावधःकृतौ हस्तावधोमुखं नाम मुद्रा ।

“उत्तानौ तादृशावेव व्यापकौ कुंचितौ करौ” । तादृशौ संयुक्ताद्युक्तलक्षणौ करौ व्यापकांजालिकं नाम मुद्रा ।

“अधोमुखो बद्धमुष्टी मुक्ताग्रांगुष्ठकौ करौ” । शकटं नाम कथितम् । मुक्ताग्रावंगुष्ठौ

२० ययोरुक्तलक्षणयोः करयोः तौ शकटं नाम मुद्रा ।

यमपाशमतः परं बद्धमुष्टिकयोः पाण्योरुत्ताना वामतर्जनी अकुंचिताग्रान्यया युक्ता तर्जन्या न्युवजवत्क्रया बद्धमुष्टिकरूपयोः पाण्योर्या उत्ताना कुञ्चिताग्रा वामतर्जनी अन्यया दक्षिणतर्जन्या न्युवजवत्क्रया युक्ता यमपाशं नाम मुद्रा ।

“उत्तानसंधिसंलीनबद्धांगुलितलौ करे संमुखा वटितौ दीर्घांगुष्ठौ ग्रथितमुच्यते” ॥ उत्तानानि

२५ संघिसंलीनानि बद्धान्यंगुलितलानि ययोस्तथोक्तौ तावन्योन्यमुखवटितौ दीर्घाविक्रौ अंगुष्ठौ ययोस्तौ ग्रथितं नाम मुद्रा ।

“संचितोर्ध्वांगुलिर्वास्तादृशा दक्षिणेन तु । अधोमुखेन संयुक्तः संमुखोन्मुख उच्यते” । संचिताः संवद्धा ऊर्ध्वाङ्गुलयो यस्य स तथोक्तः । तादृशा दक्षिणेनाधोमुखेन संयुक्तः संमुखोन्मुखं नाम मुद्रा ।

३० “उत्तानोन्नतकोटी तु विलम्बः कथितौ करौ” । उत्तानोन्नते कोटी ययोः करयोस्तौ विलम्बो नाम मुद्रा । मुष्टी चान्योन्यसंयुक्तावुत्तानौ मुष्टिकौ भवेत्” । अन्योन्यसंयुक्तावुत्तानौ मुष्टी मुष्टिकौ नाम मुद्रा ।

“मीनस्तु संमुखीभूतौ युक्तानामकनिष्ठकौ । ऊर्ध्वसंयुक्तवक्राग्रशेषांगुलिदलौ करौ” ॥

युक्ते संबद्धे अनामिकाकनिष्ठिके ययोः करयोस्तौ तथोक्तौ । तावन्योन्यसंमुखीभूतौ तथा ऊर्ध्वसंयुक्तानि वक्राणि शेषांगुलिदलानि ययोस्तौ मीनो नाम मुद्रा ।

“ अधोमुखः करो वामस्तादृशा दक्षिणेन तु । पृष्ठदेशे समाक्रांतः कूर्मनामाभिधीयते ” ।

अधोमुखो न्युब्जो वामहस्तस्तादृशा दक्षिणेन पाणिना पृष्ठदेशे युक्तः कूर्मो नाम मुद्रा ।

“ ऊर्ध्वमध्ये वामभुजः कक्षाभ्याशाश्रये करे । वाराहः कथ्यते । कक्षसमीपाश्रये करे सत्युक्त- ५
लक्षणो वामभुजो वाराहो नाम मुद्रा ।

“ सिंहाक्रांतं कर्णाश्रितौ करौ कर्णद्वयाश्रितावायतांगुलीभूय ततः परमिहोच्यते ” । कर्णाश्रिता वायताङ्गुली करौ सिंहाक्रांतं नाम मुद्रा ।

“ किञ्चिदाकुञ्चिताग्रौ चेन्महाक्रांतं ततः परम् । तावेवाकुञ्चिताग्रौ महाक्रांतं नाम मुद्रा ।

“ ऊर्ध्वं किञ्चिद्वर्तौ पाणी मुद्ररौ वामतर्जनी । ग्रस्ता दक्षिणहस्तेन किञ्चिदूर्ध्वं गतयोः पाण्योर्या १०
वामतर्जनी दक्षिणहस्तेन गृहीता सा मुद्ररो नाम मुद्रा ।

“ ग्रस्ता दक्षिणहस्तेन पल्लवो दक्षिणकरः । अधोमुखः स्थितो मूर्ध्नि मुद्राणामिति लक्षणम् ” ॥
उक्तलक्षणो मूर्ध्नि निहितः करः पल्लवो नाम मुद्रा । पितामहः—

“ पद्ममुद्रा सौरभेयी शंखमुद्रा वराहकौ । वासुदेवात्मसंविच्च सप्तव्याहृतिमुद्रिकाः ॥

“ तथाऽगुष्ठद्वयं मध्ये दत्त्वाऽथ परितः करौ । मंडलीकरणं सम्यंगुलीनां च सर्वशः ॥ १५

“ पद्ममुद्रा भवेदेषा सौरभेयी ततः परम् ।

“ अनामिके कनिष्ठाभ्यां तर्जनीभ्यां च मध्यमे । अन्योन्याभिमुखे श्लिष्टे शंखमुद्रा ततः परम् ॥

“ वामांगुष्ठं तु संगृह्य दक्षिणेन तु मुष्टिना । कृत्वोत्तानं तथा मुष्टिमंगुष्ठे तु प्रसारयेत् ॥

“ वामांगुल्यस्तथा शिष्टाः संयुक्ताः संप्रसारिताः । दक्षिणांगुष्ठसंपृष्टा मुद्रा शंखस्य चोदिता ॥

“ दक्षहस्तं चोर्ध्वमुखं वामहस्तमधोमुखम् । अंगुल्यग्रं तु संयुक्तमुद्रा वाराहसंज्ञिता ॥ २०

“ अंजल्या चात्ममुद्रा स्याद्वासुदेवाभिधा च सा । दक्षिणांगुष्ठतर्जन्यौ संयुक्ताग्रे हृदि स्थिते ॥

“ प्रसारितास्तथांगुल्यसंविन्मुद्रा स्मृता बुधैः । मुद्रा तु मोदयेद्देवीं द्रावयेद्दुरितं तथा ॥

“ न जातु दर्शयेन्मुद्रां महाजनसमागमे । क्षुभ्यन्ति देवतास्तस्य फलं च न कृतं भवेत् ॥

“ अर्चने जपकाले तु ध्याने काम्ये च कर्मणि । तत्तन्मुद्राः प्रयोक्तव्या देवसान्निध्यकारिकाः ” ॥ इति ।

अथ ध्यानम् । तत्र गोभिलः— “ प्रातर्गायत्री रविमध्ये स्थिता रक्तवर्णा कुमारी अक्षमालाहस्ता २५

हंसासनमारूढा ब्रह्मदेवत्या ऋग्वेदमुदाहरन्ती । मध्यंदिने सावित्री रविमध्ये स्थिता श्वेतवर्णा

यौवनस्था त्रिनेत्रा शूलहस्ता वृषभासनमारूढा रुद्रदेवत्या यजुर्वेदमुदाहरन्ती । सायं सरस्वती

रविमध्ये स्थिता श्यामवर्णा वृद्धा चतुर्भुजा चक्रहस्ता सुपर्णासनमारूढा विष्णुदेवत्या

सामवेदमुदाहरन्ती ” । गृह्यपरिशिष्टे—(१।६) “ अथ देवताध्यानम् । या संध्योक्ता सैव मंत्र-

देवता खलूपास्यते तां सर्वदैकरूपां ध्यायेदनुसंधयमन्योन्यं भिन्नरूपां वा यदैकरूपामृग्यजुः- ३०

सामत्रिपदां त्रिर्यगूर्ध्वाधरां षट्कुक्षि पंचशीर्षामभिमुखीं विष्णुहृदयां ब्रह्मशिरसं रुद्रशिखां

दंडकमंडल्वक्षसूत्राभयांकचतुर्भुजां शुभ्रवर्णां शुभ्रांबरानुलेपनस्रगाभरणां शरच्चंद्रसहस्रप्रभां सर्व-

देवमयीमिमां देवीं गायत्रीमेकामिव तिसृषु संध्यासु ध्यायेत् । अथ यदि भिन्नरूपां प्रातर्बालां

बालादित्यमंडलस्थां रक्तवर्णां रक्तांबरानुलेपनस्रगाभरणां चतुर्वक्त्रां दंडकमंडल्वक्षसूत्राभयांक-

चतुर्भुजां हंसवाहनारूढां ब्रह्मदेवत्यामृगवेदमुदाहरंतीं भूलोकाधिष्ठात्रीं गायत्रीं नाम देवतां ध्यायेत् । अथ मध्यंदिने तां युवतिं युवादित्यमण्डलस्थां श्वेतवर्णां श्वेतांबरानुलेपनस्रगाभरणां पञ्चवक्त्रां प्रतिवक्त्रं त्रिनेत्रां पञ्चरेखां त्रिशूलखट्वाङ्गदमरुकाङ्कचतुर्भुजां वृषभासनारूढां रुद्रदेवत्यां यजुर्वेदमुदाहरंतीं भुवोलोकाधिष्ठात्रीं सावित्रीं नाम देवतां ध्यायेत् । अथ सायं वृद्धां ५ वृद्धादित्यमण्डलस्थां श्यामवर्णां श्यामांबरानुलेपनस्रगाभरणामेकवक्त्रां शंखचक्रगदापद्माङ्कचतुर्भुजां गरुडासनारूढां विष्णुदेवत्यां सामवेदमुदाहरंतीं स्वर्लोकाधिष्ठात्रीं सरस्वतीं नाम देवतां ध्यायेत् ” इति । व्यासः—

“न भिन्नां प्रतिपद्येत गायत्रीं ब्रह्मणा सह । साऽहमस्मीत्युपासीत विधिना येनकेनचित्” ॥ इति । एतत्सर्वं संध्यानिरूपणे दर्शितम् । ततः गायत्र्यास्तुरीयपादं जपित्वा तेन गायत्रीमभिमुखीकृत्य

१० जपेत् । तदुक्तं व्यासेन—

“तुरीयं तु पदं तस्याः परे ब्रह्मणि संस्थितम् । उपस्थाय तुरीयेण जपेत्तां तु समाहितः” ॥ इति । पितामहः—

“गायत्र्यास्तु त्रयः पादाश्चतुष्पादपि सा स्मृता । जपे तु त्रिपदैवोक्ता ह्यर्चने तु चतुष्पदा” ॥ इति । तुरीयपादस्वरूपं चन्द्रिकायाम् (पृ. १४३ पं. २३) तुरीयपादं ‘परो रजसेऽसावदोम्’

१५ इत्यष्टाक्षरं तस्य विमल ऋषिः तुरीयं छन्दः परमात्मा देवता मोक्षे विनियोगः” इति ॥

अथ गायत्रीमहिमा तत्र मनुः । (२।७६।७८)—

“अकारं चाप्युकारं च मकारं च प्रजापतिः । वेदत्रयान्निरदुहत् भूर्भुवः स्वरितीति च ” ॥ निरदुहत् निश्चकर्ष ।

“तदित्यृचोऽस्याः सावित्र्याः परमेष्ठी प्रजापतिः । त्रिभ्य एव तु देवेभ्यः पादं पादमदुहत् ॥

२० “एतदक्षरमेतां च जपन्व्याहतिपूर्विकाम् । संध्ययोर्वेदविद्विप्रो वेदपुण्येन युज्यते” ॥

अक्षरं प्रणवम् एतां सावित्रीं वेदत्रयार्थविदो वेदत्रयजापिनो यत्फलं तल्लभत इत्यर्थः ॥

स एव (२।८०)—

“एतयर्च्चाऽपि संयुक्ताः काले च क्रियया स्वया । विप्रक्षत्रियविडचोनिर्गर्हिणां याति साधुषु ॥

“सहस्रकृत्वस्त्वभ्यस्य बहिरेतत्रिकं द्विजः । महतोऽप्येनसो मासात् त्वचेवाहिर्विमुच्यते ॥ (७९)

२५ “योऽधीतेऽहन्यहन्येतां त्रीणि वर्षाण्यतन्द्रितः । स ब्रह्म परमप्येति वायुभूतः खमूर्तिमान्” ॥

अतन्द्रितः शक्तौ सत्यां न कदाचिदप्यनन्यपरः । वायुभूतः सर्वव्यापी खमूर्तिमान् लेपरहितः ।

शास्त्रांतरेषु ब्रह्मप्राप्तेरुपायः समाधिरित्युक्तम् । तस्मादपि प्रणवादित्रिकजपो विशिष्टतर इत्याह

स एव (२।८३)—

“एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परंतपः । सावित्र्यास्तु परं नास्ति मौनात्सत्यं विशिष्यते ” ।

३० प्राणायामशब्देन व्याहृतयो लक्ष्यन्ते । मौनं समाधिः । सत्यं जपः । प्रणवः परब्रह्मस्वरूपम् ।

व्याहृतयः परमतपःसाधनभूताः । सावित्र्याविशिष्टं न किञ्चिदस्ति । तस्मात्तेषां जपः समाधेरपि

विशिष्यत इत्यर्थः ।

यमोऽपि—“गायत्रीं चैव वेदांश्च तुलयाऽतो लयत्प्रभुः ।

“एकतश्चतुरो वेदान् सांगांश्च सपदक्रमान् । एकतश्चैव गायत्रीं तुल्यरूपा तु सा स्मृता” ॥ इति ।

शंखोऽपि—“नाघमर्षणात्परमंतर्जलेन व्याहृतिभ्यः परं हृतं न सावित्र्याः परं जप्यम्”॥ इति ।

ब्रह्मापि—

“गायत्र्या न परं जप्यं गायत्र्या न परं तपः । गायत्र्या न परं ध्येयं गायत्र्या न परं हृतम्”॥

व्यासः—

“दशकृत्वः प्रजप्ता सा त्रिहोत्राद्यत्कृतं लघु । तत्पापं प्रणुदत्याशु नात्र कार्या विचारणा ॥ ५

“शतजप्ता तु सा देवी पापौघशमना स्मृता । सहस्रजप्ता सा देवी उपपातकनाशिनी ॥

“कोटिजापेन गायत्र्या यदिच्छति तदाप्नुयात् ।

“यक्षविद्याधरत्वं वा गंधर्वत्वमथापि वा । देवत्वमथवा राज्यं भूलोकं वाऽप्यंकटकम् ” ॥ इति ।

संवर्त्तः—

“ऐहिकामुष्मिकं पापं सर्वं निरवशेषतः । पंचरात्रेण गायत्री जप्यमाना व्यपोहति ॥ १०

“गायत्र्यास्तु परं नास्ति शोधनं पापकर्मणाम् । गायत्रीमात्रसारोऽपि वरो विप्रः सुयंत्रितः ॥

“नायंत्रितश्चतुर्वेदी सर्वाशी सर्वविक्रयी । ब्रह्मचारी मिताहारः सर्वभूतानुकंपनः ॥

“गायत्र्या लक्षजापेन सर्वपापैः प्रमुच्यते ।

“अथाज्ययाजनं कृत्वा भुक्त्वा चान्नं विगर्हितम् । गायत्र्यष्टसहस्रं तु जपं कृत्वा विमुच्यति”॥

विश्वामित्रः—

“प्रणवे नित्ययुक्तस्य व्याहृतीषु च सप्तसु । त्रिपदायां च गायत्र्यां न भयं विद्यते क्वचित् ॥ १५

“तदित्यूचा समो नास्ति मंत्रो वेदचतुष्टये ।

“सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च दानानि च तपांसि च । समानि कलया प्राहुर्मुनयो न तदित्यूचः ॥

“परिहाप्यापि वेदांस्त्रीन् कर्माणि विविधानि च । सावित्रीमात्रमाश्रित्य द्विजो भवति निर्भयः” ॥

योगयाज्ञवल्क्यः—

“वायुभक्षो दिनं स्थित्वा रात्रिं नीत्वा तु सूर्यदृक् । जप्त्वा सहस्रं गायत्र्याः शुचिर्ब्रह्मवधादृते ॥ २०

“सायंप्रातस्तु यः संध्यामस्कन्नामुपतिष्ठते । जपन्त्रै पावनीं देवीं पवित्रां वेदमातरम् ॥

“स तथा पावितो देव्या ब्राह्मणो धूतकल्मषः । न सीदेत्प्रतिगृह्णानः पृथिवीं च ससागराम् ॥

“गायत्र्या लक्षजापेन पातकेभ्यो विमुच्यते ॥

“स्नायाच्छतेन गायत्र्याः शतमन्तर्जले जपेत् । अपः शतेन पीत्वा च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २५

“चतुर्णामपि वेदानां गायत्री जननी भवेत् । तामुपास्ते तु नित्यं स विप्रः पंक्तिपावनः” ॥

मार्कण्डेयः—

“सर्वेषामपि पापानां संकरे समुत्थिते । दशसाहस्रमभ्यस्ता गायत्री शोधयेत्ततः ” ॥

चतुर्विंशतिमते —

“सावित्र्यास्तु जपन्कोटिब्रह्महत्यां व्यपोहति । लक्षाशीतिं जपेद्यस्तु सुरापानात्प्रमुच्यते ॥ ३०

“पुनाति हेमहतरिं गायत्र्या लक्षसप्ततिः । गायत्र्या षष्ठिभिर्लक्षैः मुच्यते गुरुतल्पगः ॥

“सावित्र्यष्टसहस्रं तु जपं कृत्वोत्थिते रवौ । मुच्यते सर्वपापेभ्यो यदि न ब्रह्महा भवेत्”॥ इति ।

याज्ञवल्क्यः(प्रा. ३१०)—

“यत्र यत्र च संकीर्ण आत्मानं मन्यते द्विजः । तत्र तत्र तिलैर्होमो गायत्र्या वचनं तथा ” ॥

योगज्ञावल्क्योऽपि—

“ घृतयुक्तोऽस्तिर्लैर्वन्हो हुत्वा तु सुसमाहितः । गायत्र्याः प्रयतः शुद्धः सर्वपापैः प्रमुच्यते ” ॥

वसिष्ठः—

“यदा यदा तु संकीर्णमात्मानं मन्यते द्विजः । तदा तदा तिलैर्होमो गायत्र्या जप एव वा” ॥ इति ।

५ स्मृतिरत्ने—

“गायत्री मूल्यमादाय परस्मै यः प्रयच्छति । स जीवन्नंत्यजातित्वं प्राप्नोतीह न संशयः” ॥ इति ।

अथ जपविधिः । मनुः (२।८६)—

“ आचम्य प्रयतो नित्यं उभे संध्ये समाहितः । शुचौ देशे जपन् जप्यमुपासीत यथाविधि ” ॥

शंखः—“ कुशवृक्षां समासीनः कुशोत्तरायां वा कुशपवित्रपाणिरुदङ्मुखः सूर्याभिमुखो
१० वाऽक्षमालामादाय देवतां ध्यायन् मंत्रजपं कुर्यात् ” इति । मंत्रजपशब्दयोर्निर्वचनमुक्तं

स्मृतिरत्ने—

“ मकारं मन इत्याहुस्त्रकारं त्राणमेव च । मनस्त्राणसमायुक्तो मंत्र इत्यभिधीयते ॥

“जकारो जन्मविच्छेदः पकारः पापनाशनः । जन्मकर्महरो यस्मात् तस्माज्जप इति स्मृतः” ॥ इति ।
आसीन इति वचनं सायंमध्यंदिनजपविषयम् । तथा च मनुः—(२।१०१)

१५ “पूर्वा संध्यां जपंस्तिष्ठेत्सावित्रीमाऽर्कदर्शनात् । पश्चिमां तु समासीनः सम्यगाऽर्क्षविभावनात्” ॥
आ ऋक्षविभावनादिति पदछेदः । आ नक्षत्रदर्शनादित्यर्थः । स एव (२।१०२)—

“पूर्वा संध्यां जपंस्तिष्ठन् नैशमेनो व्यपोहति । पश्चिमां तु समासीनो मलं हंति दिवा कृतम् ” ॥

स्थानासनयोरकरणे प्रत्यवायमाह स एव (२।१०३)—

“ न तिष्ठति तु यः पूर्वामुपास्ते न तु पश्चिमाम् । स शूद्रवद्वहिष्कार्यः सर्वस्मात् द्विजकर्मणः” ॥ इति ।

२० माधवीये—

“तथा मध्यमसंध्यायामासीनः प्राङ्मुखो जपेत् । स्थितो जपेत्सदा कालमादित्याभिमुखो द्विजः” ॥ इति ।

आदित्याभिमुखश्चेत्सदा प्रातर्मध्यान्हे च स्थित एव जपेत् इत्यर्थः ।

याज्ञवल्क्यः (आचारे २४-२५)—

“जपन्नासीत सावित्रीं प्रत्यगा तारकोदयात् । संध्यां प्राक् प्रातरेवं हि तिष्ठेदा सूर्यदर्शनात्” ॥

२५ शौनकोऽपि—

“ऋष्यादीनि च संस्मृत्य सायमासीत वाग्यतः । प्रातस्तु प्राङ्मुखस्तिष्ठेन्मध्याह्ने सूर्यदिक्स्थितः” ॥

गौतमः—(२।१७) “ तिष्ठेत्पूर्वामासीतोत्तरं सज्योतिष्याज्योतिषो दर्शनाद्वाग्यतः” ॥ इति ।

यत्तु आपस्तम्बिनोक्तं—(१।११।२०।८) “ संध्ययोश्च वह्निर्ग्रामादामनं वाग्यतः ” ॥ इति ।

तत्रामनं स्थितेऽप्युपनक्षणम् । वाग्यमनं च लौकिकवाङ्निवर्तनम् अन्यथा मन्वादिबह्वस्मृति-

१० व्याकोपप्रसंगात् । मन्वादिस्मृतिषु विहितस्य स्थानस्य प्रकरणात् ब्रह्मचागिषियत्वकल्पने
ब्रह्मचाग्निमन्दिहृत्य द्विजमात्रमविकृत्य प्रवृत्तानां स्थानामनविशिष्टजपविधायकश्रुतिस्मृती-
नामनन्वयप्रसंगः ।

तथा छांदोग्ये श्रूयते—“कस्माद्वाहणः सायमासीनः संध्यामुपास्ते कस्मात् प्रातस्तिष्ठन् यत्सायमासीनः संध्यामुपास्ते तया वीरस्थानं जयति यत्प्रातस्तिष्ठन्स्तया स्वर्गलोकं जयति” ॥ इति ।

अखण्डादर्श—“वाग्यतः प्राङ्मुखस्तिष्ठेत् गायत्र्या जपमाचरन्” ॥ इति ।

योगयाज्ञवल्क्योऽपि—“प्रातस्तिष्ठन् द्विजः सन्ध्याजपं कुर्यात्” ॥ इति ।

मनुरपि—(४।९३)

“उत्थायावश्यं कृत्वा कृतशौचःसमाहितः।पूर्वा संध्यां जपंस्तिष्ठेत् स्वकाले चापराण्हिकम्”॥इति।

अत्र सर्वत्र तिष्ठन् जपेदिति व्यत्ययेनान्वयः । जपस्यैव प्रधानत्वात्तदंगत्वात्स्थानासनयोरिति चंद्रिकायां व्याख्यातम् । अत एव शङ्खः—“पूर्वा सन्ध्यां जपेत्तिष्ठन् आसीनः पश्चिमां तथा”॥इति।

गृह्यपरिशिष्टे—(१।५) “ देवीमावाह्य तिष्ठन्नर्धनक्षत्रेष्वामंडलदर्शनान्मंत्रार्थमनुसंधानः १०

प्रणवव्याहृतिपूर्विकां सावित्रीं जपेत्” ॥ इति । स्मृत्यर्थसारेऽपि—

“आसूर्यदर्शनात्तिष्ठन् प्राङ्मुखो गायत्रीं जपेत्।आनक्षत्रदर्शनात्सायमासीनः प्रत्यङ्मुखो जपेत्”॥इति।

चंद्रिकायाम् (पृ. १३५ पं. १०)—

“पूर्वा संध्यां सनक्षत्रामुपक्रम्य यथाविधि । गायत्रीमभ्यसोत्तिष्ठन्यावदादित्यदर्शनम्” ॥ इति ।

व्यासोऽपि—“तिष्ठन् प्रातर्जपेद्देवीमासीनः पश्चिमां जपेत्” ॥ इति । एवं च गायत्रीजपस्य प्रधान- १५

त्वात् तदनुवर्तित्वाद्भस्योदयानन्तरं गौणकाले ‘जपं कुर्वन्नपि तिष्ठन्नेव कुर्यात्’ ‘तिष्ठेदा सूर्यदर्शनात्’

इत्यादिवचनं तु गायत्रीजपस्य मुख्यकालविधिपरं न तु उदयानन्तरमासनविधिपरम् । ‘अग्नि-

कार्यं ततः कुर्यात्’ इति उदयानन्तरं होमविधानादुदयानन्तरमासीतेतिवचनाभावाच्च । न च

‘तिष्ठेदा सूर्यदर्शनात्’ इति वचनादुदयानन्तरमर्थसिद्धमासनमिति वाच्यम् । ‘आसीनः पश्चिमां

संध्याम्’ इति पश्चिमायामेव आसनविधानादन्यत्र स्थितेरर्थसिद्धेः । न च प्रातः सूर्यदर्शन- २०

पर्यन्तं स्थानस्य सायं नक्षत्रोदयपर्यन्तमासनस्य विधानात् तदन्तरालकाले स्थानमासनं वा

वैकल्पिकमिति वाच्यम् । कालविशेषाभिधायिवचननिचयेन व्यवस्थासिद्धेः ।

तथा च भारद्वाजसंवर्तव्यासाः—

“सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम् । गायत्रीं वै जपेत्प्रातः प्राङ्मुखः प्रयतः स्थितः” ॥इति ।

योगयाज्ञवल्क्योऽपि—“प्रातस्तिष्ठन् जपेत्” ॥ इति ।

मनुरपि—(२।१०१) “पूर्वा सन्ध्यां जपंस्तिष्ठन्नैशमेनो व्यपोहति” इति । एतेषु

वचनेषु उदयात्पूर्वापरभावविवेकविरहात् प्रातःकालस्थितिपरत्वात् असति विशेषोपस्थापके

सामान्यसङ्कोचस्य अयुक्तत्वात् सूर्योदयानन्तरमासनस्य कल्पने सायं नक्षत्रोदयानन्तरं गौण-

कालजपे स्थितेरपि कल्पनाप्रसङ्गात् । तस्मात् ‘प्रातस्तिष्ठन् सायमासीनः’ इत्याहुः । यमः—

“सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम् । गायत्रीं तु जपेन्नित्यं सर्वपापप्रणाशिनीम्” ॥ इति । ३०

बोधायनस्तु विशेषमाह (२।४।५-१०)—

“दर्भेष्वासीनो दर्भान् धारयमाणः सोदकेन पाणिना प्रत्युङ्मुखः सावित्रीं सहस्रकृत्व आवर्तयेत् । प्राणायामसहस्रशो वा शतकृत्व उभयतः प्रणवां सप्तव्याहृतिपूर्विकां मनसा वा दशकृत्वस्त्रिभिश्च प्राणायामैस्तान्तो एवं प्रातः प्राङ्मुखस्तिष्ठन्” ॥ इति ।

योगयाज्ञवल्क्योऽपि—

“सहस्रकृत्वः सावित्री जपेद्व्यग्रमानसः । शतकृत्वोऽपि वा सम्यक्प्राणायामपरो यदि ॥

“सतव्याहृतिपूर्वा चेदायन्तप्रणवान्विताम् । मनसा वा जपेच्चैव दशकृत्वो वरः स्मृतः” ॥ इति ।

व्यासः—

५ “सहस्रपरमां नित्यं शतमध्यां दशावरात् । सावित्रीं वै जपेद्विद्वान् प्राङ्मुक्तः प्रयतः शुचिः” ॥

अत्र चंद्रिकायां व्यवस्था कृता (पृ. १५१ पं. ४)—दशावरामित्यापाद्विषयं आशौचविषयं च ।

“आपन्नश्चाशुचिः काले तिष्ठन्नपि जपेद्भुजे” इत्याश्वलायनेनोक्तत्वात् । ‘सहस्रपरमां’ इति

‘सहस्रकृत्व’ इति वचनं वानप्रस्थादिविषयम् । ‘शतमष्टोत्तरम्’ इत्यनुदितहोमिगृहस्थब्रह्मचारि-

विषयम् । ब्रह्मचारिणोऽपि ‘सन्ध्ययोरग्निकर्म च’ इति प्रागुदयादग्निकार्यस्मरणात् । उदित-

१० होमिनस्तु ‘सावित्रीमार्कदर्शनात्’ इति मन्वाद्युक्तं द्रष्टव्यम् । योगयाज्ञवल्क्यः—

“ब्रह्मचार्याहिताग्निश्च शतमष्टोत्तरं जपेत् । वानप्रस्थो यतिश्चैव सहस्रादधिकं जपेत्” ॥

तयोरग्नित्वेन होमकालानतिपक्षेति भावः । आहिताग्निग्रहणमेकाग्रैरप्युपलक्षणम् ।

तथा च संवर्तः—

“गृहस्थो ब्रह्मचारी च शतमष्टोत्तरं जपेत् । वानप्रस्थो यतिश्चैव जपेद्विद्वत्सहस्रकम्” ॥

१५ स्तुत्यर्थस्तारे—

“ब्रह्मचारी गृहस्थश्च शतमष्टोत्तरं जपेत् । वानप्रस्थो यतिश्चैव सहस्रादधिकं जपेत् ॥

“दशापस्तु जपेदेवीनष्टाविंशतिमेवं वा” ॥ इति । ननु ‘सावित्रीमार्कदर्शनात्’ इत्युदयपर्यन्तं

जपविधानं त “न चान्तरान्याहरेत्तु विरमेद्वा कथंचन” “नान्तरा विरमेत्कश्चित्” इति । व्यास-

शौनकाभ्यां जपमध्वे विरमणस्य प्रतिषिद्धत्वाद्वादितहोमिन आहिताग्नेर्विरमणलोपप्रसंगः ।

२० मेवम् । श्रुतिविरोधे सति मध्ये विरमणे अविगोयात् । अत एवापस्तम्बः (१।१।१३०।९)—

“विप्रतिषेधे श्रुतिलक्षणं बलीयः” ॥ इति । शंखः—

“स्वरवर्णजपैर्वाक्यं शुद्धनावर्तयन् जपेत् । न कंपयेच्छिरो ग्रीवा दन्तान्नैव प्रघट्टयेत्” ॥

तच्च वाक्यं मनुनोक्तम्—(२।३८)

“एतदभ्रमेतां च जपन्त्यादितिपूर्विकां । संध्ययोर्वेदविद्विप्रो वेदपुण्येन युज्यते” ॥

२५ एतदभ्रं प्रगवम् । एतां गायत्रीम् । व्यासोऽपि—

“प्रगव्यव्यवृत्तियुनां गायत्रीं तु तनो जपेत् । सनाहितमनास्तूष्णीं मनसाऽपि विचिंतयेत्” ॥

पितामहः—

“प्रगव्यव्यवृत्तीन्मित्रो गायत्रीं च जपेन्मान् । प्रगव्यव्यवृत्तियुना स्वादांता होमकर्मणि” ।

“शुद्धा वऽत्र प्रगेन्व्या प्रगव्यव्यवृत्तीर्विना” ॥ स्तुतिरत्ने—

३० “शुद्धयेव तु होमव्यं गायत्री होमकर्मणि । त्रिकेणैव जपः कार्यो जपयजमिद्धये” ॥

प्रगवो व्यावृत्ते गायत्री चेति त्रिकम् । बोधायनः (२।५।१४)—“प्रगवो व्यावृत्तय-

स्मिन्ः सवित्री चेत्येते पंचब्रह्मयज्ञा अहर्गर्वाह्मणं किन्निवगन् पावयन्” इति ।

यत्र योगयाज्ञवल्क्य उच्यते

“ओङ्कारं पुनश्चाप्यं भूर्भुवस्वमर्थव च । गायत्रीं प्रगवं च जप एवमश्रितम् ।

“ एषा संपुटगायत्री सर्वपापप्रणाशिनी ” । यदपि बोधायनः (ध. सू. २।४।७) “ उभयतः प्रणवां व्याहृतिकां जपेत् ” इति । यदपि वृद्धमनुः—

“ षडङ्कारान् जपेद्विप्रो गायत्रीं मनसा शुचिः । अनेकजन्मजैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥

“ तिस्रो व्याहृतयः पूर्वं पृथगङ्कारसंयुताः । पुनः संहृत्य चोङ्कारं मंत्रस्याग्रंतयोस्तथा ” ॥ इति तत्सर्वं गृहस्थब्रह्मचारिव्यतिरिक्तविषयम् । तथा च स्मृतिरत्नावल्याम्—

“ संपुटैकषडङ्कारा गायत्री त्रिविधा मता । तत्रैकप्रणवा ग्राह्या गृहस्थैर्जपकर्मणि ॥

“ गृहस्थवत्तु जप्तव्या सदैव ब्रह्मचारिभिः । संपुटा च षडङ्कारा भवेतामूर्ध्वरेतसाम् ” ॥

स्मृतिसारसमुच्चये—

“ गृहस्थो ब्रह्मचारी च प्रणवाद्यामिमां जपेत् । अन्ते यः प्रणवं कुर्यात् नासौ वृद्धिमवाप्नुयात् ” ॥ इति ।

वृद्धमनुः—

“ सौङ्कारा चतुरावृत्या विज्ञेया सा शताक्षरा । शताक्षरां समावृत्य सर्ववेदफलं लभेत् ॥

“ एतया ज्ञातया नित्यं वाङ्मयं विदितं भवेत् । उपासितं भवेत्तेन विश्वं भुवनसप्तकम् ” ॥ इति । अस्यार्थश्चन्द्रिकायामभिहितः (पृ. १४९ पं. २०)— “ सौङ्कारेत्यनेन व्याहृतीनां संख्याननु-प्रवेश उच्यते । एवं च ओङ्कारेण सह पञ्चविंशत्यक्षरा संपद्यते । मंत्रे तु व्याहृतित्रयस्यानु-प्रवेशोऽस्त्येव ” । इति । अत एव विश्वामित्रः—

“ प्रणवोऽप्यत्र मंत्रादौ व्याहृतित्रितयं ततः । जपे प्रशस्ता सावित्री प्रणवेन समन्विता ॥

“ अतिप्रशस्ता तेनापि व्याहृतित्रितयेन च ” ॥ इति ।

संवर्तोऽपि—“ प्रणवाद्यां तु संध्यायां जपेत् व्याहृतिभिः सह ” ॥ इति । व्यासः—

“ त्रिसंध्यासु जपेद्देवीं विच्छिद्यैव पदत्रयम् । अविच्छिन्नां जपेद्यस्तु रौरवं नरकं व्रजेत् ” ॥

विष्णुः—

“ अछिन्नपादा गायत्री ब्रह्महत्यां प्रयच्छति । छिन्नपादा तु गायत्री ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥

“ तस्मात्पादत्रयं छित्वा जपयज्ञं समाचरेत् ” ॥ स्मृतिरत्नावल्याम्—

“ अछिन्नपादं गायत्र्या जपं कुर्वति ये द्विजाः । अधोमुखास्ते तिष्ठन्ति कल्पकोटिशतान्यपि ” ॥ इति । जपयज्ञस्य भेदोऽभिहितो माधवीये—

“ वाचिकारण्य उपांशुश्च मानसश्च त्रयः स्मृताः । त्रयाणां जपयज्ञानां श्रेयान् स्यादुत्तरोत्तरः ” ॥ २५ एतेषां लक्षणं तत्रैवोक्तम्

“ यदुच्चनीचस्वरितैः स्पष्टैः स्पष्टपदाक्षरैः । मंत्रमुच्चारयेद्वाचा जपयज्ञः स वाचिकः ॥

“ शनैरुदीरयेन्मंत्रं ईषदोष्ठां प्रचालयेत् । किञ्चिच्छब्दं स्वयं विद्यादुपांशुः स जपः स्मृतः ” ॥

विश्वामित्रः—

“ धिया यदक्षरश्रेण्या वर्णाद्वर्णं पदात्पदम् । मंत्रार्थचिंतनं भूयः कथ्यते मानसो जपः ॥

“ उत्तमं मानसं जप्यं उपांशुर्मध्यमः स्मृतः । अधमं वाचिकं प्राहुः सर्वमंत्रेषु वै द्विजाः ॥

“ वाचिकस्यैकमेकं स्यादुपांशुः शतमुच्यते । सहस्रं मानसं प्रोक्तं मन्वत्रिभृगुनारदैः ” ॥

हारीतः—“ मंत्रमुच्चारयेद्वाचा जपयज्ञः स वाचिकः ।

“ स उपांशुजपो शब्दश्चलजिह्वादशच्छदः । मानसस्त्वचलज्जिह्वादशनच्छद ईरितः ॥

“ उच्चैस्त्वेकगुणः प्रोक्तो ध्वानो दशगुणः स्मृतः । उपांशुः स्याच्छतगुणः सहस्रो मानसः स्मृतः ॥
 “ मुक्तिदो मानसो ज्ञेय उपांशुः सर्वसिद्धिदः । त्रिविधो जपयज्ञः स्याद्वाचिकः क्षुद्रकर्मणि ॥” इति ।

वैयाघ्रपादः—

“ त्रिविधो जपयज्ञः स्यान्मानसोपांशु वाचिकः ।

५ “ परश्रवणयोग्यः स वाचिक उदीरितः । उपांशुश्रेष्ठसंस्पर्शमात्रः स्वश्रुतिगोचरः ॥

“ यो भवेदचलज्जिह्वादशनावरणो जपः । स मानसः समाख्यातो जपः श्रुतिविभूषणैः ॥

“ उच्चैर्जपात् विशिष्टः स्यादुपांशुर्दशभिर्गुणैः । जिह्वाजपः शतगुणः सहस्रो मानसः स्मृतः ॥

“ मानसः सिद्धिकामानां पुष्टिकामैरुपांशुकः । वाचिको मारणे चैव प्रशस्तो जप ईरितः ॥

यत्तु व्यासेनोक्तम्—“ मनसैव जपं कुर्यात् साविद्यास्तु विशेषतः ” इति तन्मानसजपप्रशंसा-

१ = भिप्रायं न पुनरुपांशुत्वनिषेधार्थं तथात्वे “ उपांशुजपयुक्तस्य शंसाच्छतगुणो भवेत् ” इत्याद-
 वचनविरोधः स्यात् । शंस उच्चैर्जपः । जपनियममाह शौनकः—

“ कृत्वौत्तानौ करौ प्रातः सायं चाधोमुखौ तथा । मध्ये स्तब्धकराभ्यां तु जप एवमुदाहृतः ॥

व्यासोऽपि—

“ प्रातरुत्तानपाणिभ्यां स्तब्धाभ्यां दिनमध्यमे । अधोमुखाभ्यां पाणिभ्यां सायं संलक्षितो जपेत् ॥

१५ “ प्रातर्नासा समौ कुर्यात् मध्यान्हे तूरसा समौ । सायंकाले नाभिसमौ करौ कुर्यादतन्द्रितः ॥

“ अपवित्रकरो शुद्धः प्रलपन्न जपेत्प्रवचित् । अप्रावृतकरो वाऽपि शिरसि प्रावृतोऽपि वा ॥” इति ।

शौनकः—

“ मनःसंतोषणं शौचं मौनं मंत्रार्थचिंतनम् । अव्यग्रत्वमनिर्वेदो जपसंपात्तिहेतवः ॥

व्यासः—“ न प्रकाशं न च हसन्न पाङ्गुमवलोकयन् । नापाश्रितो न जल्पश्च न प्रावृतशिरास्तथा ॥

१० “ न पदा पदमाक्रम्य न चैव हि तथा करौ । न चासमाहितमना न च संश्रावयन्जपेत् ॥

अपाश्रितः स्तंभादिश्रितः । “ जपकाले न भाषेत व्रतहोमादिकेषु च ।

“ एतेष्वेवावसक्तस्तु यथागच्छेद्विजोत्तमः । अभिवाद्य ततो विप्रं योगक्षेमं च कीर्तयेत् ॥

बोधायनः—

“ विरमेद्ब्राह्मणे प्राप्ते कामं तेन च संवदेत् । शूद्रं दृष्ट्वा तु संप्राप्तं नाधीयीत कथंचन ॥

२५ शूद्रं दृष्ट्वा विरमेदेव न संवदेदित्यर्थः । संवर्तः—

“ लोकवार्तादिक्कं श्रुत्वा स्पृष्ट्वा दृष्ट्वा प्रभाषिणम् । संख्या दिना च यज्जप्तं तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ॥

प्रभाषिणं बहुभाषिणम् ।

१ प्रभाषणं च तन्द्रां च परुषं बहुभाषणम् । क्रोधं मायं क्षुत निद्रां निष्ठीवनविजृम्भणे ॥

“ दर्शनं च इवनीचानां वर्जयेज्जपकर्मणि । आचामेत्संभवे चैषा स्मरेद्विष्णुसुगार्चितम् ॥

३ “ ज्योतीषि च प्रपश्येद्वा कुर्याद्वा प्राणसंयमम् । ज्वलनं गात्रं विप्रांश्च यतीन्वापि विशुद्धये ॥

रत्नावल्यान्—

“ चंडालाशुचिपतितान् दृष्ट्वाचम्य पुनर्जपेत् । तैरेव भाषणं कृत्वा स्नात्वाऽचम्य जपेत्पुनः ॥

“ जमत्यभाषणं जिह्मभाषणं वर्जयेत्सदा । सत्यैरपि न भाषेत जपदोमार्चनादिषु ॥

नारदः—“ श्वश्रुदपतितान् चैव गमभं च रजम्बलाम् । दृष्ट्वा तोयमुपस्पृश्याभाष्य स्नात्वा पुनर्जपेत् ॥

“मार्जारं कुक्कुटं क्रौंचं श्वानं गृध्रं खरं कपिम् । दृष्ट्वाचम्याचरेत्कर्म स्पृष्ट्वा स्नानं विधीयते” ॥ इति बोधायनः—

“संध्ययोरुभयोर्जप्ये भोजने दंतधावने । पितृकार्ये च दैवे च तथा मूत्रपुरीषयोः ॥
“गुरुणां सन्निधौ दाने यागे चैव विशेषतः । एतेषु मौनमातिष्ठन् स्वर्गं प्राप्नोति मानवः ” ॥

योगयाज्ञवल्क्यः—

“यदि वाग्यमलोपः स्यात् जपादिषु कदाचन । व्याहरेद्वैष्णवं मंत्रं स्मरेद्वा विष्णुमव्ययम् ॥
“तद्विष्णोरिति मंत्रोऽयं स्मर्तव्यं सर्वकर्मसु । गायत्री वैष्णवी ह्येषा प्रोक्तेदं विष्णुरित्यपि ” ॥

प्रजापतिः—

“प्रमादात्कुर्वतां कर्म प्रच्यवत्यध्वरेषु यत् । स्मरणादेव तद्विष्णोः संपूर्णं स्यादिति श्रुतिः ” ॥
अध्वरेषु जपादियज्ञेषु । बोधायनः (१।५।७५)— “नाभेरधः संस्पर्शं कर्मयुक्तो वर्जयेत् ” इति । १०
यमोऽपि—

“नाभेरधः स्वकायं तु स्पृष्ट्वा प्रक्षालयेत्करौ । दक्षिणं वा स्पृशेत्कर्णं स्मरेद्वा विष्णुमव्ययम् ” ॥
सुमंतुः—

“नान्यथोक्तिर्नान्यमना न च व्यत्यस्तपत्करः । न जपेत्प्रलपन्वाऽपि कृतं निष्फलमुच्यते” ॥
व्यासः—

“होमः प्रतिग्रहो दानं भोजनाचमने जपः । न बहिर्जानु कार्याणि सांगुष्ठानि समाचरेत् ॥
“उष्णीषी कंचुकी नग्नो मुक्तकेशो गलावृतः । चिंताव्याकुलचित्तो वा भ्रांतः क्रुद्धो बुभुक्षितः ॥
“अनासनः शयानो वा गच्छन्नुत्थित एव वा । रथ्यायामशिवस्थाने न जपेत्तिमिरावृते ॥
“उपानद्रगूढपादो वा यानशय्यागतस्तथा । प्रसार्थं न जपेत्पादावुत्कटासन एव वा ॥
“जपेन्न प्रौढपादश्च नावष्टब्धोऽलसोऽशुचिः । नासंख्यानो ह्यदर्भश्च नाशिखाच्छब्धघनः ” ॥ इति । २०

भरद्वाजः—

“निष्ठीवजृम्भणे क्रोधनिद्रालस्यश्लुधो मूढः । पतितश्वान्त्यजा लोका दशैते जपवैरिणः ” ॥

शांडिल्यः—

“प्रदक्षिणे प्रणामे च पूजायां हवने जपे । न कंठावृतवस्त्रः स्यात् दर्शने गुरुदेवयोः ॥
“आचार्यं भगवद्भक्तं भगवन्मंदिरं जलम् । अश्वत्थमग्निमर्कं च पृष्ठीकृत्य जपेन्न तु ॥ २५
“आर्द्रवासास्तु यः कुर्याज्जपं होमं प्रतिग्रहम् । सर्वं तद्राक्षसं विद्याद्बहिर्जानु च यत्कृतम् ” ॥ इति ।
आर्द्रवासा इति स्थलविषयम् । यदाह व्यासः—

“यदि स्यात्क्लिन्नवासा वै वारिमध्यगतो जपेत् । अन्यथा तु शुचौ भूम्यां दर्भेषु सुसमाहितः ॥
“न क्लिन्नवासा स्थलगो जपादीनाचरेद्बुधः । व्रतादिते नार्द्रवासा आचरेन्नैकवाससा ॥
“न जीर्णेन न नीलेन परिक्लिष्टेन वा जपेत् ” ॥ इति । ‘यदि स्यात्क्लिन्नवासा’ इति च ३०
आपद्विषयं गायत्रीजपव्यतिरिक्तविषयं वा ।

“मतिमान्न कदाचित्तु गायत्रीमुदके जपेत् । गायत्र्यग्निमुखी प्रोक्ता तस्मादुत्तीर्य तां जपेत् ” ॥ इति गोभिलस्मरणात् । सुमंतुः—

“खंडवस्त्रावृतस्यैव वस्त्रार्धालंबिनस्तथा । उत्तरीयव्यपेतस्य समस्ता निष्फलाः क्रियाः ॥

१ क्ष-पी । २ क्ष-नाधोरानि, गघ-नाधोरानि । ३ क्ष-विव । ४ ख-द्ध । ५ क्ष-न्तरे ।
६ ख-व्या, गघ-(सं)ख्यो । ७ क्ष-दमः । ८ ख-दिक ।

“ संख्या चैवोपवीतेन जपहोमादि निष्फलम् ” ॥ इति । गौतमः—

“ गच्छतस्तिष्ठतो वाऽपि स्वेच्छया कर्म कुर्वतः । अशुचेर्वा विना संख्यां तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ” ॥ इति । तिष्ठत इति वचनं गायत्रीव्यतिरिक्तमंत्रविषयम् । जपांगभूतामक्षमालामाह हारीतः—

“ शंखरूप्यमयी माला कांचनी निंबजैः फलैः । पद्माक्षकैश्च रुद्राक्षैः विट्पुमैर्मणिमौक्तिकैः ॥

५ “ रजतैर्द्राक्षकैर्माला तथैवांगुलिपर्वभिः । पुत्रजीवमयी माला शस्ता वै जपकर्मणि ” ॥ इति । योगयाज्ञवल्क्यः—

“ स्फटिकैर्द्राक्षरुद्राक्षैः पुत्रजीवसमुद्भवैः । अक्षमाला तु कर्तव्या ह्युत्तमा ह्युत्तरोत्तरा ” ॥ इति । चंद्रिकायाम् (पृ. १५२ पं. १९)—

“ अक्षसूत्रं तु कर्तव्यं मुक्तामणिमयं शुभम् । सौवर्णं राजतं ताम्रं स्फाटिकं वाऽथ कारयेत् ” ॥ इति ।

१० स्मृत्यर्थसारेऽपि—

“ हस्तेनावर्तयेद्देवीमक्षसूत्रैरथापि वा । सौवर्णं राजतैस्ताम्रैः स्फाटिकै रत्नजैस्तथा ॥

“ आरिष्टैः पुत्रजीवोत्थैरिद्राक्षैः शंखसंभवैः । रुद्राक्षैरपि पद्माक्षैः कुशग्रंथिभिरेव वा ॥

“ मणिभिस्त्वक्षसूत्रं स्यात्तदष्टशतसंख्यया । चतुःपञ्चाशता वाऽपि सप्तविंशतिरेव वा ” ॥ इति ।

प्रजापतिः—

१५ “ अष्टोत्तरशतं कुर्यात् चतुःपञ्चाशतं तथा । सप्तविंशतिका कार्या ततो न्यूनं न कारयेत् ” ॥ इति । स्मृत्यन्तरेऽपि—

“ अष्टोत्तरशतैर्माला पञ्चाशच्चतुरुत्तरैः । सप्तविंशतिभिः कार्या सर्वसाधारणे जपे ॥

“ अष्टोत्तरशतैर्माला ह्युत्तमा परिकीर्तिता । चतुःपञ्चाशता माला मध्यमा परिकीर्तिता ॥

“ अथमा प्रोच्यते माला सप्तविंशतिसंख्यया ” ॥ इति ।

२० गौतमः “ अंगुल्या जपसंख्यानमेकमेकमुदाहृतम् । रेखयाऽष्टगुणं पुत्रजीवैर्दशगुणाधिकम् ॥

“ घातं स्याच्छङ्खमणिभिः प्रवालैश्च सहस्रकम् । स्फटिकैर्दशसाहस्रं मौक्तिकैर्लक्षमुच्यते ॥

“ पद्माक्षैर्दशलक्षं तु सौवर्णैः कोटिरुच्यते । कुशग्रंथ्या च रुद्राक्षैरनंतं फलमुच्यते ॥

“ तुलसीकाष्ठपटितैर्मणिभिर्जपमालिका । सर्वकर्मणि सर्वेषां ईप्सितार्थफलप्रदा ॥

“ तत्रांगुलिजपं कुर्वन् सांगुष्ठांगुलिभिर्जपेत् । अंगुष्ठेन विना कर्म कृतं तदफलं यतः ॥

२५ “ अंगुलीर्न नियुंजीत किंचिद्राकुंचिते तले । अंगुलीनां नयोगात्तु छिद्रेषु स्रवते जपः ” ॥ हारीतोऽपि—

“ शङ्खैः शतगुणं जप्यं रौप्यैश्चैव सहस्रकम् । जप्यं शतगुणं प्रोक्तं निम्बवारिष्टकमालया ॥

“ रुद्राक्षैर्लक्षगुणितं विट्पुमैर्दशलक्षकम् । मौक्तिकैः स्फटिकैश्चैव कोटिकोटिगुणोत्तरम् ॥

“ परिसंख्या न विज्ञेया रुद्राक्षाङ्गुलिपर्वभिः । पद्मजैः पुत्रजीवैश्च परिसंख्या न विद्यते ॥

३० “ मणिमेकैकमादाय श्वेतसूत्रे प्रयोजयेत् । मुखं मुखेन संयोज्य ग्रंथं पृष्ठेन योजयेत् ॥

“ प्रोक्तसंख्यान्यमेकाक्षं मेरुवेनाग्रतो न्यसेत् । एकैकमणिमध्ये तु ग्रंथिवन्धं प्रकल्पयेत् ॥

“ जपमालां विधायन्त्यं ततः संस्कारमारभेत् । आलयेत्पञ्चगव्यस्तां सयोजातादिर्कैर्जलः ॥

“ चंदनागन्धं धातुर्जपदेवेन घर्षयेत् । धूपयेन्नामघोरेण लिपेत्तत्पुरुषेण तु ॥

“ मंत्रेण हतव्यं तु पञ्चमेनाभिमंत्रयेत् । मेरुं च पञ्चमेनैव तथा मंत्रेण मंत्रयेत् ॥

“ जप्यमंत्रेण तां मालामभिमन्त्र्य सुगोपयेत् । मध्यमायां न्यस्तमालां ज्येष्ठया वर्तयेत्क्रमात् ॥
 “ अपि वाऽगुष्ठमध्यस्थां चालयेन्मध्यमाग्रतः । न स्पृशेत् वामहस्तेन करभ्रष्टां न कारयेत् ॥
 “ तर्जन्या न स्पृशेत्सूत्रं कंपयेन्न विधूनयेत् । प्रमादात्पतिते हस्ताच्छतमष्टोत्तरं जपेत् ॥
 “ जीर्णे सूत्रे पुनः सूत्रं ग्रन्थयित्वा शतं जपेत् । भुक्तिमुक्तिप्रदः सोऽयं मालिकागणनक्रमः ” ॥ इति ।

गौतमः—

“ अंगुष्ठं मोक्षदं विद्यात्तर्जनी शत्रुनाशिनी । मध्यमा धनकामायानामिका पौष्टिकी तथा ॥
 “ कनिष्ठा रक्षिणी प्रोक्ता जपकर्मणि शोभना । अंगुष्ठेन विना जप्यं कृतं तदफलं भवेत् ॥
 “ उलंघिते तथा मेरौ पतिते चाक्षसूत्रके । प्राणायामत्रयं कृत्वा घृतप्राशनमाचरेत् ” ॥ इति ।

रुद्राक्षं प्रकृत्य स्कन्दपुराणे—

“ लक्षकोटिसहस्रस्य लक्षकोटिशतस्य च । जपे च लभते पुण्यं नात्र कार्या विचारणा ॥ १०
 “ उच्छिष्टो वाऽपि कर्मस्थः संयुक्तः सर्वपातकैः । लिप्यते न स पापेन रुद्राक्षस्य तु धारणात् ॥
 “ कंठे रुद्राक्षमाधाय यश्चापि म्रियते यदि । सोऽपि रुद्रत्वमाप्नोति किंपुनर्मानुषादयः ” ॥ इति ।
 “ यः कुर्यात्तुलसीकाष्ठैरक्षमालां सुरुषिणीम् । कंठमालां च यन्नेन कृतं तस्याक्षयं भवेत् ” ॥
 इत्यादिवचनं भाक्तमित्याहुः । अत एव स्मृतिरत्नावल्यां स्मृतिरत्ने च धारणनिषेध उक्तः—
 “ तुलसीकाष्ठसंभूतां स्कंधे मालां विभर्ति यः । स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्मात् द्विजकर्मणः ॥ १५
 “ स्कंधे कंठे शिखायां वा यस्तु धारयते मणीन् । दैवे कर्मणि पित्र्ये च तं विप्रं दूरतस्त्यजेत् ” ॥ इति ।

विष्णुः—

“ आवृत्य गणयेन्मंत्रं जपेच्चांगुलिपर्वभिः । जपस्यावृत्तिगणने पुण्यसंख्या न विद्यते ” ॥

रत्नावल्याम्—

“ पर्वभिश्च जपः कार्यो नांगुलीनां निपातनैः । तन्निपातैस्तु यज्जप्तं सर्वं विद्यात्तदासुरम् ” ॥ २०
 रेखागणनप्रकारमाह शंखः— “ अथांगुलीनां रेखाभिः जपमन्वहमाचरेत् ॥
 “ प्रारभ्यानामिकायास्तु मध्यमे पर्वणि क्रमात् । तर्जनीमूलपर्यन्तं जपेद्दशसु पर्वसु ॥
 “ मध्यमांगुलिमूले तु यत्पर्वद्वितयं भवेत् । तं वै मेरुं विजानीथाज्जपेत् नातिलंघयेत् ॥
 “ अनामिकामूलपर्वं प्रारभ्यापि क्रमेण तु । मध्यमामूलपर्यन्तं जपेद्दशसु पर्वसु ॥
 “ मध्यांगुलेर्मध्यरेखां समारभ्य प्रदक्षिणम् । मध्यमामूलपर्यन्तमंगुष्ठेन यथाक्रमम् ॥
 “ स्पृष्ट्वा द्वादशसंख्या स्यादेकवारेण तन्नव । वामहस्तेन संख्यातं शतमष्टोत्तर स्मृतम् ” ॥ इति । २५

अत्र पक्षत्रये यथोपदेशं विकल्प इत्याहुः । रत्नावल्याम्—

“ पर्वभिस्तु जपेद्देवीमन्यत्रानियमः स्मृतः । गायत्र्या वेदमूलत्वात् वेदः पर्वसु गीयते ” ॥ इति ।
 तदेतद्बुद्धाक्षकुशग्रन्थोरप्युपलक्षणम् । यदाह प्रजापतिः—

“ ब्राह्मेरानन्त्यमाप्नोति रौद्रेश्च मणिभिर्बुधः । ब्राह्मः कुशमयो रौद्रो रुद्राक्षः पापनाशनः ॥
 “ सावित्र्यास्तु जपस्ताभ्यामेकोऽप्यानन्त्यमृच्छति । गायत्र्या वेदबीजत्वात्पर्वभिश्च जपः स्मृतः ” ॥ इति । ३०

गौतमः—

“ अनेन विधिना नित्यं जपं कुर्यात्प्रयत्नतः । प्रपन्नो विपुलान् भोगान् भुक्तिं मुक्तिं च विंदति ” ॥ इति ।

पितामहः—

“ एवं जप्त्वा यथाशक्ति ह्युदिते तु दिवाकरे । उत्तमेत्यनुवाकेन उद्वास्य तु यथागतम् ॥

“उत्तमेत्यनुवाकस्य वामदेव ऋषिः स्मृतः । अनुष्टुप् च तथा छंदो गायत्री देवता स्मृता ” ॥
अथोपस्थानम् । व्यासः—

“अथोपदिष्टेदादित्यमुदयंतं समाहितः । मंत्रैस्तु विविधैः सौरैः ऋग्यजुःसामसंभवैः ” ॥ इति ।

उपस्थानं तु स्वशाखाधीतैः मंत्रैः कार्यम् । “उपस्थानं स्वकैर्मंत्रैरादित्यस्य तु कारयेत् ”
५ इति वसिष्ठस्मरणात् । चंद्रिकायाम् (पृ. १३९ पं. ८) “यजुःशाखिनां ‘मित्रस्य’
‘मित्रो जनान्’ ‘प्रसमित्र’ इति तिसृभिरुपस्थानम् । तासां प्रथमा गायत्री उत्तमे त्रिष्टुभौ
विश्वेदेवा ऋषयः । मित्रो देवता सूर्योपस्थाने विनियोगः ” इति । पितामहः—

“मित्रस्येति वृचस्येह विश्वामित्र ऋषिः स्मृतः । हिरुगोयत्रमादिस्तु त्रिष्टुभावथ पश्चिमौ ॥

“देवता चैव मित्रः स्यादित्युवाच बृहस्पतिः ॥

१० “एताभिः प्रांजलिः सम्यग्विस्फोटितमंडलम् । सहस्रांशुं भगवंतमुपतिष्ठेत भास्करम् ” ॥ इति ।
सायंसंध्यायामुपस्थाने मंत्रविशेषमाह नारायणः— “वारुणीभिः आदित्यमुपस्थाय प्रदक्षिणं
कुर्वन् दिशो नमस्क्रुर्यात्” इति । वारुण्यश्च ‘इमं मे वरुणः श्रुधी’ इत्यादयः यद्यपि वारुणीभिः
वरुणस्यैवोपस्थानं लिंगवशात् प्राप्तं तथापि श्रुतेः प्राबल्यात् तथा लिंगं बाधित्वादित्योप-
स्थान एव मंत्रो विनियुज्यते ।

१५ पितामहः—‘इमं मे’ इति गायत्रीं ‘तत्त्वायामीति’ त्रैष्टुभम् ।

“‘यच्चिद्धिते’ इति ‘गायत्रं यत्किंच’ त्रैष्टुभं विदुः । ‘कितवास’ इति त्रिष्टुभदेवता वरुणः स्मृतः ॥

“तिसृणां तु शुनःशेषश्चतुर्थ्या वसिष्ठ उच्यते । पंचम्यां अत्रिरित्येवमृषयःपरिकीर्तिताः” ॥ इति ।

बोधायनः (२।४।९-१०; १९-२४)—“वारुणीभ्यां रात्रिमुपतिष्ठते ‘इमं मे वरुण तत्त्वायामीति’
द्वाभ्याम् । एवमेव प्रातः प्राङ्मुखः तिष्ठन् । मैत्रीभ्यामहरुपतिष्ठते ‘मित्रस्य चर्षणी धृतः’

२० ‘मित्रो जनान्’ इति द्वाभ्याम् ।

“यदुपस्थं कृतं पापं पद्भ्यां वा यत्कृतं भवेत् । बाहुभ्यां मनसा वाऽपि वाचा वा यत्कृतं भवेत् ॥

“सायंसंध्यामुपस्थाय तेन तस्मात्प्रमुच्यते । रात्र्या चाभिसंधीयते तेन चैनं वरुणो गृह्णा-
त्येवमेव प्रातरुपस्थाय रात्रिकृतात् पापात्प्रमुच्यते । अन्हा चाभिसंधीयते मित्रश्चैनं गोपाये-
त्यादित्यश्चैनं स्वर्गं लोकं गमयत्युन्नयति । स एवमेवाहरहरहोरात्रयोः संधिपूपातिष्ठमानो

२५ ब्रह्मभूतो ब्रह्मलोकमभिजयति ” ॥ इति ।

मध्यदिनोपस्थानमाह स एव—(२।४।५) “दर्भेष्वासीनो दर्भान्वारयमाणः प्राङ्मुखः
सावित्रीं सहस्रकृत्व आवर्तयेच्छतकृत्वोऽपरिमितकृत्वो वा दशावरामथादित्यमुपतिष्ठते ।
आसत्येनोदयंतमसस्पृष्टुत्वं चित्रं तच्चक्षुर्देवहितं य उदगादिति ” ॥

नारायणोऽपि—“आसत्येनोदयंतमुदुत्वं चित्रमित्यपि ॥

३० “तच्चक्षुर्देव इति हंसःशुचिपदित्यपि । एतज्जपेद्धर्ध्वबाहुः सूर्यं पश्यन् समाहितः ” ॥ इति ।
शौनकस्तु विशेषमाह—

“उत्तमेत्यनुवाकेन उद्वास्य पश्चात् शुभाम् । सायंप्रातरुपस्थाय जातवेदस इत्यृचा ॥

“इमं मे वरुण तत्त्वेति सायंकाले विशेषतः । मित्रस्य चर्षणीधृतद्वाभ्यां प्रातः समाहितः ॥

“विशंगभृष्टिमिन्यूचा मुग्धं स्पृष्ट्वा प्रदक्षिणम् । भद्रं कर्णेत्युक्त्वा कर्णं स्पृष्ट्वा प्रदक्षिणम् ॥

‘कैश्याग्रिमित्युचा पश्चात् शिखां स्पृष्ट्वा प्रदक्षिणम्।संध्याकाले च सावित्रीं सर्वान् देवान् प्रणम्य च॥

“ दिशश्च साधिपा नत्वा गुरुनप्यभिवादयेत् । मध्यान्हे मंडलं पश्यन् उपतिष्ठेत्तु भास्करम् ॥

“ कृतांजलिः पठेत्सूक्तं उदृत्यं जातवेदसम् । एवमादीनि सौर्याणि जपन्नीक्षेत भास्करम् ” ॥

स्मृत्यर्थसारे—“ जपांते प्रातः सौरैर्मन्त्रैः सूर्यमुपतिष्ठेत । सायं वारुणैर्यद्वोभयत्र जातवेदसेन वैष्णवै रौद्रैर्वोपतिष्ठेत । दिग्भ्यो देवताभ्यो नमस्कृत्य संध्यायै सावित्र्यै गायत्र्यै सरस्वत्यै ५ सर्वाभ्यो देवताभ्यो नमो नम इत्यादि यथास्वाचारं कुर्यात् ” ॥ इति ।

भरद्वाजः—“ उपस्थाय नमस्कुर्याच्चतुःसंध्यादिदेवताः ॥

“ संध्या पुरस्तात् सावित्री गायत्री च सरस्वती । एताः संध्यादयः प्रोक्ताश्चतस्रो देवताः क्रमात् ।

“ स्वस्वनाम चतुर्थ्यंतं प्रणवादि नमोत्तमम् । मंत्रमासामिह प्रोक्तं प्रणमेत्स्वस्वमंत्रतः ॥

“ केचित्तु मुनयः प्राहुः प्रतिमंत्रं प्रदक्षिणम् । सर्वाभ्यो देवताभ्यश्चेत्येतत्प्रणवसंपुटम् ॥ १०

“ उक्त्वा नमो नम इति प्रणमेत्सर्वदेवताः । कामोऽकार्षीन्मन्युरकार्षीन्नमो नम इत्यपि ॥

“ उक्त्वा प्रदक्षिणेनैव देवीं विप्रोऽभिवादयेत् । कर्णयुग्मं स्वहस्ताभ्यां स्पृष्ट्वा जानुद्वयादिकम् ॥

“ चरणांगुष्ठपर्यंतं संमृज्य तु शनैः शनैः । अभिवाद्य तु गायत्रीं नमस्कुर्याद्दिशस्तथा ॥

“ प्राची च दक्षिणा चैव प्रतीची चोत्तरोर्ध्वका । अधरं चांतरिक्षं च भूमिश्चाष्टोदिता दिशः ॥

“ एताः प्रदक्षिणेनैव प्रणमेत् स्वस्वमंत्रतः । १५

“ यमविष्णुविरूपाक्षसवितृणामुपस्थितम् । कुर्यात्तल्लिङ्गकैर्मन्त्रैर्द्विजो याम्यादिदिङ्मुखः ॥

“ एवं संध्यामुपास्याथ पितरावग्रजान्गुरुन् । त्रिवर्षपूर्वान् शिष्टांश्च पार्श्वस्थानभिवादयेत् ” ॥ इति ।

चंद्रिकायाम्—(पृ. १३९ पं. १३)

“आत्मपादौ तथा भूमिं संध्याकालेऽभिवादयेत् । आयुर्विद्यां धनारोग्ये प्राप्नोति पुरुषः सदा” ॥ इति ।

स्मृत्यर्थसारे—

“ सावित्र्यादिक्रियाः सर्वा आदित्याभिमुखश्चरेत् । देवालयसमीपे तु तमेवाभिमुखश्चरेत् ॥

“ जपस्थानान्न निर्गच्छेद्देवतासंनिधौ कचित् । प्रदक्षिणं नमस्कारं न कुर्याद्देवतालये ” ॥

हारीतः—

“ आर्द्रवासा जले कुर्यात्तर्पणाचमनं जपम् । उपस्थातुं न निर्गच्छेत् वर्जयेच्च प्रदक्षिणम् ” ॥ इति ।

मंत्रार्थस्तु—‘उत्तमे शिखरे देवि’ देवनशीलविभक्तिव्यत्ययः । देवनशीले हे देवि भूम्यामागत्य २५

ब्राह्मणेभ्योऽस्मभ्यमनुज्ञानं कृत्वा उत्तमे उत्कृष्टतमे शिखरे सर्वस्मादुच्छ्रिते पर्वतमूर्धनि सुमेरो-

र्मूर्ध्नि ब्रह्मलोके स्वस्थाने यथासुखं गच्छ । ‘ मित्रस्य ’ इत्यादि मित्रस्य सूर्यस्य चर्षणयो

मनुष्याः तां धारयति वृष्टिप्रदानद्वारेणेति चर्षणीधृत् । तस्य श्रव इति दीप्तिनाम । तादिहोप-

चारात्तद्वति मंडले वर्तते । देवस्य प्रकाशमानस्य सानसिं मंडलविशेषणमेतत् । ‘ षण संभक्तौ ’

इत्यस्यासूत्रप्रत्ययांतस्य छान्दसमेतद्रूपं योगिभिः संभजनीयमित्यर्थः । सत्यं परमार्थभूतं चित्रश्रव- ३०

स्तमं चित्राणि श्रवांसि तेजांसि येषामग्न्यादीनां त इमे चित्रश्रवसः तेषां मध्ये उत्कृष्टं एवंभूतं वयं

वंदामहे इति वाक्यशेषः । मित्रो जनान् सर्वमिदं करतलामलकवत् प्रजानन् पश्यन् मित्रः सूर्यः

जनान् यातयति व्यापारवतः करोति । मित्रो दाधार मित्र एव वृष्टिप्रदानेन धारयति । पृथिवीं

पृथिवीस्थं प्राणिजातम् । उत द्यां दिवमपि । उपलक्षणं चैतत् सकलभुवनानाम् । किंच मित्रः कृष्टीः ।

कृष्टयो मनुष्याः । तान् पुण्यपापयोः प्रवर्तमानान् । अनिमिषां 'सुपां सुलुक्' (व्या. सू. ७।१।३९) इत्याकारः । अनिमिषेण दिव्येन चक्षुषा अभिचष्टे आभिमुख्येन पश्यति यः तस्मै सत्याय नित्यरूपाय मित्राय हव्यं चरुपुरुडोशादिघृतवत् घृतसिक्तं विधेम दद्म इत्यर्थः । प्रसमित्रं मर्तो अस्तु हे मित्र स मर्त मर्त्यः प्रास्तु भवतु । कीदृशाः प्रयस्वान् । प्रय इत्यन्ननाम तद्वान् ।

- ५ भूमि मनुप्रत्ययः । वह्नो भवतु । कोऽसौ यो यजमानः ते तुभ्यं आदित्य आदितेः पुत्र शिक्षति ददाति । व्रतमिति कर्मनाम । व्रतेन यागाख्यकर्मणा प्रकृतत्वात् घृतवत् हविरिति संवध्यते । कर्मणि यो हविर्ददाति सः प्रयस्वान् भवत्विति यावत् । न केवलमन्नवानेव भवत्विति किंतर्हि न हन्यते मृत्युना न जीयते ज्यावयोहानौ । शतवत्सरलक्षणादायुषो न जीयते । त्वोतः उत इति वेजो रक्षणार्थस्यैतद्रूपं त्वया रक्षित इत्यर्थः । नैनं एनं त्वदाराधनपरं अहः
- १० पापं नाश्रोति न संवध्नाति । अंतितः समीपे इह जन्मनि दूरात्पूर्वजन्मनि कृतमित्यर्थः ।

- शुनःशेषो वरुणं प्रार्थयते । 'इमं मे वरुण' इति । हे वरुण इमं अस्मदीयं हवस्तोत्रं श्रुधि शृणु । श्रुत्वा च अयैव मां मृडय सुख्य । यस्मादहं त्वां अवस्युः रक्षणमात्मन इच्छुः सन् आचके आभिमुख्येन प्रार्थयामि । कैगैशब्दे । 'तत्त्वयामि' हे वरुण ब्रह्मणा मंत्रेण वन्दमानस्तुवन्नहं तत् तदर्थं-चतुर्थ्यालुक्-तदर्थमेव त्वां यामि भजे । यजमानोऽपि सर्वस्तदेवाशास्ते
- १५ हविर्भिः चरुपुरोडाशादिभिः । हे उरुशंस बहुभिः यजमानैः स्तूयमान इह अस्मिन्काले अस्मदीयां विज्ञापनां अहेढमानः अक्रुध्यन्वोधि बुध्यस्व । छांदसं रूपम् । किंपुनस्त-त्प्रार्थनीयमित्यंत आह । मा नः इति । नः अस्माकं आयुः जीवितं मा प्रमोषीः माऽपहार्षीः । यच्चिद्धिते चित् हि इति द्वावपि निपातावनर्थकौ । ते तव व्रतमित्यनेन संवध्यते । हे देव वरुण विशो मनुष्याः विवेकशून्याः विहितं कर्म लुपति तथा वयमपि ते व्रतं परिचर्या कर्म
- २० प्रमिनीमासि हतवंतः स्म । द्यवि द्यवि दिने दिने । 'यत्किंचेदं' यत्किंच यत्किंचित् इदमीदृशं हे वरुण दैव्ये देवसमूहे जने अभिद्रोहं अपचारं पापरूपं मनुष्या वयं चरामसि कृतवन्तः । अचित्प्रियमावहुवचनस्य ईकारः । अचित्ता अज्ञानिनो वयं तव धर्माधर्मपरिचर्यारूपं युयोपिम नाशितवंतः । मेति प्रतिषेधार्थः । नः अस्मान् तस्मादेनसः पापात् मा रीरिषिः मा हिंसीरित्यर्थः । कितवासः यदस्मद्विषये कितवासः कितवाः रिरिपुः पापमारोपयन्ति नदीवि देवन-
- २५ स्थाने इव । यद्वावेति पादपूरणे एवकारार्थे वर्तते । सत्यमेव उतयन्न विद्म यदपि वयं न जानीयः । यथा कितवा देवनस्थाने परस्परं सत्यमसत्यं च वदन्ति तद्वत् । सर्वा ता सर्वाणि तानि विष्य अपनय शिथिरेव शिथिलानीव अथानंतरं ते तव प्रियासः स्यामेत्यर्थः ।

- 'आ सत्येन' इत्यादि सत्येन सत्सु स्तंभकुर्मादिषु तायमानेन रजसा ज्योतिषा आवर्तमानः अमृतं मर्त्यं च अमरणधर्माणो देवान् मरणधर्माणो मनुष्यांश्च निवेशयन् व्यापारयन्
- ३० आदित्यो हि स्वेन तेजसा सर्वं व्यापारयति । हिरण्ययेन स्वर्णमयेन रथेन सविता कर्म प्रसविता अभ्यनुजाता देव आयाति भुवना विपश्यन् भुवनानि साक्षिरूपेण विविधं पश्यन् सन्नित्यर्थः । 'उद्व्यं तमनस्परी' । उत् उत्थितं तमनस्परी पर्विर्जने तमांविनाऽयोदितमिति यावत् । ज्योतिः तेजोमयं उत्तरं उत्कृष्टं देवं देवत्रा देवानामपि त्रातारं सूर्यं पश्यंतो वयं उत्तमे ज्योतिः अगन्म गमिष्याम इत्यर्थः । 'उद्व्यन्' इति । उ इति निपातोऽवधारणार्थः । उद्व्यं तं जातानि भूतानि वेति

इति जातवेदाः । तं देवं केतवः सहस्रसंख्यादीधितयः उद्धांति उद्धमयंति । किमर्थं दृशे दर्शनाय । विश्वाय विश्वस्य सूर्यं सरणशीलम् चित्रं देवानां देवानामग्न्यादीनां मध्ये चित्रमद्भुतं पूज्यं वा । अनीकशब्दः सेनावचनः । उदगात् देवद्विषामपनोदक इत्यर्थः । मित्रस्य वरुणस्याग्रेष्वक्षुर्देवानां किमुत मनुष्याणामिति श्रुतेः । आ प्राः प्रथमपुरुषस्य स्थाने मध्यमपुरुषः । द्यावापृथिवी अंतरिक्षं सर्वान्लोकान्स्वेन महिम्ना पूरयति । 'परीत्य लोकान्परीत्य भूतानि परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च' इति श्रुतेः (तै. आ. १०।१) । सूर्य आत्मा जगतः जंगमस्य मनुष्यादेस्तस्थुषः स्थावरस्य वृक्षादेः सर्वस्यायमेवात्मरूपेणावस्थितः । तच्चक्षुः तत् आदित्याख्यं ज्योतिः चक्षुः सर्वस्य साक्षिभूतं देवहितं अग्निहोत्रादि हविःप्रदानार्थमहोरात्रादिकालस्य विभजकतया देवानां हितकरं पुरस्तात् पूर्वस्यां दिशि शुक्रं शुक्लं दीप्तिः सा यस्यास्तीति मत्वर्थीयोऽच्प्रत्ययः । उच्चरत् उद्धच्छत् ज्योतिरादित्याख्यं पश्येम । कियतं कालं शरदः शतं संवत्सरं शतं जीवेमेति सर्व- १.० संपद्भिः सह जीवनमाशास्यते । न प्राणधारणमात्रम् । नंदाम समृद्धाः स्याम । मोदाम हृष्टाः स्याम । भवाम ऐश्वर्यपात्रं स्याम । शृण्वाम प्रियं शृण्वाम । प्रब्रवाम प्रवक्तारः स्याम । अजीता स्याम शत्रुभिरजिताः स्याम । ज्योक्च सूर्यं दिशे दीर्घकालमुक्तलक्षणं सूर्यं दृशे पश्येम । य उदगान्महतोऽ- र्णवात् समुद्रात् विभ्राजमानः विराजमानः सरिस्य सलिलस्य मध्यात् स मा वृषभः श्रेष्ठः लोहिताक्षः पंकजाक्षः सूर्यो विपश्चित् विशुद्धदृष्टिः । मनसा मां पुनातु शोधयतु । स्वपरिग्रह- १.५ योग्यं स्वयमेव करोत्वित्यर्थः ।

अन्यान्यपि पापक्षयार्थानि जप्यान्याह यमः—

“ जपेद्वाऽप्यस्य वामीयं पावमानीरथापि वा । कुन्तापं वालखिल्यांश्च निवित्प्रैषं वृषाकपिम् ॥

“ होतृन् रुद्रान्पितृन् जप्त्वा मुच्यते सर्वपातकैः ” ॥

अस्य वामीयं 'अस्य वामस्य पलितस्येति' (ऋ. सं. २।३।१४) द्विपञ्चाशद्वचः । पावमानीः २.०

'पवमानस्सुवर्जन' इत्याद्याः । होतृन् चित्तिः स्मृगित्यादीन् । पितृन् 'परोयिवांसम्' (७।६।१४) इत्यादीनि ॥

वसिष्ठः—

“ सर्ववेदपवित्राणि वक्ष्याम्यहमतः परम् । येषां जपैस्तु पापौघात् मुच्यते नात्र संशयः ॥

“ अघमर्षणं देवकृतः शुद्धवत्यस्तरत्समाः । कूश्माण्ड्यः पावमान्यश्च दुर्गा सावित्र्यथैव च ॥ २५

“ अभिषङ्गाः पदस्तोत्राः सामानि व्याहृतीस्तथा । वारुणानि च सामानि गायत्रं रैवतं तथा ॥

“ अब्लिङ्गा बार्हस्पत्यं च वाक्सूक्तं मध्वचस्तथा । शतरुद्रीयमथर्वशिरस्त्रिसुपर्णं महाव्रतम् ॥

“ गोसूक्तमश्वसूक्तं च इन्द्रशुद्धी च सामनी ।

“ त्रीण्याज्यदोहाग्निरथन्तराश्च अस्त्रीव्रतं वामदेव्यं बृहच्च ।

“ एतानि जप्यानि पुनन्ति जन्तून् जातिस्मरत्वं लभते य इच्छेत् ” ॥ इति ॥ अघमर्षणं ३.०

ऋतं चेत्याद्यास्तिस्रः । देवकृतः देवकृतस्यैनसोऽवयजनमित्यादयः । शुद्धवत्यः एतोन्विन्द्रं स्तवामेत्यादयस्तिस्रः । तरत्समाः तरत्समं दीधावतीत्याद्याश्चतस्रः । कूश्माण्ड्यः यद्देवा देवहेलनमित्यनुवाकत्रयम् । पावमान्यः स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवमानः सुवर्जन इत्येवमाद्याः । दुर्गा जातवेदसे सुनवाम सोममित्येका ऋक् । सावित्रीः तत्सावितुरिति । अभिषङ्गादयो रैवतान्ताः सामविशेषाः । अब्लिङ्गाः आपोहिष्ठेत्याद्याः । बार्हस्पत्यं यस्तस्तं सहसेत्येकादशर्चम् । ३.५

वाक्सूक्तं अहं रुद्रेभिर्वसुभिरिति त्र्यर्चम् । मध्वचः मधु वाता ऋतायत इत्याद्यास्तिस्रः । शतरुद्रीयं नमस्ते रुद्रमन्यव इत्येकादशानुवाकाः । त्रिसुपर्णं ब्रह्ममेतु मामित्याद्यनुवाकत्रयम् । महाव्रतं राजनं नाम साम । गोसूक्तं आ गावो अगमन्नित्यष्टर्चम् । अश्वसूक्तं मा नो मित्रो वरुण इति द्वाविंशर्चम् । इन्द्रशुद्धादयो बृहदन्ताः सामविशेषाः ।

५ चतुर्विंशतिमते—

“अग्नेर्मन्वेनुवाकं तु जपेदेनमनुत्तमम् । सिंहेमे मन्युरित्येतमनुवाकं जपेत् द्विजः ॥

“जप्त्वा पापैः प्रमुच्येत वौधायनवचो यथा ।

“त्रिमधु त्रिसुपर्णश्च नाचिकेतत्रयं तथा । नारायणं जपेत्सर्वं मुच्यते ब्रह्महत्याया ।

“यत्किञ्चित्पातकं कुर्यात् यत्किञ्चेदमृचं जपेत् । हंसः शुचिषदित्येतां जपेद्वाऽपि त्रियंबकम् ॥

१० “ब्राह्मणानि च कल्पांश्च षडङ्गानि तथैव च । आख्यातानि तथाऽन्यानि जप्त्वा पापैः प्रमुच्यते ॥

“इतिहासपुराणानि देवतास्तवनानि च । देवव्रताज्यदोहानि आज्यानि च रथन्तरम् ॥

“धर्मसामानि रौद्राणि जप्त्वा पापैः प्रमुच्यते ॥

“यज्ञायज्ञियमादित्यं ज्येष्ठसामं च राजनमगारुढानि च सामानि जप्त्वा मुच्येत किल्बिषात्” इति ।

याज्ञवल्क्यः—

१५ “जपयज्ञो हि कर्तव्यः सर्ववेदप्रणीतकैः । पवित्रैर्विविधैश्चान्यैर्गृह्योपनिषदां तथा ॥

“अध्यात्मविद्या विविधा जप्यास्तु जपसिद्धये । अन्यैश्च विविधैर्मन्त्रैः देवतास्तवनादिभिः ॥

“शुक्रियारण्यकजपो गायत्र्याश्च विशेषतः । सर्वपापहरा ह्येते रुद्रैकादशिनी तथा” प्रा. ३०९ ॥ इति ।

वौधायनः (३१०।११)—“उपनिषदो वेदादयो वेदान्ताः सर्वछंदस्सु संहिता मधून्यष-

मर्षणमथर्वशिरो रुद्राः पुरुषसूक्तं राजनरौहिणे सामनी बृहद्रथन्तरे परुषगतिर्महानामन्यो

२० महावैराजं महादिवाकीर्त्यज्येष्ठसाम्नामन्यतमं बहिष्पवमानानि कूश्मांड्यः पावमान्यः सावित्री चेति पावनानि ” इति ॥

स एव (४।४।७)—“अथमर्षणं देवकृतं शुद्ध्यवत्यस्तरत्समाः ।

“कूश्माण्ड्यः पावमान्यश्च विरजामृत्युलाङ्गलम् । दुर्गाव्याहृतयो रुद्रा महापातकनाशनाः” ॥ इति ।

गौतमः (१५।२९)—“पङ्क्तिपावनाः पठद्भविज्येष्ठसामिकस्त्रिणाचिकेतस्त्रि-

२५ मधुस्त्रिसुपर्णः पञ्चाग्निः स्नातको मन्त्रब्राह्मणविद्धर्मज्ञो ब्रह्मदेयानुसन्तानः ” इति ।

ब्रह्मदेयानुसन्तानः ब्राह्मविवाहोढापुत्रः ।

आपस्तम्बः—

“अपाङ्क्तेर्येहता पङ्क्तिः पाठ्यते येद्विजोत्तमैः । तान्निबोधत कात्स्न्येन द्विजाग्रचान् पङ्क्तिपावनान् ॥

“त्रिनाचिकेतः पञ्चाग्निः त्रिसुपर्णपठद्भवित् । ब्रह्मदेयानुसन्तानः छन्दोगो ज्येष्ठसामगः ॥

३० “वेदार्थावित्प्रवक्ता च ब्रह्मचारी सहस्रदः । शतायुश्चैव यज्वा च विज्ञेयाः पङ्क्तिपावनाः” ॥ इति ।

आश्वलायनः—

“कुन्तापं बालाहित्यं च जप्त्वा पापैः प्रमुच्यते । ब्रह्महत्यादिपापेभ्यः पात्रमानात्प्रमुच्यते ॥

“उपपातकमंघाता लीयन्ते नात्र संशयः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पात्रमानं जपेद् ब्रुवः” ॥ इति ।

५ शौनकः—“अप न. गोशुचिदिति जपन्मुच्येत चाहंसः ।

“विष्णोर्नुक्तं जपेत्सूक्तं विष्णुभाक्तिर्भविष्यति । ज्ञानोदये ततः पश्चात् विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥
 “अस्य वामस्य सूक्तं वै जले नान्यत्र वा जपेत् । ब्रह्महत्यादिकं दग्ध्वा विष्णुलोकं च गच्छति ॥
 “कथेतिवामदेव्येन कुर्यात् स्वस्त्ययनं निशि । जपेद्वा संधिवेलायां ब्रह्मतत्पापनाशनम् ॥
 “तमुष्टुहीतिमन्त्रश्च एकादशदिनेदिने । शतरुद्रस्य तु यत्पुण्यं तत्पुण्यं विन्दते जपात् ॥
 “स्वस्त्यात्रेयं जपेन्नित्यं प्रातः प्रातर्दिने दिने । एतत्स्वस्त्ययनं पुण्यं सर्वकल्मषनाशनम् ॥ ५
 “सोमारौद्रं जपेत्सूक्तं कृत्स्नमेनो व्यपोहति । तच्छंघोरावृणीमह इत्येतत् स्वस्त्ययनं भवेत्” ॥ इति ।
 बोधायनः (४।६।४, ३)—

“पवित्रैर्माजनं कुर्वन् रुद्रैकादशिनीं जपन् । मुच्यते सर्वपापेभ्यो महतः पातकादृते” ॥ इति ।

अत्र्यङ्गिरसौ—

“एकादशगुणान्वाऽपि रुद्रानावर्त्य धर्मवित् । महापापैरपि स्पृष्टो मुच्यते नात्र संशयः” ॥ इति । १०

व्यासः—

“पृथ्वीं ससागरां यो हि कृत्स्नां शैलवनान्विताम् । दद्यात्काञ्चनसंपूर्णां हैमीमोषधिसंयुताम् ॥
 “तस्याधिकफलं नूनं रुद्रजापी सकृद्विजः” ॥ लभत इति शेषः ।
 “तपस्तप्स्यति वाऽत्यर्थं सहस्राब्दानि संयमी । न स तत्फलमाप्नोति यत्सकृद्रुद्रजापकः ॥
 “गवां कोटिप्रदानं यः करोति विधिवद्गुरौ । न स तत्फलमाप्नोति यत्सकृद्रुद्रजापकः ॥ १५
 “यज्ञास्तपांसि दानानि तीर्थानि विविधानि चाऽतानि रुद्रजापस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्” ॥ इति ।

याज्ञवल्क्यः—

“सुरापः स्वर्णहारी च रुद्रजापी जले स्थितः । सहस्रशीर्षाजापी च मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥
 “वेदमेकगुणं जप्त्वा यथाऽह्नैव विशुध्यति ॥” इति ।

शातातपः—

२०

“सुरां पीत्वा ब्रह्महत्यां च कृत्वा स्तेयं कृत्वा गुरुदारां च गत्वा ॥
 “भस्मच्छन्नो भस्मशय्याशयागो रुद्राध्यायी मुच्यते सर्वपापैः ॥
 “ममभावं समुत्सृज्य यश्च रुद्रं जपेत्सदा । स तेनैव च देहेन रुद्रः सञ्जायते ध्रुवम् ॥
 “नमकं चमकं चैव पुरुषसूक्तं तथैव च । नित्यं त्रयं प्रयुञ्जानो ब्रह्मलोके महीयते ॥
 “चमकं नमकं चैव जपन्तं पुरुषं सदा । प्रविशेत्स महादेवो गृहं गृहपतिर्यथा” ॥ इति । २५

कैवल्यश्रुतौ (२४)—“यः शतरुद्रीयमधीते सोऽग्निपूतो भवति सुरापानात्पूतो भवति ब्रह्म-
 हत्यायाः पूतो भवति कृत्याकृत्यात्पूतो भवति तस्मादविमुक्तमाश्रितो भवति अत्याश्रमी स
 सर्वदा सकृद्वा जपेदनेन ज्ञानमाप्नोति संसारार्णवनाशनम्” इति ।

जाबालश्रुतौ च (३)—

“अथ हैनं ब्रह्मचारिण ऊचुः किञ्जप्येनामृतत्वं ब्रूहीति । स होवाच याज्ञवल्क्यः शतरु द्दीयेणे- ३०
 त्येतानि ह वा अमृतनामधेयान्येतैर्ह वा अमृतो भवतीति” ॥

शौनकः—

“श्रुतिषु प्रबला मन्त्रास्तेष्वप्यध्यात्मवादिनः । तत्रापि पौरुषं सूक्तं न तस्माद्विद्यते परम् ॥
 “प्रायश्चित्ते जपे चैव विष्णोराराधनेऽपि च । मोक्षे वश्येऽन्युपस्थाने सुपुत्रप्रापणे तथा ॥
 “सर्वकर्मफलावाप्तावारोग्ये मृत्युनाशने । एतेष्वर्थेष्विदं सूक्तं मुनयो विनियुञ्जते” ॥ इति । ३५

वाधूलः—“ यत्र यत्र कर्मप्रेषो यज्ञप्रेषो वा तत्र तत्र पुरुषं ध्यायन् पुरुषसूक्तमुच्चरे-
त्पूर्णत्वात्पुरुष इति विज्ञायते ” ॥ इति ।

रहस्यप्रायश्चित्ते व्यासः—

“ योऽनूचानं द्विजं मर्त्यो हतवानर्थलोभतः । स जपेत्पौरुषं सूक्तं जलस्थश्चिन्तयन् हरिम् ॥
५ “ तदेव ब्रह्महत्यायामुच्यते नात्र संशयः ” ॥ इति ।

मनुरपि—(११।२५०-२५१) “ सकृज्जप्त्वाऽस्य वामीयं शिवसङ्कल्पमेव च ।

“ हविर्धानीयमभ्यस्य न तमहं इतीति च । जप्त्वा तु पौरुषं सूक्तं मुच्यते गुरुतल्पगः ॥

“ ब्रह्मयज्ञे जपन् सूक्तं पौरुषं चिन्तयन् हरिमास सर्वास्तु जपेद्वेदान् साङ्गोपाङ्गान् द्विजोत्तमः ॥ ” इति ।

बोधायनोऽपि “ मातृदुहितृस्तृषास्वप्तृसवर्णाविधवागमनं कृत्वा यः पुरुषसूक्तं त्रिरुच्चारयेत्
१० तदानीमेव पूतो भवति ” इति ॥ विष्णुरपि—(६४।३६-३९)

“ स्नातः पवित्रपाणिर्यथाशक्ति जपेत् । विशेषतः सावित्री पुरुषसूक्तञ्च । नैताभ्यां सदृशमस्ति ” इति ॥

यमः—

“ विरजाद्विगुणं जप्त्वा तदह्नैव विशुध्यति । पौरुषं सूक्तमावर्त्य मुच्यते सर्वकिल्बिषात् ” ॥ इति ।

संवर्तः—

१५ “ षण्मासं पञ्चमासं वा नियतो नियताशनः । जप्त्वा तु पौरुषं सूक्तं मुच्यते सर्वपातकैः ” ॥ इति ।

चतुर्विंशतिमते—

“ पावमानीस्तथा रौद्रं पौरुषं सूक्तमेव च । जप्त्वा पापैः प्रमुच्येत माधुच्छन्दसमेव च ” ॥ इति ॥

योगवासिष्ठे—

“ संसारान्मोक्षमिच्छन् यः स सन्त्यज्येषणात्रयम् । सर्वदा पौरुषं सूक्तं मनसैव जपेच्छुचिः ” ॥ इति ।

२० शौनकः— “ पुरुषस्य हरेः सूक्तं सर्वपापप्रणाशनम् ।

“ यस्तु पौरुषसूक्तस्य जानात्यर्थं यथातथम् । स जन्मनीह मुक्तः स्यात्पुरुषेषु च दर्शनात् ॥

“ विष्णुः पुरुषसूक्तार्थः पुरुषोऽध्यवसीयते ” ॥ इति ।

अथ काम्यानि जप्यानि । तत्र पुलस्त्यः—

“ कामः कामप्रदः कान्तः कामपालस्तथा हरिः । आनन्दो माधवश्चैव कामसंसिद्धये जपेत् ” ॥

२५ एतानि नामानीत्यर्थः ।

“ रामः परशुरामश्च नृसिंहो विष्णुरेव च । त्रिविक्रमश्चेत्येतानि जप्यान्यरिजिगीपुभिः ॥

“ विद्यामभ्यस्यता नित्यं जप्तव्यः पुरुषोत्तमः । दामोदरं वन्द्यगतो नित्यमेव जपेन्नरः ॥

“ केशवं पुण्डरीकाक्षमनिशं हि तथा जपेत् । नेत्रवाधासु सर्वासु हृषीकेशं भयेषु च ॥

“ अच्युतं चामृतं चैव स्मरेद्दोषधर्मणि । सद्ग्रामाभिमुखो नित्यं संस्मरेदपराजितम् ॥

३० “ चक्रिणं गदिनं चैव शार्ङ्गिणं खड्गिनं तथा । श्रेमार्थी प्रवसन्नित्यं दिक्षु प्राच्यादिषु स्मरेत् ॥

“ अजितं चाधिपं चैव सर्व सर्वेश्वरं तथा । संस्मरेत्पुरुषो भक्त्या व्यवहारेषु सर्वदा ॥

“ नागयणं नर्वकालं ध्रुवप्रस्मननाद्रिषु । ग्रहनक्षत्रपीडानु देववाधासु सर्वदा ॥

“ उन्सुर्वेद्यादिनेषु व्याघ्रासिंहादिमङ्कटे । अंधकारे महाघोरे नगमिहमनुस्मरेत् ॥

“ तरत्यसिलदुर्गाणि तापार्तो जलशायिनम् । गरुडध्वजानुस्मरणात् विषवीर्यं प्रशाम्यति ॥

- “ स्नाने देवार्चने होमे प्रणिपाते प्रदक्षिणे । कीर्तयेद्भगवन्नाम वासुदेवेति तत्परः ॥
 “ स्थापने वित्तधान्यादेरपध्याने च दृष्टिजे । कुर्वीत तन्मना भूत्वा अनन्ताच्युतकीर्तनम् ॥
 “ नारायणं शार्ङ्गधरं श्रीधरं पुरुषोत्तमम् । वामनं खड्गिनं चैव दुःस्वप्नेषु सदा स्मरेत् ॥
 “ एकार्णवादौ पर्यंकशायिनं च सदा स्मरेत् । बलभद्रं समृद्धयर्थी सारकर्मणि कीर्तयेत् ॥
 “ जगत्पतिं त्वपत्यार्थी स्तुवन् भक्त्या न सीदति । श्रीशं सर्वाभ्युदयिके कर्मण्याशु प्रकीर्तयेत् ॥ ५
 “ अरिष्टेष्वप्यशेषेषु विशोकं च सदा जपेत् । मरुत्प्रवाताग्निजलबन्धनादिषु मृत्युषु ॥
 “ स्वतन्त्रापरतन्त्रेषु वासुदेवं जपेद्बुधः । सर्वार्थं शक्तियुक्तस्य देवदेवस्य चक्रिणः ॥
 “ यद्वाऽभिरोचते नाम तत्सर्वार्थेषु कीर्तयेत् । सर्वार्थसिद्धिमामोति नाम्ना सर्वार्थदायिनः ” ॥ इति ।

जाबालिः—

“ हरेर्नाम परं जप्यं ध्येयं गेयं निरन्तरम् । कीर्तनीयं च सततं निर्वृतिं बहुधेच्छता ” ॥ इति । १०

विश्वामित्रः—

- “ विश्रुतानि बहून्येव तीर्थानि विविधानि च । कोट्यंशेनापि तुल्यानि हरिनामजपेन वै ॥
 “ श्रीरामनामनियतं परिचिन्तनीयं वृत्तं हि निष्ठितमिदं सततं द्विजेषु ॥
 “ जन्मार्जितानि विविधान्यपहाय दुःखान्यत्यन्तधर्मनिचयं हरिलोकमेति ” ॥ इति ।

बोधायनः—

“ इष्टापूर्तानि कर्माणि सुबहूनि कृतान्यपि । भवहेतूनि तान्येव हरेर्नाम तु मुक्तिदम् ” ॥ इति ।

कात्यायनः—

“ अर्थवादं हरेर्नाम्नि संभावयति यो नरः । स पापिष्ठो मनुष्याणां नरके पतति ध्रुवम् ” ॥ इति ।

वासिष्ठः—

- “ हित्वा सकलपापानि लब्ध्वा सुकृतसञ्चयम् । सुपूतो जायते धीमान् मुरजिन्नामकीर्तनात् ॥ २०
 “ कृष्णकृष्णेति रामेति सञ्जपन् हरितत्परः । राजसूयसहस्राणां फलं प्राप्नोति मानवः ॥
 “ नित्यकर्माविरुद्धेषु कालेषु जप इष्यते ” ॥ इति ।

भृगुः—

“ कोटिशो मनुजानां वै भीतिदं समुपस्थितम् । रामरामेति सङ्कीर्त्य तन्नाशयति मानवः ” ॥ इति ।

गालवः—“ सर्वक्लेशयुतो वापि सर्वरोगादिसंयुतः ।

“ सर्वपापयुतो यस्तु नृहरेर्नामकीर्तनम् । कृत्वा विमुच्य दुःखानि याति ब्रह्मसनातनम् ” ॥ इति ।

च्यवनः—

- “ श्रुतिस्मृतिपुराणेषु रामनामसमीरितम् । तन्नामकीर्तनं भूयस्तापत्रयविनाशनम् ॥
 “ सर्वेषामेव पापानां प्रायश्चित्तमिदं स्मृतम् । नातः परतरं पुण्यं त्रिषु लोकेषु विद्यते ” ॥ इति ।

माण्डव्यः—“ सुरापो ब्रह्महा स्तेयी रोगी भग्नव्रतोऽशुचिः ।

“ स्वाध्यायवर्जितः पापो लुब्धो नैकृतिकः शठः सोऽपि मुक्तिमवाप्नोति विष्णुनामजपाद्भुवम् ” ॥ इति ।

योगयाज्ञवल्क्यः—

“ न तावत्पापमेधीत यन्नाम्ना न हतं हरेः । अतिरेकभयाद्वा १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १०० १०१ १०२ १०३ १०४ १०५ १०६ १०७ १०८ १०९ ११० १११ ११२ ११३ ११४ ११५ ११६ ११७ ११८ ११९ १२० १२१ १२२ १२३ १२४ १२५ १२६ १२७ १२८ १२९ १३० १३१ १३२ १३३ १३४ १३५ १३६ १३७ १३८ १३९ १४० १४१ १४२ १४३ १४४ १४५ १४६ १४७ १४८ १४९ १५० १५१ १५२ १५३ १५४ १५५ १५६ १५७ १५८ १५९ १६० १६१ १६२ १६३ १६४ १६५ १६६ १६७ १६८ १६९ १७० १७१ १७२ १७३ १७४ १७५ १७६ १७७ १७८ १७९ १८० १८१ १८२ १८३ १८४ १८५ १८६ १८७ १८८ १८९ १९० १९१ १९२ १९३ १९४ १९५ १९६ १९७ १९८ १९९ २०० २०१ २०२ २०३ २०४ २०५ २०६ २०७ २०८ २०९ २१० २११ २१२ २१३ २१४ २१५ २१६ २१७ २१८ २१९ २२० २२१ २२२ २२३ २२४ २२५ २२६ २२७ २२८ २२९ २३० २३१ २३२ २३३ २३४ २३५ २३६ २३७ २३८ २३९ २४० २४१ २४२ २४३ २४४ २४५ २४६ २४७ २४८ २४९ २५० २५१ २५२ २५३ २५४ २५५ २५६ २५७ २५८ २५९ २६० २६१ २६२ २६३ २६४ २६५ २६६ २६७ २६८ २६९ २७० २७१ २७२ २७३ २७४ २७५ २७६ २७७ २७८ २७९ २८० २८१ २८२ २८३ २८४ २८५ २८६ २८७ २८८ २८९ २९० २९१ २९२ २९३ २९४ २९५ २९६ २९७ २९८ २९९ ३०० ३०१ ३०२ ३०३ ३०४ ३०५ ३०६ ३०७ ३०८ ३०९ ३१० ३११ ३१२ ३१३ ३१४ ३१५ ३१६ ३१७ ३१८ ३१९ ३२० ३२१ ३२२ ३२३ ३२४ ३२५ ३२६ ३२७ ३२८ ३२९ ३३० ३३१ ३३२ ३३३ ३३४ ३३५ ३३६ ३३७ ३३८ ३३९ ३४० ३४१ ३४२ ३४३ ३४४ ३४५ ३४६ ३४७ ३४८ ३४९ ३५० ३५१ ३५२ ३५३ ३५४ ३५५ ३५६ ३५७ ३५८ ३५९ ३६० ३६१ ३६२ ३६३ ३६४ ३६५ ३६६ ३६७ ३६८ ३६९ ३७० ३७१ ३७२ ३७३ ३७४ ३७५ ३७६ ३७७ ३७८ ३७९ ३८० ३८१ ३८२ ३८३ ३८४ ३८५ ३८६ ३८७ ३८८ ३८९ ३९० ३९१ ३९२ ३९३ ३९४ ३९५ ३९६ ३९७ ३९८ ३९९ ४०० ४०१ ४०२ ४०३ ४०४ ४०५ ४०६ ४०७ ४०८ ४०९ ४१० ४११ ४१२ ४१३ ४१४ ४१५ ४१६ ४१७ ४१८ ४१९ ४२० ४२१ ४२२ ४२३ ४२४ ४२५ ४२६ ४२७ ४२८ ४२९ ४३० ४३१ ४३२ ४३३ ४३४ ४३५ ४३६ ४३७ ४३८ ४३९ ४४० ४४१ ४४२ ४४३ ४४४ ४४५ ४४६ ४४७ ४४८ ४४९ ४५० ४५१ ४५२ ४५३ ४५४ ४५५ ४५६ ४५७ ४५८ ४५९ ४६० ४६१ ४६२ ४६३ ४६४ ४६५ ४६६ ४६७ ४६८ ४६९ ४७० ४७१ ४७२ ४७३ ४७४ ४७५ ४७६ ४७७ ४७८ ४७९ ४८० ४८१ ४८२ ४८३ ४८४ ४८५ ४८६ ४८७ ४८८ ४८९ ४९० ४९१ ४९२ ४९३ ४९४ ४९५ ४९६ ४९७ ४९८ ४९९ ५०० ५०१ ५०२ ५०३ ५०४ ५०५ ५०६ ५०७ ५०८ ५०९ ५१० ५११ ५१२ ५१३ ५१४ ५१५ ५१६ ५१७ ५१८ ५१९ ५२० ५२१ ५२२ ५२३ ५२४ ५२५ ५२६ ५२७ ५२८ ५२९ ५३० ५३१ ५३२ ५३३ ५३४ ५३५ ५३६ ५३७ ५३८ ५३९ ५४० ५४१ ५४२ ५४३ ५४४ ५४५ ५४६ ५४७ ५४८ ५४९ ५५० ५५१ ५५२ ५५३ ५५४ ५५५ ५५६ ५५७ ५५८ ५५९ ५६० ५६१ ५६२ ५६३ ५६४ ५६५ ५६६ ५६७ ५६८ ५६९ ५७० ५७१ ५७२ ५७३ ५७४ ५७५ ५७६ ५७७ ५७८ ५७९ ५८० ५८१ ५८२ ५८३ ५८४ ५८५ ५८६ ५८७ ५८८ ५८९ ५९० ५९१ ५९२ ५९३ ५९४ ५९५ ५९६ ५९७ ५९८ ५९९ ६०० ६०१ ६०२ ६०३ ६०४ ६०५ ६०६ ६०७ ६०८ ६०९ ६१० ६११ ६१२ ६१३ ६१४ ६१५ ६१६ ६१७ ६१८ ६१९ ६२० ६२१ ६२२ ६२३ ६२४ ६२५ ६२६ ६२७ ६२८ ६२९ ६३० ६३१ ६३२ ६३३ ६३४ ६३५ ६३६ ६३७ ६३८ ६३९ ६४० ६४१ ६४२ ६४३ ६४४ ६४५ ६४६ ६४७ ६४८ ६४९ ६५० ६५१ ६५२ ६५३ ६५४ ६५५ ६५६ ६५७ ६५८ ६५९ ६६० ६६१ ६६२ ६६३ ६६४ ६६५ ६६६ ६६७ ६६८ ६६९ ६७० ६७१ ६७२ ६७३ ६७४ ६७५ ६७६ ६७७ ६७८ ६७९ ६८० ६८१ ६८२ ६८३ ६८४ ६८५ ६८६ ६८७ ६८८ ६८९ ६९० ६९१ ६९२ ६९३ ६९४ ६९५ ६९६ ६९७ ६९८ ६९९ ७०० ७०१ ७०२ ७०३ ७०४ ७०५ ७०६ ७०७ ७०८ ७०९ ७१० ७११ ७१२ ७१३ ७१४ ७१५ ७१६ ७१७ ७१८ ७१९ ७२० ७२१ ७२२ ७२३ ७२४ ७२५ ७२६ ७२७ ७२८ ७२९ ७३० ७३१ ७३२ ७३३ ७३४ ७३५ ७३६ ७३७ ७३८ ७३९ ७४० ७४१ ७४२ ७४३ ७४४ ७४५ ७४६ ७४७ ७४८ ७४९ ७५० ७५१ ७५२ ७५३ ७५४ ७५५ ७५६ ७५७ ७५८ ७५९ ७६० ७६१ ७६२ ७६३ ७६४ ७६५ ७६६ ७६७ ७६८ ७६९ ७७० ७७१ ७७२ ७७३ ७७४ ७७५ ७७६ ७७७ ७७८ ७७९ ७८० ७८१ ७८२ ७८३ ७८४ ७८५ ७८६ ७८७ ७८८ ७८९ ७९० ७९१ ७९२ ७९३ ७९४ ७९५ ७९६ ७९७ ७९८ ७९९ ८०० ८०१ ८०२ ८०३ ८०४ ८०५ ८०६ ८०७ ८०८ ८०९ ८१० ८११ ८१२ ८१३ ८१४ ८१५ ८१६ ८१७ ८१८ ८१९ ८२० ८२१ ८२२ ८२३ ८२४ ८२५ ८२६ ८२७ ८२८ ८२९ ८३० ८३१ ८३२ ८३३ ८३४ ८३५ ८३६ ८३७ ८३८ ८३९ ८४० ८४१ ८४२ ८४३ ८४४ ८४५ ८४६ ८४७ ८४८ ८४९ ८५० ८५१ ८५२ ८५३ ८५४ ८५५ ८५६ ८५७ ८५८ ८५९ ८६० ८६१ ८६२ ८६३ ८६४ ८६५ ८६६ ८६७ ८६८ ८६९ ८७० ८७१ ८७२ ८७३ ८७४ ८७५ ८७६ ८७७ ८७८ ८७९ ८८० ८८१ ८८२ ८८३ ८८४ ८८५ ८८६ ८८७ ८८८ ८८९ ८९० ८९१ ८९२ ८९३ ८९४ ८९५ ८९६ ८९७ ८९८ ८९९ ९०० ९०१ ९०२ ९०३ ९०४ ९०५ ९०६ ९०७ ९०८ ९०९ ९१० ९११ ९१२ ९१३ ९१४ ९१५ ९१६ ९१७ ९१८ ९१९ ९२० ९२१ ९२२ ९२३ ९२४ ९२५ ९२६ ९२७ ९२८ ९२९ ९३० ९३१ ९३२ ९३३ ९३४ ९३५ ९३६ ९३७ ९३८ ९३९ ९४० ९४१ ९४२ ९४३ ९४४ ९४५ ९४६ ९४७ ९४८ ९४९ ९५० ९५१ ९५२ ९५३ ९५४ ९५५ ९५६ ९५७ ९५८ ९५९ ९६० ९६१ ९६२ ९६३ ९६४ ९६५ ९६६ ९६७ ९६८ ९६९ ९७० ९७१ ९७२ ९७३ ९७४ ९७५ ९७६ ९७७ ९७८ ९७९ ९८० ९८१ ९८२ ९८३ ९८४ ९८५ ९८६ ९८७ ९८८ ९८९ ९९० ९९१ ९९२ ९९३ ९९४ ९९५ ९९६ ९९७ ९९८ ९९९ १०००

वसिष्ठः—

“ हरिपूजापरो यस्तु हरिनामपरायणः । स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ॥

“ श्रीशब्दपूर्वं जयशब्दमध्यं जयद्वयादुत्तरतस्तथैव ।

“ त्रिसप्तकृत्वो रघुनाथनाम जप्तं विहन्याद्विजकोटिहृत्याम् ” ॥ इति ।

- ५ श्रीशब्दः पूर्वः यस्य रघुनाथनाम्नः रामशब्दस्य संबुध्यन्तस्य स श्रीशब्दपूर्वः श्री-
रामेति शब्दः । ततः मध्ये जयशब्दः यस्य रामशब्दस्य स जयरामशब्दः । ततो जयजयेति
शब्दः । ततो रामेति । श्रीरामजयरामजयजयराम इति त्रयोदशाक्षरः ।

पैठीनसिः—

“ सर्वपापप्रसक्तोऽपि ध्यायन्निमिषमच्युतम् । पुनस्तपस्वी भवति पङ्क्तिपावनपावनः ॥

- १० “ यस्येदं जन्म पाश्चात्यं यो भवेच्छङ्करः स्वयम् । तेनैषा लभ्यते विद्या श्रीमत्पञ्चदशाक्षरी ॥

“ आदौ तु शिवरामेति गोविन्देति ततः परम् । नारायणमहादेवेत्येषा पञ्चदशाक्षरी ॥

“ महादेव महादेव महादेवेति यो वदेत् । एकेनैव लभेन्मुक्तिं द्वाभ्यां शंभुर्कृणी भवेत् ” ॥ इति ।

नारदः—

“ महादेव विरूपाक्ष गङ्गाधर मृढाव्यय । इति रयन्ति ये नित्यं ते कृतार्था न संशयः ॥

- १५ “ गोसहस्रप्रदानस्य त्वत्त्वमेधकतोरपि । फलं यद्विद्यते तद्धि प्रोक्तं रुद्रेति कीर्तनात् ” ॥ इति ।

ब्रह्मवैवर्ते—

“ महापातकयुक्तोऽपि कीर्तयन्ननिशं हरम् । शुद्धान्तःकरणो भूत्वा जायते पङ्क्तिपावनः ” ॥

इत्यादीनि वचनानि हरिहरनामवैभवप्रतिपादकानि स्मृतिपुराणेषु सहस्रशः सन्ति । तानीह
ग्रन्थविस्तरभीत्या न लिख्यन्ते । इति काम्यजपानि ॥

- २० जपयज्ञप्रशंसा

जपयज्ञप्रशंसामाह वसिष्ठः (ध. सू. २६।१०)—

“ ये पाकयज्ञाश्चत्वारो विधियज्ञसमन्विताः । सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ” ॥

पाकयज्ञाः देवयज्ञादयः । विधियज्ञः ज्योतिष्टोमादिः ।

“ यथाऽग्निर्वायुना धूतो हविषा चैव दीप्यते । एवं जप्यपरो नित्यं मन्त्रयुक्तः सदा द्विजः ” ॥ इति ।

- २५ मनुष्ये— (२।८५, ८७)

“ विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः । उपांशुः स्याच्छतगुणः सहस्रो मानसः स्मृतः ॥

“ जप्येनैव तु संसिद्धेत् ब्राह्मणो नात्र संग्रहः । कुर्यादन्यत्र वा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ” ॥ इति ।

सर्वानुकृत्यं मैत्री । तस्मान्मैत्रत्वेन हिंसानुवन्धिनो विधियज्ञाज्जपयज्ञो ब्राह्मणस्य विशिष्टतर
इत्यर्थः ॥

- ३० शरीतः—

“ जपेन देवता नित्यं नृत्तयमाना प्रसीदति । प्रसन्ने विपुलान्भोगान् प्राप्नुवन्ति मनीषिणः ॥

“ यक्षन्क्षःपिशाचाश्च ग्रहाः सर्वे विभीषणाः । जापिनं नोपसर्पन्ति दुर्गादेवापयान्ति ते ” ॥ इति ।

॥ इति संध्याजपप्रकरणम् ॥

अथाभ्युक्षणाहरणविधिः । तत्र शाट्यायनिः—

“ ततः सूर्यमुपस्थाय सम्यगाचम्य च स्वयम् । अभ्युक्षणं समादाय संयतात्मा गृहं व्रजेत् ” ॥

आचम्य द्विरिति शेषः । तथा च वृद्धमनुः—

“ ततः सम्यग्विराचम्य ह्यभ्युक्षणमुदाहरेत् । न विनाभ्युक्षणं जातु विधिज्ञः किञ्चिदाचरेत् ” ॥

अभ्युक्षणं प्रोक्षणार्थं जलम् । तद्विना अप्रोक्षिते गृहे न किञ्चित्कर्माचरेदिति यावत् । स एव— ५

“ नाहरेदेकवस्त्रस्तु नाव्रतो न च कन्यका । न पाणिना न वस्त्रेण तोयमभ्युक्षणाय वै ॥

“ प्रोक्षणग्रहणं पात्रं निदधद् गृहमागतः । अकृताचमनं भूर्मावाचांतः प्रयतो भवेत् ” ॥

पुलस्त्यः—

“ तेन द्रव्याण्यशेषाणि प्रोक्ष्याचम्य पुनर्गृहे । ततः कर्माणि कुर्वीत सौत्क्रियाश्च द्विजोत्तमः ” ॥ इति ।

प्रचेताः—

“ संगृह्याभ्युक्षणं यायात्सोपानत्को गृहं प्रति । तदत्यक्त्वा गृहं प्राप्य आचामेत्परिचारकात् ” ॥

गाग्यार्यणिः—“ सोपानत्कः सदर्भश्च पात्रस्थं सदशोत्तरः ” । जलमाहरेदिति शेषः ।

सदशमुत्तरीयं यस्य तथोक्तः । प्रचेताः—

“ नाहरेदेकजातिस्तु न शिशुर्न च कन्यका । नानुपेतो नैकवस्त्रस्तोयमभ्युक्षणाय वै ” ॥

यमः—“ पात्राद्विरहितं तोयमुद्धृतं सव्यपाणिना । न तेन प्रोक्षणं कुर्यात् वस्त्रनिष्पीडितेन च ” ॥ १५

शाट्यायनिः—

“ आर्ब्जं हिरण्मयं रौप्यं दारवं मृन्मयं दृढम् । ताप्रपत्रपुटं पात्रं ग्राह्यमभ्युक्षणाय वै ” ॥

योगयाज्ञवल्क्यः—

“ सौवर्णं राजतं ताम्रं मुख्यं पात्रं प्रकीर्तितम् । तदलाभे स्मृतं पात्रं स्रवते यन्न दारितम् ” ॥

शातातपः—

“ गोवालतृणपर्णाद्यैरसंस्कारांबुभाजनैः । सिकतावस्त्रलेपेन न कुर्यात्प्रोक्षणं बुधः ” ॥ आपस्तम्बः—

“ नालिकाभिर्न पात्रेण कांस्यपात्रेण चैव हि । प्राण्यङ्गफलजेनापि कुर्यान्नाभ्युक्षणं द्विजः ॥

“ शेवालवालुकादूर्वातृणपर्णयिसैरपि । अभ्युक्षणं न गृह्णीयादांपस्तम्बोऽब्रवीन्मुनिः ” ॥

नालिका वेणुमयी । प्राण्यङ्गं शंखशुक्लादि । फलजं नालिकेरादि । गर्गः—

“ त्रिसंध्यं वाग्यतो वारि गुप्तमाहृत्य शोधयेत् । आहृत्य वारिणा प्रोक्ष्य द्रव्यं शोध्यं च शोधयेत् ” ॥ इति । २५

उशानः—

“ तेनोदकेन द्रव्याणि प्रोक्ष्याचम्य पुनर्गृहे । ततः कर्माणि कुर्वीत नित्यं वैतानिकानि च ” ॥ इति ।

अभ्युक्षणाहरणे असमर्थं प्रत्याह शाट्यायनिः—

“ नद्यादौ सम्यगाचांतः संयतो गृहमागतः । उद्धृत्य मणिकातोयं तथाभ्युक्षणमाचरेत् ॥

“ आत्मीयं प्रथमं प्रोक्तं विप्रहस्तात् द्वितीयकम् । तृतीयमुदकस्थानाच्चतुर्थं मणिकात्स्मृतम् ॥ ३०

“ मणिके सर्वतीर्थानि वन्हौ वै सर्वदेवताः । मंत्राश्च प्रणवे सर्वे सर्वे सत्ये प्रतिष्ठितम् ” ॥

बृहज्जलभाण्डं मणिकम् ।

“ गृहे वा समुपस्पृश्य कृत्वा स्वर्णकुशोदकम् । कृत्वाचमनमाचांतः पुनः प्रोक्षणमाचरेत् ” ॥

प्रचेताः—

“ वैश्वानरेण यत्किञ्चित्कुरुते प्रोक्षणं द्विजः । गङ्गातोयसमं सर्वे वदन्ति ब्रह्मवादिनः ” ॥ ३५

वैश्वानरेण 'वैश्वानरोजीजनत' इति मन्त्रेण । स्मृत्यर्थसारे—“ गुप्तमग्न्यां वु नीत्वाथ होमं कुर्याद्यथाविधि ” इति ।

अथ होमविधिः । तत्र व्यासः—

“ अथागम्य गृहं विप्रः समाचम्य यथाविधि । प्रज्वाल्य वह्निं विधिवज्जुहुयाज्जातवेदसम् ॥ ”

१५ दक्षः—(२।२०)

“ संध्याकर्मावसाने तु स्वयं होमो विधीयते । स्वयं होमे फलं यत्स्यात्तदन्येन न लभ्यते ” ॥

हारीतः—

“ उपास्य विधिवत्संध्यामुपस्थाय दिवाकरम् । सायं प्रातरुपासीत विवाहाग्निं द्विजोत्तमः ” ॥

आपस्तम्बः (३।७।१९-२२)—“ सायंप्रातरत ऊर्ध्वं हस्तेनैते आहुतीः तंदुलैर्यवैर्वा जुहुयात् ।

१६ स्थालीपाकवदैवतम् । सौरी पूर्वाहुतिः प्रातरित्येके । उभयतः परिषेचनं यथापुरस्तात् ” इति । स एव (२।१।१।३-१४)

“ यत्र कचाग्निमुपसमाधास्यन्त्स्यात्तत्र प्राचीरुदीचीश्च तिस्रस्तिस्रो रेखा लिखित्वाऽद्विरवोक्ष्याग्निमुपसामिन्ध्याहुत्सिच्यैतदुदकमुत्तरेण पूर्वेण वाऽन्यदुपदध्यात् ” । इति । स्मृत्यंतरे च—

“ प्राचीः पूर्वमुदकसंस्थं दक्षिणारंभमालिखेत् । अथोदीचीः पुरःसंस्थं पश्चिमारंभमालिखेत् ॥

१७ “ अवोक्ष्याग्निं प्रतिष्ठाप्य ज्वलयेदग्निर्मिधनैः । उत्सिच्यावोक्षणाच्छिष्टं पूर्वत्रोत्तरतोऽपि वा ॥

“ पात्रस्थमन्यदुदकं अग्नेः पूर्वत्र निक्षिपेत् ” ॥ इति । बोधायनः (गृ. सू. २।६।१७-२१)—

“ यस्मिन्नग्रावुपनयनं तस्मिन्ब्रह्मचर्यं तस्मिन्ब्रतचर्या तस्मिन्समावर्तनं तस्मिन् पाणिग्रहणं तस्मिन् गार्ह्याणि कर्माणि क्रियन्ते । तस्मिन्काम्यानि तस्मिन्प्रजासंस्कारा इत्येके । स एष उपनयनप्रभृतिव्याहृतिभिः समिद्धिर्हूयत आ समावर्तनात् । समावर्तनप्रभृति आज्येन व्याहृतिभिरेव

२० हूयत आ पाणिग्रहणात् । पाणिग्रहणप्रभृतिर्वीहिभिर्यवैर्वा हस्तेनैते आहुतीर्जुहोति ” ॥ इति ।

हिरण्यकेशी—“ पाणिग्रहणादिग्निस्तमोपासनमित्याचक्षते । तस्मिन्गार्ह्याणि कर्माणि ” ॥ इति ।

गौतमस्तु (५।६-७)—“ भार्यादिग्निर्द्यादिर्वा तस्मिन् गार्ह्याणि ” ॥ इति । भार्या-

शब्देन विवाहो लक्ष्यते । तदाग्निपरिगृहः यदा पित्रा भ्रातृभिर्वा विभक्तस्तदा वाऽग्निपरिग्रह इत्यर्थः । याज्ञवल्क्योऽपि (आ. ९७)—

२५ “ कर्म स्मार्तं विवाहाग्नौ कुर्वीत प्रत्यहं गृही । दायकालाहते वाऽपि श्रौतं वैतानिकाग्निषु ” ॥

स्मार्तं औपासनादि । “ अपिशब्दात् प्रेते वा गृहपतावाहते संस्कृत एव । ततश्च कालत्रयव्यतिक्रमे प्रायश्चित्तीयते ” इति चिद्धानेश्वरः (पृ. २८ पं २१) । शौनकः—

“ स्मार्तोऽग्निर्विविधो ज्ञेयो गृह्यः पौरुष इत्यपि । यस्मिन्निवाहः क्रियते सोऽपि गृह्यो हुताशनः ॥

“ जातकर्मादिसिध्यर्थं यथाहुतिभिराहुतः । सोऽग्निः पौरुष इत्युक्तः शालाग्निलौकिकः स्मृतः ॥

३० “ केचिद्वैश्यस्य भवनादाहृतो जातकः स्मृतः ” ॥ संग्रहे—

“ आत्मार्थमपि दानार्थमुभयार्थं नुतार्थकम् । इत्येषां कर्मणां होमचातुर्विध्यं प्रचक्षते ॥

“ आन्मार्थं सांध्यकर्मादिसीमंतादिक्रियात्रियाः । पार्वणाद्युभयार्थं स्याज्जातकादिमुतार्थकम् ॥

“ नुतार्थकर्मणां होमो लौकिकाग्नौ विधीयते । इत्येषां त्रयाणां तु नित्याग्राविति निश्चयः ॥

“ भार्याद्वयं यम्य भवेत्तु तम्य नमृष्टवन्तौ सवनं तु कुर्यात् ।

३५ “ तत्रैव सीमंतमपि प्रशम्य वदन्ति वन्देन विभाग इष्टः ” ॥ इति । विष्णुः—

“ स्मार्तमोपासने कुर्याच्छ्रौतं वैतानिके गृही । लौकिके विधुगणां तु त्रिधौरेष पुरातनः ॥

“ बहवो यत्र होतारः शांतिके पौष्टिके तथा । लौकिकेऽग्नौ तदा कुर्याद्ब्रह्माग्नौ न कदाचन ॥

“ चौलजातकगोदानस्नानोपनयनादिषु । लाजहोमे समित्कार्ये लौकिकोऽग्निर्विधीयते ॥

“ होमं वैतानिकं कृत्वा स्मार्तं कुर्याद्विचक्षणः । स्मृतीनां वेदमूलत्वात्स्मार्तं केचित्पुरा विदुः” ॥

सत्यां वैदिकानुष्ठानशक्तौ न स्मार्तमात्रेण परितुष्येत्तदाह गर्गः—

“ यो वैदिकमनादृत्य कर्म स्मार्तैतिहासिकम् । मोहात् समाचरेद्विप्रो न स पुण्येन युज्यते ॥ ५

“श्रौतं कर्म न चेच्छक्तः कर्तुं स्मार्तं समाचरेत् । अत्राप्यशक्तः करणे समाचारं लभेद्बुधः” ॥ इति

मनुः (४।१४, २५)—

“ वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः । तद्धि कुर्वन् यथाशक्ति प्राप्नोति परमां गतिम् ॥

“ अग्निहोत्रं च जुहुयादाद्यन्ते द्युनिशोः सदा । दर्शेन चार्धमासांते पौर्णमासेन चैव हि ” ॥ इति ।

दक्षः—

“ होमे च फलमुद्दिष्टं जुह्वतः स्वयमेव तु । हूयमानं तदन्येन फलमर्थं प्रपद्यते ॥

“ ऋत्विक् पुत्रो गुरुर्भ्राता भागिनेयोऽथ विट्पतिः । एतैरपि हुतं यत्स्यात्तद्धुतं स्वयमेव तु” ॥

विट्पतिः जामाता । स्वयं होम एव मुख्यः । तदभावे ऋत्विगादिहोमः । तत्र विशेषो व्यासेन दर्शितः—

“ ऋत्विक्पुत्रोऽथ वा पत्नी शिष्यो वाऽपि सहोदरः । प्राप्यानुज्ञां विशेषेण जुहुयाद्वा यथाविधि ” ॥ १५

“ पवित्रपाणिः पूतात्मा शुक्लांबरधरो नरः । अनन्यमानसो वर्हि जुहुयात्संयतेंद्रियः ” ॥ इति ।

शौनकः—“ पाणिग्रहणादधिगृह्यं परिचरेत्स्वयं पत्न्यपि वा पुत्रः कुर्यादंतेवासी वा” ॥ इति ।

ऋत्विगाद्यभावे गोभिलः (१।३।१६)—“ गृह्याग्नौ जुहुयात्पत्नी सायं प्रातश्च होमयोः ” ॥

मनुः—

“ अग्निहोत्रस्य शुश्रूषा संध्योपासनमेव च । कार्यं पत्न्या प्रतिदिनं बलिकर्म च नैतिकम् ” ॥ २०

संध्योपासनं सायंप्रातर्होमः । स्मृत्यर्थसारे—

“ होमे मुख्यो यजमानः पत्नी पुत्रश्च कन्यका । ऋत्विक् शिष्यो गुरुर्भ्राता भागिनेयः सुतापतिः ॥

“ एतैरेव हुतं यत्तु तद्धुतं स्वयमेव तु । पर्युक्षणं विना पत्नी जुहुयात्कन्यकाऽपि वा ” ॥ इति ।

भरद्वाजः—“ अपि वा स्त्री जुहुयान्मंत्रवत् ” ॥ इति । गौतमः—

“ पत्नी जुहुयादित्येके ” इति । मनुः (१।१।३६-३७)—

“ न वै कन्या न युवतिर्नाल्पविद्यो न बालिशः । होता स्यादग्निहोत्रस्य नार्तो नासंस्कृतस्तथा ॥

“ नरके हि पतंत्येते जुह्वतः स च यस्य तत् । तस्माद्वैतानकुशलो होता स्याद्वेदपारगः” ॥ इति ।

शातातपः—

“ श्रौतं यत्तत्स्वयं कुर्यादन्योऽपि स्मार्तमाचरेत् । अशक्तौ श्रौतमप्यन्यः कुर्यादाचमनं ततः” ॥ इति ।

यज्ञपार्श्वः—

“ दुहित्रा स्नुषया वाऽपि विहारो न विरुध्यते । निर्णेजनं च पात्राणामुपलेपनमर्चनम्” ॥ इति । ३०

आपस्तम्बः—“ अहरह्यजमानः स्वयमग्निहोत्रं जुहुयात्पर्वणि वा ब्रह्मचारी वा जुहुयाद्ब्रह्मणा

हि । स परिक्रीतो भवति क्षीरहोता वा जुहुयाद्धनेन हि स परिक्रीतो भवति ” इति ।

बह्वचब्राह्मणम्—“ पर्वण्यपीत्यपरमिति ब्रह्मचार्यत्रांतेवासी ब्रह्मणा हि स परिक्रीत इति

लिंगात् योऽन्याधेये ऋत्विक्त्वेन परिगृहीतः स क्षीरहोता धनेन हि स परिक्रीत इति लिंगात् ” ।

“योऽस्याग्नीनाधत्ते स क्षीरहोता ” इति हारितस्मरणाच्च । आश्वलायनोऽपि ()
 “ स्वयं पर्वणि जुहुयाद्विजामेक इतरं कालमन्तेवासी वा ” इति । ऋत्विजामेक इति यः कर्मणि
 कर्मणि त्रियते यश्च कुले परंपराप्राप्तः यश्चैकस्य पुरुषस्य सर्वकर्माणि कर्तुं त्रियते तेषां त्रिविधाना-
 मृत्विजा मध्ये एक इत्यर्थः । बोधायनः “ पुत्रोन्तेवासी वा ” इति होतृतारतम्यं दर्शयति ।

१५ छांदोग्यश्रुतिः—

“ अन्यैः शतहुताद्धोमादेकः शिष्यहुतो वरम् । शिष्यैः शतहुताद्धोमादेकः पुत्रहुतो वरम् ॥
 “ पुत्रैः शतहुताद्धोमादेको ह्यात्महुतो वरम् । स्वयं होता स्वयं दोही स्वयमेवोपतिष्ठेताग्निहोत्रं
 होम्यशेषं दक्षिणा सर्वैर्ह वा एतस्य यज्ञकृतुमिरिष्टं भवति य एवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति ” इति ॥
 ऋत्विगादिहोमे विशेषमाह कात्यायनः—

१० “ असमक्षं तु दंपत्योर्होतव्यं नर्त्विगादिना । द्वयोरप्यसमक्षे तु भवेद्धुतमनर्थकम् ” ॥ इति ।
 उभयोः संनिधानं मुख्यम् । तदभावे त्वन्यतरसंनिधानेनापि होतुं शक्यम् । तथा च स एवाह—
 “ निक्षिप्याग्निं स्वदारेषु परिकल्प्यर्त्विजं तथा । प्रवसेत्कार्यवान्विप्रो वृथैव न चिरं वसेत् ” ॥ इति ।

पैठीनसिः—

“ प्रबलीकृतधर्मस्य पीड्यमानस्य शत्रुभिः । मासद्वयं प्रवासोऽस्ति परतोऽनाहिताग्निवत् ” ॥ इति ।

१५ विष्णुः—

“ श्रौतं स्मार्तं च यत्किञ्चिद्विधानं सर्वमादरात् । गृहे निवसता कार्यमन्यथा दोषमृच्छति ” ॥
 अग्रेपरित्यागमाह गर्गः—
 “ कृतदारो न वै तिष्ठेत्क्षणमप्यग्निना विना । तिष्ठेत् चेत् द्विजो ब्राह्म्यस्तथा च पतितो भवेत् ॥
 “ यथा स्नानं यथा भार्या वेदस्याध्ययनं यथा । तथैवौपासनं दृष्टं न तिष्ठेत्तद्वियोगतः ” ॥

२० व्यासः—

“ यो हि हित्वा विवाहाग्निं गृहस्थ इति मन्यते । अन्नं तस्य न भोक्तव्यं वृथा पाको हि स स्मृतः ” ॥
 याज्ञवल्क्यः—

“ द्वादशाहमनग्निस्तु संध्याहीनस्तथैव च । शूद्र एव भवेद्विप्रश्चतुर्वेदेषु पारगः ” ॥
 स्मृतिरत्ने— “ हतं वित्तमदानेन हता नारी निरंकुशा । ब्रह्मस्वेन हतो राजा निरग्निर्ब्राह्मणो हतः ॥

१५ “ देशान्तरगतो वाऽपि मृतपत्नीक एव वा । वैवाहिकाग्नौ जुहुयात् सायंप्रातर्यथाविधि ” ॥ इति ।
 बृहस्पतिः—

“ सूतके मृतके चैव अशक्तौ श्राद्धभोजने । प्रवासादिनिमित्तेषु हावयेन्न तु हापयेत् ” ॥
 शाट्यायनिः—

“ यावत्कालमहोमी स्यात्तावद्व्यं त्वशेषतः । तद्दानं चैव विप्रेभ्यो यथा होमस्तथैव तत् ॥

१० “ यावन्त्यद्भान्यतीतानि निरग्रेर्विप्रजन्मनः । तावन्ति कृच्छ्राणि चरेद्धोम्यं दद्यात्तथैव च ” ॥ इति ।
 व्यासः— “ यदि मासमहोमी स्याद्विप्राय गुणशालिने । पंचप्रस्थं प्रदद्यात्तु यावत्तंदुलमेव च ” ॥
 कात्यायनः—

“ षष्टिप्रस्थमितं धान्यं त्रिप्रस्थप्रमितं वृतम् । औपासनाग्नौ नष्टे तु वत्सरस्य विधीयते ” ॥ इति ।

मनुः—

१५ “ अग्निहोत्रपविद्याग्निन्ब्राह्मणः कामकारतः । चांद्रायणं चरेन्मामं वीरहृत्याममं हि तत् ” ॥ इति ।

शातातपः । “ अग्न्युत्सादी कृच्छ्राब्देन विशुध्यति ” इति । स्मृत्यर्थसारे—

“ संनिधौ यजमानः स्यादुद्देशत्यागकारकः । असंनिधौ तत्पत्नी स्यात् पुत्रादिस्तदनुज्ञया ॥

“ उन्मादे प्रसवे चातौ कुर्वीतानुज्ञया विना । सर्वथा यजमानो वा त्यजेत्तद्दिङ्मुखः शुचिः ॥

“ प्रवासी नोपवासी स्यात् पत्नी धारयते व्रतम् ” ॥ इति ।

अथ होमकालः । तत्र विहरणकालमाहापस्तम्बः —“अपि वृक्षसूर्य आविः सूर्यो वा ” इति । ५
समुच्चयार्थो वाशब्दः । सूर्यशब्देनोभयत्रापि रश्मिलक्षणा । सायंभूमेरुत्थिता रश्मयोऽ-
धिवृक्षमेव निविशन्ते यस्मिन्काले सोऽधिवृक्षः सूर्यः । तथा प्रातः प्राच्यां दिशि रश्मय
आविर्भूता यस्मिन्काले स आविर्यः तस्मिन् काले प्रणयनमित्यर्थः । कात्यायनोऽपि—

“ सूर्येऽस्तशैलमप्राप्ते षट्त्रिंशद्भिरिवांगुलैः । प्रादुष्करणमग्नीनां प्रातर्भासां च दर्शने ” ॥

आश्वलायनस्तु “ अपराणहे प्रातर्व्युष्टायाम् ” इति । सायं होमार्थमपराणह अन्हश्चतुर्थभागे १०
प्रातरुदयात्पूर्वं विहरेदिति वृत्तौ । गृह्यपरिशिष्टे “ अनस्तमित आदित्ये सायमग्नेः प्रादु-
ष्करणमनुदिते प्रातः ” ॥ इति ।

संवर्तः—“ कपालैर्भिन्नपात्रैर्वा आयसैर्गौमयेन वा । नाग्निप्रणयनं कुर्याद्यजमानभयावहम् ” ॥

स्मृतिरन्ते—

“ शरावे भिन्नपात्रे च कपाले चोल्मुके च वा । नाग्निप्रणयनं कुर्याद्वाधिहानिभयावहम् ॥ १५

“ अग्नौ न प्रक्षिपेदग्निमद्भिर्न शमयेत्तथा ” इति । होमकालमाहापस्तम्बः—

“ समुद्रो वा एष यद्दहोरात्रस्तस्यैतेऽगाधे तीर्थे यत्संधी तस्मात्संधौ होतव्यमिति । शैलालि-
ब्राह्मणं भवति । नक्षत्रं दृष्ट्वा प्रदोषे निशायां वा सायमिति । समुद्रत्वेन निरूपितस्याहोरात्रस्य
संधिद्वयं सुप्रवेशं तीर्थद्वयं तस्मात्संधौ होमो मुख्यः । नक्षत्रदर्शनादयस्त्रयः कालाः संधिना सह
विकल्प्यन्ते । एकनक्षत्रोदयो नक्षत्रदर्शनं प्रदोषः प्रथमयामः निशा निद्राकालः । प्रातर्होमकालोऽपि २०
चतुर्विधस्तेनैव दर्शितः—“उषस्युपोदयं समयाध्युषितउदिते वा प्रातः ” इति । उषसि प्राच्यां
प्रातप्रकाशायामुपोदयं उदयात्पूर्वस्मिन्समये समयाध्युषिते ईषदाविर्मंडले उदिते वा सूर्य इत्यर्थः ।

मनुस्तु प्रथमद्वितीयावेकीकृत्य कालत्रयमाह (२।१५)—

“ उदिते नुदिते चैव समयाध्युषिते तथा । सर्वथा वर्तते यज्ञ इतीयं वैदिकी श्रुतिः ” ॥ इति ।

एतेषां लक्षणमाह व्यासः—

२५

“ रात्रेः षोडशके भागे ग्रहनक्षत्रभूषिते । काले त्वनुदितं प्राहुर्होमं कुर्याद्विचक्षणः ॥

“ तथा प्रभातसमये नष्टे नक्षत्रमंडले । रविर्यावन्न दृश्येत समयाध्युषितस्तु सः ॥

“ रेखामात्रस्तु दृश्येत रश्मिभिस्तु समन्वितः । उदितं तं विजानीयात्तत्र होमं प्रकल्पयेत् ” ॥ इति ।

संग्रहेऽपि—

“ ग्रहर्क्षयुक्तोऽनुदितो नक्षत्रार्कविवर्जितः । समयाध्युषितः सार्क उदितस्त्रिषु होमयेत् ” ॥ इति । ३०

मरीचिः—

“ द्विरश्मिमत्यां संध्यायां सूर्यनक्षत्ररश्मिभिः । होमकालः स विज्ञेयो ह्यग्निगर्भा तद्वा मही ” ॥ इति ।

कात्यायनः—

“ यावत्सम्यङ् भाव्यन्ते नभस्यृक्षाणि सर्वतः । लोहितत्वं च नापैति तावत्सायं तु हूयते ॥

“हस्तादूर्ध्वं रविर्यावद्भुवं हित्वा न गच्छति । तावद्धोमविधिः पूज्यो नान्यो ह्युदितहोमिनाम्” ॥
उशनाः—

“अर्धमंडलसंप्राप्ते भानावनुदिते हुतम् । तस्मिन्नस्तगते होमो भवेदुदितहोमिनः” ॥ हुतं होमः ।
आश्वलायनः—“प्रदोषान्तो होमकालः संगवान्तः प्रातः” इति । स्मृत्यर्थसारे—

५ “प्रातर्होमे संगवान्तः कालस्तूदितहोमिनः । सायमस्तमिते होमकालस्तु नवनाडिका” ॥ इति ।
स्मृतिसारसमुच्चये—

“मुहूर्ते चतुरर्धे तु प्रातर्होमो विधीयते । सायंकाले तथैव स्याद्भानोरस्तमयात्परम्” ॥ इति ।
प्रदीपिकायाम्—

“निशायां तु व्यतीतायां सायं होमोऽतिपद्यते । तथैव संगवेऽतीते प्रातर्होमोऽप्यनापदि” ॥

१० संग्रहेऽपि—“निशा व्यतीयाद्यदि संगवे वा संकल्पितो वा समयो न चापदि” इति ।
यद्यनापदि नवनाड्यंतरे सायं होमो न क्रियते द्वादशनाडिकाभ्यंतरे यदि प्रातर्होमो न क्रियते
संकल्पिते वा संध्यादिकाले यद्युभयत्र न क्रियते तदा कालातिपत्तिप्रायश्चित्तं कर्तव्यम् । आपदि
तु वक्ष्यमाणगौणकालेऽपि न प्रायश्चित्तमित्यर्थः ।

भास्करः—“कालातिपत्तिर्नवनाडिकोर्ध्वं संकल्पिते वा समये व्यतीते ॥

१५ “कालात्ययः संगवतः परस्तात्संकल्पिते वा समये व्यतीते” । सर्व एवैते काल-
विशेषाः संध्यादयो यथाशास्त्रं मुख्यतया व्यवतिष्ठन्ते । यदा तु कथंचिन्मुख्यकालातिक्रमः
तदा गोभिलोक्तं द्रष्टव्यम् (१।९।१२-१३)—

“अथ यदि गृहेऽग्नौ सायंप्रातर्होमयोर्दर्शपूर्णमासयोर्वा हव्यं होतारं नाधिगच्छेत्
कथं कुर्यादित्या सायमाहुतेः प्रातराहुतिर्नात्येत्या प्रातराहुतेः सायमाहुतिरामावास्यायाः पौर्ण-
२० मासी नात्येत्या पौर्णमास्या आमावास्या” इति ॥ बोधायनोऽपि—

“उक्तयोः कालयोः कर्तुमशक्तौ सायमाहुतिं । रात्रौ कुर्वीत कृत्स्नायां कृत्स्नेऽन्हि प्रातराहुतिम् ॥

“आ सायंकर्मणः प्रातरा प्रातः सायंकर्मणः । आहुतीर्नातिपद्येत पार्वणं पार्वणान्तरात्” ॥ इति ।

भरद्वाजोऽपि—“आ सायमाहुतिकालात्प्रातराहुतिकालो नातीयादा प्रातराहुतिकालात्साय-
माहुतिकालः” इति । आपदि गौणकालस्याप्यनुग्राहकं ब्राह्मणं दर्शयत्यापस्तंबः—

२५ “यदुदिते जुहोत्यग्निष्टोमं तेनावरुन्धे यन्मध्यंदिने जुहोत्युत्थं तेनावरुन्धे यदपराह्णे जुहोति
षोडशिनं तेनावरुन्धे यत्पूर्वरात्रे जुहोति प्रथमं तेन रात्रिपर्यायमाप्नोति यन्मध्यरात्रे जुहोति
मध्यमं तेन रात्रिपर्यायमाप्नोति यदपररात्रे जुहोति जघन्यं तेन रात्रिपर्यायमाप्नोति” इति ।
उदिते पूर्वाह्ण इत्यर्थः । रात्रिपर्यायैः कत्वधिकारादतिरात्रो लक्ष्यते । एतेषु कालेषु जुह्वदैतै-
र्यज्ञैरिष्टवान्भवति । एवं च सर्वमहः सर्वा रात्रिश्च होमकाल इत्युक्तं भवति ।

१६ न चैवं पूर्वोक्तैः संध्यादिकालैः सहैषां तुल्यविकल्पताभ्रमितव्येत्याह स एव—

“स न मन्येत सर्वेष्वेतेषु कालेषु होतव्यमापदि हुतमित्येव प्रतीयादिति विज्ञायते” इति ।

सोऽयं प्रतिपत्ता नैवं मन्येत सर्वे अमी होमकाला इति कित्वापदि अग्न्या अमीषु कालेषु हुत-
मपि हुतं भवतीत्येतावदेव प्रतीयादित्यर्थः । स्मृत्यर्थसारे—

“द्वित्रोदितानि कर्माणि प्रमादादकुतानि तु । शर्वर्याः प्रथमे याम तानि कुर्यादतंद्रितः ॥

“ रात्रावुक्तानि कर्माणि प्रमादादकृतानि वै । दिनस्य प्रथमे यामे तानि कुर्यादतंद्रितः ॥

“ कालातीतेषु होमेषु ह्युत्तरेष्वागतेषु च । कालातीतानि ह्रुत्वैव ह्युत्तराणि समापयेत् ॥

“ यस्त्वतीतान्यतिक्रम्य उत्तराणि समारभेत् । न देवान्नैव च पितृन्हविस्तदुपतिष्ठते” ॥ इति ।

स्मृत्यन्तरे—

“ रात्रौ प्रहरपर्यंतं दिवाकृत्यानि कारयेत् । ब्रह्मयज्ञं च सौरं च वर्जयित्वा विशेषतः ” ॥ इति । ५

स्मृतिरत्ने—

“ एकेऽभ्युदितहोमाः स्युरन्येऽनुदितहोमिनः । अन्येऽभोजनहोमाश्च पक्षहोमस्तथैव च” ॥ इति ।

बृहस्पतिः—

“ सायंप्रातस्तनौ होमावुभौ सायं समस्य तु । आपन्नो जुहुयात्तस्य समिदेकाथ वा द्वयम् ॥

“ सायंहोमस्य मुख्यत्वात्तदीयं तंत्रमिष्यते । चतस्र आहुतीः कुर्यात्तत्र द्वे सायमाहुती ॥ १०

“ द्वे प्रातराहुती चैव उपस्थानं सकृत्तथा” ॥ इति । आपन्नस्याहिताग्नेः पक्षहोममाह मरीचिः—

“ शरीरापद्भवेद्यत्र भयाद्वार्तिः प्रजायते । तथाऽन्यास्वपि चापत्सु पक्षहोमो विधीयते ” ॥

रत्नावल्याम्—

“ प्रवासिनोऽग्निहोत्रस्य त्रिपंचाहादिसप्त च । दातव्यो होम एकाहे सायं प्रातः पृथक् पृथक् ” ॥

आपस्तम्बः—“ यायावरा ह वै पुरा नामर्षय आसंस्तेऽध्वन्यश्राम्यंस्तेऽर्धमासायार्धमासाया- १५

ग्निहोत्रं जुहुवुस्तस्माद्यायावरधर्मेणामयाव्यार्तो वा जननमरणयोर्ध्वन्यापत्सु वाऽर्धमासाया-

ग्निहोत्रं जुहुयात् । प्रतिपदि सायं चतुर्दशचतुर्गृहीतानि उन्नयत्येका समित्सकृद्भोमः । सकृ-

त्पाणिर्निर्माज्जनं सकृदुपस्थानमेवं प्रातरेतावान्विकारः । शेषं प्रकृतिवत्पक्षत्रये पुनराधेयमग्नीन् ।

समारोपयते धारयते वौषवसथादौषवसथ्येऽहनि निर्मथ्यौषवसथ्यादि कर्म प्रतिपद्यते” ॥ इति ।

भारद्वाजोऽपि—“ जननमरणयोरापत्सु वा अर्धमासायाग्निहोत्रं जुहुयात् ऊर्ध्वं द्वादशाहान्नि- २०

र्मथ्ये ” इति । पक्षहोमिनस्तत्पक्षमध्ये आपन्नवृत्तौ तदा प्रभृति पुनर्होमः कर्तव्यः ।

तदाह मरीचिः—

“पक्षहोमानतो ह्रुत्वा मध्येऽकस्मान्निवर्तितः । होमं पुनः प्रकुर्यात्तु न चासौ दोषभागभवेत्” ॥ इति ।

स्मृत्यर्थसारेऽपि—

“ समस्येदग्निहोत्राणि यथासंभवमापदि । प्रतिपद्युन्नयेत्सायमापदन्यत्र वा दिने ॥ २५

“ यावन्त्यौषवसथ्याहात्प्राग्दिनानि भवंति हि । तावंति परिगृहीयाच्चतुरुन्नयनानि तु ॥

“ प्रातर्होमान्समस्यैव जुहुयाच्च परेऽहनि । सर्वथौषवसथ्याहे सायं होमः पृथक् भवेत् ॥

“ तथैव यजनीयाहे प्रातर्होमो भवेत्पृथक् ॥

“ उपवासेन शून्ये चेदौषवसथ्यमहर्षदा । तदा तत्सायं होमोऽपि पूर्वैः सह समस्यते ॥

“ एवं प्रतिपदन्यत्र यत्रापदुपजायते । तन्नाशेऽपि पुनर्होमः प्रागौषवसथादपि ” ॥ ३०

होमयोग्यसमिधः स्मृत्यर्थसारे दर्शिताः

“ पालाशखदिराश्वत्थशम्युदंबरजा समित् । अपामार्गीर्कट्वाश्च कुशाश्चेत्यपरे विदुः ॥

“सत्त्वचः समिधः कार्या ऋज्वो श्लक्ष्णाः समास्तथा । शस्ता दशांगुलास्तास्तु द्वादशांगुलिकास्तथा ॥

“ आर्द्राः शुष्काः समच्छेदास्तर्जन्यंगुलवर्तुलाः । अपादिताश्चाद्विशिखाः किमिदोषविवर्जिताः ॥

“ समित्पवित्रं वेदश्च त्रयं प्रादेशसंमितम् । इध्मस्तु द्विगुणः कार्यस्त्रिगुणः परिधिः स्मृतः ॥

“ स्मार्ते प्रादेश इध्मो वा द्विगुणः परिधिः स्मृतः ” ॥ कात्यायनः—

“ पालाशः समिधः कार्या खादिर्यस्तदलाभतः । शमीरोहितकाश्वत्थास्तदलाभेऽर्कवेतसौ ॥

“ प्रादेशिन्यधिका नात्र समित्स्थूलतया कचित् । न सपर्णा न निर्वीर्या न सकीटा न पाटिता ” ॥

५ स्मृतिरत्ने—

“ कोविदारं करंजं च शिरीषं व्याधिघातकम् । श्लेष्मातकमकर्मण्यं वर्जयेदिधनं बुधः ॥

“ समित्पुष्पकुशादीनि श्रोत्रियः स्वयमाहरेत् । शूद्राहतैः क्रयक्रीतैः कर्म कुर्वन्व्रजत्यधः ” ॥ इति ।

स्मृत्यर्थसारे—

“ पालाशः खादिरो वेध्मो मुख्यः स्यात्तदलाभतः । शमी बटोदुंबरजा अश्वत्थास्तदलाभतः ॥

१० “ वनस्पतीनां सर्वेषामिध्मः कार्यो विशेषतः ॥

“ तत्रैतान्वर्जयेद्वृक्षान् कोविदारविभीतकौ । कपित्थामलकौ राजवृक्षं शाकद्रुमं तथा ॥

“ नीपं निवं करंजं च तिलकं शल्मलीमपि । श्लेष्मातकमपि त्यक्त्वा ग्राह्योऽन्यः सकलद्रुमः ॥

“ तुलसीकाष्ठयुकेऽग्नौ जुह्वतामक्षयं फलम् ” इति । दक्षः—

“ पूर्व प्रादेशिकां दत्त्वा ततो होमो विधीयते । द्वितीया पृष्ठतो देवो ततोऽग्निमुपतिष्ठते ” ॥ पृष्ठतः

१५ होमांते । प्रादेशिका समित् । आपस्तम्बः (१।५।१५-१२) — “ नाप्रोक्षितमिधनमग्नावादध्या ” इति ।

अयोग्यसमिधो होमे दोषमाह व्यासः—

“ विशीर्णायुःक्षयं कुर्याद्विदला व्याधिसंभवा । ह्रस्वया मृत्युमाप्नोति वक्रा विघ्नकरी तथा ॥

“ स्थूला च हरते लक्ष्मी कृशा वै बांधवक्षयम् । द्विशाखा नेत्ररोगं च कीटजुष्टार्थनाशनम् ।

“ द्वेष्यं प्रकुरुते दीर्घा प्राणघ्ना वित्वचः स्मृता ” ॥ इति । हविर्लक्षणमुक्तं कात्यायनेन—

२० “ हविस्तु त्रिविधं ज्ञेयं कृतं चैवकृताकृतम् । अकृतं च क्रमादेयां लक्षणं सम्यगुच्यते ॥

“ कृतमोदनसत्त्वादि तंडुलादि कृताकृतम् । व्रीह्यादि चाकृतं प्रोक्तमिति हव्यं त्रिधा बुधैः ” ॥

आपस्तम्बः— “ पयसा पशुकामस्य जुहुयाद्धनैर्द्रियकामस्य यवाग्वा ग्रामकामस्य ओदने-
नान्नाथकामस्य तंडुलैरोजस्कामस्य बलकामस्येत्येके । मांसेन यशस्कामस्य सोमेन ब्रह्मवर्च-
सकामस्याज्येन तेजस्कामस्येति पयसो नित्यस्यैव सति कामे फलवचनम् ” ।

२५ तथा चाश्वलायनः — “ पयसा नित्यहोमो यवागुरोदनो दधिसर्पिर्ग्रामकामान्नाथकामै-
र्द्रियकामतेजस्कामानाम् ” इति ।

व्यासः—

“ कपिलायान्तु पयसा येऽग्निहोत्रा लुपासते । आदित्यमंडलं भित्त्वा यांति ब्रह्म सनातनम् ” ॥

गृहपरिशिष्टे — “ येन नायं जुहुयात्तेन प्रातः ” इति ॥ चंद्रिकायाम् (पृ. १६, ३ पं १)

३० “ तैलं दधि पयः सोमो यवागुरोदनं घृतम् । तंडुला मांसमापश्च दश द्रव्या ल्यकामतः ” ॥

पयोहोमप्रशंनानाह श्रुतिः—

“ तयद्विदमाहः संवत्सरं पयसा जुह्वदपुनर्मृत्युं जयति ” इति । न तथा विद्यावदहरेव जुहोति
तदहः पुनर्मृत्युमपजयत्येवं विद्वानिति पुनर्मृत्युं पुनर्मरणं पुनर्मरणाय परिच्छिन्नं शरीरं न
गृहार्थान्यर्थः ।

स्मृत्यर्थसारे—

- “ शालिः श्यामाकनीवारा । ब्रीहिगोधूमयावाकः । एतेषां तंडुला होम्या यावनालाः प्रियंगवाः ॥
 “ नीवाराः शालयश्चैव गोधूमा ब्रीहयो यवाः । स्वरूपेणैव होम्याः स्युः स्वरूपेणैव वै तिलाः ॥
 “ द्रवं स्रुवेण होतव्यं पाणिना कठिनं हविः । पयोदधियवागूश्च सर्पिरोदनतंडुलाः ॥
 “ सोमो मांसं तैलमापो दशैतान्यग्निहोत्रके ॥
 “ स्यादग्निहोत्रवद् ग्राह्यः संस्कारो मंत्रवर्जितः । यद्वा त्रिः प्रोक्षणं तेषां मांसमौपासनेन च ॥
 “ यद्यग्निहोत्रहोमार्थं पयो न स्यात्कदाचन । तदा ब्रीहियवौ ग्राह्यावोषध्यंतरमेव वा ॥
 “ यद्वा यज्ञिवृक्षस्य कंदं मूलं फलं जलम् । सत्यं वा हविरेतेषु यथासंभवमाचरेत् ॥
 “ प्रतिनिध्यंतरं सत्यं विज्ञेयं हविरत्यये । न ग्राह्यं सर्वथा माषवरकोदारकोद्रवम् ” ॥

कात्यायनः—

- “ हविष्येषु यवा मुख्यास्तदनुब्रीहयः स्मृताः । अभावे ब्रीहियवयोर्द्वौ च पयसाऽपि वा ॥
 “ तदभावे यवाग्वा वा जुहुयादुदकेन वा । यथोक्तवस्त्वसंप्राप्तौ ग्राह्यं तदनुसारि च ॥
 “ यवानामिव गोधूमा ब्रीहीणामिव शालयः । यवाभावे तु गोधूमास्ततो वेणुयवादयः ॥
 “ फलं वा यज्ञवृक्षस्य तत्पत्रमथवा भवेत् । आज्यं हव्यमनादेशे जुहोतिषु विधीयते ॥
 “ मंत्रस्य देवतायास्तु प्रजापतिरिति स्थितिः ” ॥ व्यासः—
 “ हव्यार्थे गोघृतं ग्राह्यं तदलाभे तु माहिषम् । आजं वा तदभावे तु साक्षात्तैलं ग्रहीष्यते ॥
 “ तैलाभावे ग्रहीतव्यं तैलं जर्तिलसंभवम् । तदभावेऽतसीस्नेहः कौसुंभः सर्षपोद्भवः ॥
 “ वृक्षस्नेहोऽथ वा ग्राह्यः पूर्वाभावे परः परः । तदभावे यवब्रीहिश्यामाकान्यतरोद्भवम् ॥
 “ पिष्टमालोढ्य तोयेन घृतार्थं योजयेत्सुधीः । वृक्षतैलेषु पुन्नागनिर्वैरंडोद्भवं त्यजेत् ॥
 “ यद्वाऽलाभे गोघृतादेः क्रमात्क्षीरं विधीयते । तदलाभे दधि ग्राह्यमलाभे तैलमिष्यते ॥
 “ येषां केषांचिदन्येषां हविषामप्यसंभवे । सर्वत्राज्यमुपादेयं भारद्वाजमुनेर्मतात् ” ॥ इति ।

स्मृतिभास्करे—

“ शिष्टस्याभावतस्तुल्यं द्रव्यं प्रतिनिधीयते । कंदैः पुष्पैः फलैर्मूलै रूपैः सादृश्यमिष्यते ” ॥

शिष्टस्य विहितस्य । स्मृतिरत्ने—

- “ कायै रूपैस्तथा वर्णैः क्षीरैः पुष्पैः फलैरपि । गंधै रसैः सदृग्ग्राह्यः पूर्वाभावे परः परः ॥
 “ नापि प्रतिनिधातव्यं निषिद्धं वस्तु कुत्रचित् ।
 “ श्रोत्रियाणामभोज्यं यद्द्रव्यं हि तदशेषतः । ग्राह्यं प्रतिनिधित्वेन होमकार्येषु न क्वचित् ॥
 “ काम्ये प्रतिनिधिर्नास्ति नित्ये नैमित्तिके हि सः । काम्ये तूपक्रमादूर्ध्वमन्ये प्रतिनिधिं विदुः ॥
 “ न च प्रतिनिधिर्मंत्रस्वामिदैवाग्निकर्मसु । स देशकालयोर्नास्ति ह्यरण्यामग्निरेव सा ॥
 “ समारूढां च समिधमराणि ब्रूते बुधाः ।
 “ नाभात्रस्य प्रतिनिधिरभावांतरमिष्यते । नापि प्रतिनिधातव्यं निषिद्धं वस्तु कुत्रचित् ॥
 “ द्रव्यं वैकल्पितं किञ्चिद्यत्र संकल्पितं भवेत् । तदभावे सति ग्राह्यं न तु वैकल्पिकान्तरम् ” ॥

स्मृत्यर्थसारे—

- “ संस्काराणामयोग्योऽपि मुख्य एव हि गृह्यते । न हि संस्कारयोग्योऽन्यो गृह्यते प्रतिरूपकः ॥
 “ कार्यनिर्वृत्तिपर्याप्तमुख्यद्रव्यस्य संभवे । पुरोडाशमहत्त्वार्थं न नीवारपरिग्रहः ॥

- “ कृष्णव्रीह्यादिके द्रव्ये शिष्टे प्रचरिते सति । ग्राह्योऽकृष्णोऽपि सव्रीहिर्नाव्रीहिः कृष्ण इत्यापि ॥
 “ अथ व्रीहियवाभावे तुषतंडुलयोगिनः । ओषधीः परिगृह्णीयात् कोद्रवादिविवर्जिताः ॥
 “ उपात्ते तु प्रतिनिधौ मुख्यार्थो लभ्यते यदि । तदा मुख्यमनादृत्य गौणे नैव समापयेत् ॥
 “ मुख्यालाभे तु सदृशद्रव्यलाभो विधीयते । यावद्यावत्सुसदृशं तत्तदेव हि गृह्यते ॥
 ५ “ उपात्ते यस्मिन्कस्मिन्वा मुख्ये प्रचरिते सति । अन्यत् द्रव्यं सजातीयं विजातीयमथापि वा ॥
 “ उपादाय प्रयुंजानो यदि पूर्वमवाप्नुयात् । उपात्तत्वाद्विशेषेण पूर्वं त्यक्त्वा परं श्रयेत् ॥
 “ मुख्यालाभे यदा गौणमुपात्तं सद्दिनश्यति । तत्र मुख्योपमं गौणं ग्राह्यं गौणोपमं न तु ॥
 “ प्रभुः प्रथमकल्पस्य योऽनुकल्पेन वर्तते । स नामोति फलं तस्य परत्रेति श्रुतिस्मृतिः” ॥ इति ।
 आहुतिपरिमाणमाह बृहस्पतिः—

- ० “ प्रस्थधान्यं चतुःषष्ठेराहुतेः परिकीर्तितम् । तिलानां तु तदर्धं स्यात्तदर्धं स्यात् घृतस्य तु ” ॥
 बोधायनः—

- “ व्रीहिणां वा यवानां वा शतमाहुतिरिष्यते । ओदनो द्विगुणो ग्राह्यो मयूराण्डाकृतिस्तथा ॥
 “ कुक्कुटांडप्रमाणस्तु पिंड इत्यभिधीयते । अंगुष्ठपर्वमात्रं स्यादवदानं ततोऽपि च ॥
 “ ज्यायः स्विष्टकृदाद्यं तु चतुरंगुलसंमितम् ” ॥ चंद्रिकायाम् (पृ. १६३)—
 ५ “ तीर्थायतनसंपूर्णं प्रातरुत्तानपाणिना । ब्रंगुलं समिधोऽतीत्य वाग्यतो जुहुयाद्भविः ” ॥
 “ पाण्याहुतिर्द्वादशपर्वपूरिता सुवाहुतिश्चेत्सुवमात्रपूरिता ॥
 “ स्वंगारिणि स्वर्चिषि चैव पावके दैवेन तीर्थेन च हूयते हविः ” ॥ बृहद्दहारीतः—
 “ देवानां तर्पणं होमं बलिकर्म च भोजनम् । अर्चनं मार्जनं कुर्याद्देवतीर्थेन सर्वदा ” ॥
 स्मृतिरत्ने तु—

- ० “ अंगुल्यग्रैर्न होतव्यं न कृत्वाऽंगुलिभेदनम् । अंगुल्युत्तरपार्श्वे तु होतव्यमिति हि स्मृतिः ” ॥
 गृह्यपरिशिष्टे—

- “ उत्तानेन तु हस्तेनाथांगुष्ठाग्रनिपीडितम् । संहतांगुलिपाणिस्तु वाग्यतो जुहुयाद्भविः ” ॥
 कात्यायनः—

- “ जुहूपुश्च हते चैव पाणिशूर्पास्यदारुभिः । न कुर्यादग्निधमनं न कुर्वाद्यजनादिना ” ॥
 ५ देवलः—“ वस्त्रेण वाऽथ पर्णेन पाणिशूर्पास्यदारुभिः । व्यजनेनाग्निधमनं न कुर्यादिति हि श्रुतिः ॥
 “ पर्णेन वै भवेत्त्र्याधिः शूर्पेण धननाशनम् । पाणिना मृत्युमामोति चायुः क्षीणं मुखाद्भवे ” ॥
 यत्तु मनुराह (४।५३-५४)—
 “ नाग्निं मुरेनोपधमेन्नगां नेशेत च स्त्रियम् । नामेध्यं प्रक्षिपेद्गमो न च पादो प्रतापयेत् ॥
 “ अथस्तान्नोपध्याच्च न चैनमतिलंबयेत् । न चैनं पादतः कुर्यान्न प्राणावाश्रमाचरेत् ” ॥ इति ।
 तत्तद्व्यतिरिक्तमिति धमनविषयम् । तथा च देवलः—

- “ धमनीमन्तं कृत्वा वृणं वा काष्ठमेव वा । मुरेनाग्निं समिधीत मुखादग्निर्जायत ” ॥
 विष्णु —

- “ अप्रदुहेऽधिधमे वा जुहुयाथो हुनाशने । यजमानो भवेदंधः सोऽमुत्रेति हि नः श्रुतम् ॥
 “ योऽनाग्निं जुहोत्यग्निं व्यंग्नाग्निं च मानवः । मन्दाग्निगमयावी च दग्निश्चापजायते ॥

“ बहुशुष्केऽधने चाग्नौ सुसमिद्धे हुताशने । विधूमे लेलिहाने च होतव्यं कर्मसिद्धये ॥

“ अग्निकर्णे हुतं रोगं नासिकायां धनक्षयम् । चक्षुषोर्निन्दनं कुर्यात्केशे दारिद्र्यकृद्भवेत् ॥

“ हुतं शिरसि पापं स्यात्तस्माज्जिह्वासु होमयेत् । यत्र काष्ठं तु तच्छ्रोत्रं यत्र धूमस्तु नासिका ॥

“ यत्राल्पज्वलनं नेत्रं यत्र भस्मनि तच्छिरः । यत्रैव ज्वलितो वन्हिर्जिह्वा तत्रैव कीर्तिता ” ॥

आपस्तम्बः—“शरोगारा अध्यूहन्ते ततो नीलो प्रकाशाचिर्रुदेति ब्रह्मणि हुतं भवति” ॥ इति । ५
शरः भस्म । अंगारा भस्मना सूक्ष्मेण संयोगमापयन्ते । ततस्तेभ्यः नीलप्रकाशोऽचिर्रुदेति ।
तस्यामवस्थायां हुतं ब्रह्मणि हुतं भवतीत्यर्थः । स एव—

“ यदंगारेषु व्यवशांतेषु लेलायतीव भाति तद्देवानामास्यं तस्मात्तथा होतव्यं यथास्ये विदधा-
त्येवं तदिति विज्ञायते ” इति । श्रुतिरपि (तै. ब्रा. २।१।१०)—“ सर्व एव सर्वश इधम
आदीप्तो भवति । विश्वेदेवास्तर्ह्यग्निः । तस्मिन्यस्य तथाविधे जुह्वति । विश्वेष्वेवास्य देवेष्वग्नि- १०
होत्रं हुतं भवति । नितरामर्चिरुपावैति । लोहिनीकेव भवति । इंद्रस्तर्ह्यग्निः । तस्मिन्यस्य
तथाविधे जुह्वति । इंद्र एवास्याग्निहोत्रं हुतं भवति । अंगारा भवन्ति । तेभ्योऽंगारेभ्योऽचिर्रुदेति ।
प्रजापतिस्तर्ह्यग्निः । तस्मिन्यस्य तथाविधे जुह्वति । प्रजापतावेवास्याग्निहोत्रं हुतं भवति ।
शरोऽंगारा अध्यूहन्ते । ब्रह्म तर्ह्यग्निः । तस्मिन्यस्य तथाविधे जुह्वति । ब्रह्मन्नेवास्याग्निहोत्रं हुतं
भवति । वसुषु रुद्रेष्वेवादिन्येषु विश्वेषु देवेषु । इंद्रे प्रजापतो ब्रह्मन् । अपरिवर्गमेवास्यैतासु १५
देवतासु हुतं भवति ” ॥ इति । इधमः सर्वशः सर्वप्रदेशे आदीप्तो भवति यदा तर्हि तस्मिन्काले
विश्वेदेवा अग्निः विश्वैर्देवैरेकीभूतस्तिष्ठति । तस्मिन् तथाविधे तादृक्प्रकारेऽग्नौ यस्य जुह्वति
विश्वेषु देवेष्वेवास्यहुतं भवति । विश्वेदेवास्तर्पिता अनेन भवन्ति । नितरां नीचैस्तरामर्चि-
रुपा वैति स्वल्पा भवति । लौहिनीकेव रक्तेव भवति । वर्णादनुदात्तादिति ङीप् । संज्ञायां कन् ।
अंगारभूतेषु कष्टेषु यदचिर्रुदेति तदग्न्यास्यस्य जिह्वास्थानीयं शृणातेरसुनि शरः भस्म । २०
तदंगारा अध्यूहन्ते उपरि वहन्ति अपरिवर्ग्य काश्चिदपि देवता अवर्जयित्वा एतासु देवतासु हुतं
भवतीत्यर्थः । स्मृतिरन्ते—

“ सुवर्णा कनका रक्ता कृष्णा चैव तु सुप्रभा । अतिरक्ता बहुरूपा च सप्त जिह्वाः प्रकीर्तिताः ॥

“ सुवर्णा वारुणी जिह्वा मध्यमा कनका स्मृता । रक्ता चैवोत्तरा जिह्वा कृष्णा याम्यदिशि स्मृता ॥

“ सुप्रभा पूर्वदिग्जिह्वा अतिरक्ताऽग्निगोचरा । ऐशान्ये बहुरूपा च जिह्वास्थानान्यनुक्रमात् ॥ २५

“ विवाहे वारुणी जिह्वा मध्यमा यज्ञकर्मसु । उत्तरा चोपनयने दक्षिणा पितृकर्मसु ॥

“ पूर्वदिक्सर्वकामेषु आग्नेयी शान्तिकर्मसु । ऐशानी चोग्रकार्येषु ह्येतद्धोमस्य लक्षणम् ॥

“ अज्ञात्वा सप्तजिह्वास्तु होमं यः कुरुते द्विजः । होमो निष्फलतां याति होमी च नरकं व्रजेत् ” ॥ इति ।

होमप्रकारास्तु स्वगृह्योक्तविधिना द्रष्टव्याः । तदुक्तं गृह्यपरिशिष्टे—

“ स्वगृह्योक्तेन विधिना होमं कुर्याद्यथाविधि ” ॥ इति स्मृतिरन्तेऽपि—

३०

“ उपावरोहणं कृत्वा प्राणायाममनंतरम् । स्वगृह्योक्तप्रकारेण बन्हेरर्चनमाचरेत् ॥

“ अदितेन्वादिमंत्रैस्तु चतुर्भिः परिषेचयेत् । अदितेनुमन्यस्वेति वामदेवऋषिः स्मृतः ॥

“ देवीति जगती छंदो ह्यदितिर्देवता स्मृता ।

“ अनुमतेनुमन्यस्व वामदेव ऋषिः स्मृतः । प्राजापत्या तु गायत्री देवतानुमतिस्तथा ॥

“ सरस्वतेनुमन्यस्व वामदेव ऋषिः स्मृतः । प्राजापत्या तु गायत्री मंत्रोक्ता देवता स्मृता ॥

“ देवसवितः प्रसुव वामदेव ऋषिः स्मृतः । प्राजापत्या तु गायत्री सविता देवता स्मृता ॥

“ विनियोगश्चतुर्णां तु सेचने परिकीर्तितः ” ।

संवर्त्तः—“ होमे पर्युक्षणे श्राद्धे संध्याकर्मसु मार्जने । आचामे भोजने पात्रं तोयं वामेन संस्पृशेत् ” ॥

५ होमादिषु पात्रं संध्यामार्जने तोयं वामहस्तेन स्पृशेदित्यर्थः ।

संग्रहे—“ गृह्योक्तविधिना हुत्वा पूर्ववत्परिषेचयेत् । अन्वमंस्थाः प्रासावीरिति मंत्रं संनमयेद्वधः ॥

“ अथाग्निमुपतिष्ठेत मंत्रेणाग्नेनयादिना ” ॥ इति । एतच्च ज्ञात्वैवानुष्ठेयम् । अन्यथा दोषश्रवणात् । तदाहांगिराः—

“ स्वाभिप्रायकृतं कर्म यत्किञ्चित् ज्ञानवर्जितम् । क्रीडाकर्मैव बालानां तत्सर्वं निष्प्रयोजनम् ।

१० “ हतं ज्ञानं क्रियाहीनं हतास्त्वज्ञानिनः क्रियाः । अपश्यन्नंधको दग्धः पश्यन्नपि च पंगुकः ” ॥ इति ।

मंत्रार्थस्तु—अदितेनुमन्यस्व अदितिर्देवमाताहे अदिते अनुमन्यस्व मया क्रियमाणं कर्मानुजानीहि ।

अनुमतिः अनुमन्त्री ऊनचंद्रा पौर्णमासी । सरस्वती वाग्देवता छांदसो गुणः । हे देव-

सवितः सर्वस्याप्यनुज्ञातः अस्मानपि प्रसुव अनुजानीहि । अन्वमंस्थाः अनुज्ञातवती प्रासावीः

अनुज्ञातवान् । अग्रे नय हे अग्रे सुपथा शोभनेन शास्त्राविरुद्धेन मार्गेण अस्मान् राये नय श्रियं

१५ प्रापय । विश्वानि वयुनानि पापानि विद्वान् जानानः त्वं एनः पापं अस्मत् अस्मतः युयोधि

अपनय । यौतिः पृथग्भावे लोटि बहुलं छंदसीति शपः श्लुः । वाच्छसीत्यपि त्वाभावे गुणः ।

क्रीदृशमेनः । जुहुराणं कुटिलस्वभावं तदर्थं वयमपि ते तुभ्यं भूयिष्ठां ब्रह्मतां नम उक्तिं विधेम

क्रिया स्म विदधाति विधाने आशिषि लिङ् । व्यासः—

“ स्नास्यतो वरुणः शोभां जुह्वतोऽग्निः श्रियं हरेत् । भोजने मृत्युमाप्नोति तस्मान्ममैनं त्रिषु स्मृतम् ” ॥ इति ।

२० अनुगतेऽग्नौ संधानमाह आपस्तम्बः (गु.सू. २।५।१५-१८)—“ नित्यो धार्योऽनुगतो मंथ्यः श्रोत्रिया-

गाराद्वाऽऽहार्यः ” इति । नित्य इति सिद्धे धार्य इत्यारंभात् उखादौ धारणमेवास्य मुख्यं न

त्वारणयोरात्मनि वा समारोपणम् । स च ध्रियमाणोऽग्निरनुगतश्चेत्तदैव संधातव्य इति व्याख्या-

तारः । ध्रियमाणे त्वग्नां विशेषमाह स एव—“ चतूरात्रमहुतोऽग्निर्लौकिकः संपद्यते ” ॥ इति ।

शौनकः—

१५ “ अग्रावनुगते यत्र होमकालद्वयं व्रजेत् । उभयोर्विप्रवासे च लौकिकोऽग्निर्विधीयते ” ॥ इति ।

भरद्वाजः—“ एकाग्निर्द्वादशाहं विच्छिन्नः पुनराधेयः ” इति ।

बोधायनोऽपि—“ आऽर्वाक्त्रिरात्रादयसेग्रये स्यात्ततः परं तन्नुमती च कार्या ।

“ आ सतरात्रं मनसे च हुत्वा आ द्वादशाहात्पुनरादधीत ” ॥ इति । द्वादशदिनपर्यंतं

अग्न्यनुगतिप्रायश्चित्तमेवोक्तं नाग्निसंधानम् । अत्र यथास्वगृह्यव्यवस्था ।

१० शौनकः—“ विच्छिन्नवन्हिमाधाय कर्मागं विधिवत् द्विजः । सायमारभ्य जुहुयाद्वाहुतीनां चतुष्टयम् ॥

“ यदा संधीयते बन्धिः प्रायश्चित्तपुरस्सरम् । तदा मायं विजानीयात्प्रातर्होमं ततः परम् ॥

“ प्रतिपत्पर्वसंधानं यतः कर्मविनाशनम् । संवाय त्रिदिनं हुत्वा स्थालीपाकं समाचरेत् ” ॥ इति ।

प्रतिपत्पर्वसंधानमिति चतुर्दश्या अप्युपलक्षणम् । नो चेत् संधाय त्रिदिनं हुत्वेति विरोधः ।

कथञ्चिद्वाग्नाशनो बोधायनः—“ एकाग्नेस्त्रिविधं समारोपणमात्मन्यग्नयोर्वा समित्म् ” इति ।

समिधश्च स्मृत्यर्थसारे दर्शिताः । “पालाशाश्वत्थसदिरबिल्वोडुंबरजा समित् ” इति । आत्मसमारोपणं यजमानकर्तृकमेव । समिदादिसमारोपणं त्वध्वर्युकर्तृकमपि भवति । तथा चापस्तंबः—“उपर्यग्रावरणी धारयन् जपत्ययं ते योनिर्ऋत्विय इत्यपि वा यजमान एवात्मन् समारोपयते या ते अग्ने० एहीति हस्तं प्रताप्य मुखायाहरत ” इति । यजमानासंनिधानेऽपि पत्नीसंनिधौ अध्वर्युणा अरण्यादौ समारोप्यावरोप्य च होतुं शक्यते । यजमानकर्तृकमपि ५ उपावरोहमन्त्रजपं यजमानासंनिधौ अन्यः कुर्यात् । पत्नी न कुर्यात् । श्रौतमंत्रोर्ध्वक्रिया-मंत्रव्यतिरिक्तमंत्रेषु स्त्रिया अनधिकारादिति न्यायविदः । तथा च शातातपः—“श्रौतं यत्तत्स्वयं कुर्यादन्योऽपि स्मार्त्तमाचरेत् ” इति । बोधायनः—

“आत्मारूढो निमज्जेद्वा पतेद्वा पतितादिभिः । अनृतौ च स्त्रियं गच्छेदथवा काममोहितः ॥
“वदंत्येषु निमित्तेषु केचिदग्निविनाशनम् । आपस्तंबस्य तन्नेष्टमात्मारूढः सदा शुचिः ” ॥ १०
पुनःसंधाननिमित्तमाह स एव—“अथाग्नेर्विपत्तिं व्याख्यास्यामः । अमेध्याशुचिचंडाल-शूद्रवायसपतितरजस्वलाश्वभिश्च संस्पृशेऽरण्योर्विनाश इति पुनराग्निमुपसमिंध्यात् ” इति ।

संग्रहे—

“स्पर्शे तु धार्थमाणं वा समिदारूढमेव वा । त्यक्त्वा तु पुनराधानमात्मारूढं त्यजेद्बुधः ॥
“शवानुगमनाशौचाद्युपघातेऽग्निमात्मगम् । विसृज्य हावयेच्चित्तं हावयेच्च न तु त्यजेत् ” ॥ इति । १५
अहुतेष्वग्निषु यजमानो नाश्रीयत् । यत्ते वयं यथाह तत् इत्याहुतीर्जुहुयात्समिधौ वादध्या-ज्जपेदित्येके । अनाज्ञातम् इति तिस्रोऽनाज्ञाते जुहुयाज्जपेदित्येके । त्वं नो अग्ने स त्वं नो अग्न इति सर्वत्रांतराये देवताविपर्यासे चैते आहुतीर्जुहोति । तदिदं सर्वप्रायश्चित्तं सर्वत्र क्रियेतेत्यादि-प्रायश्चित्तमापस्तंबोक्तं स्मार्तेऽपि कर्तव्यमविरोधात् ।

स्मृत्यंतरे—“औपासनाग्निद्वयसंगतिश्चेदग्निं समारोपणतो विभाज्य । २०

“पूर्वस्य होतुर्विविचिं च हुत्वा पश्चाच्च होतुः पथिकृच्च सोऽपि ” ॥ द्वयोरौपासनाग्नयोः संसर्गे संसृष्टाग्निं समारोपणार्थं विभज्य ममायमंशो ममायमंश इति प्रत्येकमभिमानीकृत्य स्वांशे पूर्वहोताऽग्नये विविचये स्वाहेति हुत्वा सर्वप्रायश्चित्तं च जुहुयात् । पश्चाद्धोता तु अग्नये पथि-कृते स्वाहा अग्नये विविचये स्वाहेति हुत्वा सर्वप्रायश्चित्तं च जुहुयात् । ततस्तावुभौ सहैव समारोपयेतामित्यर्थः । लौकिकाग्निसंपर्के विविचिपाहिपञ्चकं च जुहुयादिति बोधायनोक्तं द्रष्ट- २५ व्यम् । विधुराग्न्युत्पत्तिः संग्रहे दर्शिता—

“उद्धृत्य वर्हिं प्रणवेन पूर्वमन्वाग्निमंत्रेण हरेत्पुरस्तात् ।
“निधाय पृष्ठो दिवि मंत्रकेण ततस्तु होमैः शकलैश्चतुर्भिः ॥
“लेखादयो नैव च तत्सतां स विश्वानि चाद्या न इमे च मंत्राः ।
“आरोपणं नाप्यवरोपणं स्यादुत्पत्तिरिवं विधुरानलस्य ॥ ३०
“नित्यानि नैमित्तिककाम्यकर्माण्यत्रैव कुर्यात् विधुरः सदैव ” ॥ इति । तत्सवितुः तां सवितुः विश्वानि देव सवितः अद्यानो देवसवितः इति इमे शकलहोममंत्रा इत्यर्थः ।

चंद्रिकायाम् (पृ. १६४ पं. १, ४, ६)—

“ब्रह्मण्याधाय कर्माणि निःसंगः कामवार्जितः । प्रसन्नेनैव मनसा कुर्वाणो याति तत्पदम् ॥

“ नाहं कर्ता सर्वमेतद्ब्रह्मैव कुरुते तथा । एतद्ब्रह्मार्पणं प्रोक्तं ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥

“ यद्वा फलानां संन्यासं प्रकुर्यात्परमेश्वरे । कर्मणामेतदप्याहुर्ब्रह्मार्पणमनुत्तमम् ” ॥ इति ।

मनुरपि (३।९५; ४।१४६)—

“ संन्यस्य सर्वकर्माणि कर्मदोषानपानुदन् । नियतो वेदमभ्यस्यन्पुत्रैश्वर्यैः सुखं वसेत् ॥

५ “ मंगलाचारयुक्तानां नित्यं च प्रयतात्मनाम् । जपतां जुहतां चैव विनिपातो न विद्यते ” ॥ इति ।

श्रीभगवान् (भ. गी. ४।२४)—

“ ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् । ब्रह्मैव तेन गतव्यं ब्रह्मकर्म समाधिना ” ॥ इति ।

स्मृत्यर्थसारे—

“ स्वकर्महानौ पतनमब्देनैव त्वनापादि । स्वकर्महानौ नास्तिक्यान्मासेन पतनं स्मृतम् ॥

१० “ द्वादशाब्दव्रतेनैव तस्य शुद्धिस्तु नान्यथा । तं निरीक्ष्यार्कमीक्षेत स्पर्शं स्नायात्सचैलकम् ॥

“ तेन संभाषणं हास्यं कुर्वन्नब्देन तत्समः । तदन्नभुक्तौ सद्यस्तु सहशय्यासनेषु च ” ॥ इति ।

होमं प्रशंसति वसिष्ठः—

“ त्रिविक्तपूर्णं पृथिवीं यो ददाति ससागराम् । तत्सायमग्निहोत्रस्य कलां नार्हति षोडशीम् ” ॥ इति ।

“ आद्या व्याहृतयस्तिष्ठः स्वधा स्वाहा नमो वषट् । यस्य ते वेदमनि सदा ब्रह्मलोकस्थ एव सः ” ॥

११ अंगिराः—

“ यो दद्यात्काञ्चनं मेरुं पृथिवीं च ससागराम् । तत्सायंप्रातर्होमस्य तुल्यं भवति ना न वा ” ॥ इति ॥

मनुरपि (३।७६)—“ अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ।

“ आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः । दैवे कर्मणि युक्तो हि विभर्तीदं चराचरम् ” ॥ इति ।

इति होमप्रकरणम् ॥

२० अथ मङ्गलद्रव्यावलोकनम् ।

होमादनंतरकृत्यमाह दक्षः (२।२२)—“ देवकार्यं ततः कृत्वा कुर्यान्मङ्गलवीक्षणम् ” ॥ इति ।

माधवीये—“ होमं च कृत्वा लभनं शुभानां ततो वहिर्निर्गमनं प्रशस्तम् ।

“ इवां च सर्पिर्दधि चोदकुंभं धेनुं सवत्सां वृषभं सुवर्णम् ॥

“ मृद्धोमयं स्वतिक्रमक्षतांश्च तैलं मधु ब्राह्मणकन्यकां च ।

२५ “ श्वेतानि पुष्पाणि तथा शर्मां च हुताशनं चंदनमर्कविंशम् ॥

“ अश्वत्थवृक्षं च समालभेत ततश्च कुर्यान्निजजातिधर्मम् ” ॥ इति ।

चंद्रिकायाम् (पृ. १६८ पं. १५)—

“ रोचनां चंदनं हेम मृदं गां दर्पणं मणिम् । गुरुमग्निं च सूर्यं च प्रातः पश्येत्सदा बुधः ” ॥

नारदः—

३० “ लोकेऽस्मिन्मङ्गलान्यर्था ब्राह्मणो गौर्हुताशनः । हिरण्यं सर्पिरादित्य आपो राजा तथाऽष्टमः ॥

“ एनानि सततं पश्येन्नमस्येदं चयेच्च यः । प्रदक्षिणं च कुर्वीत तथास्यायुर्न हीयते ॥

“ स्वात्मानं च घृते पश्येद्यदीच्छेच्चिरजीवितम् ” ॥ मनुः—

“ सुवर्णं चंदनं रत्न पञ्चगव्यानि रोचनाम् । प्रियंगुं यर्षपं क्षौद्रं मङ्गलानि प्रचक्षते ॥

“ अग्निचित्कपिला सर्वा गजा भिक्षुर्महांदधि । दृष्टमात्राः पुनर्त्येते तस्मात्पश्येन्नु नित्यशः ” ॥ इति ।

३५ स्मृत्यर्थसारे—

“ विप्रान्यर्कवृद्धोऽहेम नृराज्य मङ्गलं स्मृतम् । अग्निचित्कपिला सर्वा यज्वा मृष्टात्रदोऽङ्गुलिः ॥

“ ज्ञानसिद्धस्तपःशांतो दीर्घायुर्धार्मिकः शुचिः । एते पापहराश्चैनान्सदा पश्येन्नमेदपि ” ॥

भरद्वाजः—

“ विष्णुक्रांतां शर्मां दूर्वां चंदनं शंसपुष्पिकाम् । सिद्धार्थकान्प्रियंगुं च प्रातः शिरसि धारयेत् ॥

“ पापिष्ठं दुर्भगां चांधं नग्नमुत्कृतनासिकम् । प्रातर्न पश्येदेतांस्तु दृष्ट्वा पश्येद्विवाकरम् ” ॥

स्मृतिरत्ने—

“ गोमूत्रं गोमयं सर्पिः क्षीरं दधि च रोचना । षडंगमेतत्परमं मंगल्यं सर्वतो नृणाम् ॥

“ हरिद्रा लवणं धाना राजमाषास्तथा गुडम् । जीरकं फलपुष्पं च मंगलाष्टकमुच्यते ॥

“ इक्षवः सूपराजश्च निष्पावश्चाथ धान्यकम् । विकारवच्च गोक्षीरं कौसुमं कुसुमं तथा ॥

“ लवणं चाष्टमं तद्वत्सौभाग्याष्टकमुच्यते ” ॥ रत्नावल्याम्—

“ धार्याणि शिरसा नित्यं पुष्पाणि श्रियमिच्छता । द्रोणेषुपुष्पं श्रीवृक्षपत्रं मूर्धनि निक्षिपेत् ” ॥ १०

बोधायनः—

“ अरणिं कृष्णमार्जारं चंदनं सुमणिं घृतम् । तिलान्कृष्णाजिनं छागं गृहेष्वेतानि धारयेत् ॥

“ गृहे पारावता धार्याः शारिका वै शुकास्तथा । घ्नंति वै धारिता ह्येते भूतवाधां गृहे ध्रुवम् ” ॥

स्मृतिप्रदीपिकायाम्—

“ चित्रभानुमनद्वाहं देवं गोष्ठं चतुष्पथम् । ब्राह्मणान्धार्मिकांश्चैव नित्यं कुर्यात्प्रदक्षिणम् ” ॥ १५

भरद्वाजः—

“ कंदूय पृष्ठतो गां तु कृत्वा चाश्वत्थवंदनम् । उपगम्य गुरुन्सर्वान्विप्रांश्चैवाभिवादेत् ” ॥ इति ।

अभिवादनविधिस्तु पूर्वमेव निरूपितः । इति मंगलद्रव्यावेक्षणम् । अथ ब्रह्मयज्ञविधिः ।

तत्र देशकालानाह श्रुतिः—(तै. आरण्यके सहवै २।११) “ ब्रह्मयज्ञेन यक्ष्यमाणः प्राच्यां

दिशि ग्रामादच्छदिर्दर्श उदीच्यां प्रागुदीच्यां वोदित आदित्ये ” इति । अछदिर्दर्शशब्देन २०

देशविशेषो लक्षितः । छदिर्गृहाच्छादनं तृणकटादि । तद्यत्र न दृश्यते तत्र इत्यर्थः । उदित

आदित्य इत्यनेन उदयात्प्राक् भावीकर्मकालो निषिध्यते । उदयानंतरं होमकालत्वात्तदनंतर-

कालो विधीयते । एतच्चाग्निविहितकालोपलक्षणम् । तथा च बृहस्पतिः—

“ स चार्वाक्षतर्पणात्कार्यैः पश्चाद्वा पुनराहुतेः । वैश्वदेवावसाने वा नान्यदर्थे निमित्ततः ” ॥ इति ।

अत्र वैश्वदेवशब्देन मनुष्ययज्ञांतकर्म विवक्षितम् । यदाह व्यासः—

“ यदि स्यात्तर्पणादर्वाक् ब्रह्मयज्ञः कृतो न हि । कृत्वा मानुषयज्ञं तु ततः स्वाध्यायमारभेत् ” ॥ इति ।

तर्पणं च माध्याह्निकसावित्रीजपानंतरं विहितं स्मृतिचंद्रिकामाधवीयस्मृत्यर्थसारादौ ।

तथा च बोधायनः “ अथादित्यमुपतिष्ठते उद्वयंतमसस्परि उदुत्यं चित्रं तच्चक्षुर्देवहितं य उदगा-

दिति अथोत्तरं देवतास्तर्पयति । अथ निवीती भूत्वा ऋषींस्तर्पयत्यथ प्राचीनावीती पितृन् ” ॥ इति ।

व्यासोपि—

“ मध्याह्नसमये स्नात्वा सावित्रीं वै जपेत् द्विजः । आचम्य च यथाशास्त्रं शक्त्या स्वाध्यायमाचरेत् ॥

“ ततः संतर्पयेद्देवानृषीन्पितृगणांस्तथा ” ॥ इति ।

जमदग्निः—“ मध्यंदिनकृतोपस्थानः प्राडासीनः कुशासनः ” इति । गौतमोऽपि (५।४-५)—

“ नित्यस्वाध्यायः पितृभ्यश्चोदकदानम् ” इति । एतदेवाभिप्रेत्य ब्रह्मयज्ञांते आश्वलायन

आह (३।४।१)—“ देवतास्तर्पयति ” इत्यादि ।

कालादर्शे—

“ प्रातर्मध्यंदिनं वाऽपि ब्रह्मयज्ञो विधीयते । प्रातर्यदि तदा प्रातराहुत्याः परतो भवेत् ॥

“ मध्यान्हे चेत्तर्पणात् प्राक् वैश्वदेवात्परत्र वा ” ॥ एवं च प्रातराहुत्यनंतरं वा मध्याह्निकसावित्री-
जपानंतरं तर्पणात्पूर्वं वा मनुष्ययज्ञानंतरं वा ब्रह्मयज्ञः कर्तव्यः ।

५ देशादीतिकर्तव्यमाह मनुः (२।१०४)—

“ अपां समीपे नियतो नैत्यिकं विधिमास्थितः । सावित्रीमप्यधीयीत गत्वाऽरण्यं समाहितः ” ॥

आपस्तम्बोऽपि (ध. सू. १।३।१।२३)— “ अकृतप्रातराश उदकांतं गत्वा प्रयतः शुचौ

देशेऽधीयीत ” इति । उपवीतादीतिकर्तव्यं श्रुतिराह (सहवै २।११ पृ. १४५)— “ दक्षिणत

उपवीयोपविश्य हस्ताववनिज्य त्रिराचामेत् । द्विः परिमृज्य सकृदुपस्पृश्य शिरश्चक्षुषी नासिके

१० श्रोत्रे हृदयमालभ्य ” इति । यज्ञोपवीती उपविश्य ब्रह्मयज्ञेन यक्ष्य इति संकल्प्य विद्युदसि

इत्युदकमुपस्पृशेत् ‘ यक्ष्यमाणो वेष्ट्वा ’ इति श्रुतेः । ततः हस्ताववनिज्य आ मणिबंधनात्

प्रक्षाल्य पादयोरप्युलक्षणमेतत् । कर्मगं क्षालनांतरं हस्तपादस्य ततस्त्रिरपः पिबेत् द्विरौष्ठौ

परिमृज्य सकृदुपस्पृश्य सव्यं पाणिं पादौ च प्रोक्ष्य शिरश्चक्षुषी नासिके श्रोत्रे हृदयं चालभ्य

प्रत्येकं सजलं स्पृष्ट्वेत्यर्थ इति हरदत्तेन व्याख्यातम् ।

१५ त्रिराचामेदित्यादि यदुक्तं तस्य फलमाह श्रुतिः (सहवै २।२१ पृ. १४६) “ यत्त्रिराचामति

तेन ऋचः प्रीणाति यद्विः परिमृजति तेन यजूंषि यत् सकृदुपस्पृशति तेन सामानि यच्छिर-

श्चक्षुषी नासिके श्रोत्रे हृदयमालभते तेनाथर्वागिरसो ब्राह्मणानितिहासानपुराणानि कल्पान्

गाथानाराशंसोः प्रीणाति ” इति । आन्धादयस्तु केचिद्यत्सकृदुपस्पृशति तेन सामानीत्यस्या-

नंतरं यत्सव्यं पाणिं पादौ प्रोक्षति यच्छिरश्चक्षुषी इति फलवाक्यमधीयते ।

२० इतिकर्तव्यान्तरमाह श्रुतिः (सहवै २।११)— “ दर्भाणां महदुपस्तीर्योपस्थं कृत्वा

प्राडासीनः स्वाध्यायमधीयीत ” इति । महत्प्रभूतं यथातथा आसनत्वेन दर्भानुपस्तीर्य

द्वितीयार्थे पष्ठी उपस्थमिति दक्षिणोत्तरीणमासनविशेषं कृत्वा प्राङ्मुख आसीनः । तत्रापि

यावापृथिव्योः संधिमीक्षमाणः समाहितः स्वाध्यायमधीयीत । आत्मीयं वेदं पठेदित्यर्थः ।

दर्भासनस्यावश्यकर्तव्यतार्थ दर्भाः स्तूयन्ते श्रुत्यैव (सहवै २।२१) “ अपां वा एष

२५ ओषधीनां रसो यद्दर्भः सरसमेव ब्रह्म कुरुते ” इति । अपामोषधीनां च रसो दर्भानाम् तस्मा-

त्तन्नासित्वार्थायानः सरसं सर्वार्यं ब्रह्म वेद कुरुते इत्यर्थः ।

प्राडासीन इत्यस्य विशेषमाह श्रुतिः (सहवै २।२१)— “ दक्षिणोत्तरो पाणी कृत्वा

मण्वित्रौ ” इति । दक्षिणो हस्त उत्तरः उपरिभूतो ययो तौ दक्षिणोत्तरो एवंभूतौ सपवित्रौ

पाणी उत्संगवर्तिनौ कृत्वा समावप्रच्छिन्नाग्रौ दर्भौ प्रादेशमात्रौ पवित्रे । अथ यदुक्तं स्वाध्याय-

३० मधीयीतेति तत्र विशेषमाह ‘ ओमिति प्रतिपद्यत ’ इति । प्रतिपद्यते आरभते ।

अर्थोक्तः स्तूयते एतदित्यादिना । ओमिति प्रतिपत्यनंतरं कर्तव्यमाह श्रुतिः (सहवै

२।२१)— “ त्रीनेव प्रायुङ्क्त भूर्भुवः स्वगित्याहंतद्वे वाचः सत्यं यदेव वाचः सत्यं तत्प्रायुङ्क्त

अथ नास्त्रिं गायत्रौ त्रिन्वाह पञ्चोर्ध्वर्च्यो नवान् मविता श्रियः प्रसविता श्रियमेवाप्नोत्यथो

प्रजातयेव प्रतिपदा छंदानि प्रतिपद्यत ” इति । भूर्भुवः स्वगित्याह व्याहृतित्रयं पठति । किं कृतं

३५ भवति । त्रीनेव वेदान् प्रयुक्तवान् भवति । तद्वै व्याहृतित्रयं वाचः सत्यं वेदात्मिकाया वाचः सर्वं वि

सत्यं सारभूतं त्रिभ्यः सारत्वेन प्रभूतत्वाद्ब्रह्मो नवनीतमिव तस्मात्तदेव पठन् त्रयीसारमेव पृथगव-
स्थितं प्रयुक्तवान् भवति । अथ व्याहृत्यनंतरं सावित्रीं सवितृदैवत्यां गायत्रीं तत्सवितुरिति वृचं
त्रिरन्वाह अनुक्रमेण पठति पच्छः पादं पादं अथार्धर्चश अर्धर्चमर्धर्चं संख्यैकवचनादिति शसः ।
अथानवानमनुच्छासमर्धर्चप्यनुपरमन् । अत्र केचिद्व्याहृतीर्विहृतास्त्रिष्वनुवचनेषु कुर्वति । अन्ये तु
व्याहृतीर्विहृताः पादादिष्वन्तेषु वा तथार्धर्चयोरुत्तमां कृत्स्नायामिति ब्रह्मोपदेशक्रमेण कुर्वति । ५
सविता खलु सर्वस्याः श्रियः प्रसविता उत्पादयिता । अतस्तदैवतां गायत्रीमधीयानः श्रियं
प्राप्नोति । अथ सावित्र्यन्ते स्वाध्यायमधीयीतेति विधिः । एवमेकस्मिन्नहनि विधानमुक्तमथो-
नन्तरादिषु दिवसेषु प्रज्ञातयैव प्रतिपदानुपक्रमेण छंदांसि छंदोवयवान् प्रतिपद्यते आरभते अव्य-
वधानेनावस्थितत्वं प्रज्ञातत्वं पूर्वद्युर्यावदधीतं तत एवारभ्य उत्तरेद्युरधीयीत । न तु यं कंचिद्वेद-
भागमिति स्वशाखाध्ययनं ब्रह्मयज्ञस्तथा च ब्राह्मणम् । “यत्स्वाध्यायमधीयीतैकामप्युचं यजुः- १०
साम वा तद्वह्नयज्ञः संतिष्ठते ” (तै. आ. २१० पृ. १४४) इति ।

शौनकः—“यश्च श्रुतिजपः प्रोक्तो ब्रह्मयज्ञः स उच्यते ” इति । पैठीनसिरपि—

“स्वशाखाध्ययनं यत्तद्वह्नयज्ञं प्रचक्षते । ब्रह्मयज्ञपरो विप्रो ब्रह्मलोके महीयते ” ॥ इति ।

आश्वमेधिकेऽपि (अध्याये १०४)—

“वेदमादौ समारभ्य तथोपर्युपरिक्रमात् । यदधीतेऽन्वहं शक्त्या तत्स्वाध्यायं प्रचक्षते ॥ १५

“ऋचं वाऽथ यजुर्वाऽपि सामगाथामथापि वा । इतिहासपुराणानि यथाशक्ति न हापयेत् ” ॥ इति ।

योगयाज्ञवल्क्यः—

“प्रदक्षिणं समावृत्य नमस्कृत्योपविश्य च । दर्भेषु दर्भपाणिभ्यां संहताभ्यां कृतांजलिः ॥

“स्वाध्यायं तु यथाशक्ति ब्रह्मयज्ञार्थमाचरेत् ” ॥ इति ।

हारीतः—

“दर्भासीनो दर्भपाणिर्ब्रह्मयज्ञविधानतः । प्राङ्मुखो ब्रह्मयज्ञं तु कुर्याच्छ्रद्धासमन्वितः ” ॥ इति ।

शौनकः—“प्राणायामैर्दग्धदोषः शुक्लांबरधरः शुचिः । यथाविध्यप आचम्य आहरेर्द्वर्भसंस्तरम् ॥

“पवित्रपाणिः कृत्वा तु उपस्थं दक्षिणोत्तरम् ” ॥ इति । स एव—“प्राग्वोदग्वा
ग्रामान्निष्क्रम्याप आप्लुत्य शुचौ देशे यज्ञोपवीत्याचम्याक्लिन्नवासा दर्भाणां महदुपस्तीर्य
प्राक्कूलानां तेषु प्राङ्मुख उपविश्योपस्थं कृत्वा दक्षिणोत्तरौ पाणी संधाय पवित्रव्रतौ द्यावा- २५
पृथिव्योः संधिमीक्षमाणः संमील्य वा यत्र वा युक्तमात्मानं मन्यते तथा युक्तोऽधीयीत
स्वाध्यायं औपूर्वा व्याहृतीः सावित्रीमन्वाहपच्छोर्ध्वर्चशः सर्वाम् ” ॥ इति । स्मृतिरत्नावल्याम्—

“स्नात्वा यज्ञोपवीती च भूत्वाऽचम्योदकं तथा । पवित्रे लक्षणैर्युक्ते कृत्वा छिन्नाग्रतादिकैः ॥

“तयोरेकैकमेकैकपाणिना धारयेत्पृथक् । सव्यस्य पाणेरंगुष्ठप्रदेशिन्योस्तु मध्यतः ॥

“दक्षिणस्यांगुलीन्यस्य चतस्रोऽंगुष्ठवर्जिताः । तथा सव्यकरांगुष्ठं दक्षिणांगुष्ठवेष्टितम् ॥ ३०

“निधाय चैवं संबद्धौ पाणी दक्षिणसक्थिनि ।

“प्रणवं व्याहृतीश्चैव गायत्रीं च जपेत्क्रमात् । पच्छोर्ध्वर्चश उच्छ्वासाद्वेदादींश्चतुरो जपेत् ॥

“नित्यं प्रश्नमधीयीत यथाशक्त्यथवा पठेत् । तत्र त्रयं काठकं च वैश्वदेवमनूयते ॥

“मन्त्रप्रश्नौ पुनश्चैवं ब्रह्मयज्ञे क्रमं विदुः ।

“यावंतं मन्त्रमध्ये तु शक्यं स्वाध्यायमात्मनः । तावंतमनुवाकं वा सूक्तं प्रश्नमथापि वा ॥ ३५

“तथा यावत्प्रतिज्ञातमध्यायं सूक्तमेव वा । ऋचं वाप्यंततोऽवश्यमधीयीत स्वशक्तितः ॥

“ ओ नमो ब्रह्मण इति जपित्वा प्रणवं जपेत् । यद्वादातिथिभ्यस्तु ब्रह्मयज्ञस्य दक्षिणा ॥

“ न कुर्यादासनस्यस्तु ब्रह्मयज्ञं कदाचन ” ॥ इति । आसनस्थः कंवलदासनस्थः ॥
स्मृत्यन्तरे—

“ नमो ब्रह्मण इत्येतां त्रिरुक्त्वा प्रणवं वदेत् । ग्रामाद्वहिरधीयीत मध्यमेन स्वरेण तु ॥

५ “अर्धांते मनसा ग्रामे ब्रह्मयज्ञं करोति चेत् । अयं तु ब्रह्मयज्ञोऽस्य भिक्षादानादिदक्षिणा” ॥ इति ।

आपस्तम्बः (१।३।११।२३-२४) “ शुचौ देशेऽधीयीत यथाध्यायमुत्सृजन्वाचा मनसा चानध्याये ” इति । यथाध्यायं यथा पाठमनेन पदक्रमाद्यनुबंगो निषिध्यते । वाचेति मानसस्य व्युदासः । उत्सृजन्नादित आरभ्य प्रथमादिष्वहःस्वधीतं द्वितीयादिष्वहःसूत्सृज्य ततः परम-

धीयीतेत्यर्थः । मध्यंदिने विशेषमाह श्रुतिः (सहवै २।१२ पृ. १५०)—“ मध्यंदिने प्रबलम-

१० धीयीतासौ खलु वावेष आदित्यो यद्वाह्मणस्तस्मात्तर्हि तीक्ष्णं तपति ” इति । प्रबलं प्रभूतं योऽयं ब्राह्मणो नाम एषः । असावादित्यः स्वयमादित्य एवायं तयोरेकत्वात् । “ स यश्चायं पुरुषे । यश्चासावादित्ये । स एकः ” (तै. आ. भृगूपनि. ९।१।४ पृ. ६८४) इति श्रुतेः । यस्माद्वाह्म-
णस्य आदित्यो मध्यंदिने अध्ययनं तपःस्थानीयं प्रबलं करोति तस्मात्तर्हि तस्मिन् काले मध्यं-
दिने मुख्यादित्यस्तीक्ष्णं तीक्ष्णतरं तपतीत्यर्थः । तत्रैव (२।१३।१)—“ नमो ब्रह्मण इति परि-

१५ धानीयां त्रिरन्वाहाप उपस्पृश्य गृहानेति ततो यत्किंच ददाति सा दक्षिणा ” इति । परि-
धानीयां परिसमापनीयामृचं त्रिरन्वाहाप उपस्पृश्य आदावन्ते चेति वेदितव्यम् । तत्रादौ विद्युद-
सीनि अंते वृष्टिरसीति ततो गृहं गत्वा यत्किंचिदपि गृहस्थो दद्यात् । सा दक्षिणा तस्य यज्ञस्यांगं
तस्माद्यत्किंचिद्वादिति विधिः ।

एवं मुख्यविधिमुक्त्वा आपत्कल्पमाह श्रुतिः (सहवै २।१२ पृ. १४९)—“ ग्रामे मनसा स्वाध्या-

२० यमधीयीत दिवा नक्तं वेति । ह स्माऽऽह शौच आन्हेय उतारण्येऽवल उत वाचोत तिष्ठन्नुत व्रजन्नु-
तासीन उत शयानोऽधीयीतैव स्वाध्यायं तपस्वी पुण्यो भवति य एवं विद्वान्स्वाध्यायमधीते” इति ।
यदुक्तमच्छुदिर्दर्श इति तत्रोच्यते । ग्रामे मनसेति । यदुक्तमुदित आदित्य इति तत्रोच्यते । दिवा नक्तं
वेति । मनसेत्येव शौचः शुचैः पुत्रः । आन्हेयः एवं नामक ऋषिरित्याह स्म । उतारण्ये अरण्येऽपि
अवल अज्ञानश्चेन्मनसाधीयीत उत वाचा । आसनाशक्तौ स्थानाद्यनुज्ञायते उत तिष्ठन्नित्या-

२५ दिना । अधीतैव अज्ञानश्चेद्यथाकथंचिदध्ययनमेव कुर्यात् । न त्वंगाशक्त्या प्रधानं परित्याज्य-
मित्यर्थः । य एवं स्वाध्यायमाहात्म्यं विद्वान्विजानन्स्वाध्यायमधीते स एव तपस्वी भवति । अध्ययन-
फलं प्राप्नोति पुण्यः पञ्चपावनश्च भवतीत्यर्थः । नक्तं वेत्येतत् ब्रह्मयज्ञस्यावश्यकत्वप्रतिपादन-

परं न तु रात्रावनुष्ठानपरम् । तथा च श्रूयते (सहवै २।१३ पृ. १५१)—“ स वा एष यज्ञः
नमः प्रतायने मध्यः संतिष्ठते तस्य प्राक्तायन्वभृथः ” इति । स एष ब्रह्मयज्ञः सद्यः अहन्येव
३० प्रतायने आगम्यने अहन्येव संतिष्ठते समाप्यते तस्य सायंकालात्पूर्वमेवावभृथः समातिरित्यर्थः ।
स्मर्यते च—

“ गत्रा प्रत्ययने दिवा कृत्यानि कान्येत् । ब्रह्मयज्ञं च सौरं च वर्जयित्वा विशेषतः ” ॥ इति ।

अतो दिवा ब्रह्मयज्ञं कृण्वे स्नातकव्रतनोपे च “ प्रायश्चित्तमनोजनम् ” इति (१।१।२०३) मनुक्तं

ब्रह्मयज्ञम् । आपस्तम्बः (१।१।१२।१-२)—“ तत्रः स्वाध्याय इति ब्राह्मणम् । तत्र श्रूयते

३५ “ स पृष्टि विष्टान्सीनः इयमेव वा स्वाध्यायमधीते तप एव तनप्यते तपो हि स्वाध्याय इति ” ।

अनर्थात्स्वयं ब्रह्मयज्ञं गायत्रीजपमाह मनु (२।१०४)—

“ इयं मनीरे निरनो नैत्येकं विधिमास्थितः । गायत्रीनव्यधीयत गन्वाऽण्यं नमाहितः ”

संग्रहे—“ब्रह्मयज्ञे जपेत्सूक्तं पौरुषं चिंतयन्हरिम् । स सर्वान्जपते वेदान्सांगोपांगान्विधानतः”॥ इति ।
याज्ञवल्क्यः (आ. १०१)—

“वेदवाक्यपुराणानि सेतिहासानि शक्तिः । ब्रह्मयज्ञप्रसिद्ध्यर्थं विद्यां चाध्यात्मिकीं जपेत्”॥ इति ।
स्मृत्यर्थसारे—“ प्रणवव्याहृतीरुक्त्वा सावित्रीं पच्छोर्धर्चशोनवानमुक्त्वा अध्यायं सूक्तमृचं वा
प्रश्नमनुवाकं वा यजुर्वा साम वा सावित्रीं वा इतिहासपुराणं वा मंत्रेण मध्यमेन वा स्वरेण ५
वाऽधीत्य नमो ब्रह्मण इति त्रिरुक्त्वा ओं तत्सदिति समापयेत् ” इति ।

ग्रहणाध्ययनवद्ब्रह्मयज्ञाध्ययनस्यानध्यायदिवसे परित्यागप्राप्तौ मन्त्रराह (२।१०५-१०६)—
“ वेदोपकरणे चैव स्वाध्याये चैव नैत्यिके । न निरोधोऽस्त्यनध्याये होममंत्रेषु चैव हि ॥
“ नैत्यिके नास्त्यनध्यायो ब्रह्मसत्रं हि तत्स्मृतम् । ब्रह्माहुतिहुतं पुण्यं यदध्यायवषट्कृतम्”॥ इति ।
ब्रह्मैवाहुतिर्द्रव्यं तेन हुतं अधीयत इत्यध्यायो याज्यादिमंत्रसमूहः । तेन वषट्कारेणापि हुतमित्यर्थः । १०
यतो नास्त्यनध्यायः । अत एवानध्यायविशेषाननूद्य तेषु जपं प्रशंसति” श्रुतिः (सहवै २।१४ पृ. १५२)—
“ तस्य वा एतस्य यज्ञस्य मेघो हविर्धानं विद्युदग्निर्वर्षः हविस्तनयित्नुर्वषट्कारो यदवस्फूर्जति
सोऽनुवषट्कारो वायुरात्माऽमावास्या स्विष्टकृद्य एवं विद्वान् मेघे वर्षति विद्योतमाने स्तनयत्यव-
स्फूर्जति पवमाने वायावमावास्यायाः स्वाध्यायमधीते तप एव तत्तप्यते” इति । अस्य यज्ञरूपत्वा-
त्कर्मणि चानध्यायाभावात्तदेव च कर्मत्वं स्पृष्टयितुं मेघादयो हविर्धानादिरूपेण रूप्यन्ते । १५
तस्यैतस्य ब्रह्मयज्ञस्याध्ययनात्मनो मेघादयो हविर्धानादिस्थानीयाः । उदकाधारत्वेन मेघो हवि-
र्धानस्थानीयः । उदकस्य च हविष्महा वर्षं हविरिति । हविर्धाने हि सोमादीनि हवींषि निधीयन्ते ।
विद्युदग्निस्थानीयाप्रकाशवत्त्वाद्वाष्टिहेतुत्वाच्च वर्षं हविस्थानीयं सस्याद्युत्पत्तिहेतुत्वात्स्तनयित्नुः
स्तनितं कुर्वन्मेघो वषट्कारस्थानीयः । तदनंतरं वर्षलक्षणस्य हविषः प्रपतनात् अवस्फूर्जोऽग्नि-
शब्दः सोनुवषट्कारस्थानीयः । पश्चाद्भावसाम्याद्वायुरात्मस्थानीयः । प्राणत्वाद्मावास्यास्विष्टकृ- २०
त्स्थानीया । यजमानसंपत्तिहेतुत्वाद्य एवं मेघादीनामध्ययनांगत्वं विद्वान्मेघादिसद्भावेऽपि वायौ
च पवमाने अमावास्यायां चाधीते तत्तप एव तप्यतीति नित्यस्वाध्यायाध्ययनलक्षणं तपः ।
अविर्गुणमेव चरति तदेवाह ‘तपो हि स्वाध्याय’ इति ।

आपस्तम्बः (१।४।१२।३-७)—“ अथापि वाजसनेयिब्राह्मणम् । ब्रह्मयज्ञो ह वा एष
यत्स्वाध्यायस्तस्यैते वषट्कारा यत्स्तनयति यद्विद्योतते यदवस्फूर्जति यद्वातो वायति । तस्मात् २५
स्तनयति विद्योतमानेऽवस्फूर्जति वाते वा वायत्यधीयीतैव वषट्काराणामच्छम्बट्कारायेति ।
तस्य शाखांतरे वाक्यसमाप्तिरथ यदि वातो वायात्स्तनयेद्वा विद्योतेत वावस्फूर्जैद्वैकां वर्चमेकं
वा यजुरेकं वा सामाभिव्याहरेत् भूर्भुवस्वः सत्यं तपः श्रद्धायां जुहोमीति वैतत्तेनोहैवास्यैतदहः
स्वाध्याय उपात्तो भवत्येवं संत्यार्यसमयेनाविप्रतिषिद्धमध्यायानध्यायं ह्युपदिशन्ति । तदनर्थकं ३
स्याद्वाजसनेयिब्राह्मणं चेदवेक्षेत ” इति । ३०

अस्यार्थः (पृ. २६)—स्वाध्यायो नाम य एष ब्रह्मयज्ञः । ब्रह्म वेदः । तत्साधनो यागस्तस्य यज्ञस्य
एते स्तनयित्वादयो वषट्काराः । बहुवचननिर्देशाद्वषट्कारानुवषट्कारस्वाहाकाराः प्रदानार्था
गृह्यन्ते । यस्मादेते वषट्कारास्तस्मात् स्तननादिष्वनध्यायनिमित्तेषु सत्स्वपि अधीयीतैव । न पुनरन-
ध्याय इति नाधीयीत । किमर्थं वषट्काराणामेतेषामच्छम्बट्काराय अव्यर्थत्वाया । तस्य वाजसनेयि- ३५

ब्राह्मणस्य शाखांतरे पर्यवसानं तदेव शाखांतरं पठति । अथ यदीति । वातादिषु सत्सु एकामृच-
मधीयीत प्राप्ते प्रदेशे यजुर्वेदाध्ययने एकं यजुः सामवेदाध्ययने एकं साम सर्वेषु वा वेदेषु भूर्भुवः
सुवः सत्यं तप इति यजुरभिव्याहरेण पुनर्यथापूर्वं प्रश्नमात्रम् तेनैव तावतैवास्याध्येतुस्तास्मिन्नहनि
स्वाध्याय उपात्तो भवति । अधीतो भवतीति यावदेवं सति वाजसनेयिब्राह्मणस्य शाखांतरे
५ वाक्यसमाप्तावाश्रीयमाणायामार्यसमयेन आर्याः विशिष्टा मन्वादयः तेषां समयो व्यवस्था तेना-
विप्रतिषिद्धं भवति । इतरथा विप्रतिषिद्धं स्यात् । कथम् । आर्या ह्यध्यायनमध्यायं चोपदिशन्ति ।
तदुपदेशनमनर्थकं स्याद्यदि वाजसनेयिब्राह्मणं यथाश्रुतमवेक्षेताध्येता अतो । वाक्यपरिसमाप्ति-
रेव युक्ता । एवं हि वाजसनेयिब्राह्मणस्यापि नात्यंतबाधः । अनध्यायोपदेशस्यापि प्रभूताध्ययन-
विषयतया अर्थवत्त्वमिति ।

- १० केचित्तु नित्यप्रश्नाध्ययिनोऽनध्यायो नास्ति अमावास्यायां स्वाध्यायमधीत इति
नित्यानध्यायेऽप्यध्ययनविधानात् । एकां वर्चमेकं वा यजुरल्पं जपेदनध्याये पर्वण्यल्पतरं
जपेदित्यादिकं त्वनियतप्रश्नाध्यायिविषयम् ।
अत एवोज्ज्वलाम् (५.२७८) — “का पुनरसौ स्मृतिर्या ब्रह्मयज्ञेऽप्यनध्यायमुपदिशति । मानवे
तावद्विपर्ययः श्रूयते ‘नैतिके नास्त्यनध्याय’ (२।१०६) इति । सामान्येनानध्यायोपदेशस्तु
१५ ब्रह्मयज्ञादन्यत्र चरितार्थः । तस्मात्तादृशी श्रुतिर्भूय्या ” इति ।

तथा स्मृतिरन्नावल्याम्—

“ देवतार्चनमंत्राणां नानध्यायः सदा स्मृतः । संकल्पितानां मंत्राणां वैदिकानां तथैव च ॥

“ नानध्यायनिरोधोऽस्ति जपकर्मणि सर्वदा । नित्ये जपे च काम्ये च क्रतौ पारायणे तथा ॥

“ नानध्यायोऽस्ति वेदानामंगाभ्यासे तथैव च ” ॥ इति । संकल्पितानां रुद्रैकादशिनीं पुरुषसूक्त-

- २० महं नित्यं जपिष्यामीति संकल्पितवैदिकमंत्राणां जपे ब्रह्मयज्ञादौ च नास्त्यनध्याय इत्यर्थः ।
आपस्तंबोऽपि (१।४।१२।९) — “विद्यां प्रत्यनध्यायः श्रूयते । न कर्मयोगे मन्त्राणाम्” इति ।
विद्यां प्रत्येव ग्रहणधारणाध्ययनं प्रत्येवानध्यायः । न पुनर्ब्रह्मयज्ञाग्निहोत्रादिकर्मयोगे मन्त्राणा-
मित्यर्थः । न च कर्मयोगेऽनध्यायनिषेध एकदेशविषयतया चरितार्थ इति वाच्यम् । अग्नि-
होत्रमंत्राणामप्येकदेशाध्ययनप्रसक्तेः । अतो नित्यप्रश्नाध्यायिनो नानध्याये निवृत्तिः । अनियता-
२५ ध्यायिनस्तु एकदेशाध्ययनमित्याहुः । आत्मदेशयोरशुचित्वे ब्रह्मयज्ञो वर्जनीयः । तथा
च श्रुतिः (सहवै २।१५ पृ. १५३) — “ तस्य वा एतस्य यज्ञस्य द्वावनध्यायौ यदात्माऽ-
शुचिर्यज्ञैः ” इति । ब्रह्मयज्ञोऽयं नित्यः ।

“ अग्निकार्यपरिभ्रष्टः पण्डितः परिकीर्तितः । ब्रह्मयज्ञविहीनश्च ब्रह्महा कीर्तितो बुधैः ” ॥ इति प्रत्य-
वायस्मृत्ये । “ एतत्तं योऽनूत्सृजत्यभागो वाचि भवत्यभागो नाके ” इति श्रुतेश्च (सहवै

- १० २।१५ पृ. १५४) । तमेतं स्वाध्यायमारभ्य योऽनुत्सृजति पश्चात् त्यजति तस्य वाचि
अभागो भवति फलं न भवति । अत एव नाकेऽपि अभागो भवतीत्यर्थः ।

ब्रह्मयज्ञं प्रशंसति श्रुतिः (सहवै २।१४, १५ पृ. १५२; १५३) — “ उत्तमं नाकं गेहहृत्युत्तमः
समानानां भवति यावंतं वा इमां विनश्य पूर्णा दृढस्वर्गं लोकं जयति तावंतं लोकं
जयति भूया-सं चाक्षय्यं चापपुनर्भूत्युं जयति ब्रह्मणः सायुज्यं गच्छति ” ॥ “ अरण्ये ग्रामे वा

- ३५ यावंतं रमन् स्वाध्यायमधीत सर्वान् लोकान् जयति सर्वान् लोकान् वृणोऽनुमंचरति इति च ।

“ यं यं क्रतुमधीति तेन तेनास्त्रेष्ट भवत्यग्नेर्वायोगादित्यस्य सायुज्यं गच्छति ” इति (पृ. १५३) च ।

काम्यब्रह्मयज्ञाध्ययनफलमाह याज्ञवल्क्यः (आचारे ४१-४८)—

“ मधुना पयसा चैव स देवांस्तर्पयेत् द्विजः । पितृन्मधुघृताभ्यां च ऋचोऽधीते हि योऽन्वहम् ॥

“ यजुंषि शक्तितोऽधीते योऽन्वहं स घृतामृतैः । प्रीणाति देवानाज्येन मधुना च पितृस्तथा ॥

“ स तु सोमघृतैर्देवांस्तर्पयेद्योऽन्वहं पठेत् । सामानि वृत्तिं कुर्याच्च पितृणां मधुसर्पिषा ॥

“ मेदसा तर्पयेद्देवानथर्वागिरसः पठन् । पितृंश्च मधुससर्पिर्भ्यां अन्वहं शक्तितो द्विजः ॥ ५

“ वाकोवाक्यं पुराणं च नाराशंसीश्च गाथिकाः । इतिहासांस्तथा विद्याः शक्त्याधीते हि योऽन्वहम् ॥

“ मांसक्षीरौदनमधुतर्पणं सदिवौकसाम् । करोति वृत्तिं कुर्याच्च पितृणां मधुसर्पिषा ॥

“ ते वृत्तास्तर्पयंत्येनं सर्वकामफलैः शुभैः । यं यं क्रतुमधीतेऽसौ तस्य तस्याप्नुयात्फलम् ॥

“ त्रिविक्तपूर्णपृथिवीदानस्य फलमश्रुते । तपसो यत् परस्येह नित्यं स्वाध्यायवान् द्विजः ” ॥ इति ।

वाकोवाक्यं प्रश्नोत्तररूपं वेदवाक्यम् । पुराणं ब्राह्मादि । चकारान्मानवादिधर्मशास्त्रम् । १०
नाराशंसी रुद्रदैवत्यान्मंत्रान् । गाथा यज्ञार्थेन्द्रगाथाद्याः । इतिहासान्भारतरामायणादीन् ।
विद्याः वारुण्याद्याः ।

श्रुतिरपि (सहवै २।१० पृ. १४४)—“ यदृचोऽधीते पयसः कूल्या अस्य पितृन्स्वधा अभिवहंति यद्यजुंषि घृतस्य कूल्या यत्सामानि सोम एभ्यः पवते यदथर्वाङ्गिरसो मधोः कूल्या यद्वाह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीर्मेदसः कूल्या अस्य पितृन्स्वधा- १५
अभिवहंति ” । “ यदृचोऽधीते पय आहुतिभिरेव तद्देवाःस्तर्पयति यद्यजुंषि घृताहुतिभि-
र्यत्सामानि सोमाहुतिभिर्यदथर्वागिरसो मध्वाहुतिभिर्यद्वाह्मणानीतिहासान्पुराणानि कल्पा-
न्गाथा नाराशंसीर्मेदाहुतिभिरेव तद्देवाःस्तर्पयति त एवं वृत्ता आयुषा तेजसा वर्चसा श्रिया
यशसा ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन च तर्पयन्ति ” इति च । पयसः कूल्याः पयः । परिपूर्णाः कूल्याः
अस्याध्येतुः । पितृन्स्वधारूपा आभिमुख्येन वहन्ति प्रवहन्ति । सुगममन्यत् । अत्र केचित् २०
ब्रह्मयज्ञे नित्ये काम्ये चाथर्वागिरसादिमंत्रजपं कुर्वन्ति । तत्र “ ये यज्ञेन दक्षिणया समता ” इति
वर्गद्वयमथर्वागिरसमंत्रः । “ चित्तिः... । पृथिवी होता । अग्निर्होता ” इत्यनुवाका ब्राह्मणमंत्रः
(चित्ति उ. नि १-३ पृ. १६८, १६९) । “ घृतं पिबन्ति मधु ते पिबन्ति सोमं पिबन्त्यमृतेन
सार्धं मृत्योः परस्तादमृता भवन्ति ये ब्राह्मणा ब्रह्मचर्यं चरन्ति ” इति इतिहासमंत्रः ।

“ परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् । धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ” ॥ इति २५
श्लोकः पुराणम् । “ अथातो दर्शपूर्णमासौ व्याख्यास्याम ” इति कल्पः । तदेष्टा हि यज्ञगाथा गीयते ।

“ वैश्वानरीं व्रातवतीं पवित्रेष्टिं तथैव च । क्रतावृतौ प्रयुञ्जानः पुनाति दश पूरुषम् ” ॥
इति गाथामंत्रः ॥ ‘ इदं जना उपश्रुत नाराशंसीः श्रवस्यते । षष्टिं सहस्रा नवतिं च गौरव आ
दशमेष्टु दध्नहोमी ’ इति नाराशंसमंत्रः । ततः ‘ तच्छंथोरावृणीमहे ’ इति शान्तिं पठन्ति ।
अयज्ञो वा एषः योऽपत्नीकः ।

३०

“ पंच कृप्ता महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम् । पंचसूना गृहस्थस्य वर्ततेहरहः सदा ॥

“ एतासां पावनार्थाय पंचयज्ञाः प्रकल्पिताः ” ॥ इत्यादिभिः पंचमहायज्ञांत.पातिनो ब्रह्मयज्ञस्य
गृहस्थाधिकारित्वावगमेऽपि ब्रह्मचारिभिरपि कर्तव्यः ।

“सायंप्रातश्चाग्निकार्यं यथाशक्ति जितेन्द्रियः । कुर्यात्प्रातिदिनं वर्णां ब्रह्मयज्ञं च तर्पणम् ॥” इति विशेषस्मरणात् । वसिष्ठः—

“ऋक्सामाथर्ववेदोक्तान् जपेन् मंत्रान्यजूंषि च । जपित्वैवं ततः कुर्याद्देवर्षिपितृतर्पणम्” ॥ इति । तर्पणं तु यथास्वशासं द्रष्टव्यम् । तच्चाग्रे वक्ष्यते । इति ब्रह्मयज्ञविधिः ।

- ५ अथ द्वितीयभागकृत्यम् । अथाष्टधा विभक्तस्य दिवसस्य प्रथमभागकृत्यमुक्त्वा द्वितीयभागकृत्यमाह दक्षः (२।२५)—“द्वितीये तु यथाभागे वेदाभ्यासो विधीयते” ॥ इति । कूर्मपुराणेऽपि (उ. १८।५२-५४)—“वेदाभ्यासं ततः कुर्यात्प्रयत्नाच्छक्तितो द्विजः ॥ ५२ ॥ “जपेद्दद्यापयेच्छिष्यान् धारयेद्देविचारयेत् । अवक्षेते च शास्त्राणि मन्वादीनि द्विजोत्तमः ॥ ५३ ॥ “वैदिकांश्चापि नियमान्वेदांगानि च सर्वशः” ॥ ५४ ॥ इति ।

१० व्यासः—

“नान्यतो ज्ञायते धर्मो वेदादेवैष निर्वभौ । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन धर्मार्थं वेदमाश्रयेत्” ॥

याज्ञवल्क्यः (आ. ९९)—

“हुत्वाऽग्निं सूर्यदेवत्यान् जपेन्मंत्रान्समाहितः । वेदार्थानधिगच्छेच्च शास्त्राणि विविधानि च” ॥ इति । तस्मिन्नेव भागे कृत्यांतरमाह दक्षः (२।२८)—“समित्पुष्पकुशादीनां स कालः समुदाहृतः” इति ।

१५ चंद्रिकायाम्—

“संध्या सावित्री होमाश्च पूर्वस्मिन्भाग एव तु । वेदाभ्यासो द्वितीयांशे समित्पुष्पकुशाहतिः” ॥

स्मृत्यंतरे—

“तथार्युण्यहितार्थाय स्वाध्यायं किञ्चिदाचरेत् । कुशपुष्पेधनादीनि गत्वा दूरं समाहरेत्” ॥

संवर्त्तः—“समित्पुष्पकुशादीनि श्रोत्रियः स्वयमाहरेत्” इति ।

२० संग्रहे—

“शूद्राहृतानि पुष्पाणि क्रयक्रीतानि यानि च । पारक्याणि च पुष्पाणि लब्धान्यर्हाणि नार्चने ॥

“उत्तमं स्वार्जितं पुष्पं मध्यमं वन्यमुत्तरे । अधमं तु क्रयक्रीतं पारक्यं त्वधमाधमम् ॥

“त्याज्यं पर्युषितं जन्तुदूषितं पादलंघितम् । म्लानं स्पृष्टं तथास्पृश्यैर्नातं च प्रतिलोमजैः ॥

“हस्तानीतं पटानीतं स्वयंपतितमेव वा । देवाराभोद्भवं पुष्पं गृहदेवाय नार्चयेत्” ॥

२५ आश्वमेधिके—

“अर्कपुष्पाणि चान्यानि अर्कपत्रस्थितानि च । निर्गंधानि च पुष्पाणि सर्वाण्येतानि वर्जयेत् ॥

“क्रीटके शापविद्धानि शीर्णपर्युषितानि च । स्वयंपतितपुष्पाणि त्यजेदुपहतानि च” ॥

स्मृतिरत्ने—

“जन्तुजानां च सर्वेषां पात्राणामहतस्य च । कुशपुष्पस्य रजतसुवर्णकृतयोरपि ॥

३० “न पर्युषितोपोऽस्ति तीर्थतोयस्य चैव हि” ॥

मौढिल्यः—“उज्ज्वलकायुतं तोयमस्नेहान्तं तथोदनम् । असूत्रग्रथितं पुष्पं सर्वं पर्युषितं भवेत् ॥

“वर्ज्यं पर्युषितं चान्नं वर्ज्यं पर्युषितं जलम् । न वर्ज्यं जान्तुवीतोयं न वर्ज्यं तुलसीदलम् ॥

“उज्ज्वले च इष्टे च मन्वादिषु युगादिषु । नाह्नेस्तुलसीपत्रं मध्याह्नात् पग्नोऽहनि ॥

“मंत्रान्यां पक्षयोगे द्वादश्या निशि मध्ययोः । तुलसीं यं विचिन्वति ते कृतंति हरेः शिरः” ॥

भारते—

“तुलसीपत्रमादाय मद्भक्तो गतवान्यतः । तमेवानुगमिष्यामि यथा गौर्वत्सला तथा ॥

तुलस्याहरणमंत्रः

“तुलस्यमृतसंभूते सदा त्वं केशवप्रिये । केशवार्थं लुनामि त्वां वरदा भव शोभने ॥

“मोक्षैकहेतोर्धरणिप्रसूते विष्णोः समस्तस्य गुरोः प्रियं ते ॥

“आराधनार्थं पुरुषोत्तमस्य लुनामि पत्रं तुलसि क्षमस्व ॥

“प्रसीद मम देवेशि प्रसीद हस्विल्लभे । क्षीरोदमथनोद्भूते तुलसि त्वं प्रसीद मे ॥

कुशोत्पाटनविधिः प्रसंगात्पूर्वमेवोक्तः । इति द्वितीयभागकृत्यम् ।

अथ तृतीयभागकृत्यम् । तृतीयभागकृत्यमाह दक्षः (२।२८)—“तृतीये च तथा भागे पोष्यवर्गार्थसाधनम्” इति । व्यासोऽपि (३।३६-३७)—

“उपेयादीश्वरं चाथ योगक्षेमार्थसिद्धये । साधयेद्विततानर्थान् कुटुंबार्थं द्विजोत्तमः” ॥

ईश्वरं राजानम् । अलब्धलाभो योगः । लब्धपरिपालनं क्षेमः । हारीतः—

“संचिंत्य पोष्यवर्गस्य भरणार्थं विचक्षणः । ईश्वरं चैव कार्यार्थमभिगच्छेत् द्विजोत्तमः” ॥ इति ।

गौतमोऽपि (९।६३-६४) “योगक्षेमार्थमीश्वरमधिगच्छेत् । नान्यमन्यत्र देवगुरुयाज्ञिकेभ्यः” ॥ इति ।

मनुः (४।३)—

“यात्रामात्रप्रसिद्ध्यर्थं स्वैः कर्मभिरगर्हितैः । अक्लेशेन शरीरस्य कुर्वीत धनसंचयम्” ॥ इति ।

स्मृतिरत्ने—

“अन्होऽष्टधा विभक्तस्य भागे चैव तृतीयके । पोष्यवर्गार्थसिद्धयर्थं धनमिच्छेत्तु बुद्धिमान्” ॥ इति ।

पोष्यवर्गो दक्षेण दर्शितः (२।२९-३२)—

“माता पिता गुरुभार्या प्रजा दासः स्वमाश्रितः । अभ्यागतोऽतिथिश्चाग्निः पोष्यवर्ग उदाहृतः ॥ २०

“ज्ञातिर्बन्धुजनः क्षीणस्तथानाथः समाश्रितः । अन्योऽपि धनहीनस्तु पोष्यवर्ग उदाहृतः ॥

“भरणं पोष्यवर्गस्य प्रशस्तं स्वर्गसाधनम् । नारकं पीडनं तस्य तस्माद्यत्नेन तान्भरेत् ॥

“स जीवति य एवैको बन्धुभिश्चोपभुज्यते । जीवंतोऽपि मृतास्त्वन्ये पुरुषाः स्वोदरंभराः” ॥ इति ।

अथ चतुर्थभागकृत्यम् । दक्षः—

“चतुर्थे तु तथा भागे स्नानार्थं मृदमाहरेत् । तिलपुष्पकुशादीनि स्नानं चाकृत्रिमे जले” ॥ इति । २५

मध्यान्हस्नानविधिस्तु प्रसंगात्पूर्वमेव निरूपितः । मध्यान्हसंध्याविधीनाह शंखः—

“प्रातःसंध्यां सनक्षत्रां मध्यमां स्नानकर्मणि । सादित्यां पश्चिमां संध्यामुपासीत यथाविधि ॥

“आपोहिष्ठेति संप्रोक्ष्य तृचेनाब्दैवतेन तु । आपः पुनंतु मंत्रेण पीत्वापो मार्जयेत्पुनः ।

“दधिक्राव्ण इति च आपो हिष्ठादिभिस्तथा । प्रदक्ष्णं परिपिच्य त्वारभेच्छ्रुतिचोदितम् ॥

“अर्घ्यमेकं प्रदातव्यं मध्यान्हे भास्करं प्रति । पाणिना जलमादाय सकृत्कुर्यात् प्रदक्षिणम्” ॥ ३३

“दर्भान् धारयमाणः सन्नात्मनो ध्यानमाचरेत् । आदित्यादीन् ग्रहांस्तत्र तर्पयेत्सुसमः” ॥

“अथ मध्यमसंध्यायामासीनः प्राङ्मुखो जपेत् । स्थितो जपेत्सद्राकालमादित्यामित्युक्ते” ॥

“यदि स्यात्क्लिन्नवासा वै वारिमध्यस्थितो जपेत् । सहस्रपरमां देवीं शतमन्त्रैश्च” ॥

“गायत्रीं तु यथाशक्ति जपेदव्यग्रमानसः । स्वशास्त्राविहितमंत्रैर्गदित्यमुण्ति” ॥

“प्रदर्शयन्योगमुद्रामासत्येनेतिमंत्रकम् । स्थितां जगद्गुर्ववाहुः सूर्यं पश्यन्नाहरेत्” ॥ ३४

योगयाज्ञवल्क्यः—

“आसत्यर्क्षु च पूर्वे द्वे त्रिष्टुभौ कवयो विदुः । गायत्री तु तृतीया स्याच्चतुर्थी जगती तथा ॥
“उष्णिक् तच्चक्षुराद्यस्य छंद इत्युच्यते बुधैः । हिरण्यस्तूप इत्येष ऋषिर्देवोऽत्र भास्करः ” ॥

सरद्धाजः—

५ “उपस्थाय नमस्कुर्वाच्चतुःसंध्यादिदेवताः । दिशश्च साधिपा नत्वा गुरुनप्यभिवादयेत्” ॥ इति ।
प्रातर्होमानंतरं ब्रह्मयज्ञाकरणे माध्याह्निकजपानंतरं तर्पणात्प्राक् ब्रह्मयज्ञैः कार्यः । “स चार्वाक्-
तर्पणात्कार्यः ” इति स्मृतेः ।

मध्याह्ने ब्रह्मयज्ञानंतरं तर्पणं कार्यम् । तथा च व्यासः—

“आचम्य च यथाशास्त्रं शक्त्या स्वाध्यायमाचरेत् । ततः संतर्पयेद्देवान्पितृवृषिगणांस्तथा ॥
१० “आदावोकारमुच्चार्य नामांते तर्पयामि च । देवान्ब्रह्मऋषींश्चैव तर्पयेदक्षतोदकैः ॥
“तिलोदकैः पितृन्भक्त्या स्वसूत्रोक्तविधानतः । यज्ञोपवीतीं देवानां निवीतीं ऋषितर्पणे ॥
“प्राचीनावीतीं पित्र्ये तु स्वेन तीर्थेन भावितः ” ॥
चंद्रिकायाम्—“सार्धयामादूर्ध्वं मध्याह्नः तत्र माध्याह्निकानंतरं नित्यतर्पणं कुर्यात् । तच्च
देवर्षिपितृतर्पणमिति ” । माधवीये—

१५ “प्रागग्रेषु सुरांस्तर्पयेन्मनुष्यांश्चैव मध्यतः । पितृस्तु दक्षिणाग्रेषु चैकद्वित्रिजलांजलीन्” ॥ इति ।

व्यासः—

“एकैकमंजलिं देवा द्वौ द्वौ तु सनकादयः । अश्रंति पितरस्त्रींस्त्रीन्त्रियश्चैकैकमंजलिम् ” ॥ इति ।
विष्णुपुराणे (३।१।२७-२८)—

“त्रिरपः प्रीणनार्थाय देवानामपवर्जयेत् । तथर्षीणां यथान्यायं सकृच्चापि प्रजापतेः ॥

२० “पितृणां प्रीणनार्थाय त्रिरपः पृथिवीपते” ॥ इति । अत्रांजलिसंख्या यथाशास्त्रं व्यवतिष्ठते ।

यत्र शाखायां न संख्यानियमः श्रुतः तत्र विकल्प इति माधवीये । शंखालिखितौ—

“उभाभ्यामपि हस्ताभ्यां प्राङ्मुखो यज्ञोपवीतीं प्रागग्रैः कुशैर्देवतातर्पणं देवतीर्थेन कुर्यात्” इति ।

विष्णुरपि—“ततः कृत्वा निवीतं तु यज्ञसूत्रमतंद्रितः ।

“प्राजापत्येन तीर्थेन मनुष्यांस्तर्पयेद्व्रती । प्राचीनावीतीं पित्र्येण पितृंस्तीर्थेन तर्पयेत्” ॥ इति ।

२५ पैठीनासिः—

“अपसव्यं ततः कृत्वा स्थित्वा च पितृदिङ्मुखः पितृन् दिव्यान् दिव्यांश्च पितृतीर्थेन तर्पयेत्” ॥ इति ।
दिव्या वसुन्द्रादित्याः । अदिव्याः पित्रादयः । हारीतः—

“वसित्वा वसनं शुष्कं स्थले चास्तीर्णवर्हिषि । विधिज्ञस्तर्पणं कुर्यान्न पात्रेषु कदाचन ॥

“पात्राद्वा जलमादाय शुभे पात्रांतरे क्षिपेत् । जलपर्णेऽथ वा गर्त्ते न स्थले हीनवर्हिषि ॥

३० “केशभस्मत्पांगारकटकान्धिसमाकुलम् । भवेन्महीतलं यस्माद्वर्हिषास्तरणं ततः ” ॥ इति ।

स्थलस्थो नोदके कुर्यात् । तद्वाह गोभिलः—

“नोदकेषु न पात्रेषु न कृद्धो नैरुपाणिना । नोपातिष्ठति तत्तोयं यन्न भूमौ प्रदीयते ” ॥ इति ।

विष्णुः—

“स्थले स्थित्वा जले यस्तु प्रयच्छेदुदकं नरः । नोपतिष्ठति तत्तोयं यन्न भूमौ प्रदीयते” ॥ इति यत्तु कार्णार्जिनिनोक्तम्— “देवानां च पितॄणां च जले दद्याज्जलांजलिम्” इति । तदशुद्धस्थलविषयं स्नानांगतर्पणविषयं च । तदाह विष्णुः—

“यत्राशुचि स्थलं वा स्यादुदके देवताः पितॄन् । तर्पयेत्तु यथाकामं अप्सु सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ ५

“स्नातश्चासावार्द्रवासा देवर्षिपितृतर्पणम् । अंभस्थ एव कुर्वीत” ॥ इति ।

पितामहः—“पात्राद्वा जलमादाय शुभे पात्रांतरे क्षिपेत् ।

“हेमरूप्यमयं पात्रं ताग्रं कांस्यसमुद्भवम् । पितॄणां तर्पणे पात्रं मृन्मयं तु परित्यजेत्” ॥

मरीचिः—

“सौवर्णेन च पात्रेण ताम्ररूप्यमयेन वा । औदुम्बरेण खड्गेण पितॄणां दत्तमक्षयम्” ॥ १०

माधवीये—

“खड्गमौक्तिकहस्तेन कर्तव्यं पितृतर्पणम् । मणिकांचनदर्भैर्वा नाशुद्धेन कदाचन” ॥ इति ।

मरीचिः—

“विना रूप्यसुवर्णेन विना ताम्रतिलैस्तथा । विना मंत्रैश्च दर्भैश्च पितॄणां नोपतिष्ठते ॥

“तिलानामप्यभावे तु सुवर्णरजतानि तु । तदभावे निषिचेत्तु दर्भैर्मंत्रेण वा पुनः” ॥ इति । १५

तिलग्रहणे विशेषमाह योगयाज्ञवल्क्यः—

“यद्युद्धृतान्निषिचेत्तु तिलान्संमिश्रयेज्जये । अतोऽन्यथा तु सव्येन तिला ग्राह्या विचक्षणैः” ॥ इति ।

एतदलोमकप्रदेशाभिप्रायम् । तथा च देवलः—

“अंगुष्ठमूलदेशे तु वामहस्तस्य निक्षिपेत् । तत्तिलं पूतपुण्यं स्यात्तत्तोयममृतं भवेत् ॥

“शिलातले पटे पात्रे रोमस्थानेषु कुत्रचित् । तत्तिलं क्रिमितुल्यं स्यात्तत्तोयं रुधिरं भवेत् ॥ २०

“रोमसंस्थांस्तिलान् कृत्वा यस्तु तर्पयते पितॄन् । पितरस्तर्पितास्तेन रुधिरेण मलेन च” ॥ इति ।

तिलग्रहणे तर्जन्यंगुष्ठयोगो वर्जयेत् । दक्षिणांगुष्ठेनैवांजलौ तिलान्प्रक्षिपेत् । तथा स एव—

“तर्जन्यंगुष्ठसंयोगो राक्षसीमुद्रिकास्तथा । तथा तिलान्न गृह्णीयाद्दक्षांगुष्ठेन निक्षिपेत्” ॥

स एव—“शुक्लैस्तु तर्पयेद्देवान्मनुष्यान् शबलैस्तिलैः । पितॄन्संतर्पयेत्कृष्णैर्देवर्षीनपि वाऽक्षतैः” ॥

तिथ्यादिविशेषे तिलतर्पणं निषेधति स एव—

“सप्तम्यां रविवारे च गृहे जन्मदिने तथा । भृत्यपुत्रकलत्रार्थी न कुर्यात्तिलतर्पणम्” ॥ इति ।

संग्रहे—

“अर्कशुक्लत्रयोदश्यामष्टम्यां च त्रिजन्मसु । तर्पयेद्यस्तिलैर्मिश्रं तत्तोयं रुधिरं भवेत् ॥

“पक्षयोरुभयोश्चैव सप्तम्यां निशि संध्ययोः । विद्यापुत्रकलत्रार्थी तिलान्पंचसु वर्जयेत्” ॥

बोधायनः—

“सप्तम्यां रविवारे च जन्मर्क्षदिवसेषु च । गृहे निषिद्धं सतिलं तर्पणं तद्गृहिर्भवेत् ॥

“यद्यशक्तो गृहे कुर्यात्तर्पणं सतिलं तदा । तिलान्प्रक्षिप्य पात्रस्थे जले व्यामिश्रितैस्तिलैः ॥

“पात्रांतरे क्षिपेदत्र मृन्मयं तु विवर्जयेत् । विवाहे चोपनयने चोले सति यथाक्रमम् ॥

“वर्षमर्धं तदर्धं च नैत्यिके तिलतर्पणम् । तिथितीर्थविशेषेषु कार्यं प्रेतेषु सर्वथा ॥

“तीर्थे तिथिविशेषे च प्रेतस्नाने तथैव च । निषिद्धेऽपि तथा कुर्यात्तंडुलैः सह तर्पणम्” ॥ इति । ३५

स एव—“ न जीवपितृकः कृष्णैस्तिलैस्तर्पणमाचरेत् ” ॥ सत्यव्रतः—

“ कृतोपवीती देवेभ्यो निवीती च भवेत्ततः । मनुष्यांस्तर्पयेद्भक्त्या ब्रह्मपुत्रानृषींस्तथा ॥

“ अपसव्यं ततः कृत्वा सव्यं जान्वाच्य भूतले । दर्भपाणिस्तु विधिना पितृन्संतर्पयेत्ततः ” ॥ इति ।

योगयाज्ञवल्क्योऽपि—

५ “ ब्रह्माणं तर्पयेत्पूर्वं विष्णुं रुद्रं प्रजापतिम् । वेदान् छंदांसि देवांश्च ऋषींश्चैव तपोधनान् ॥

“ आचार्याश्चैव गंधर्वाणाचार्यतनयांस्तथा । संवत्सरं सावयवं दैवीरप्सरसस्तथा ॥

“ देवानुगानपि तथा सनागान्पर्वतानपि । सरितोऽथ मनुष्यांश्च यक्षान् रक्षांसि चैव हि ॥

“ पिशाचांश्च सुपर्णांश्च भूतान्यथ पशून्स्तथा । वनस्पतीनोषधींश्च भूतग्रामांश्चतुर्विधान् ॥

“ सव्यं जानु ततोन्वाच्य पाणिभ्यां दक्षिणामुखः । तद्धिगैस्तर्पयेन्मंत्रैः सर्वान्पितृगणांस्तथा ॥

१० “ मातामहांश्च सततं श्रद्धया तर्पयेत् द्विजः ” ॥ इति । यजुःशाखिनां कांडऋषितर्पणमुक्तम्—

“ अथ कांडऋषीनेतानुदकांजलिभिः शुचिः । अव्यग्रस्तर्पयेन्नित्यं मंत्रैरेव स्वनामभिः ” ॥ इति ।

गृह्यवृत्तौ—“ पवित्रपाणिर्नव ऋषींस्तर्पयति । प्रजापतिं कांडऋषिं तर्पयामि । सोमं कां० अग्निं कांड० विश्वान् देवान्कांड० सांहितीर्देवता उपनिषदस्तर्पयामि । याज्ञिकीर्देव० वारुणीर्देवता० ब्रह्माणं स्वयंभुवं तर्पयामि । सदसस्पतिं तर्पयामि ” । शौनकोऽपि—“ अग्निर्विष्णुः प्रजापतिरित्यादि ” ।

१५ योगयाज्ञवल्क्यः—“ वसून् रुद्रांस्तथादित्यान्मर्माकारसमन्वितम् ” ॥ इति । तर्पयेदिति शेषः ।

वस्वादीनां नामानि पैठीनसिना दर्शितानि—

“ ध्रुवो धर्मश्च सोमश्च आपश्चैवानिलोऽनलः । प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिताः ॥

“ अजैकपादहिर्बुध्न्यो विरूपाक्षोऽथ भैरवः । हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्च सुरेश्वरः ॥

“ सावित्रश्च जयंतश्च पिनाकी चापराजितः । एते रुद्रा समाख्याता एकादश सुरोत्तमाः ॥

२० “ इंद्रो धाता भगः पूषा मित्रोऽथ वरुणोऽर्यमा । अर्चिर्विवस्वांस्त्वष्टा च सविता विष्णुरेव च ॥

“ एते वै द्वादशादित्या देवानां प्रवरास्तथा । एते च दिव्याः पितरः पूज्याः सर्वे प्रयत्नतः ” ॥ इति ।

योगयाज्ञवल्क्यः—

“ सवर्णेभ्यो जलं देयं नासवर्णेभ्य एव च । गोत्रनामस्वधाकारैस्तर्पयेदनुपूर्वशः ” ॥

नामग्रहणे विशेषमाह बोधायनः (गृह्यशेषसू. १।११।९)

२५ “ शर्मातं ब्राह्मणस्योक्तं वर्मातं क्षत्रियस्य तु । गुप्तातं चैव वैश्यस्य दासातं शूद्रजन्मनः ” ॥ इति ।

सत्यव्रतः—

“ पितृभ्यः प्रत्यहं दद्यात्ततो मातृभ्य एव च । ततो मातामहानां च पितृव्यस्य सुतस्य च ” ॥ इति ।

हारीतोऽपि—

“ पित्रादीन् मात्रादीन् मातामहादीन्पितृव्यांस्तत्पत्नीज्येष्ठभातृन् तत्पत्नीर्मातुलं तत्पत्नी

३० गुर्वीचार्योपाध्यायान्सहस्रबंधिवांधवान् द्रव्यान्नदावृषोपकनिर्धनांस्तत्पत्नीश्च तर्पयेत् ” इति ।

बोधायनः (ध. सू. २।५।१६-३१)—“ अग्निः प्रजापतिः सोमो रुद्रोद्विती बृहस्पती

सर्पा इत्येतानि प्राग्द्वाराणि देवतानि सनक्षत्राणि सग्रहाणि साहोरात्राणि समुहूर्तानि

तर्पयामि । ॐ वसुंस्तर्पयामि । पितरोऽर्यमा भगः सविता त्वष्टा वायुर्गिन्द्राग्नि इत्येतानि

दक्षिणद्वाराणि देवतानि सनक्षत्राणि सग्रहाणि साहोरात्राणि समुहूर्तानि तर्पयामि ।

३५ रुद्रांश्च तर्पयामि । मित्र इन्द्रो महापितर आपो विश्वेदेवा ब्रह्मा विष्णुरित्येतानि

प्रत्यग्द्वाराणि दैवतानि सनक्षत्राणि सग्रहाणि साहोरात्राणि समुहूर्तानि तर्पयामि । आदित्यांश्च तर्पयामि । वसवो वरुणा अज एकपादहिर्बुध्न्यः पूषा अश्विनौ यम इत्येतानि उदग्द्वाराणि देवतानि सनक्षत्राणि सग्रहाणि साहोरात्राणि समुहूर्तानि तर्पयामि । साध्यांश्च तर्पयामि । ब्रह्माणं तर्पयामि । प्रजापतिं तर्पयामि । परमेष्ठिनं हिरण्यगर्भं चतुर्मुखं स्वयंभुवं ब्रह्मपारिषदान् ब्रह्मपारिषदींस्तर्पयामि । अग्निं वायुं वरुणं सोमं सूर्यं चंद्रमसं नक्षत्राणि सद्योजातमोभूः पुरुषमो भुवः ५ पुरुषमो सुवः पुरुषमो भूर्भुवः स्वः पुरुषमो भूस्तर्पयामि । ॐभूः ॐभुवः ॐसुवः ॐमहः ॐजनः ॐतपः ॐसत्यम् । ॐभवं देवं शिवं देवमीशानं देवं पशुपतिं देवं रुद्रं देवं उग्रं देवं भीमं देवं महांतं देवं भवस्य देवस्य पत्नीं शर्वस्य देवस्य पत्नीं ईशानस्य देवस्य पत्नीं पशुपतेर्देवस्य पत्नीं रुद्रस्य देवस्य पत्नीं उग्रस्य देवस्य पत्नीं भीमस्य देवस्य पत्नीं महतो देवस्य पत्नीं भवस्य देवस्य सुतं शर्वस्य देवस्य सुतमीशानस्य देवस्य सुतं पशुपतेर्देवस्य सुतं रुद्रस्य देवस्य १० सुतं उग्रस्य देवस्य सुतं भीमस्य देवस्य सुतं महतो देवस्य सुतं तर्पयामि । रुद्रांस्तर्पयामि । रुद्रपारिषदान् रुद्रपारिषदींस्तर्पयामि । सनत्कुमारं स्कन्दमिंद्रं जयंतं षण्मुखं विशाखं महासेनं स्कंदपारिषदांस्कंदपारिषदींस्तर्पयामि । विघ्नं तर्पयामि । विनायकं वीरं शूरं वरदं हस्तिमुखं वक्रतुंडं लंबोदरमेकदंतं विघ्नपारिषदान्विघ्नपारिषदींस्तर्पयामि । केशवं नारायणं माधवं गोविंदं विष्णुं मधुसूदनं त्रिविक्रमं वामनं श्रीधरं हृषीकेशं पद्मनाभं दामो- १५ दं श्रियं देवीं पुष्टिं देवीं तुष्टिं देवीं सरस्वतीं देवीं विष्णुपारिषदान्विष्णुपारिषदींस्तर्पयामि । वैनतेयं कालं नीलं मृत्युमंतकं यमं धर्मराजं चित्रगुप्तं वैवस्वतं वैवस्वतपारिषदान्वैवस्वतपारिषदींस्तर्पयामि । भरद्वाजं गौतमं विद्यामन्निर्मांगिरसं दुर्गाज्येष्ठं धन्वंतरिं धन्वन्तरिपारिषदान् धन्वन्तरिपारिषदींस्तर्पयामि ।

अथ निवीती भूत्वा ऋषींस्तर्पयामि । महर्षीन्परमर्षीन् ब्रह्मर्षीन् देवर्षीन्राजर्षीन्वैश्यऋषी- २० न्सुतर्षीन्श्रुतर्षीन्जनर्षीन्तपर्षीन्सत्यऋषीन्सप्तर्षीन्काण्डऋषीन्ऋषीन् ऋषिपत्नीः ऋषिपुत्रानृषिपौत्रान्कण्वं बोधायनमापस्तंबं सूत्रकारं सत्याषाढं हिरण्यकेशिनं वाजसनेयिनं याज्ञवल्क्यं आश्वलायनं शौनकं व्यासं वसिष्ठं प्रणवं व्याहृतीः सावित्रीं गायत्रीं छंदांसि ऋग्वेदं यजुर्वेदं सामवेदमथर्ववेदमथर्वांगिरस इतिहासपुराणानि सर्वदेवजनान् सर्वभूतानि तर्पयामि ।

अथ प्राचीनावीती-पितृन्स्वधा नमस्तर्पयामि पिताम० प्रपितामहान्स्व०मातृः स्व० २५ पितामहीः स्व०मि प्रपितामहीः स्व०मि मातामहान्स्व०मि मातुः पितामहान्स्व०मातुः प्रपितामहान्स्व०मि मातामहीः मातुःपितामहीः मातुःप्रपितामहीः स्व०मि । आचार्यन्स्व०मि आचार्यपत्नीः स्व०मि गुरुन्गुरुपत्नीः स्व०मि सखीन्स्व०मि सखिपत्नीःस्व०मि ज्ञातीन्स्व०मि ज्ञातिपत्नीः स्व०मि अमात्याःस्व०मि अमात्यपत्नीः स्व०मि सर्वांस्व०मि सर्वाः०मि । इति । पितृतर्पणम् । अनुतीर्थमप उत्सिंचति “ऊर्जं वहंतीरमृतं घृतं पयः क्रीलालं परिमृतं स्वधा स्य ३” तर्पयत मे पितृन् तृप्यत तृप्यत तृप्यत ” इति । नार्द्रवासा नैकत्रो दैवानि कर्माण्यनुसंज्जे पितृन्संयुक्तानिवेत्येकेषाम् ” इति ।

जीवत्पितृकतर्पणे विशेषमाह योगयाज्ञवल्क्यः—

“कव्यवाहोऽनलः सोमो यमश्चैवार्यमा तथा । अग्निः—

“यदि स्याज्जीवपितृकस्तान्विद्याच्च तथा पितृन्—

विष्णुपुराणे (३।१।२९-३७)—

“ दद्यात्पित्र्येण तीर्थेन काम्यं चान्यच्छृणुष्व मे । मात्रे प्रमात्रे तन्मात्रे गुरुपत्न्यै तथा नृप ॥

“ गुरूणां मातुलादीनां स्निग्धमित्राय भूभुजे । इदं चापि जपन्नंबु दद्यादात्मेच्छया नृप ॥

“ उपकाराय भूतानां कृतं देवादितर्पणम् । देवासुरास्तथा यक्षा नागा गंधर्वराक्षसाः ॥

५ “ पिशाचा गुह्यकाः सिद्धाः कूर्मांडाः पशवः खगाः । जलेचरा भूनिलया वाय्वाहाराश्च जंतवः ॥

“ वृत्तिमेतेन यांत्वाशु मद्भक्तेनांनुनाखिलाः ।

“ नरकेषु समस्तेषु यातनासु च संस्थिताः । तेषामाप्यायनायैतद्दीयते सलिलं मया ॥

“ ये बांधवाबाधवा वा ये येऽन्यजन्मानि बांधवाः । ते वृत्तिमखिला यांतु यश्चास्मत्तोऽभिवांछति ॥

“ दत्त्वा काम्योदकं सम्यगेतेभ्यः श्रद्धयान्वितः । जगदाप्यायनाद्भूतं पुण्यमामोति मानवः ॥” इति ।

१० माधवीये—

“ यत्रक्वचनसंस्थानां क्षुत्तृष्णोपहतात्मनाम् । तेषां तु दत्तमक्षय्यमिदमस्तु तिलोदकम् ॥

“ ये मे कुले लुप्तपिण्डाः पुत्रदारविवर्जिताः । तेषां तु दत्तमक्षय्यमिदमस्तु तिलोदकम् ” ॥ इति ।

अवसनांजलिमाह कात्यायनः—“ पितृवंश्या मातृवंश्या ये चान्ये मत्त उदकमर्हति तास्तर्पयामि ” इति । विस्तरेण कर्तुमसमर्थस्य संक्षेपेण तर्पणमुक्तं माधवीये—

१५ “ आब्रह्मस्तंवपर्यंतं जगत्पुण्यत्विति ब्रुवन् । क्षिपेत्पयोजलींस्त्रींस्तु कुर्यात्संक्षेपतर्पणम् ” ॥ इति ।

तर्पणप्रशंसा दर्शिता तत्रैव—

“ एवं यः सर्वभूतानि तर्पयेदन्वहं द्विजः । स गच्छेत्परमं स्थानं तेजोमूर्तिरनामयम् ” ॥ इति ।

अकरणे प्रत्यवायोऽपि तत्रैव दर्शितः—

“ देवांश्चैव पितृंश्चैव मुनीन्यो वै न तर्पयेत् । देवादीनामृणी भूत्वा नरकं स व्रजत्यधः ” ॥ इति ।

२० कात्यायनः—“ छायां यथेच्छेच्छरदातपार्तः पयः पिपासुः क्षुधितोऽलमन्नम् ।

“ बालो जनित्रो जननीं च बालं योषित्पुमांसं पुरुषश्च योषाम् ॥

“ तथा सर्वाणि भूतानि चराणि स्थावराणि च । विप्रादुदकमिच्छंति सर्वेऽप्युदककांक्षिणः ॥

“ तस्मात्सदैव कर्तव्यमकुर्वन्महतैसा । युज्यते ब्राह्मणः कुर्वन्निश्वमेतद्विभर्ति हि ” ॥

हारीतोपि—

२५ “ देवता पितरश्चैव कांक्षंति सलिलांजलिम् । अदत्ते तु निराशास्ते प्रतियांति यथागतम् ” ॥ इति ।

अत्र पितृगाथा—

“ अपि नः स कुले भूयाद्यो नो दद्यांजलाञ्जलिम् । नदीषु बहुतोयासु शीतलासु विशेषतः ” ॥ इति ।

योगयाज्ञवल्क्योऽपि—

“ नास्तिक्यभावाद्यस्तांस्तु न तर्पयति वै पितृन् । पिबंति देहनिःस्रावं पितरोऽस्य जलार्थिनः ” ॥ इति ।

३० तर्पणातिक्रमे प्रायश्चित्तमुक्तं स्मृतिरत्ने—

“ अकृत्वा तर्पणं विप्रो यो भुंक्ते निग्नत्रपः । स्नात्वा संतर्पयेद्दिप्रान् इति शातातपोऽब्रवीत् ” ॥

यमतर्पणं वृद्धमनुनोक्तम्—

“ वीषोत्सवचतुर्दश्यां कार्यं तु यमतर्पणम् । कृष्णांगागश्चतुर्दश्यामपि कार्यं सदैव वा ॥

“ यमाय धर्मगजाय मृत्यवे चांतकाय च । वेवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च ॥

३५ “ औदुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने । वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै नमः ” ॥ इति ।

मनुः—

“चतुर्दशैते मंत्राः स्युः प्रत्येकं तु नमोऽन्विताः । एकैकस्य तिलैर्मिश्रांस्त्रींस्त्रींश्च कृत्वा जलांजलीन् ॥

“यावज्जीवकृतं पापं तत्क्षणादेव नाशयेत्” इति ॥ चंद्रिकायाम् (पृ. १९७ पं. २४)—

“कृष्णपक्षे चतुर्दश्यामंगारकदिनं यदा । तदा स्नात्वा शुभे तोये कुर्वीत यमतर्पणम्” ॥

वक्षः—

“कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां यां कांचित्सरितं प्रति । यमुनायां विशेषेण नियतस्तर्पयेद्यमम्” ॥ इति ।

नियमस्तु स्कंदपुराणे दर्शितः—

“दक्षिणाभिमुखो भूत्वा तिलैः सह समाहितः । देवतीर्थेन देवत्वात्तिलैः प्रेताधिपो यतः” ॥ इति ।

स्मृतिसारे—

“यज्ञोपवीतिना कार्यं प्राचीनावीतिनाऽथ वा । देवत्वं च पितृत्वं च यमस्यास्ति द्विरूपता” ॥ १०

तर्पणानंतरं जाप्यमंत्रोऽप्युक्तः—“यमो निहंता पितृधर्मराजो वैवस्वतो दंडधरश्च कालः ।

“प्रेताधिपो दत्तकृतानुसारी कृतांत एतद्दशकृज्जपंति ॥

“नीलपर्वतसंकाशो रुद्रकोपसमुद्भवः । कालो दंडधरो देवो वैवस्वत नमोऽस्तु ते” ॥ इति ।

एवं कुर्वतः फलमाह यमः—

“यत्रकचन नद्यां हि स्नात्वा कृष्णचतुर्दशीम् । संतर्प्य धर्मराजानं मुच्यते सर्वकिल्बिषैः” ॥ इति १५

माघशुक्लाष्टम्यां भीष्मतर्पणमाह व्यासः—

“शुक्लाष्टम्यां तु माघस्य दद्याद्भीष्माय योऽजलिम् । संवत्सरकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥

“वैयाघ्रपादगोत्राय सांकृतिप्रवराय च । गंगापुत्राय भीष्माय प्रदास्येऽहं तिलोदकम् ॥

“अपुत्राय ददाम्येतत्सलिलं भीष्मवर्मणे” इति । मन्वाद्यौ तर्पणमुक्तं कालादर्श—

“मन्वाद्यासु युगाद्यासु प्रदत्तः सलिलांजलिः । सहस्रवार्षिकीं तृप्तिं पितृणामावहेत्परां” ॥ इति । २०

मत्स्यपुराणेऽपि—“पानीयमप्यत्र तिलैर्विमिश्रं दद्यात् पितृणां प्रयतो मनुष्यः ॥

“श्राद्धं कृतं तेन समाः सहस्रं रहस्यमेतत्पितरो वदन्ति” इति ॥

बृहन्मनुः—

“आषाढीमवधिं कृत्वा पंचमं पक्षमाश्रिताः । कांक्षंति पितरः क्लिष्टा अन्नमप्यन्वहं जलम् ॥

“तस्मात्तत्रैव दातव्यं दत्तमन्यत्र निष्फलम् ।

“अमाष्टकासु संक्रांतौ पातादिग्रहणेषु च । स्नात्वोदकांजलीन् दत्त्वा ततः श्राद्धं समाचरेत् ॥

“यस्तर्पयेत्पितृन्प्रातः श्राद्धं कृत्वा परेऽहनि । पितरस्तस्य तृप्यन्ति न चेत्कुप्यन्ति वै भृशम् ॥

“एको वा बहवो वाऽपि पुत्राः पित्रोर्यथाविधि । कृत्वाब्दिकं तु तैः कार्यं परेऽहनि तिलोदकम् ॥

आब्दिकं प्रत्याब्दिकम् ।

“ब्राह्मे परेद्युस्तथाय स्नात्वा दत्त्वोदकांजलीन् । पुनः स्नात्वाब्दिकं सकृत्कर्माणि कुरुते द्विजः” ॥ ३०

“वृद्धिश्राद्धे तु सापिंड्ये प्रेतश्राद्धेऽनुमासिके । संवत्सरविमोके तु न कुर्यात्तिलतर्पणम्” ॥

संवत्सरविमोकं प्रथमाब्दिकम् । स्मृत्यंतरे—

“एकोद्दिष्टेषु सर्वेषु सपिंडीकरणे तथा । मासिकेष्वब्दिके चैव न कुर्यात्तिलतर्पणम् ।

“दर्शं तिलोदकं पूर्वं पश्चात्कुर्यान्महालये । प्रत्यब्दे प्रतिमासं च परेऽहनि तिलोदकम्” ॥

संग्रहे—“प्रत्यब्दं प्रतिमासं च परेऽहनि तिलोदकम्” ॥ प्रतिमासं मासिश्राद्धे ।

“पक्षे महालये श्राद्धे तर्पणं तु दिने दिने । सकृन्महालये श्राद्धे परेऽहनि तिलोदकम् ॥

“ पूर्वेषुः श्राद्धकृद्भिः प्रातः स्नात्वा परेऽहनि । संतर्पयेद्वाद्रवासास्तिलैरात्मापितृस्तथा ” ॥

स्मृत्यन्तरे—

“ महालयं चाह्निकं च यद्दिने तु समापयेत् । तद्दिने तिलतोयं तु कुर्याच्चेत्पितृघातकः ॥

“ तस्मात्परेद्युः कर्तव्यं तिलदानं तथोदकैः ।

५ “ स्नात्वा तीरं समागम्य उपविश्य कुशासने । श्राद्धांगतर्पणं कृत्वा पश्चात्संध्यामुपाचरेत् ॥

“ परेद्युः श्राद्धकृन्मर्त्यो यो न तर्पयते पितृन् । पितृहंता स विज्ञेयः कल्पांतं नरकं व्रजेत् ॥

“ क्षेत्रेष्वपि तथा दत्त्वा हिरण्येन तिलैश्च वा । श्राद्धांते पिंडदानं च कृत्वा दद्यात्तिलाञ्जलीन् ” ॥

स्मृत्यन्तरे—“ हिरण्ये तूदकं पश्चान्मृतेऽहनि परेऽहनि ” ॥ अन्यत्रापि—

“ सपिंडीकरणादूर्ध्वं अमासंक्रमणादिषु । पुत्रस्तिलोदकं दद्यात् क्षेत्रपिंडांस्तथाचरेत् ॥

१० “ सपिंडीकरणादूर्ध्वं वर्ष वर्षार्धमेव वा । दर्शादिकं न कुर्वीत हृष्टकानविहन्यता ” ॥ इति दर्शादिश्राद्धनिषेधस्मरणं भोजनपर्यंतश्राद्धविषयम् । द्वादशाहादौ सपिंडीकरणे कृते तत आरभ्य दर्शादौ तिलोदकमात्रं कर्तव्यम् । ‘पुत्रस्तिलोदकं दद्यात्’ इति विशिष्य विधानात् ॥

“ सपिंडीकरणादूर्ध्वं आमश्राद्धं न कारयेत् । तिलोदकं च नो दद्यात्परतश्चेयथाविधि ” ॥ इति स्मृतेश्च । स्मृतिसारे—

१५ “ आह्निके समनुप्राप्ते दर्शश्चेत्तर्पणं न हि । ब्राह्मणान् भोजयेत्पूर्वं पिंडान्पूर्वं तु तर्पणम् ॥

“ अमापातश्च संक्रांतिस्तथा वैधृतिरेव च । अष्टका चैव मन्वादिर्युगादिश्च महालयः ॥

“ एषूदकांजलिं दद्यादन्नं च पितृवृत्तये । श्राद्धं त्वहरहः कुर्यादन्नाद्येनोदकेन वा ॥

“ भृगवादित्यादिवारेषु पितृवृत्त्यै जलांजलिम् । साक्षतान्संदिशेद्दीमांस्तत्तद्दर्शादिके दिने ” ॥

कवपः—

२० “ पित्रोः प्रत्याह्निकं श्राद्धं कृत्वा चैव परेऽहनि । निषिद्धेऽपि तिलैः कृष्णैर्विधिना तर्पयेत् द्विजः ” ॥

वसिष्ठः—

“ संतर्पयेन्निषिद्धेऽपि श्राद्धं कृत्वा परेऽहनि । सतिलांजलिभिः शीतैः पितृणामनृणो भवेत् ” ॥

शंखः—

“ अमाश्राद्धं प्रकुर्वीत पूर्वं दद्यात्तिलोदकम् । प्रत्याह्निके तथा मासि श्राद्धे दद्यात्परेऽहनि ” ॥

२५ स्मृत्यन्तरे—

“ प्रथमाह्निकमागम्य तर्पणं तु विधीयते । तस्मात्पूर्वं न कर्तव्यमिति शातातपोऽब्रवीत् ॥

“ नांदाश्राद्धे च दशं च तद्दिने तर्पणं भवेत् । अनेनैव हि वृत्तिः स्यादिति हारीतभाषितम् ॥

“ तर्पणं तिलसंमिश्रं पितृनुद्दिश्य वाग्यत । आसीनः प्राङ्मुखः कुर्यादक्षिणाभिमुखः करः ” ॥

चंद्रिकायान् (पृ. १९४ प. ६)—

३० “ नृच्यं जानु ततोऽन्वाच्य पाणिभ्यां दक्षिणामुखं । तद्विद्वैस्तर्पयेन्मन्त्रैः सर्वान् पितृगणांस्तथा ” ॥

पद्मविश्वन्मते—

“ उदिते विमले नृच्यं तत्क्षणादेव तर्पयेत् । नोदयात्पितृवृत्तिः स्यादित्याह भगवान्मनुः ” ॥

शातातपः—

“ श्राद्धं कृते तु पूर्वेषुः परेद्युन्विते न्वौ । उपस्थानस्य पगतो होमान्पूर्वं तु तर्पणम् ” ॥ इति ।

विज्ञानेश्वरीये—

“आब्दिके स्वस्ववर्गस्य तृप्तिरेकस्य शाश्वती । तृप्तिर्वर्गद्वयस्यापि परेहि स्यात्तिलोदकैः ” ॥ इति ।
स्मृत्यन्तरे—

“प्रत्याब्दिके तिलं दद्यान्निषिद्धेऽपि परेऽहनि । यस्यैकवर्गस्योद्देश इतरेषां तु वर्जयेत् ” ॥ इति ।
अत्र परस्परविरुद्धानां वचनानां शिष्टाचाराद्यवस्थाऽवगंतव्या ।

तर्पणानंतरं दर्भत्याग उक्तो रत्नावल्याम्—

“विकिरे पिंडदाने च तर्पणे स्नानकर्मणि । आचम्यैव प्रकुर्वीत दर्भसंत्यजनं बुधः ” ॥
दर्भत्यागे मंत्रस्तत्रैवोक्तः—

“येषां न पिता न भ्राता न पुत्रो नान्यगोत्रिणः । ते सर्वे तृप्तिमायांतु मयोत्सृष्टैः कुशैस्तथा ” ॥ इति ।
तर्पणानंतरं वस्त्रनिष्पीडनं कर्तव्यम् । तदाह योग्याज्ञवल्क्यः—

“यावद्देवानृषींश्चैव पितृंश्चापि न तर्पयेत् । तावन्न पीडयेद्वस्त्रं यो हि स्नातो भवेत् द्विजः ॥
“निष्पीडयति यो वस्त्रं अकृत्वा पितृतर्पणम् । निराशाः पितरो यांति शापं दत्वा सुदारुणम्” ॥ इति ।
“वस्त्रनिष्पीडितं तोयं श्राद्धे तूच्छिष्टभोजनम् । भागधेयं श्रुतिः प्राह तस्मान्निष्पीडयेत् स्थले” ॥ इति ।
भरद्वाजः—

“वस्त्रनिष्पीडनं प्रातःकर्मणः प्राग्वाशिष्यते । माध्यान्हे ब्रह्मयज्ञांते वस्त्रनिष्पीडनं भवेत् ॥ १५
“ये के चास्मत्कुलेषु” इति वस्त्रं निष्पीडयेत्स्थले । वस्त्रं चतुर्गुणीकृत्य पीडयित्वा जलाद्वहिः ॥
“वामप्रकोष्ठे नाक्षिप्य द्विराचम्य विशुध्यति ” ॥ इति ।

माधवीये—“आचम्य च ततो दद्यात्सूर्याय सलिलांजलिम् ॥

“नमो विवस्वते ब्रह्मन् भास्वते विष्णुतेजसे । जगत्सवित्रे शुचये सवित्रे कर्मदायिने ” ॥

इति तर्पणम् । अथ देवपूजनम् । तच्च प्रातर्होमानंतरमिति केचित्—

“विधेया देवतापूजा प्रातर्होमादनन्तरम् ” इति मरीचिस्मरणात् । तथा चंद्रिकायाम्—

“स्वशाखोक्तक्रियां कृत्वा ह्रुत्वा चैवाग्निहोत्रकम् । कुर्यादाराधनं विष्णोर्देवदेवस्य चक्रिणः ” ॥ इति ।
ब्रह्मयज्ञजपतर्पणानंतरमित्यन्ये । तथा च हारीतः—“कुर्वीत देवतापूजां जपयज्ञादनंतरम् ” इति ।
व्यासोऽपि—

“जलदेवान्नमस्कृत्य ततो गच्छेद् गृहं बुधः । पौरुषेण च सूक्तेन ततो विष्णुं समर्चयेत् ” ॥ इति । २५
याज्ञवल्क्योऽपि (आचारे १२०)—“स्नात्वा देवान्पितृंश्चैव तर्पयेदर्चयेत्तथा ” ॥ इति ।
मध्याह्ने तर्पणानंतरं गंधकुसुमाक्षतैर्हरिहरहरिण्यगर्भप्रभृतीनामन्यतमं यथावासनमृग्यजुःसाम-
मंत्रैस्तत्प्रकाशकैः स्वनामभिर्वा चतुर्थ्यैर्नमस्कारयुक्तैराराधयेत् ” ॥ इति विज्ञानेश्वरः
(पृ. २९ पं. १६-१७) ।

यमः—“गायत्रीं तु जपेत्पूर्वं ब्रह्मयज्ञजपस्ततः । देवादौस्तर्पयेत्पश्चाद्विष्टं देवं ततोऽर्चयेत् ” ॥ ३०
कूर्मपुराणे (उ. १८।८८-८९)—

“निष्पीड्य स्नानवस्त्रं वै समाचम्य च वाग्यतः । स्वैर्मंत्रैर्ऋचयेद्देवान् पत्रैः पुष्पैस्तथांबुभिः ॥

“ब्रह्माणं शंकरं सूर्यं तथैव मधुसूदनम् । अन्यान् स्वाभिमतान्देवान्भक्त्या चाराधयेन्नरः ” ॥ इति ।

हारीतोऽपि—

“ततो देवान्नमस्कृत्य गृहं गच्छेत्ततः पुनः । विधिना पुरुषसूक्तस्य भक्त्या विष्णुं समर्चयेत् ” ॥ ३५

विष्णुपुराणेऽपि (३।१।१३९)—

“ततो गृहार्चनं कुर्यादभीष्टसुरपूजनम् । जलाभिषेकं पुष्पाणां धूपादेश्च निवेदनम्” ॥

योगयाज्ञवल्क्यः—“देवानामर्चनं कुर्याद्ब्रह्मादीनाममत्सरः ॥

“ब्राह्मवैष्णवरौद्रिश्च सावित्रैरथ वारुणैः । तल्लिङ्गैरर्चयेन्मन्त्रैः सर्वान् देवान् समाहितः” ॥

५ मनुः—

“आदित्यमथ वा विष्णुमीशं ब्रह्माणमेव च । अर्चयेद्वैदिकैर्मन्त्रैर्गृहस्थः प्रयतो भवेत्” ॥

अन्यत्र च—

“आरोग्यं भास्करादिच्छेच्छ्रियमिच्छेच्छ्रुताशनात् । ईश्वरात् ज्ञानमन्विच्छेन्मोक्षमिच्छेज्जनार्दनात्” ॥

गृह्यपरिगिष्टे—“अथ गृहस्थोऽहरहः इष्टां देवतामिष्टाऽभीष्टानर्थीश्चिनोति । ते च देवा

१० गणपतिर्वा स्कन्दो वा सूर्यो वा सरस्वतिर्वा गौरीर्वा गौरीपतिर्वा श्रीर्वा श्रीपतिर्वाऽन्यो वाऽभिमतः ।

स एते यथारुचि समस्ता व्यस्ता वा इज्यन्ते” इति ॥ संग्रहे—

“आदित्यमंविक्तां विष्णुं गणनाथं महेश्वरम् । पञ्चयज्ञपरो नित्यं गृहस्थः पञ्च पूजयेत्” ॥

स्मृत्यर्थसारे—

“ब्रह्माणमीशं विष्णुं वा सूर्यमग्निं गणाधिपम् । दुर्गां सरस्वतीं लक्ष्मीं गौरीं वा नित्यमर्चयेत् ॥

१५ “पौरुषेणैव सूक्तेन देवार्चाप्रणवेन वा । तल्लिङ्गैरेव वा मन्त्रैरर्चयेद्बुधनुज्ञया ॥

“स्त्रीशूद्राणां च भवति नाम्ना वै देवतार्चनम् । सर्वे चागममन्त्रेण कुर्युर्वेदानुसारिणः ॥

“गुरुक्तेन प्रकारेण वेदवाह्येन नार्चयेत्” ॥ स्मृतिरत्ने—

“मन्त्रवैष्णवरौद्रिश्च सावित्रैः शांभवैस्तथा । विष्णुं प्रजापतिं वाऽपि शिवं वा भास्करं तथा ॥

“अन्यांश्चाभिमतान् देवान् भक्त्या चाक्रोधनोऽत्वरः ॥

२० “अप्स्वग्नौ हृदये सूर्यं स्थण्डिले प्रतिमासु च । षट्स्वेतेषु हरेः सम्यगर्चनं मुनिभिः स्मृतम् ॥

“हविषाग्नौ जले पुष्पैः ध्यानेन हृदये हरिम् । अर्चति सूरयो नित्यं जपेन रविमण्डले ॥

“शालग्रामे च चक्राङ्के षटे मुद्रासु देवताः । पूजनीया हिरण्येषु रत्नगोब्राह्मणेषु च ॥

“यां काञ्चित् देवतां कश्चित् आराधयितुमिच्छति । स सर्वोपाययत्नेन ब्राह्मणान्गाश्च तोषयेत्” ॥

नारदः—

२५ “विप्राणां वपुराश्रित्य सर्वास्तिष्ठन्ति देवताः । अतस्तत्रैव ताः पूज्या अलाभे प्रतिमादिषु ॥

“प्रतिमाषट्पञ्चाणां नित्यं स्नानं न कारयेत् । कारयेत्पर्वदिवसे यथा मलनिवारणम् ॥

“अग्नौ क्रियावतां देवो दिविदेवो मनीषिणाम् । प्रतिमा स्वल्पबुद्धीनां योगिनां हृदये हरिः ॥

“तस्य सर्वगतत्वाच्च स्थण्डिले भावितात्मनाम् ।

“शालग्रामशिला यत्र यत्र द्वारवती शिला । उभयोः संगमो यत्र तत्र मुक्तिर्न संशयः ॥

३० “शालग्रामशिला यत्र पूज्यते भगवन्मयैः । तद्देशे योजनादर्वाङ्मृतो निर्वाणमश्रुते ॥

“शालग्रामशिलायास्तु न च संप्रोक्षणं स्मृतम् । न प्रतिष्ठा विधातव्या न चैवावाहनादिकम्” ॥

विष्णुपूजाप्रकारमाह नारदः—

“वेष्टे तु पौनपं नृक्तं जपिनं गृह्यमुत्तमम् । आनुष्टुभस्य सूक्तस्य त्रिष्टुभं तस्य देवता ॥

“पुनपो यो जगद्वाजं ऋषिर्नारायणः स्मृतः । छन्दोऽनुष्टुप पञ्चदशर्चा तिमृणां त्रिष्टुभं ततः” ॥

प्रत्युचमृषिभेदमाह स एव—

- “ बृहस्पतिर्मनुर्दक्षः शौनकोऽत्रिश्च मुद्गलः । शातातपो वसिष्ठश्च याज्ञवल्क्यश्च नारदः ॥
 “ गौतमोऽथ भरद्वाजः शुको गर्गोऽशनांगिराः । व्यासः पराशरश्चैव ऋषयोऽष्टादश स्मृताः ॥
 “ मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नारासिंहोऽथ वामनः । रामो रामश्च रामश्च कृष्णः कल्कीति ते दश ॥
 “ श्रीवल्लभो हरिः शौरिरच्युतो धरणीधरः । जनार्दनो हृषीकेशो माधवश्च तथैव च ॥ ५
 “ देवा अष्टदश प्रोक्ताः पूजां वक्ष्ये यथाक्रमम् । आवाहनासनं पाद्यं अर्घ्यमाचमनीयकम् ॥
 “ मधुपर्कं तथा स्नानं वस्त्रं चैवोपवीतकम् । गन्धं पुष्पं च धूपं च तथा दीपं प्रकल्पयेत् ॥
 “ नैवेद्यं चैव तांबूलं प्रदक्षिणनमस्कृतीः । उद्वासनं च क्रमशः कुर्यात्पूजापरायणः ” ॥ इति ।
 षोडशर्चने पूजाप्रकार उक्तश्चंद्रिकामाधवीयादौ (स्मृ. चं. पृ. १९९)
 “ पौरुषेण तु सूक्तेन ततो विष्णुं समर्चयेत् । ऋग्वेदे पौरुषं सूक्तं षोडशर्चमुदीरितम् ॥ १०
 “ आनुष्टुभस्य सूक्तस्य त्रिष्टुभं तस्य देवता । पुरुषो यो जगद्धीजमृषिर्नारायणः स्मृतः ॥
 “ प्रथमां विन्यसेद्वामे द्वितीयां दक्षिणे करे । तृतीयां वामपादे तु चतुर्थीं दक्षिणे पदे ॥
 “ पंचमीं वामजंघायां दक्षिणस्यां तथोत्तराम् । सप्तमीं वामकट्यां तु दक्षिणस्यां तथाऽष्टमीम् ॥
 “ नवमीं नाभिमध्ये तु दशमीं हृदये न्यसेत् । एकादशीं कंठदेशे द्वादशीं वामबाहुके ॥
 “ त्रयोदशीं दक्षिणे तु आस्यदेशे चतुर्दशीम् । अक्ष्णोः पंचदशीं न्यस्य षोडशीं मूर्ध्नि विन्यसेत् ॥ १५
 “ यथात्मनि तथा देवे न्यासकर्म समाचरेत् ।
 “ एवं न्यासं तु कृत्वादौ पश्चाद्देवस्य पूजनम् । गंधमाल्यैरथात्मानं अर्चयेत्पीठमेव च ॥
 “ पूर्वयावाहयेद्देवमासनं तु द्वितीयया । पाद्यं तृतीयया चैव चतुर्थ्याऽर्घ्यं प्रदापयेत् ॥
 “ पंचम्याऽऽचमनं दद्यात्पष्ठ्या स्नानं समाचरेत् । सप्तम्यां तु ततो वासोऽप्यष्टम्यां चोपवीतकम् ॥
 “ नवम्यां गंधतोयं तु दशम्यां पुष्पकं तथा । एकादश्यां तथा धूपं द्वादश्यां दीपमेव हि ॥ २०
 “ नैवेद्यं तु त्रयोदश्यां नमस्कारे चतुर्दशी । प्रदक्षिणे पंचदशीं वर्जने षोडशीं तथा ॥
 “ स्नाने वस्त्रे च नैवेद्ये दद्यादाचमनं तथा । हुत्वा षोडशभिर्मन्त्रैः षोडशान्नस्य चाहुतिः ॥
 “ पुनः षोडशभिर्मन्त्रैर्दद्यात्पुष्पाणि षोडश । तच्च सर्वं जपेद्भूयः पौरुषं सूक्तमुत्तमम् ॥
 “ षण्मासात्सिद्धिमाप्नोति ह्येवमेव समर्चयेत् । संवत्सरेण तेनैव सायुज्यमधिगच्छति ॥
 “ ध्येयः सदा सवितृमंडलमध्यवर्ती । नारायणः सरसिजासनसंनिविष्टः ॥ २५
 “ केयूरवान्मकरकुंडलवान्किरीटी हारी हिरण्मयवपुर्धृतशंखचक्रः ” ॥ इति ।

शौनकः—

- “ वक्ष्ये पुरुषसूक्तस्य विधानं त्वर्चनं प्रति । स्नात्वा यथोक्तविधिना प्राङ्मुखः शुद्धमानसः ॥
 “ देवस्याभिमुखो भूत्वा विष्ण्वाराधनमारभेत् ।
 “ नारायण ऋषिः प्रोक्तो ह्यनुष्टुप् छंद उच्यते । पुरुषो भगवान् देवो विनियोगः स्मृतोऽर्चने ॥ ३०
 “ वामाद्यंगे करचरणजानूरुयुग्मेषु नाभौ हृत्कर्णौ स द्वितयवदनाक्षयुत्तमांगेषु मंत्री ।
 “ पुंसः सूक्तैर्न्यसतुमनुभिः संहतौ शीर्षपूर्वं सृष्टौ नाभिप्रभृतिहृदयांतस्थितौ च क्रमेण ॥
 “ एवं न्यासविधिं कृत्वा पश्चाद्वागं समाचरेत् । प्रथमेनावहयेद्देवं द्वितीयेनासनं तथा ॥
 “ तृतीयेनासने देवमास्यतामिति च ब्रुवन् । चतुर्थ्या पाद्यदानं च आचामं पंचमेन तु ॥
 “ षष्ठेन चार्घ्यमादद्यादाचामं पूर्ववत्तथा । समस्तैः स्नापयेद्देवमाचामं पूर्ववत्तथा ॥ ३५

“ दद्याद्गंधं सप्तमेन पुष्पदानं तथाऽष्टमे । नवमे वस्त्रदानं तु दशमेनोत्तरीयकम् ॥

“ एकादशेनोपवीतं पाद्याचामं तु पूर्ववत् । धूपं तु द्वादशेनैव दीपदानं त्रयोदशे ॥

“ चतुर्दशेनाभरणं पाद्याचामं तु पूर्ववत् । पात्रशुद्धिं चाभिवारमोदनादिनिवेदनम् ॥

“ कुर्यात्पंचदशेनैव आचामं पूर्ववत्तथा । दक्षिणां तु यथाशक्ति षोडशेन विसर्जयेत् ॥

५ “ दद्यात्पुरुषसूक्तेन यः पुष्पाण्यप एव वा । अर्चितं तेन वै सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ” ॥

“ ततः प्रदक्षिणं कृत्वा जपं कुर्यात्समाहितः ।

“ जितं ते पुंडरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन । नमस्तेऽस्तु हृषीकेश महापुरुषपूर्वज ॥

“ इत्येवमनया स्तुत्या स्तुत्वा देवं दिने दिने । किं करोस्मीति चात्मानं देवायैव निवेदयेत् ” ॥

बोधायनोऽपि (२।१४)—

१० “ अथातो महापुरुषस्याहरहः परिचर्याविधिं व्याख्यास्यामः । स्नातः शुचौ समे देशे गोमयेनो-
पलिप्य प्रतिकृतिं कृत्वा अक्षतपुष्पैर्यथालाभमर्चयेत्सह पुष्पोदकेन महापुरुषमावाहयेत्—ॐभूः
पुरुषमावाहयामि ॐभुवः पुरुषमावाहयामि ॐसुवः पुरु० मि ॐभूर्भुवः सुवः पु० मि आयातु
भगवान्महापुरुष इति । अथ स्वागतेनाभिनंदति । स्वागतं भगवते महापुरुषायैतदासनमुपकल्प-
मत्रास्यतां भगवान्महापुरुष इत्यत्र कूर्चं ददाति । भगवतोऽयं कूर्चो दर्भमयऽस्त्रिवृद्धरितस्तं

१५ जुषस्त्वेत्यत्र स्थानानि कल्पयत्यग्रतः शंखाय कल्पायामि दक्षिणतो गदायै कल्पयामि वनमालायै
कल्पयामि पश्चिमतः श्रीवत्साय कल्पयामि गरुत्मते कल्पयामि सरस्वत्यै कल्पयामि तुष्ट्यै
कल्पयामि अथ सावित्र्या पात्रमभिमंज्य प्रक्षाल्य त्रिरपः परिषिच्य त्रिः पवित्रमप आनीय पुन-
स्तेनैवाप्स्वभिमंज्य सह पवित्रेणादित्यं दर्शयेद्देमित्यातमितोः प्राणमायच्छेत् । त्रीणि पदा विचक्रम
इति पाद्यं दद्यात् व्याहृतिभिर्निर्माल्यमपोह्योत्तरतो विष्वक्सेनाय नमः इति । इदं विष्णुर्विचक्रम

२० इति अर्घ्यं दद्यादर्थेन स्नापयति आपोहिष्ठामयो भुव इति ब्रह्मजज्ञानं वामदेव्यर्चा यजु-
पवित्रेण इत्येताभिः पद्भिः स्नापयित्वाऽथाद्विस्तर्पयति । केशवं नारायणं माधवं गोविंदं विष्णुं
मधुसूदनं त्रिविक्रमं वामनं श्रीधरं हृषीकेशं पद्मनाभं दामोदरं तर्पयित्वा व्याहृतिभिः प्रदक्षिण-
मुदकुंभं परिषिच्य प्रणवेन वासो ददाति सावित्र्या यज्ञोपवीतमाचमनीयमुदकेनेदं विष्णुर्विचक्रम
इति गंधं दद्यात् । तद्विष्णोः परमं पदम् इति पुष्पम् । इरावती इत्यक्षतं सावित्र्या धूपं

२५ उडीप्यस्व इति दीपं देवस्य त्वा इति महापुरुषाय जुष्टं निवेदयामीति नैवेद्यमथ केशवादिनामाभि-
र्द्वादशपुष्पाणि दद्यात् । शंखाय नमश्चक्राय नमो गदायै नमो वनमालायै नमः श्रीवत्साय
नमो गरुत्मते नमः श्रियै नमः सरस्वत्यै नमः पुष्ट्यै नमस्तुष्ट्यै नम इत्यवशिष्टैर्गन्धमाल्यै-
र्ब्राह्मणानलंकृत्याथैनमृग्यजुःसामायर्वभिः स्तुवन्विष्णुमूक्तं जपित्वा पुरुषसूक्तं चान्यांश्च वैष्णव-
मंत्रानित्येके । ओं भूर्भुवः सुवरो भगवते महापुरुषाय चरुमुद्रासयामीति च समुद्रास्य व्याहृतीभिः

३० पुरुषमुद्रानयेदो पुरुषमुद्रास० मि ॐभूः पुरुषमुद्रास० मि ॐभुवः पुरु० मि ॐसुवः पुरुषमुद्रा
सयामि० ॐ भूर्भुवः सुवः पुरुषमुद्रासयामि इत्युद्रास्य प्रयातु भगवान्महापुरुषोऽनेन हविषा
वृत्तो हविः पुनर्गगमनाय पुनः संदर्शनाय चेति प्रतिमास्थानेष्ववाहनोद्वासनवर्जं सर्वं समानं
महन्मन्त्रमनमित्याचक्षते महत्त्वस्त्ययनमित्याचक्षते इत्याह भगवान्बोधायनः ” इति ॥

आन्वमोधिके —“ शृणु पांडव मन्सर्वमर्चनाक्रममात्मनः ॥

३५ “ स्थण्डिले पञ्चकं कृत्वा चाष्टपात्रं नर्तयिष्ये । मङ्गिर्गर्वद्विर्कर्मत्रैर्मम मूक्तेन वा पुनः ॥

- “ अष्टाक्षरविधानेन अथवा द्वादशाक्षरैः । स्थापितं मां ततस्तस्मिन्नर्चयेत्तु विचक्षणः ॥
 “ पुरुषं च ततः सत्यमच्युतं च युधिष्ठिरः । अनिरुद्धं च मां प्राह्वयैस्वानसविदो जनाः ॥
 “ अन्ये त्वेवं विजानन्ति मां राजन्पांचरात्रिकाः । वासुदेवं च राजेंद्र संकर्षणमथापि वा ॥
 “ प्रद्युम्नं चानिरुद्धं च चतुर्भूतिं प्रचक्षते । स्वाधिकारानुरूपेण मामेवं चार्चयेत् बुधः ” ॥ इति ।

अपराकै—

- “ अष्टाक्षरेण देवेशं नरसिंहमनामयम् । गंधपुष्पादिभिर्नित्यं अर्चयेदच्युतं नरः ॥
 “ अष्टाक्षरस्य मंत्रस्य ऋषिर्नारायणः स्मृतः । छंदश्च देवी गायत्री परमात्मा च देवता ॥
 “ गंधपुष्पादिसकलमनेनैव निवेदयेत् । अनेनैवार्चितो विष्णुः प्रीतो भवति तत्क्षणात् ॥
 “ किं तस्य बहुभिर्मन्त्रैः किं तस्य बहुभिर्मन्त्रैः । ॐ नमो नारायणेति मंत्रः सर्वार्थसाधकः ” ॥ इति ।

उपचारफलमाह पुलस्त्यः—

- “ दध्यादीनां विकाराणां क्षीरतः संभवो यथा । तथैवाशेषकामानां क्षीरस्नापनतो हरेः ॥
 “ स्नाप्य दध्या सकृद्विष्णुं निर्मलं प्रियदर्शनम् । विष्णुलोकमवाप्नोति सेव्यमानः सुरोत्तमैः ॥
 “ गवां शतस्य विप्राणां यद्वत्तस्य फलं भवेत् । घृतप्रस्थेन तद्विष्णोर्भवेत्स्नानं न संशयः ॥
 “ अयने चोत्तरे प्राप्ते यः स्नापयति केशवम् । घृतप्रस्थेन पापानि सकलानि व्यपोहति ” ॥

यमः—

- “ कपिलां विप्रमुख्याय ददात्यनुदिनं हि यः । घृतस्नानं च देवस्य विष्णोः काले समं हि तत् ॥
 “ देवे मलापनयनं देवागारसमूहनम् । स्नापनं सर्वदेवानां गोप्रदानसमं स्मृतम् ” ॥ इति ।

स्मृतिरत्ने—

- “ कुंकुमागुरुश्रीकण्ठकर्मैरच्युताकृतिम् । आलिप्य भक्त्या देवेशं कल्पकोटिं वसेद्विवि ॥
 “ गंधेभ्यश्चंदनं पुण्यं चंदनादगुरुर्वरः । कृष्णागरुस्ततः श्रेष्ठः कुंकुमं तु ततो वरम् ” ॥ २०

आचारसारे—

- “ मालती मल्लिका चैव यूथिका जातिमुत्कृष्टम् । पाटलीं करवीरं च जपामावन्तिमेव च ॥
 “ कुटजं तरुणं चैव कर्णिकारं कुरंडकम् । पुन्नागं चंपकं कुंदं बाणं षड्वैरमल्लिका ।
 “ अशोकं तिलकं चैव नद्यावर्त्त तथैव च । अमी पुष्पप्रकाराश्च क्लृप्ताः केशवपूजने ॥
 “ बिल्वपत्रं शमीपत्रं पत्रं भृंगारजस्य च । तुलसी कृष्णतुलसीपत्रं वासवमेव च ॥
 “ केतकीपुष्पपत्रं च सद्यस्तुष्टिकरं हरेः । श्वेतरक्तसरोजानि नीलरक्ते तथोत्पले ॥
 “ सितोत्पलं च कृष्णस्य दयितानि सदा हरेः । नीपार्जुनकदम्बैश्च बकुलैश्च सुगंधिभिः ॥
 “ कल्हारैर्विष्णुमभ्यर्च्य विष्णुलोके महीयते ।
 “ काञ्चनैः कुसुमैर्विष्णुं मणिविद्रमनिर्मितैः । पूजयन्वस्त्रपुष्पाद्यैर्नरो मुक्तिमवाप्नुयात् ” ॥

पुलस्त्यः—

- “ पुष्पजातिषु सर्वासु सौवर्णं पुष्पमुत्तमम् । त्रुटिमात्रप्रदानात्तु शक्रार्धासनमाप्नुयात् ” ॥

मौद्गल्यः—

- “ सकृदभ्यर्च्य गोविंदं बिल्वपत्रेण मानवः । मुक्तिगामी निरातंकः कृष्णस्यानुचरो भवेत् ॥
 “ सुगंधितुलसीपत्रैः प्रतिमायाः समंततः । निश्छिद्रमाचरेद्यस्तु सोऽनंतफलमाप्नुयात् ” ॥

धर्मसारे—

“ सालग्रामशिलामूर्ध्नि तुलसीपत्रपातनम् । कर्मनिर्मूलनायालं एकादश्यामभोजनम् ॥

“ न विप्रसदृशं पात्रं न दानं सुरभीसमम् । गंगाया न समं तीर्थं न पत्रं तुलसीसमम् ” ॥

चंद्रिकायाम् (पृ. २०१ पं. २६)—

“ दश दत्त्वा सुवर्णानि यत्फलं लभते नरः । तत्फलं लभते विष्णोर्द्रोणपुष्पप्रदानतः ॥

५ “ त्रिल्वपत्रसहस्राद्धि वकुलं पुष्पमुत्तमम् । तस्माद्वकुलपुष्पाद्धि नंधावर्त विशिष्यते ॥

“ नंधावर्तसहस्राद्धि करवीरं विशिष्यते । सर्वैर्मनोरमैः पुष्पैर्जातिपुष्पं विशिष्यते ॥

“ वर्णानां तु यथा विप्रस्तीर्थानां जान्हवी यथा । सुराणां च यथा विष्णुः कल्हारकुसुमं तथा ॥

“ सितरक्तैर्महापुण्यैः कुसुमैः करवीरजैः । अर्चयित्वाऽच्युतं याति यत्रास्ते गरुडध्वजः ॥

“ गंधाढ्यैर्विमलै रम्यैः कुसुमैः कुंदकोद्भवैः । भक्त्याऽभ्यर्च्य हृषीकेशं कुसुमैः केतकोद्भवैः ॥

१० “ शुभ्राशुभ्रैर्महागन्धैः कुसुमैः पङ्कजोद्भवैः । अधोक्षजं समभ्यर्च्य नरो याति हरेः पदम् ॥

“ अभ्यर्च्य केशवं पुष्पैः किंशुकैः सुमनोहरैः । समभ्यर्च्य हृषीकेशं जन्मदुःखाद्विमुच्यते ॥

“ भक्त्या दत्तं फलं पत्रं पुष्पं दूर्वाकुरं जलम् । अचिरात्प्रतिगृह्णाति भक्तिग्राह्यो हि केशवः ॥

“ तुलसी कृष्णगौराख्या तथाऽभ्यर्च्य जनार्दनम् । नरो याति तनुं त्यक्त्वा वैष्णवीं शाश्वतीं गतिम् ॥

“ एवं शुभैः सदा पुष्पैः पूजनीयो जनार्दनः । निषिद्धैर्दुःखदैर्देवं नार्चयेत् कदाचन ॥

१५ “ न शुष्कैः पूजयेद्देवं कुसुमैर्न महीगतैः । न विशीर्णदलैः शुष्कैर्नाशुभैर्नाविकासिभिः ” ॥

रत्नावल्याम्—

“ मुकुलैर्नार्चयेद्देवं चंपकैर्जलजैर्विना । न कंटकिभवं पुष्पं दद्याच्छुक्लं मृते सदा ॥

“ येऽर्कपुष्पैस्त्रिलोकेशमर्चयन्ति जनार्दनम् । तेभ्यः क्रुद्धोऽक्षयं दुःखं क्रोधाद्विष्णुः प्रयच्छति ॥

“ उन्मत्तकेन ये मूढाः पूजयन्ति त्रिविक्रमम् । उन्मादं दारुणं तेषां ददाति गरुडध्वजः ” ॥

२० विष्णुः (६६।१-९)—“ न नक्तं गृहीतोदकेन देवतार्चनं कुर्याच्चंदनकुंकुमकर्पूरमृगमदजाती-
फलवर्जमनुलेपनं न दद्यान्मणिसुवर्णमुक्ताफलविद्रुमरजतवर्जप्रतिरूपकस्यालंकारम् । न कुर्यात् न
चासौ नीलं रक्तं नागंधिपुष्पं नोग्रगंधि न कंटकिजं दद्यात् । कंटकिजमपि शुक्लं सुगंधि रक्तमपि
कुंकुमजं दद्यात् ” इति । सारसमुच्चये—

“ गिरिकर्णिकया विष्णुं येऽर्चयन्त्यनुधा नराः । तेषां कुलक्षयं घोरं कुरुते मधुसूदनः ॥

२५ “ गुग्गुलं कंदकं चैव देवदारुं सरूपकम् । सज्जैरसं जातिफलं धूपयेद्गोघृतं हरेः ॥

“ न धूपयेज्जीवजातैर्नाहविष्यं निवेदयेत् । घृततैलैर्विना किंचिद्दीपार्थं न समाहरेत् ॥

“ प्रज्वाल्य देवदेवस्य कर्पूरेण सुदीपकम् । अश्वमेधमवाप्नोति कुलं चैव समुद्धरेत् ” ॥

संवर्तः—

“ देवागारे द्विजानां च दीपं दत्त्वा चतुष्पथे । मेधाविज्ञानसंपन्नः चक्षुष्मान् जायते नरः ” ॥

३० पात्रे—“ नैवेद्यपात्रं वक्ष्यामि केशवाय महात्मने ।

“ हेरण्यं गजतं कांस्यं ताम्रं मृन्मयमेव वा । पालाशं पद्मपत्रं वा पात्रं विष्णोरतिप्रियम् ॥

“ हविः शाल्योदनं दिव्यमाज्ययुक्तं सशर्करम् । नैवेद्यं देवदेवाय यावकं पायसं तथा ॥

“ संस्कृतं चान्नमाज्याढ्यं दधिशीरमधूनि च । फलमूलव्यंजनानि मोदकं च निवेदयत् ॥

“ अर्घ्यमाचमनं चैव हविस्तांबूलमव च । दक्षिणे देवदेवस्य हस्ते दद्याद्विचक्षणः ॥

“ हविर्दानं त्रिकालं तु उत्तमोत्तममुच्यते । द्वयोश्च मध्यमं प्रोक्तमेककालेऽधमं हविः ” ॥

रत्नावल्याम्—

“ नैवेद्यस्य त्वलाभे तु फलानि तु निवेदयेत् । फलानामप्यलाभे तु तृणगुल्मौषधीरपि ॥

“ औषधीनामलाभे तु तोयान्यपि निवेदयेत् । तदलाभे तु सर्वत्र मानसं प्रवरं स्मृतम् ” ॥

व्यासः—

“ गांढूषिकं जलं दद्याद्दद्यादाचमनं ततः । हस्तवासं सकर्पूरं मुकुटं भूषणानि च ॥

“ आदर्शयेत्तथा दर्श कल्पयेच्छत्रचामरे । महानीराजनं श्रीमन् मंगलेशाय कल्पयेत् ॥

“ कर्पूरं तुलसीपत्रं तांबूलं यो निवेदयेत् । विष्णवे भक्तियुक्तः स विष्णुलोके महीयते ॥

“ विष्णोर्विमानं यः कुर्यात्सकृद्भक्त्या प्रदक्षिणम् । अश्वमेधसहस्रस्य फलमाप्नोति मानवः ॥

“ प्रणम्य दंडवद्भूमौ नमस्कारेण योऽर्चयेत् । स यां गतिमवाप्नोति न तां क्रतुशतैरपि ॥ १०

“ दोभ्यां च पद्भ्यां जानुभ्यामुरसा शिरसा दृशा । मनसा वचसा चेति प्रणामोऽष्टांग ईरितः ॥

“ जानुभ्यां चैव बाहुभ्यां शिरसा वचसा धिया । पंचांगकः प्रणामः स्यात् पूजासु प्रवराविमौ ” ॥

चंद्रिकायाम्—

“ उरसा मनसा चैव शिरसा च कपोलयोः । पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यां प्रणामोऽष्टांग उच्यते ॥

“ कूर्मवच्चतुरः पादान् शिरश्चाद्धृत्य पंचमम् । मनोबुद्ध्याभिमानेन पंचांगः परिकीर्तितः ॥ १५

“ स्तुवन् देवं नमस्कुर्यात्प्रसीद भगवन्निति ।

“ एकहस्तप्रणामश्च एकं चापि प्रदक्षिणम् । अकाले दर्शनं विष्णोर्हीति पुण्यं पुरातनम् ॥

“ एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः ।

“ दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय ॥

“ शंखमध्ये स्थितं तोयं भ्रामितं केशवोपरि । अंगलग्नं मनुष्याणां ब्रह्महत्यायुतं दहेत् ॥ २५

“ शंखस्थं प्रोक्षयेद्देहं पुत्रमित्रपरिग्रहम् ” इति ॥

व्यासः—“ देवदेव जगन्नाथ शंखचक्रगदाधर । देहि देव ममानुज्ञां भवत्तीर्थनिषेवणे ॥

“ इत्यनुज्ञां ततो लब्ध्वा पिबेत्तीर्थमघापहम् ।

“ अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम् । विष्णोः पादोदकं तीर्थं शिरसा धारयाम्यहम् ॥

“ इति मंत्रं समुच्चार्य सर्वदुष्टग्रहापहम् । तुलसीमिश्रितं तीर्थं पिबेन्मूर्ध्ना च धारयेत् ॥ २५

“ सालग्रामशिलातोयमपीत्वा यस्तु मस्तके । प्रक्षेपणं प्रकुर्वीत ब्रह्महा स निगद्यते ॥

“ विष्णोः पादोदकं पीतं कोटिहत्याघनाशनम् । तदेवाष्टगुणं पापं भूमौ बिंदुनिपातनात् ” ॥

मार्कण्डेयः—“ आग्नेशुखंडतांबूलचर्वणे सोमपानके । विष्ण्वंघ्रितोयपाने च नाद्यन्ताचमनं स्मृतम् ॥

“ विष्णुपादोद्भवं तीर्थं पीत्वा न क्षालयेत्करम् । क्षालयेद्यदि मोहेन पंचपातकमाप्नुयात् ” ॥

श्रुतिरपि—

“ भगवान्पवित्रं भगवत्पादोदकं पवित्रं तत्पानेनाचमनं यथाहि सोमेषु ” ॥ इति ।

चंद्रिकायाम्—

“ हृदि रूपं मुखे नाम नैवेद्यमुदरे हरेः । पादोदकं च पुष्पं च मस्तके यस्य सोऽच्युतः ॥

“ अग्निष्टोमसहस्रैस्तु वाजपेयशतैरपि । यत्फलं लभते भक्त्या विष्णोर्नैवेद्यभक्षणात् ” ॥

बहुचपरिशिष्टे—

“पवित्रं विष्णुनैवेद्यं सुरासिद्धिर्षिभिः स्मृतम् । अन्यदेवस्य नैवेद्यं भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥
“ग्राह्यं हरेस्तु निर्माल्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम् । सालग्रामशिलासंगात्सर्वं याति पवित्रताम्” ॥ इति ।
व्यासः—“नैवेद्यमन्नं तुलसीविमिश्रं विशेषतस्तीर्थजलेन सिक्तम् ॥

५ “योऽश्नाति नित्यं पुरतो मुरारेः प्राप्नोति यज्ञायुतकोटिपुण्यम्” ॥ इति ।

पितामहः—“नैवेद्यं तुलसीमिश्रं स्वयं भुंजीत वाग्यतः । गृही तस्मादयत्नेन स गच्छेद्वैष्णवं पदम्” ॥
श्रुतिरपि—(क्र. सं. २।२।२४) “तदस्य प्रियमभिपाथो अश्वां नरो यत्र देवयवो मदंति ।
ऊरुक्रमस्य स हि बंधुरित्था विष्णोः पदे परमेमध्व उत्स” इति । अस्य विष्णोः प्रियं तत्पाथः
निवेदित मन्त्रमभ्यर्च्य यत्र देवाराधका नरा हृष्यन्ति इत्या इत्थं वर्तमानः तस्य बंधुः मध्वे

१० मधुवद्भोग्ये उत्स उत्सुक इत्यर्थः । स्मृतिरन्ते—

“शुभमिच्छन्नरः प्राज्ञः स्कंधे मालां न धारयेत् । धारयेत्तां शिरस्येव सुगंधां प्रियदर्शनाम् ॥

“ततः स्तुत्वा तु देवेशमपराधान् क्षमापयेत् ॥

“अपराधसहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया । दासोऽयमिति मां मत्वा क्षमस्व पुरुषोत्तम ॥

“भगवन् देवदेवेश पुरुषोऽसि सनातनः । क्षमस्व सर्वलोकेश भक्तस्य तु विशेषतः ॥

१५ “ज्ञानादज्ञानतो वाऽपि यन्न्यूनादिकृतं मया । तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु त्वत्प्रसादाज्जनार्दन” ॥ इति ।
संग्रहे—

“साधु वाऽसाधु वा कर्म यद्यदाचरितं मया । तत्सर्वं भगवन्विष्णो गृहाणाराधनं मम ॥

“इति कर्मर्पणं कृत्वा स्वात्मानं च निवेदयेत्” ॥ इति ।

योगयाज्ञवल्क्यः—

२० “एवं संपूज्य देवेशं क्षणं ध्यात्वा निरंजनम् । ततोऽवलोकयेदर्कं हंसः शुचिषदित्यूचा” ॥
महाभारते—

“ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्च कृतलक्षणैः । अर्चनीयश्च सेव्यश्च भाक्तियुक्तैः सदा हरिः” ॥ इति ।

यत्तु स्मर्यते—

“जपस्तपस्तीर्थसेवा प्रव्रज्या मंत्रसाधनम् । देवताराधनं चैव स्त्रीशूद्रपतनानि षट्” ॥ इति ।

२५ तद्देविकार्चनाभिप्रायम् ।

“वैदिकं ब्राह्मणानां स्याद्राज्ञां वैदिकतांत्रिकम् । तांत्रिकं वैश्यशूद्राणां स्त्रीणामपि च तांत्रिकम्” ॥ इति ।
स्त्रीशूद्रयोस्तांत्रिकत्वाभ्यनुज्ञानात् । नारदः—

“स्त्रीशूद्रपूजितं लिङ्गं विष्णुं वापि न मेतु यः । त्रिःसप्तकुलसंयुक्तो नरकं प्रतिपद्यते” ॥ इति ।

हारीतः—

३० “यो मोहादथवालस्यादकृत्वा देवतार्चनम् । भुंक्ते स याति नरकं तिर्यग्योनौ प्रजायते ॥

“येऽर्चयन्ति सदा विष्णुं निष्कलेनांतरात्मना । न ते भूयो हि जायन्ते श्वेतदीपनिवासिनः ॥

“शंखचक्रगदाशार्ङ्गधरा विष्णुपराक्रमाः । श्वेतांबरधराश्चैव गंधमाल्योपशोभिताः” ॥ इति ।

शांडिल्यः—

“न हुंकुर्यान्न वा जन्पेदृशी मौन्यर्चयेद्भरिम् । यन्नोपपद्यते किञ्चित् ध्यायन्तन्मनसैव तु ॥

३५ “संपद्यते तु तत्सर्वं देवदेवस्य शार्दूलिणः” ।

भागवते—“ गृहं श्मशानं तव बिंबवर्जितम् कथाविहीनाश्च गिरः शिवारुताः ।

“श्वसञ्छवोदास्य विना कृतं वपुर्वदन्ति हि त्वय्यनिवेदितं विषम्” ॥ ऋग्वेदे श्रूयते (२।२।२५)—

“ प्र वः पातमंधसोऽधियायते । महे शूराय विष्णवे चार्चित ” ॥

यजुषि च (२।४।८-९ पृ. ५००-५०१)—

“भवा मित्रो न शेव्यो घृतासुतिः । विभूतद्युम्न ए वया उ सप्रथाः । अघा ते विष्णो विदुषाचिद्वध्यः ॥ ५

स्तोमो यज्ञस्य राज्ञो हविष्मतः । यः पूर्याय वेधसे नवीयसे । सुमज्जानये विष्णवे ददाशति । यो जातमस्य महतो महि ब्रवात् । सेदु श्रवोभिर्युज्यं चिदभ्यसत् । तमु स्तोतारः पूर्यं यथा विद ऋतस्य । गर्भं हविषा पिपर्तन । अस्य जानंतो नामाचिद्विक्तन । बृहतो विष्णो सुमर्तिं भजामहे” ॥ इति ।

पुराणे—

“ विष्णुपूजाविहीनस्य दत्तं चेष्टं हतं श्रुतम् । तपश्च व्यर्थतां याति प्रेतालंकारवत् द्विजः ॥ १०

“ मातृवत्परिरक्षितं सृष्टिसंहारकारकम् । यो नार्चयति वै विष्णुं सोऽक्षयं नरकं व्रजेत्” ॥ इति ।

मार्गशीर्षार्चनमुक्तं भास्करीये—

“ अयनं दक्षिणं रात्रिरुत्तरं तु दिवा भवेत् । दैवतं तदहोरात्रं तत्रिंशन्मास उच्यते ।

“ तद्दिनस्य उषःकालं चापमासं विदुर्बुधाः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन चापमासे दिने दिने ॥

“ उषःकाले तु संप्राप्ते बोधयित्वा जगत्पतिम् । समभ्यर्च्य भजेद्विष्णुं जनानां दोषशान्तये ” ॥ १५

ब्रह्मांडे—“ चापं गते दिवानाथे उत्थाप्य शयनाद्धरिम् ।

“ उषःकाले तु संप्राप्ते अर्चयित्वा जनार्दनम् । उपचारैः षोडशभिर्मुद्रांश्च च निवेदयेत् ” ॥

आदित्यपुराणे—

“ चापं गते ततः सूर्ये प्रत्यूषे स्नानमाचरेत् । अर्चयेच्च जगन्नाथं यावत्सूर्योदयात्पुरा ॥

“ ततः प्रभातसमये अर्घ्यं प्रक्षिप्य वै द्विजः । गायत्रीं च ततो जप्त्वा उपतिष्ठेत् भास्करम् ” ॥ २०

भागवतेऽपि—

“ कोदंडस्थे सवितरि प्रत्यूषे पूजनान्द्वरेः । सहस्राब्दार्चनफलं दिनेनैकेन लभ्यते ” ॥

शैवेऽपि—

“ चापराशौ स्थिते सूर्ये उषःकाले दिनेदिने । अभिषेकं ततः कुर्याद्द्रौद्रमंत्रेण मंत्रवित् ॥

“ अर्कपुष्पैश्च बिल्वैश्च पूजयित्वा महेश्वरम् । नैवेद्यं च ततः कुर्याल्लोकसंहारशान्तये ” ॥ २५

शांडिल्यः—

“ एकादश्यां सिते पक्षे चापे तिष्ठति भास्करे । उत्सवं कारयेद्धीमान्चेदपारायणैः सह ॥

“ संक्रांतिर्जन्मनक्षत्रं श्रवणं द्वादशीद्वयम् । पर्वद्वयं समुद्दिष्टं सविशेषक्रियाविधौ ॥

“ चंद्रसूर्योपरागे च प्रादुर्भावादिने हरेः । मासर्क्षेषु च पुण्येषु विशेषाराधनं विदुः ॥

“ दुर्निमित्तेषु दुःस्वप्ने संजाते च महाभये । आगतेषु च भक्तेषु कुर्याद्वैशेषिकक्रियाम् ” ॥ इति । ३०

कूर्मपुराणे (उ. अ. १८)—

“ न विष्ण्वाराधनात्पुण्यं विद्यते कर्म वैदिकम् । तस्मादनादिमध्यातं नित्यमाराधयेद्धरिम् ॥

“ तद्विष्णोरिति मंत्रेण सूक्तेन पुरुषेन तु । नैताभ्यां सदृशो मंत्रो वेदेषूक्तश्चतुर्विधः ” ॥

शिवपूजापि तत्रोक्ता—

“ अथवा देवमीशानं भगवंतं सनातनम् । आराधयेन्महादेवं भावपूतो महेश्वरम् ॥

“ मंत्रेण रुद्रगायत्र्या प्रणवेनाथ वा पुनः । ईशानेनाथवा रुद्रैस्त्र्यम्बकेन समाहितः ॥

“ पुष्पैः पत्रैरथाद्भिर्वा चंदनाद्यैर्महेश्वरम् । तथोनमः शिवायेति मन्त्रेणानेन वा यजेत् ॥

“ नमस्कुर्यान्महादेवमृतं सत्यमितीश्वरम् । निवेदयीत चात्मानं यो ब्रह्माणमितीश्वरम् ॥

“प्रदक्षिणं द्विजः कुर्यात्पंच ब्रह्माणि वा जपेत् । ध्यायीत देवमीशानं व्योममध्ये गतं शिवम्” ॥ इति

- ५ बोधायनोऽपि (२।१७) — “अथातो महादेवस्याहरहः परिचर्याविधिं व्याख्यास्यामः । स्नात्वा शुचौ समे देशे गोमयेनोपलिप्य प्रतिकृतिं कृत्वाऽक्षतपुष्पैर्यथालाभमर्चयेत् । सह पुष्पोदकेन महादेवमावाहयेत् । ॐ भूः महादेवमावाहयामि ॐ भुवर्महा० यामि ॐ सुवर्महादे० मि ॐ भूर्भुवः सुवर्महादेवमावाहयामीत्यावाह्य आयातु भगवान्महादेव इत्यथ स्वागतेनाभिनंदति स्वागतं भगवते महादेवायैतत् स्वासनं क्लृप्तामास्यतां भगवान्महादेव इत्यत्र कूर्चं ददाति भगवतोऽयं कूर्चो दर्भ-
१० मयः त्रिवृद्धरितः सुवर्णस्तं जुषस्वेत्यत्र स्थानानि कल्पयत्यग्रतो ब्रह्मणे कल्पयामि विष्णवे कल्पयामि दक्षिणतः स्कन्दाय कल्पयामि विनायकाय कल्पयामि पश्चिमतः शूलाय कल्पयामि महाकालाय कल्पयामि उत्तरतः उग्राय कल्पयामि नंदिकेश्वराय कल्पयामि इत्यथ सावित्र्या पात्रमभिमन्त्र्य प्रक्षाल्य तिरःपवित्रमप आनीय सह पवित्रेणादित्यं दर्शयेदोमित्यातमितोः प्राणमायच्छेत् । रुद्रेण पाद्यं दद्यात् । प्रणवेनार्घ्यम् । अथ व्याहृतिभिर्निर्माल्यं व्यपोह्योत्तरतश्चंदेशाय
१५ नम इत्यथैनं स्नापयत्यापोहिष्ठामयो भुव इति तिसृभिर्हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका इति चतसृभिः पवमानः सुवर्जन इत्येतेनानुवाकेन स्नापयित्वाऽद्भिस्तर्पयति भवं देवं तर्पयामि शर्वं० ईशानं दे० पशुपतिं दे० रुद्रं देवं० उग्रं दे० भीमं दे० महान्तं देवं तर्पयामीति तर्पयित्वा अथैतानि वस्त्रयज्ञोपवीताचमनीयानि उदकेन व्याहृतिभिर्दत्त्वा व्याहृतिभिः प्रदक्षिणमुदकं परिषिच्य नमस्ते रुद्र मन्यव इति गंधं दद्यात् । सहस्राणि सहस्रश इति पुष्पं दद्यात् । ईशानं त्वा भुवनानामभिश्चियम् इत्य-
२० क्षतं दद्यात्सावित्र्या धूपमुद्दीप्यस्वेति दीपं देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे इति भगवते महादेवाय जुष्टं चरुं निवेदयामीति नैवेद्यं अथाष्टभिर्नामधेयैरष्टौ पुष्पाणि दद्यात् । भवाय देवाय नमः । शर्वाय० ईशानाय० पशुपतये० रुद्राय० उग्राय दे० भीमाय० महते देवाय नमः । ब्रह्मणे० विष्णवे० स्कन्दाय० विनायकाय० शूलाय० महाकालाय० नंदिकेश्वराय नम इति चरुशेषेणाष्टभिर्नामधेयैरष्टाहुतीर्जुहोति भवाय स्वाहेत्यादिभिर्हुत्वा शिष्टैर्माल्यैर्ब्राह्मणानलंकृत्याथैनमृग्यजुःसामभिः स्तौति
२५ सहस्राणि सहस्रश इत्यानुवाकं जपित्वाऽन्यांश्च रौद्रमंत्रान्यथाशक्तीत्येके । ॐ भूर्भुवः सुवर्महरो भगवते महादेवाय च रुद्रमुद्रासयामीत्युद्रास्य उद्वासनकाले ॐ भूर्महादेवमुद्रासमर्पयामीत्युद्रास्य “प्रयातु भगवानीशः सर्वलोकनमस्कृतः । अनेन हविषा तृप्तः पुनरागमनाय च ॥ पुनः संदर्शनाय चेति” प्रतिमास्थानेष्वावाहनोद्वासनवर्जं समानम् । महत्स्वस्त्ययनमित्याचक्षत इत्याह भगवान्बोधायनः “ इति । शिवार्चनं प्रशंसति नंदिकेश्वरः

- ३० “ यः प्रयच्छेद्भवां लक्षं दोग्ध्रीणां वेदपारगे । एकाहमर्चयेद्विष्णं तस्य पुण्यं ततोऽधिकम् ॥

“ नक्तृत्पृजयने यस्तु भगवंतमुमापतिम् । तस्याश्वमेधादधिकं फलं भवति भूसुराः ” ॥ इति ।

चंद्रिकायान —

“ लिंगं न्य दर्शनं पुण्यं दर्शनात्स्पर्शनं वरम् । स्पर्शनादर्चनं श्रेष्ठमर्चनात् ध्यानवन्दने ॥

“ माभे माने तु योऽश्रीयाथावज्जीवं द्विजोत्तमः । यस्त्वर्चयेत्सकृद्विष्णं सममेतन्न संशयः ” ॥

स्मृतिरत्ने—

- “अयुतं यो गवां दद्यात् दोग्ध्रीणां वेदपारगे । वस्त्रहोमादियुक्तानां क्षीरस्नानस्य तत्फलम् ॥
 “दध्ना यः स्नापयेद्विद्धं कृष्णाष्टम्यामुपोषितः । कुलसप्तकमुद्धृत्य शिवलोके महीयते ॥
 “दध्ना तु स्नापयेद्विद्धं सकृद्भक्त्या तु यो नरः । पापकंचुकमुत्सृज्य ब्रह्मलोके महीयते ॥
 “कल्पकोटीसहस्रैस्तु यत्पापं समुपार्जितम् । घृतस्नानेन तत्सर्वं दहत्यग्निरिवेधनम् ॥ ५
 “नैरन्तर्येण यो मासं घृतस्नानं समाचरेत् । त्रिसप्ततिकुलोपेतो लभते पदमैश्वरम् ॥
 “मधुना स्नापयित्वा तु सकृद्भक्त्याऽर्चयेत् द्विजः । पापकंचुकमुत्सृज्य ब्रह्मलोके महीयते ॥
 “स्नानमिश्रुरसेनापि यो लिंगे सकृदर्चयेत् । लभेद्वैद्याधरं लोकं सर्वकामसमन्वितम् ॥
 “पयोदधिघृतक्षौद्रशर्कराद्यैरनुक्रमात् । ईशादिमन्त्रैः संस्नाप्य शिवमुक्तिमवाप्नुयात् ॥
 “कापिलापंचगव्येन विधिना सकृदाचरेत् । स्नानं शतगुणं ज्ञेयमितरेभ्यो न संशयः ॥ १०
 “यः पुमांस्तिलतैलेन करयंत्रोद्धवेन च । शिवाभिषेकं कुरुते स शैवं पदमाप्नुयात् ॥
 “स्नानं शतगुणं ज्ञेयमभ्यंगं पंचविंशतिः । पलानां च सहस्रे तु महास्नानं प्रकीर्तितम् ॥
 “वस्त्रपूतेन तोयेन यो लिंगं स्नापयेत्सकृत् । सर्वकामसुवृत्तात्मा शिवलोकमवाप्नुयात् ॥
 “गंधचंदनतोयेन स्नापयेत्सकृदीश्वरम् । गंधर्वलोकमाप्नोति स गन्धर्वैश्च पूज्यते ॥
 “कुशोदकेन यो लिंगं सकृत्स्नापयते नरः । कांचनेन विमानेन ब्रह्मलोके महीयते ” ॥ १५

रत्नावल्याम्—

- “कर्पूरागरुतोयेन यो लिंगं स्नापयेत्सकृत् । स सर्वपापनिर्मुक्तः शिवसारूप्यमाप्नुयात् ॥
 “हिमांभसा शिवं स्नाप्य कौबेरं पदमाप्नुयात् । श्रियं प्राप्नोति स स्नाप्य शिवं कुंकुमवारिणा ॥
 “फलतोयैः शिवं स्नाप्य शिवलोके स मोदते ।
 “वासांसि सुविचित्राणि सारवंति मृद्वानि च । धूपितानि शिवे दद्याद्विकेशानि नवानि च ॥ २०
 “त्रिवृतं शुक्लचित्रं वा पद्मसूत्रादिनिर्मितम् । दत्त्वोपवीतं रुद्राय भवेद्वेदांतपारगः ॥
 “लिंगस्य लेपनं कुर्याद्यदि गंधैः सुगंधिभिः । वर्षकोटिशतं दिव्यं शिवलोके महीयते ॥
 “पुष्पैररण्यसंभूतैः पत्रैर्वा गिरिसंभवैः । आत्मारामोद्धवैर्वापि पुष्पैः संपूजयेच्छिवम् ॥
 “केतकीमाधवीकुन्दचूतयूथिकजालकैः । शिवे शिरीषबन्धूकैः कुसुमानि विवर्जयेत् ॥
 “यः साज्यगुग्गुलुं दध्वा घृतदीपं प्रकाशयेत् । स यामीं यातनां हित्वा शिवलोके महीयते ॥ २५
 “यावंतस्तंडुलास्तस्मिन्नेवैवधपारसंख्यया । तावद्युगसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥
 “गुडखंडघृतानां च भक्ष्याणां च निवेदने । घृतेन पाचितानां च दानाच्छतगुणं फलम् ॥
 “आढकक्षीरसंयुक्तमाढकार्धजलैर्युतम् । गुडं फलं च निक्षिप्य तंडुलैराढकैर्युतम् ॥
 “पायसं पाचितं कुर्यात् देवयोग्यमिदं शुभम् ” ॥ इति ।

निवेदनमाह भृगुः— “अत उर्ध्वं प्रवक्ष्यामि हविष्पाकविधिक्रमम् ।

३०

- “वाराककोद्रवादीनि वर्जयेत्तु विचक्षणः । कुलुत्थजातिभेदं च प्रियंगुं चैव वर्जयेत् ॥
 “धान्यानामपि सर्वेषां कृष्णधान्यं विवर्जयेत् । अथवान्यदलब्धं चेद्धान्यं शुद्धं समाहरेत् ॥
 “त्रिवर्षातीतधान्यानि न प्रशस्तानि दैविके । तंडुलानपि सर्वाश्च मासादूर्ध्वं विवर्जयेत् ॥
 “आजकं जरिकं चैव मरीचं सर्षपं तथा । राजमाषं महामाषं श्यामाकं कृष्णमाषकम् ॥
 “माषं मुद्गं महामुद्गं निष्पावं तिलतिल्वकौ । फलानि चूतकदलीपनसानां समाहरेत् ॥ ३५

“ भेदैस्तु कारवल्यादि सर्वं ग्राह्यमितीरितम् । क्षुद्रकंदं महाकंदमाहरेत्तु विचक्षणः ॥

“ सहकारप्रभेदैश्च तथैव पनसद्वयम् । कदल्यादिषु भेदैस्तु गृह्णीयात्तु प्रयत्नतः ॥

“ कूष्मांडोर्वारुके चैव सिंही व्याघ्री तथैव च । कर्कोटकादिसंग्राह्यं कलंजादीनि वर्जयेत् ॥

“ विंचालकफलादीनि वर्जयेदिति केचन । भेदैश्च बृहती सर्वा संग्राह्येत्युच्यते बुधैः ” ॥

- ५ मरीचिरपि— “ अथ हविर्विधिं वक्ष्ये । वेणुकान्यवान्वाष्पिकात्रीवारान्प्रियंगून्शालिभेदान् अन्यान्त्रीहीन्वाऽप्येकजातीयांश्चतुर्वर्णैरेवानयेदेषां पूर्वं पूर्वं श्रेष्ठं तस्माद्वरककोद्रवादीनि कुधान्यानि प्रतिलोमानीतानि च वर्जयेत् । कदलीचूतपनसनालीकेरतिंतिणिकारवल्लीव्याघ्री- शिंचभेदबृहतीभेदासिंहीव्याघ्रनखं कर्कन्धूवरिककूष्माण्डाकर्कोटकानि सूरणकंदक्षुद्रकंदमहाकंद- वल्लीकंदगृगिवेरोत्पलकंदान्यन्यानि च भक्ष्याणि यथालाभमाहरेत् । कोशातकीमलाबूं च १० विशेषेण विवर्जयेत् ” ॥ इति ।

हरिहरयोः पूजामाह बोधायनः (गृ. सू. २।२२।१-२)—“ अथातो देवयोः पूजाकरणे सर्वत्र ‘ त्रीणि पद्मा विचक्रमे ’ ‘ त्र्यंबकं यजामहे ’ इति एताभ्यां यथालिंगं आसनपाद्या- चमनीयादीनि एतयोश्च त्रैवर्णिकधर्मत्वात्सर्वत्रपुरस्ताद्व्योक्तप्रसिद्धात्प्रतिषेधाभावान्नियतेति स्माह भगवान्बोधायनः ” ॥ इति । स एव (२।२२।८)—“ देवयोर्यथाकामी स्यात् ।

- १५ यस्यां कस्यांचिद्वस्त्रायां जले वा स्थले वा प्रतिमासु वा सर्वं कृत्वाऽभ्यर्चयेत् ” इति । शौनकः—“ केचिद्गणपातिमादित्यं शक्तिमच्युतं शिवं च पंच क्रमेणाहरहर्यजंते । तानप्सु वाऽग्नौ वा सूर्ये वा हृदये वा स्थण्डिले वा प्रतिमासु वा यजेत प्रतिमास्वक्षणाकासु नावाहनविसर्जने भवतः । स्वाकृतिषु हितासु नित्यं संनिहिताः ” इति । प्रतिमाः प्राङ्मुखीरुद- ङ्मुखो यजेतान्यत्र प्राङ्मुखः संभृतसंभारं यजनभवनमेत्य विधिनोपविश्य यतप्राणः कर्म २० संकल्प्य शुचिः शंखादिपात्रं सपवित्रमद्भिः पूरयित्वा गंधाक्षतपुष्पाणि वा प्रक्षिप्य सावित्र्याऽभि- मंत्र्य तीर्थान्यावाद्याभ्युक्ष्य पवित्रपुष्पाणि तदुदकेनापोहिष्ठेति आत्मानमायतनं यजनांगानि चाभ्युक्ष्य क्रियांगोदकुंभं गंधादिभिरभ्यर्च्य तेनोदकेन नर्मोतनाम्ना तल्लिंगमंत्रेण वा क्रमेणोप- चारान्दद्यात् । पुष्पोदकेन पाद्यमर्च्य च पात्रांतरेण सगंधाक्षतं कुसुमं दद्यात् । आवा- हनमासनं पाद्यमर्च्यमाचमनं तथा स्नानमाचमनीयं वस्त्रमाचमनीयमुपवीतमाचमनीयं गंध- २५ पुष्पाणि धूपं दीपं नैवेद्यमाचमनमुपचारं मुखवासं स्तोत्रं प्रणामं दक्षिणां प्रदक्षिणं विसर्जनं च कुर्यात् । असंपन्नं मनसा संपादयेत् । मंत्राः “ गणानां त्वा गणपातिं हवामहे ” इति गणपतेः । “ आसत्येन रजसा ” इत्यादित्यस्य । ‘ जातवेदसे सुनवाम ’ इति शक्तेः । ‘ इदं विष्णुर्विचक्रमे ’ इति विष्णोः । ‘ त्र्यंबकं यजामहे ’ इति रुद्रस्येत्यभ्यर्च्य सावित्र्या वा जातवेद्या वा प्राजा- पत्यया वा व्याहृतिभिर्वा प्रणवेन वा कुर्वत्येष देवयजोऽहरहर्गोदानसंमितः सर्वाभीष्टदः ३० स्वयंपोषवर्गश्च । तस्मादेनमहरहः कुर्वति तमेनं हुतशेषेण वा पृथगग्नेन वा कुर्यात् । नास्य शेषेण वैश्वेदेवं कुर्यात् ” इति । अन्यानपि पूजार्हानाह व्यासः—

“ शिवो बद्धिर्गुणश्चैव ब्राह्मणश्च विशेषतः । चतुष्टयं समं पूज्यं सदाशिवपदार्थिभिः ” ॥

माधर्वाये—

“ शिवविद्यागुण्णां च भेदो नास्ति कथंचन । शिवे मंत्रगुणौ यस्य भावना सहशी भवेत् ॥

“ भोगो मोक्षश्च सिद्धिश्च शीघ्रं तस्य भवेद् ध्रुवम् ” ॥

पराशरः—

“ मर्त्यबुद्धिर्गुरौ यस्य शिवलिङ्गे शिवा मतिः । शब्दबुद्धिस्तु मंत्रेषु स खलु ब्रह्महा भवेत् ” ॥

वसिष्ठः—“ गुरोरवज्ञया मृत्युः मंत्रत्यागाद्विरदिता । गुरुमंत्रपरित्यागाद्रौरवं नरकं व्रजेत् ” ॥

इति देवपूजाकरणम् । इति चतुर्थभागकृत्यम् ।

अथ पञ्चमभागकृत्यम् । अथ पंचमहायज्ञाः ॥

तत्र दक्षः—

“ पंचमे च तथा भागे संविभागो यथार्हतः । पितृदेवमनुष्याणां कीटानां चोपदिश्यते ” ॥

वैश्वदेवस्य देवपूजानंतरभावित्वमुक्तं नरसिंहपुराणे—

“ पौरुषेण च सूक्तेन ततो विष्णुं समर्चयेत् । वैश्वदेवं ततः कुर्याद्वलिकर्म तथैव च ” ॥ इति । १०

व्यासोऽपि—

“ नैवेद्यार्थं पृथग् भांडे पत्नी स्नात्वा पचेद्गृहे । वैश्वदेवार्थमन्यस्मिन्व्यंजनानि पृथक् पृथक् ॥

“ एकस्मिन्वा पचेद्भांडे पूर्वं विष्णुनिवेदनम् । वैश्वदेवं ततः शिष्टान् व्यासस्य वचनं यथा ॥

“ वैश्वदेवं प्रकुर्वीत स्वशाखाभिहितं ततः । संस्कृतान्नैस्तु विविधैर्हविष्यव्यंजनान्वितैः ॥

“ तैरेवान्नैर्बलिं दद्यात् शेषमाप्लाव्य वारिणा । कृत्वाऽपसव्यं स्वधया पित्र्यं दक्षिणतो हरेत् ” ॥ इति । १५

हारीतोऽपि—

“ द्विजः पुरुषसूक्तस्य विधिना विष्णुमर्चयेत् । वैश्वदेवं ततः कुर्याद्वलिकर्म विधानतः ” ॥ इति ।

यत्तु शौनकवचनं “ ह्रुतशेषेण पृथग्नेन वा कुर्यान्नास्य शेषेण वैश्वदेवं कुर्यात् ” इति तद्वैश्वदेवार्थमुद्धृत्य तच्छेषेण निवेदनं कुर्यादित्येवंपरम् । “ उद्धृत्य वैश्वदेवार्थं देवस्य प्राङ्निवेदयेत् ” इति स्मरणात् । वैश्वदेवहोमात्पूर्वं शकलहोमं कुर्वीति शिष्टाः । २०

तत्र बोधायनः (४।३।६) “ आऽष्टौ समिध आदध्यात् दैवकृतस्यैनसोवयजनमसि स्वाहा । मनुष्यकृ० पितृकृ० आत्मकृ० यद्विवा च नक्तं चैनश्चकृम० तस्यावयजनमसि स्वाहा । यत्त्वपंतश्च जाग्रैतश्चनश्चकृम० यद्विद्वाऽसश्चाविद्वाऽसश्चैनश्चकृम० एनस एनसोवयजनमसि स्वाहेत्येतैरष्टभिर्हुत्वा सर्वस्मात्पापात्प्रमुच्यते ” इति ।

पंचमहायज्ञस्वरूपमाह श्रुतिः (तै. आ. सहवै. २।१०)—“ देवयज्ञः पितृयज्ञो भूतयज्ञो २५ मनुष्ययज्ञो ब्रह्मयज्ञ इति । यदग्नौ जुहोत्यपि समिधं तद्देवयज्ञः संतिष्ठते । यात्पितृभ्यः स्वधाकरोत्यप्यपस्तत्पितृयज्ञः संतिष्ठते । यद्भूतेभ्यो बलिं हरति तद्भूतयज्ञः संतिष्ठते । यद्ब्राह्मणेभ्योऽन्नं ददाति तन्मनुष्ययज्ञः संतिष्ठते । यत्स्वाध्यायमधीयीतैकामपृचं यजुः साम वा तद्ब्रह्मयज्ञः संतिष्ठते ” ॥ इति ।

व्यासः—“ देवयज्ञं पितृयज्ञं भूतयज्ञं तथैव च । मनुष्यब्रह्मयज्ञौ च पंचयज्ञान्प्रचक्षते ॥ ३०

“ यदि स्यात्तर्पणादर्वाक् ब्रह्मयज्ञः कृतो न हि । कृत्वा मनुष्ययज्ञं वै ततः स्वाध्यायमारभेत् ॥

“ अग्नेः पश्चिमतो देशे भूतयज्ञांतरेऽथ वा ” ॥ इति ।

यमः—“ पंचसूना गृहस्थस्य वर्त्ततेऽहरहः सदा । खंडनी पेषणी चुल्ली जलकुंभ उपस्करः ॥

“ एताभिर्वाहयान्विप्रो बध्यते वै मुहुर्मुहुः । एतासां पावनार्थाय पंचयज्ञाः प्रकल्पिताः ” ॥ इति ।

सूना हिंसास्थानानि । खंडनी मुसलोलूखलादिः । पेषणी दृषदुपलादिः । चुल्ली पाकस्थानम् । जलकुंभ ३५ उदधानम् । उपस्करः शूर्पादिः । एताभिः सूनाभिः स्वकार्यं प्रापयन्पापेन युज्यते इत्यर्थः ।

मनुः (३।६८-७१)—

“ पंचसूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः । खंडनी चोदकुंभश्च बध्यते यास्तु वाहयन् ॥

“ तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः । पंच क्लृप्ता महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम् ॥

“ अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु नर्पणम् । होमो दैवो बलिर्भूतो नृत्यज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥

५ “ पंचैतान्यो महायज्ञान्न हापयति शक्तिः । स गृहेऽपि वसान्नित्यं सूनादोषैर्न लिप्यते ” ॥

नामांतराण्याह स एव (३।७३-७४-८१)—

“ अहुतं च हुतं चैव तथा प्रहुतमेव च । ब्राह्मं हुतं प्राशितं च पंचयज्ञान्प्रचक्षते ॥

“ जपोऽहुतो हुतो होमः प्रहुतो भौतिको बलिः । ब्राह्मं हुतं द्विजाग्र्यार्चा प्राशितं पितृतर्पणम् ॥

“ स्वाध्यायेणार्चयेतर्षान्होमैर्देवान् यथाविधि । पितृन्श्राद्धेन नृनन्नैर्भूतानि बलिकर्मणा ” ॥ इति ।

१० याज्ञवल्क्योऽपि (आचारे १०२)—

“ बलिकर्म स्वधा होमस्वाध्यायोऽतिथिसत्क्रिया । भूतपित्रमरब्रह्ममनुष्याणां महामखाः ” ॥

नारायणः—

“सभार्यस्तु शुचिः स्नातो विधिनाऽऽचम्य वाग्यतः । उपविश्य समिद्धेऽग्नौ वैश्वदेवं समाचरेत्” ॥

वसिष्ठः (१।१।३)—“ वैश्वदेवं सायंप्रातर्गृह्येऽग्नौ जुहुयात् ” इति । मनुः (३।६७)—

१५ “ वैवाहिकेऽग्नौ कुर्वीत गार्ह्यं कर्म यथाविधि । पंचयज्ञविधानं च पक्त्तिं चान्वाहिकीं गृही ” ॥ इति ।

गार्ह्यं कर्म पाकयज्ञादिकम् । पितृभूतमनुष्यब्रह्मयज्ञानामग्नौ करणमग्निसमीपे करणं होमाभावा-

द्ब्रह्मयज्ञो हि मनुष्ययज्ञानंतरं चेत्क्रियते तदाग्निसमीपे कर्तव्यः । “अग्नेःपश्चिमतो देशे भूतयज्ञा-

तरेऽथ वा ” इति व्यासस्मरणात् । तथा च कण्वः—“ अग्निसमीपे वचनेन निषिद्धाः पंच-

यज्ञाः आहिताग्नेरपि ” इति । ब्रह्मयज्ञस्याग्निसम्बन्धः उशनसाऽपि पक्षे दर्शितः—“ अग्निसमीप

२० इत्येकेषाम् ” इति ।

अंगिराः—“लौकिके वैदिके वाऽपि हुतोत्सृष्टे जले क्षितौ । वैश्वदेवस्तु कर्तव्यः पंचसूनापनुत्तये” ॥

व्यासोपि—

“शालाग्रौ लौकिके वाऽपि जले भूम्यामथापि वा । वैश्वदेवस्तु कर्तव्यो देवयज्ञः स वै स्मृतः” ॥ इति ।

गृह्यपरिशिष्टेऽपि (१।१२)—“ वैश्वदेवस्य प्रातरारंभः अग्निसमीपासनं पचनं वा परिसमुद्भेति

२५ विश्वेदेवाः सर्वे देवास्तद्देवत्यमिदं वैश्वदेवम् ” इति । अत्र व्यवस्थामाहांगिराः—

“ शालाग्रौ तु पचेदन्नं लौकिके वाऽपि नित्यशः । यस्मिन्नेव पचेदन्नं तस्मिन्होमो विधीयते ” ।

संग्रहे—

“ यदि स्याल्लौकिके पाकः ततोऽन्नं तत्र हूयते । गृह्याग्रौ चेत्पचेदन्नं गृह्याग्रौ होम एव च ॥

“ प्रातर्होमं तु निर्वर्त्य समुद्धृत्य हुताशनात् । शेषं महानसे कृत्वा तत्र पाकं समाचरेत् ॥

३० “ तमाग्निं पुनर्गत्य शालाग्रावेव निक्षिपेत् । ततोऽस्मिन्वैश्वदेवादि कर्म कुर्यादतंद्रितः ” ॥ इति ।

चन्द्रिकायामपि—

“ यस्मिन्नग्नौ भवेत्पाकः वैश्वदेवस्तु तत्र वै । तत्राहुत्वा तु यो भुंक्ते स भुंक्ते किल्बिषं नरः ” ॥ इति ।

व्यासोऽपि—

“ यदि स्याल्लौकिके पाकः ततोऽन्नं तत्र हूयते । शालाग्रौ तत्र चेदन्नं विधिरेव सनातनः ॥

३५ “ देवेभ्यन्तु हुतादन्नात् शेषाद्भूतबलिं हरेत् । भूतयज्ञः स विज्ञेयो भूतिदः सर्वदेहिनाम् ” ॥ इति ।

तच्च कालद्वयेऽपि कर्तव्यमित्याह कात्यायनः—

“सायंप्रातर्वैश्वदेवः कर्तव्यो बलिकर्म च । अनश्रताऽपि सततमन्यथा किल्बिषी भवेत् ” ॥
प्रजापतिरपि—

“वैश्वदेवं बलिद्विति प्रत्यहं गृहमेधिनः । सायंप्रातश्च कुर्वीत सूनादोषापनुत्तये ” ॥ इति ।

तात्पर्यदर्शने—“ऋते महायज्ञेभ्यः सायं रौद्रांतं कृत्वा वैहायसमाकाशे भूतबलिं कुर्वीत । ५
अन्यत्र आहुः । “नक्तमेवोत्तमेन वैहायसम्”(२।२।४।८) इत्यापस्तंबवचने एवकारस्य व्यवहिता-
न्याद्वैहायसमेव सायमिति । तथा च त्रिकांडी—“वैश्वदेवं दिवा रात्रौ कुर्याद्वलिद्विति तथा ।
“रात्रौ होमं प्रकुर्वीत ये भूता मंत्रतो बलिम् । नान्यद्वलिद्विति रात्रौ यद्वा कुर्यादमंत्रतः ” ॥

मनुः (३।१२१)—“सायं त्वन्नस्य सिद्धस्य पत्न्यमंत्रं बलिं हरेत् ” ॥ इति ।

तत्र वैश्वदेवहोमप्रकारमाहश्वलायनः (१।२।१-२)—“सायं प्रातः सिद्धस्य हविष्यस्य १०
जुहुयादग्निहोत्रदेवताभ्यः सोमाय वनस्पतयेऽग्नीषोमाभ्यामिन्द्राग्निभ्यां द्यावापृथिवीभ्यां धन्वं-
तरये इन्द्राय विश्वेभ्यो देवेभ्यो ब्रह्मणे स्वाहा ” । इति हविष्यस्येति हविर्योग्यस्येत्यर्थः । अग्नि-
होत्रदेवताभ्यः सूर्याग्निप्रजापतिभ्य इत्यर्थः ।

आपस्तंबः (२।२।३।१६-१७) “औपासने पचने वा षड्भिराद्यैः प्रतिमंत्रं हस्तेन
जुहुयादुभयतः परिषेचनं यथापुरस्तात् ” इति । षड्भिराद्यैः अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा १५
विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ध्रुवाय भौमाय० ध्रुवक्षितये० अच्युतक्षितये स्वाहेत्येतैः । केचित्
सौविष्टकृतमपि सप्तमं जुह्वति अग्नये स्विष्टकृते स्वाहेति । औषधिहविष्केषु सर्वत्र तस्य
प्रवृत्तिरिति वदंतः । अन्ये तु सोमाय स्वाहेति न पठन्ति सौविष्टकृतं षष्ठं पठन्तीति हरदत्तः ।
गौतमः (५।९) “अग्नावग्निर्धन्वंतरिर्विश्वेदेवाः प्रजापतिः स्विष्टकृदिति होमाः ” इति ।
अग्न्यादिभ्यः स्विष्टकृदन्तेभ्योऽग्नौ होमाः कर्तव्या इत्यर्थः ॥ २०

मनुरपि (३।८४-८६)—

“वैश्वदेवस्य सिद्धस्य गृह्येऽग्नौ विधिपूर्वकम् । आभ्यः कुर्याद्वेवताभ्यो ब्राह्मणो होममन्वहम् ॥

“अग्नेः सोमस्य चैवादौ तयोश्चैव समस्तयोः । विश्वेषां चैव देवानां धन्वंतरय एव च ॥

“कुह्वै चैवानुमत्यै च प्रजापतय एव च । सह द्यावापृथिव्योश्च तथा स्विष्टकृते ततः ” ॥

चतुर्थ्यर्थे षष्ठी । सह द्यावापृथिव्योः समस्ताभ्यां द्यावापृथिवीभ्यामित्यर्थः ॥ २५

कात्यायनोऽपि—“स्वाहाकारैर्जुहुयाद् ब्रह्मणे प्रजापतये गृह्येभ्यः काश्यपायानुमतये” इति ।

अत्र यथास्वशाखं व्यवस्था । “वैश्वदेवं प्रकुर्वीत स्वशाखाभिहितं तथा ॥

“यस्य यावत्स्वगृह्योक्तं स्वल्पं वा यदिवा बहु । तस्य तावति शास्त्रार्थे कृते सर्वं कृतं भवेत्” ॥ इति

व्यासस्मरणात् । स्मृतिसारे—

“अप्रबुद्धे तु होमाग्नौ वैश्वदेवं न कारयेत् । यजमानो भवेदंध इत्येवं मनुरब्रवीत् ” ॥ इति । ३०

होतव्यान्नस्य संस्कारमाह व्यासः—

“जुहुयात् सर्पिषाऽभ्यक्तं तैलक्षारविवर्जितम् । दध्यक्तं पयसाऽक्तं वा तदभार्वेऽबुनाऽपि वा” ॥

गृह्यपरिशिष्टेऽपि (१।१२)—

“अग्नेः प्रत्यक् दर्भेषु निधाय सर्पिषाऽभ्यज्य सकृदवदानेन पाणिना जुहुयात् ” इति ॥

स्मृत्यर्थस्तारे—

“कोद्रवं वरकं माषं मसूरं च कुलुत्थकम् । क्षारं च लवणं सर्वं वैश्वदेवे विवर्जयेत्” ॥ इति ।
आपस्तम्बोऽपि (२।१५।१४-१८) — “न क्षारलवणहोमो विद्यते । तथा अवरात्रसंसृष्टस्य अहविषस्य
होम उदीचीनमुष्णं भस्मापोह्य तस्मिन्भस्मानि तद्धृतं जुहुयात् अहुतं चाग्नौ भवति । न स्त्री जुहु-
यांन्नानुपेतः” इति । “यस्याग्नौ न क्रियते यस्य चाग्रं न दीयते न तद्धोक्तव्यम्” (१३) इति च ।

बोधायनः—

“अंगारान् भस्ममिश्रांस्तु निरुह्योत्तरतोऽत्र तु । जुहुयाद्वैश्वदेवं तु यदि क्षारादिमिश्रितम्” ॥ इति ।

भरद्वाजः—

“सर्वेषु पाक्यज्ञेषु तथा वैदिककर्मसु । त्रियाश्वानुपनीतस्य बलिमंत्रो न विद्यते” ॥ इति ।

१. द्रव्यानुकल्पश्चतुर्विंशतिमते दर्शितः—“अलाभे येनकेनापि फलशाकोदकादिभिः ॥

“पयोदधिघृतैः कुर्यात् वैश्वदेवं स्रुवेण तु । हस्तेनान्नादिभिः कुर्यादद्भिरंजलिना जलम्” ॥ इति ।
व्यासोऽपि—

“पक्वाभावे प्रवासे च तण्डुलानोषधीश्च वा । पयोदधिघृतं वाऽपि कंदमूलफलानि वा” ॥

जुहुयादिति शेषः । स एव—“अथवा मंत्रतः कुर्याद्भवेन्नावैश्वदेविकः” इति ।

१. यदद्यते तेनैव होतव्यम् । तदुक्तं गृह्यपरिशिष्टे—

“शाकं वा यदि वा पत्रं मूलं वा यदि वा फलम् । संकल्पयेद्यदाहारस्तेनैव जुहुयादपि ॥

“उत्तानेन तु हस्तेन ह्यंगुष्ठाग्रेण पीडितम् । संहतांगुलिपाणिस्तु वाग्यतो जुहुयाद्भविः ॥

“अंगुष्ठपर्वमात्रं स्यादवदानमिति स्मृतम् । द्रवं स्रुवेण होतव्यं पाणिना कठिनं हविः” ॥ इति ।

जैमिनिः—

२. “अवश्यं तु त्यजेदन्नं मनसा वचसाऽपि च । ततश्च प्राक्षिपेद्ग्राविति धर्मः सनातनः” ॥

उगनाः—

“अत्यक्त्वा जुहुयाद्यस्तु मोहेनान्वितानसः । देवानां नोपतिष्ठेत् नरकं प्रतिपद्यते ॥

“यत्किंचिज्जुहुयाद्ग्नौ तत्सर्वं त्यागपूर्वकम् । अन्यथा कुरुते यस्तु नरके स विपद्यते” ॥ इति ।

अनग्निकस्य वैश्वदेवे विशेषमाह वृद्धयसिष्ठः—

१. “अनग्निकस्तु यो विप्रः सोऽन्नं व्याहृतिभिः स्वयम् । हुत्वा शाकलमंत्रैश्च शिष्टं काकबलिं हरेत्” ॥ इति ।

विष्णुरपि—

“अन्नं व्याहृतिभिर्हुत्वा हुत्वा मंत्रैश्च शाकलैः । प्रजापतेर्हविर्हुत्वा पूजयेदतिथिं तथा” ॥ इति ।

तिष्ठुमिव्याहृतिभिरन्नाहुतीर्हुत्वा प्रजापतये स्वाहेति च ततो देवकृतस्येनस इत्याद्यैः शाकलहोमं

च कृत्वा काकबलिं कृत्वाऽतिथिं पूजयेदित्यर्थः । तथा चात्रिः—

१. “नाग्निकः पितृयज्ञांतं बलिकर्म समाचरेत् । अनग्निर्हुतशेषं तु बलिं काकबलिं हरेत् ॥

“पुण्ययज्ञादृते नास्ति निग्नेस्तु महामत्तः” इति । व्याहृत्यादिहोमान्काकबलिमातिथ्यं च

विनाऽन्यन्तान्तीत्यर्थः । मंत्रोपयोगनियममाहापस्तम्बः (२।२।३।१२-१४) “गृहमेधिनो यद-
गनीयस्य होमा बल्यश्च स्वर्गपुष्टियुक्तास्तेषां मंत्राणामुपयोगे द्वादशाहमधःशय्या द्रव्यार्थं

आग्न्यवज्जर्जने चोन्नमन्येकगत्रमुपवासः” इति । गृहमेधिनो यदगनीयं पञ्चमपत्रं वोपस्थितं

तस्यैकदेशेन होमा बलयश्च कर्तव्याः । स्वर्गः पुष्टिश्च तेषां फलम् । तेषां होमबलिमंत्राणामुपयोगे उपयोगो नियमपूर्वकं विद्याग्रहणम् । तथा च बोधायनः—“ तेषां ग्रहणे द्वादशरात्रमित्यादि तत्रोपयोक्तुरेव व्रतम् । अन्ये तु पत्न्या अपीच्छन्ति ” इति । उपयोगः प्रथम प्रयोगः । तत्र पत्न्या अपि सहाधिकार इति वदन्तः । उत्तमस्य ये भूताः प्रचरन्त्यस्या एकरात्रमुपवासः कर्तव्यः इति हरदत्तः । अन्नसंस्कृतिनाहापस्तम्बः (२।२।३।१)— “ आर्याः प्रयता वैश्व- ५ देवोऽन्नसंस्कृतिरः स्युः ” इति । आर्यास्त्रैवर्णिकाः । स एव (२।२।३।१०।१३-१४)—

“सिद्धेऽन्ने तिष्ठन्भूतमिति स्वामिने प्रब्रूयात्तत्सुभूतं विराडन्नं तन्मा क्षायीति प्रतिप्रवचनः” इति । सिद्धे पक्वेन्ने तिष्ठन्पाचकः भूतमिति अन्नस्वामिने प्रब्रूयात्तत्सुभूतमित्यादिः प्रतिवचने मंत्र इत्यर्थः । यत्तु तेनोक्तं (२।२।३।४)—“ आर्याधिष्ठिता वा शूद्राः संस्कृतिरः स्युः ” इति तत् युगांतरविषयम् । “ ब्राह्मणादिषु शूद्रस्य पचनादिक्रियाऽपि च ” इति कलियुगनिषिद्ध- १० धर्मेषु मध्ये स्मरणात् ।

अथ बलिहरणम् । तत्र कात्यायनः—

“ उद्धृत्य हविरासिच्य हविष्येण घृतादिना । स्वशाखाविधिना हुत्वा तच्छेषं बलिमाहरेत् ॥

“ यावद्गृहे वसेत्तावत्स्वयमेव बलिं हरेत् । सायं त्वन्नस्य सिद्धस्य पत्न्यमंत्रं बलिं हरेत् ” ॥ इति ।

चंद्रिकायाम् (पृ. २१३)—

“ स्वशाखोक्तेन विधिना बलिकर्म विधीयते । न जातु परशाखोक्तं बुधः कर्म समाचरेत् ” ॥ इति ।

हारीतः—“ वास्तुपालनभूतेभ्यो बलिहरणं भूतयज्ञः ” इति ।

बलिहरणे गौणकृतिनाहानिः—

“ पुत्रो भ्राताऽथ वा ऋत्विक् शिष्यश्चशुरमातुलाः । पत्नीश्रोत्रिययाज्याश्च दृष्टास्ते बलिकर्माणि ॥

“ गृहे कर्त्रतराभावे प्रवासेऽप्याचरेत्स्वयम् ” इति । बलिहरणप्रकारमाह शौनकः—“ अथ बलि- २० हरणमेताभ्यश्च वै ह्योषधिभ्यो गृहाय गृहदेवताभ्यो वास्तुदेवताभ्य इन्द्रायेंद्रपुरुषेभ्यो यमाय यम- पुरुषेभ्यो वरुणाय वरुणपुरुषेभ्यः सोमाय सोमपुरुषेभ्य इति । प्रतिदिशं ब्रह्मणे ब्रह्मपुरुषेभ्य इति मध्ये विश्वेभ्यो देवेभ्यः सर्वेभ्यो भूतेभ्यो दिवाचारिभ्य इति दिवानक्तंचारिभ्य इति नक्तं रक्षोभ्य इत्युत्तरतः स्वधापितृभ्य इति प्राचीनावीती शेषं दक्षिणा निनयेत् ” इति ।

आपस्तम्बोऽपि (२।२।३।२०-२३, २।२।४।१-९)—“ अपरेणाग्निं सप्तमाष्टमाभ्यामुदगप- २५ वर्गमुदधानसंनिधौ नवमेन । मध्येऽगारस्य दशमैकादशाभ्यां प्रागपवर्गमुत्तरपूर्वदेशेऽगारस्यो-

त्तरैः चतुर्भिः । शय्यादेशे कामलिङ्गेन देहल्यामंतरिक्षलिङ्गेनोत्तरेणापिधान्यामुत्तरैर्ब्रह्मसदने दक्षिणतः पितृलिङ्गेन प्राचीनावीत्यवाचीनपाणिः कुर्याद्रौद्र उत्तरो यथा देवताभ्यस्तयोर्नाना- परिषेचनं धर्मभेदान्नक्तमेवोत्तमेन वैहायसं य एतानव्यग्रो यथोपदेशं कुरुते नित्यः स्वर्गः पुष्टिश्च ” इति । अस्यार्थः । अग्नेः पश्चात्सप्तमाष्टमाभ्यां धर्माय स्वाहा अधर्माय स्वाहा ३० इत्येताभ्यामुदगपवर्गं बलिहरणं कर्तव्यम् । उदकं यत्र धीयते तदुधानं मणिकारख्यं तस्य संनिधौ नवमेन अभ्यः स्वाहेत्यनेन अगारमध्ये दशमैकादशाभ्यां ओषधिवनस्पतिभ्यः स्वाहा रक्षोदेवजनेभ्यः स्वाहेत्येताभ्यां प्रागपवर्गम् । अगारस्योत्तरपूर्वदेशे उत्तरैश्चतुर्भिर्गृह्याभ्यः स्वाहा अवसानेभ्यः स्वाहा अवसानपतिभ्यः स्वाहा सर्वभूतेभ्यः स्वाहेत्येतैः प्रागपवर्गम् ।

- एवं शय्यादेशे कामाय स्वाहेत्यनेन देहली अंतर्द्वारस्थाऽधस्ताद्धारु । तत्रांतरिक्षाय स्वाहेत्यनेन येनापिधीयते द्वारं सापिधानी क्वाटं तदर्गलमित्यन्ये । तत्रोत्तरेण मंत्रेण यदेजति जगति यच्च चेष्टति नाम्नो भागो यं नाम्ने स्वाहेत्यनेन ब्रह्मसदनं मध्येगारं वास्तुविद्याप्रसिद्धं अग्नेर्दक्षिणत इत्यन्ये । तत्रोत्तरैर्दशभिः पृथिव्यैः स्वाहा अंतरिक्षाय० दिवे० सूर्याय० चंद्रमसे० नक्षत्रेभ्यः०
- ५ इंद्राय० बृहस्पतये० प्रजापतये० ब्रह्मणे स्वाहेत्येतैः प्रागपवर्गमेव । दक्षिणतः अनंतराणां बलीनां दक्षिणतः स्वधा पितृभ्य इत्यनेन प्राचीनावीती अवाचीनपाणिः दक्षिणं पाणिमुत्तानं कृत्वा अंगुष्ठतर्जन्योरंतरालेन कुर्यात् । पितृबलेरुत्तरतो रौद्रबलिः कर्तव्यः । यथा देवताभ्यः उपवीतीत्यर्थः । नमो रुद्राय पशुपतये स्वाहेतिमंत्रः बलीनां देशे देशे समवेतानां सकृत्सकृदंते परिषेचनमिति स्वोक्तस्यापवादः । तयोर्नानापरिषेचनमिति तयोरनंतरोक्तयोर्बल्योरेकस्मिन्देसे समवेतयोरपि
- १० पृथक् परिषेचनं कर्तव्यम् । कुतः धर्मभेदात् । पित्र्यस्याप्रदक्षिणं इतरस्य देवत्वात्प्रदक्षिणमिति उत्तमेन “ये भूताः प्रचरन्ति नक्तं बलिमिच्छन्तो वितुदस्य प्रेक्ष्याः । तेभ्यो बलिं पुष्टिकामो हरामि मायि पुष्टिं पुष्टिपतिर्ददातु स्वाहा” इत्यनेन वैहायसबलिं दद्यात्तच्च ‘नक्तमेव वैहायसमिति’ वचनात् आकाश एव बलिरुत्क्षेप्यः । न छदिः परिष्कृते देशे । तथा च बोधायनः (२।८) — “अथाकाशे उत्क्षिपति ये भूता” इति । अपर आह एवकारो भिन्नक्रमः । नक्तमुत्तमेनैव बलि-
- १५ रिति तत्र बल्यंतराणां रात्रौ निवृत्तिः । अन्ये तु दिवा बलिमिच्छन्त इत्यूहेन दिवापि बलिं हरति । तथा चाश्वलायनः (१।२।८-९) “दिवा चारिभ्य इति दिवा । नक्तं चारिभ्य इति नक्तम्” इति । मनुरापि (३।९०) — “विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो बलिमाकाश उत्क्षिपेत् । दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नक्तं चारिभ्य एव च” ॥ इति । बलिदेशसंस्कारोऽप्यापस्तंबेनोक्तः (२।२।३।१५) — “बलीनां तस्य तस्य देशे संस्कारो
- २० हस्तेन परिमृज्यावोक्ष्य न्युप्य पश्चात्परिषेचनम्” इति । बलीनां मध्ये तस्य तस्य बलेर्देशे संस्कारः कर्तव्यः । कः पुनरसौ हस्तेन परिमार्जनमवोक्षणं च । तत्कृत्वा बलिं निवपति न्युप्य पश्चादेकैकस्मिन् देशे समवेतानां बलीनां सकृत्सकृत्परिषेचनमित्यर्थः । स एव (२।२।३।१९) — “सति सूपसंसृष्टेन कार्याः” इति । व्यंजनैः सूपेन च संसृष्टेनान्नैः बलयः कार्याः । सति संभव इत्यर्थः । तथा च बोधायनः — “एष एव व्यंजनानां संस्कारः सूपस्यापि” ॥ इति ।
- २५ गौतमः (५।१०-१५) — “दिग्देवताभ्यश्च यथास्थानगृहस्य द्वापुं महर्भ्यो गृहदेवताभ्यः प्रविश्य ब्रह्मणे मध्येऽभ्य उदकुंभ आकाशायेत्यंतरिक्षे नक्तंचरेभ्यश्च सायम्” इति । दिग्देवताभ्य इंद्रादिभ्योऽष्टभ्यः प्रागादिदिक्षु प्रदक्षिणं बलिर्हर्तव्यः । यावन्ति गृहस्य द्वाराणि तेषु सर्वेषु मरुभ्यः स्वाहेति बहिः स्थितो बलिं दत्त्वा ततोऽतः प्रविश्य गृहदेवताभ्यो बलिं हरन्त । अत्रैके गृहदेवताभ्यः स्वाहेति मंत्रं मन्यन्ते ॥
- ३० आश्वलायने तथा दर्शनात् । अन्ये गृहे या देवतास्ताभ्यस्तेन तेन शब्देन बलिं हर्तव्य इत्याहुः । ताश्चोशनस्ता दर्शिताः — “शयनस्य शिरस्थाने श्रियैर्नम” इति दद्यात् । पादस्थाने भद्रकाल्ये नम इति । गोष्ठागारे धनपतये नम इति । स्तम्भनिलये रुद्राय नम इति । गोष्ठे मित्राय नम इति । उलूखलमुसलयोर्वरुणाय नम इति । कूपे अहये बुध्नयाय नम इति । पेपण्यामग्निमीपे चैताभ्यो देवताभ्यो नम इति ददाति इति ।
- ३५ गृहमव्ये ब्रह्मणे स्वाहेति उदकुंभसमीपे अद्भ्यः स्वाहेति । अंतरिक्षे आकाशाय स्वाहेति । नक्तंचरेभ्यः स्वाहेति सायमाकाशे बलिरुत्क्षेप्य इति गौतमवचनार्थः ।

मनुरपि (३।८७-९१)—

“ एवं सम्यग्घविर्हुत्वा सर्वदिक्षु प्रदक्षिणम् । इंद्रांतकाप्पतींद्रभ्यः सानुगेभ्यो बलिं हरेत् ॥
 “ मरुद्भ्य इति तु द्वारि हरेदप्स्वभ्य इत्यपि । वनस्पतिभ्य इत्येवं मुसलोलूखले हरेत् ॥
 “ उच्छीर्षके श्रियै दद्यात् भद्रकाल्यै तु पादतः । ब्रह्मवास्तोष्पतिभ्यां तु वास्तुमध्ये बलिं हरेत् ॥
 “ विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो बलिमाकाश उत्क्षिपेत् । दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नक्तंचारिभ्य एव च ॥ १५
 “ षष्ठं वास्तुनि कुर्वीत बलिं सर्वात्मभूतये । पितृभ्यो बलिशेषं तु सर्वं दक्षिणतो हरेत् ” ॥ इति ।
 इदं बलिहरणं व्यजनाकारमग्निसमीपे शिष्टाः कुर्वन्ति । अत्र कात्यायनः—

“ ध्वजाकारं नराकारं तथा वल्मिकरूपकम् । चक्राकारं च काम्यानां बलीनां लक्षणं विदुः ॥
 “ चतुर्ध्वेषु विप्राणां नित्या चक्राकृतिर्भवेत् । चक्राकारमथाष्टारं कुर्यादग्निसमीपतः ” ॥ इति ।

शौनकोऽपि—

“ आयुष्कामो दिवारात्रौ सुवाकारं बलिं हरेत् । आयुरारोग्यकामस्तु ध्वजाकारं बलिं हरेत् ॥
 “ मृत्युरोगविनाशार्थी नराकारं बलिं हरेत् । जनवश्यं कर्तुकामो वल्मीकार्ख्यं बलिं हरेत् ॥
 “ आयुरारोग्यसौभाग्यपुत्रविद्यापशून्प्रति । कामश्चेद्धनमोक्षादौ चक्राकारं बलिं हरेत् ॥
 “ बदरीफलमात्राक्षमंगुल्यग्रैर्भुवि क्षिपेत् ” ॥ इति ।

व्यासः—

“ श्वभ्यश्च श्वपचेभ्यश्च पतितादिभ्य एव च । दद्याद्भूमौ बहिस्त्वन्नं पक्षिभ्योऽथ द्विजोत्तमः ” ॥ १६

मार्कण्डेयोऽपि—

“ एवं गृहबलिं कृत्वा गृहे गृहपतिः शुचिः । आप्यायनाय भूतानां कुर्यादुत्सर्गमादरात् ” ॥ इति ।
 याज्ञवल्क्यः (आ. १०३)
 “ देवेभ्यस्तु हुतादन्नात् शेषाद्भूतबलिं हरेत् । अन्नं भूमौ श्वचांडालवायसेभ्यश्च निक्षिपेत् ॥ ३०
 “ संक्षालनमथान्नेन निनयेत्प्रागुदग्दिशि ” ॥ इति ।

मनुरपि (३।९२)—

“ शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम् । वायसानां क्रिमीणां च शनकैर्निर्वपेद्भुवि ” ॥ इति ।
 स्मृत्यर्थसारेऽपि—“ भूतयज्ञबलिशेषं सोदकं स्वधापितृभ्य इति प्राचीनावीती पितृभ्यो दद्यात् ।
 ततस्तथैव बहिर्निवेशनांते सोदकमन्नं श्वचांडालपतितवायसेभ्यश्च निक्षिपेत् ” । इति
 तत्र मंत्रो विष्णुपुराणे दर्शितः (३।११।४८-५३)

“ देवा मनुष्याः पशवो वयांसि सिद्धाः सदैत्योरगयक्षसंधाः ।
 “ प्रेताः पिशाचास्तरवः समस्ता ये चान्नमिच्छन्ति मयाऽन्नं दत्तम् ॥
 “ पिपीलिकाः कीटपतंगकाया बुभुक्षिताः कर्मनिबन्धबद्धाः ।
 “ प्रयांतु ते वृत्तिमिदं मयाऽन्नं तेभ्यो निसृष्टं सुखिनो भवंतु ॥
 “ येषां न माता न पिता न बंधुर्नैवांस्ति सिद्धिर्न तथा न्नमस्ति ।
 “ तत्तृप्तयेऽन्नं भुवि दत्तमेतत्ते यांतु वृत्तिं मुदिता भवन्तु ॥
 “ भूतानि सर्वाणि तथान्नमेतदहं च विष्णुर्न यतोऽन्यदस्ति ॥
 “ तस्मादहं भूतहिताय भूमावन्नं प्रयच्छामि भवाय तेषाम् ॥

“चतुर्दिशो लोकगणो य एष तत्र स्थिता येऽखिलभूतसंघाः ॥

“तृप्त्यर्थमन्नं हि मया निसृष्टं तेषामिदं ते मुदिता भवन्तु ॥

“इत्युच्चार्य नरो दद्यादन्नं श्रद्धासमन्वितः । भुवि सर्वोपकाराय गृही सर्वाश्रयो यतः” ॥ इति मार्कण्डेयः—“ततः शनैर्वलिं दद्याद्बहिः काकशुनां तथा ” । तत्र मंत्रः—

- ५ “ऐद्वारुणवायव्याः सौम्या याम्याश्च नैर्ऋताः । वायसाः प्रतिगृह्णन्तु भूमौ पिंडं मयाऽर्पितम् ॥
“श्वानो हि इयामश्वलौ वैवस्वतकुलोद्भवौ । ताभ्यां पिंडं प्रदास्यामि स्यातामेतावहिंसकौ ॥
“मंत्राभ्यामेव चैताभ्यां स्वकाकबलिमुत्सृजेत् । दत्त्वाऽनेन विधानेन बलिं पश्चादुपस्पृशेत्” ॥ इति ।

अथ पितृयज्ञः । मुख्यानुकल्पभेदेन पितृयज्ञस्वरूपमाह कात्यायनः—

“श्राद्धं वा पितृयज्ञः स्यात्पित्र्यो बलिरथापि वा । एकमप्याशयेन्नित्यं पितृयज्ञार्थसिद्धये ॥

- १० “अद्वैवं नास्ति चेदन्यो भोक्ता भोज्यमथापि वा । अप्युद्धृत्य यथाशक्ति किञ्चिदन्नं यथाविधि ॥
“पितृभ्य इदमित्युक्त्वा स्वधाकारमथाहरेत् ” ॥ इति ।

व्यासः—“एकं तु भोजयेद्विप्रं पितृनुद्दिश्य सादरम् । नित्यश्राद्धं समुद्दिष्टं पितृयज्ञो गतिप्रदः ॥

“उद्धृत्य वा यथाशक्ति किञ्चिदन्नं समाहितः । वेदतत्त्वार्थविदुषे द्विजायैव प्रदापयेत् ॥

“विप्राभावे तु पिंडं वा दद्याद्दक्षिणतो भुवि । कुक्कुटांडप्रमाणस्तु पिंड इत्यभिधीयते” ॥ इति ।

- ११ मनुः (३।८२)—

“दद्यादहरहः श्राद्धं अन्नाद्येनोदकेन वा । पयोमूलफलैर्वाऽपि पितृभ्यः प्रीतिमावहन् ॥

“एकमप्याशयेद्विप्रं पित्रर्थे पाञ्चयज्ञिके । न चैवात्राशयेत्किञ्चिद्वैश्वदेवं प्रतिद्विजम् ” ॥ इति ।

मार्कण्डेयोऽपि—“पितृनुद्दिश्य विप्रांस्तु भोजयेद्विप्रमेव वा” इति । तत्प्रकारमाह प्रचेताः—

“नावाहनाग्नौकरणे न पिंडो न विसर्जनम् । दत्त्वा तु दक्षिणां शक्त्या नमस्कारैर्विसर्जयेत् ॥

- १२ “एकमप्याशयेन्नित्यं षण्णामप्यन्वहं गृही ” ॥ स्मृत्यर्थसारे—

“नित्यश्राद्धमद्वैवं षट्पुरुषं च भवेदिह । न देशकालनियमः कर्त्रादिनियमा अपि ” ॥

सारसमुच्चये—

“नित्यश्राद्धं तु यन्नाम देवहीनं तदुच्यते । तत्तु त्रिपुरुषं ज्ञेयं दक्षिणापिंडवर्जितम् ” ॥ इति ।

व्यासोऽपि—

- २५ “नित्यश्राद्धे तु गंधार्थैर्द्विजानभ्यर्च्य शक्तितः । सर्वान्पितृगणान्सम्यक्सहैवोद्दिश्य भोजयेत् ॥

“आवाहनं स्वधाकारं पिंडाग्नौकरणादिकम् । ब्रह्मचर्यादिनियमो विश्वेदेवास्तथैव च ॥

“नित्यश्राद्धे त्यजेदेतान्भोज्यमन्नं प्रकल्पयेत् ” ॥

शातातपः—“नित्यश्राद्धमद्वैवं स्यादर्घ्यपिंडादिवर्जितम् ” इति । मत्स्यपुराणेऽपि—

“नित्यं तावत्प्रवक्ष्यामि अर्घ्यावाहनवर्जितम् । अद्वैतं विजानीयात्पार्वणे तद्वि कीर्तितम्” ॥ इति ।

- ३० रत्नावल्यं पितृगाथा—

“अपि स्यात्सकुलेऽस्माकं यः श्राद्धं नित्यमाचरेत् । पुष्पमूलफलैर्वाऽपि तिलतोयेन वा पुनः” ॥ इति ।

अत्र केचिद्वैश्वदेवबलिहरणयोर्देवयज्ञपितृयज्ञभूतयज्ञानामंतर्भावमाचक्षते ।

तथा च व्यासः—

“वैश्वदेवस्तु कर्तव्यो देवयज्ञः स वै स्मृतः । देवेभ्यस्तु हुतादन्नाच्छेषान्द्रूतबलिं हरेत् ॥

“ भूतयज्ञस्तु विज्ञेयो भूतिदः सर्वदेहिनाम् । श्राद्धं वा पितृयज्ञः स्यात्पितृभ्यो बलिरथापि वा ” ॥ इति ।
हारीतोऽपि—“ वैश्वदेवो देवयज्ञो वास्तुपालनभूतेभ्यो बलिहरणं भूतयज्ञः ” इति ।

आपस्तम्बः (१।४।१२।१५-१३।१) “ अहरहर्भूतबलिर्मनुष्येभ्यो यथाशक्ति दानं देवेभ्यः स्वाहा-
कार आ काष्ठात्पितृभ्यः स्वधाकार ओदपात्रात्स्वाध्याय इति ” । अत्रोज्ज्वला- अपरेणाग्निं
सप्तमाष्टमाभ्यामुदगपवर्गमिति बलिहरणप्रकारेण भूतेभ्योऽहरहर्बलिर्देयः । एष भूतयज्ञः । मनुष्ये- ५
भ्यश्च यथाशक्ति दानं कर्तव्यम् । एष मनुष्ययज्ञः । देवेभ्यः स्वाहाकारेण प्रदानमा काष्ठादशनीया-
भावे षड्विंशत्यैः प्रतिमंत्रमिति वैश्वदेवोक्तप्रकारेण काष्ठमपि तावद्देयम् । एष देवयज्ञः । केचिद्वैश्व-
देवाहुतिभ्यः पृथग्भूतां देवताभ्यः स्वाहेति एकामाहुतिं मन्यन्ते । देवयज्ञेन यक्ष्ये इति संकल्प-
मिच्छन्ति । वयं तु न तथा इति गृह्य एवावोचाम । केचिदाहुः आ काष्ठादिति वचनात् अशनीया-
भावेन भोजनलोपेऽपि यथाकथंचित् वैश्वदेवं कर्तव्यम् । पुरुषसंस्कारत्वादिति । अपरे तु अशनीय- १०
संस्कार इति । वदन्तः भोजनलोपे वैश्वदेवं न कर्तव्यमिति स्थिताः । पितृभ्यः स्वधाकार
ओदपात्रादन्नाद्यभावे उदपात्रमपि स्वधाकारेण देयं पात्रग्रहणात् सह पात्रेण देयम् । एष पितृयज्ञ
इति स्वाध्यायः । तस्य विधिरित्यारभ्योक्तो नित्यस्वाध्यायः । एष ब्रह्मयज्ञः । एते महायज्ञा ” इति ।

माधवीये—“ त एते देवयज्ञपितृयज्ञभूतयज्ञास्त्रयोऽपि वैश्वदेवशब्देनोच्यन्त ” इति ।
स्मृत्यर्थसारे—“ देवयज्ञो वैश्वदेवाख्यं कर्म देवयज्ञहुतशेषेण शुद्धं देशमभ्युक्ष्य बलिहरणं १५
कुर्यात् । एष भूतयज्ञः । बलिशेषं सोदकं स्वधा पितृभ्य इति प्राचीनावीती पितृभ्यो दद्यात् ।
एष पितृयज्ञः । एते देवयज्ञभूतयज्ञपितृयज्ञा वैश्वदेवमित्युच्यन्ते ” इति । मनुरपि—

“ विधाय पितृयज्ञांतं वैश्वदेवं ततो बहिः । श्वपाकपतिताद्यर्थं अन्नमल्पं क्षिपेद्बहिः ” ॥ इति ।
बलिहरणस्य वैश्वदेवशब्देनाभिधानमाश्रयाश्रयिणोरभेदमाश्रित्येति द्रष्टव्यम् । आश्रयाश्रयिभावश्च
कालादर्शो दर्शितः—“ बलीनां वैश्वदेवस्य वदंत्याश्रयिता बुधाः ” इति । एवं च देवयज्ञ- २०
पितृयज्ञभूतयज्ञानां वैश्वदेवबलिहरणात्मकत्वात्पृथक् न कर्तव्या इति । अन्ये तु पंचयज्ञानां
पृथक्त्वेन विधानात्तेषां वैश्वदेवबलिहरणयोरनंतर्भावमाहुः । तथा च जमदग्निः—

“ वैश्वदेवं दिवारात्रौ कुर्याद्वलिह्विति तथा । महतः पञ्चयज्ञांस्तु दिवैवेत्याह गौतमः ” ॥ इति ।
बोधायनः—“ अग्नये स्वाहेत्यादि षडाहुतीर्जुहोति एष वैश्वदेवः संतिष्ठते । धर्माय स्वाहे-
त्यादि नमो रुद्राय पशुपतये इत्यंतं बलीन्हरन्ति एतद्वलिहरणं संतिष्ठते । देवेभ्यः स्वाहे- २५
त्यग्नौ जुहोत्येष देवयज्ञः संतिष्ठते । पितृनुदिश्य एकं ब्राह्मणं भोजयेदपि वा दक्षिणे-
नाग्निं दर्मान्दक्षिणाग्रान् संस्तीर्य तेषु पिंडं ददाति पितृभ्यः स्वधाऽस्त्वित्यपि वापस्तपितृयज्ञः
संतिष्ठते । उत्तरेणाग्निं शुचौ देशे प्रागग्रान्दर्मान्संस्तीर्य गंधपुष्पधूपदीपैरलंकृत्य बलिमुपहरति
भूतेभ्यो नम इति अपः पुष्पाणि तद्भूतयज्ञः संतिष्ठते । मनुष्ययज्ञार्थमातिथिं भोजयेदपि वा
हंतकारं ब्राह्मणेभ्यो दद्यात् ” इति ।

आपस्तम्बपरिशिष्टे—“ वैश्वदेवबलिहरणानंतरमग्रं दत्त्वा देवयज्ञार्थमुद्धृतादन्नात्
देवेभ्यः स्वाहेत्येकामग्नौ जुहुयुः । पितृयज्ञार्थमपि वैश्वदेवबलिहरणशिष्टादन्नात्प्राचीनावीतिना
दक्षिणतोऽग्नेः पितृतीर्थेन पितृभ्यः स्वधास्त्विति बलिं हरेयुः । भूतयज्ञार्थमपि वैश्वदेवशिष्टादन्ना-
देवमुत्तरतोऽग्नेः देवतीर्थेन बलिमुपहरेयुर्भूतेभ्यः स्वाहेति मनुष्ययज्ञार्थमातिथिं भोजयेदतिथ्य-

भावे संकल्पितं दद्युः” । इति । तात्पर्यदर्शनेऽपि—“ पञ्चमहायज्ञेभ्यः पृथग्वैश्वदेवप्रकरणां-
तरात्संज्ञाभेदाच्च कर्मभेदावगतेः । अत एव भाष्ये वैश्वदेवस्य तेषां च प्रयोगः पृथगेवोप-
पादित इति । प्रयोगोऽपि दर्शितः तत्रैव । गृहमेधिनो यदशनीयमन्नं ततो होमार्थं हविष्यमन्नं
पात्रे कल्पयति अहविष्यं क्षारलवणादिसंसृष्टं द्वितीये हविष्यमन्नं देवयज्ञार्थं तृतीये सर्वतः
५ समवदायागार्थं चतुर्थे सर्वत एव समवदाय मनुष्ययज्ञार्थं पञ्चमे ततः परिषेचनं कृत्वा प्रथम-
कल्पितादन्नादग्नये स्वाहेत्याभिः षडाहुतीर्हुत्वा उत्तरपरिषेचनं अथोदीचीनमुष्णं भस्मापोह्य
तस्मिन्नहविष्यं स्वाहाकारेण जुहुयात् । अथ षडाहुतिशेषहविष्यशेषेण संसृष्टेन तेनाग्नेन
रौद्रांतं वलिं हत्वाऽग्रं च देयमिति विहितं ग्रासचतुष्टयपर्याप्तमन्नं भिक्षवे दद्यात् । अथ देव-
यज्ञेन यक्ष्य इत्यागूर्यं विद्युदसीत्यपः स्पष्ट्वा मंत्रतः परिषिच्य देवेभ्यः स्वाहेत्यग्नौ हविष्यं हुत्वा
१० परिषिच्य वृष्टिरसीत्यपं स्पृशेत् । एवमितरेष्वपि महायज्ञेषु विद्युद्वृष्टीर्भवतः । “ नावषट्कारहोमेषु
विद्युद्वृष्टी ” इत्युपदेशः । अथ प्राचीनावीती पितृयज्ञेन यक्ष्ये इत्युक्त्वा शुचौ भूमौ हस्तेनांगुष्ठ-
प्रदेशिन्यावन्तरेण पितृभ्यः स्वधास्त्विति दद्यात् । अथ यज्ञोपवीती भूतयज्ञेन यक्ष्य इत्युक्त्वा
शुचौ भूमौ हस्तेन इदं भूतेभ्योऽस्त्विति वा भूतेभ्यः स्वाहेति वा दद्यात् । अथ मनुष्ययज्ञेन
यक्ष्य इत्युक्त्वा ब्राह्मणतर्पणं संकल्पितस्य वा दानमिति सर्वमेतत्संगृह्योक्तं कालादर्श—
१५ “ वैश्वदेवे बलिहृतावंतर्भावं प्रचक्षते । ब्रह्मयज्ञान्ययज्ञानां बह्वृचाः केचनर्षयः ॥

“ बोधायनापस्तंबौ च बह्वृचा अपि केचन । अनंतर्भावमप्याहुः पृथक्त्वेनोपदेशतः ” ॥ इति ।

अत्र मनुष्ययज्ञस्यापि बलिहरणरूपत्वमाश्रित्य चतुर्णामंतर्भाव उक्तः ।

तथा च स्मृत्यर्थसारे—

“ निवीती सनकादिभ्यो मनुष्येभ्यो हंतेति दद्यात् । यद्वा हंतकारं हंतेति त्यजेत् ” ॥ इति ।

२० चंद्रिकायामपि (पृ. २०९ पं. २१६)—

“ अतिथिभ्योऽन्नदानं यन्मृत्यज्ञः सर्वपञ्चमः । अशक्तावन्नमुद्धृत्य हंतेत्येवं प्रकल्पयेत् ” ॥ इति ।

कात्यायनः—

“ स्वाहाकारवषट्कारनमस्कारा दिवौकसाम् । स्वधाकारः पितृणां तु हंतकारो नृणां तथा ” ॥ इति ।

कार्णार्जिनिः—

२५ “ भिक्षां वा पुष्कलं वापि हंतारमथापि वा । असंभवे सदा दद्यादुदपात्रमथापि वा ” ॥

व्यासोऽपि—

“ हंतारमथाग्रं वा भिक्षां वा शक्तितो द्विजः । दद्यादतिथये नित्यं बुध्येत परमेश्वरम् ” ॥ इति ।

मनुः (३।१०८)—

“ वैश्वदेवे तु निर्वृत्ते यद्यन्योऽतिथिराव्रजेत् । तस्मादन्नं यथाशक्ति प्रदद्यान्न वलिं हरेत् ” ॥ इति ।

३० आतातपः—

“ ग्रासमात्रं भवेद्विश्वा पुष्कलं तच्चतुर्गुणम् । पुष्कलानि च चत्वारि हंतकारं विदुर्बुधाः ” ॥

स्मृतिरत्ने—

“ यवानां व्रीहिगालीनां द्वे शने ग्रासमुच्यते । ग्राममात्रं तु भिक्षा स्यादग्रं ग्रासचतुष्टयम् ” ॥

प्रजापतिः—

“ग्रासमात्रं भवेद्विक्षा अग्रं ग्रासचतुष्टयम् । अग्रं चतुर्गुणीकृत्य हंतकारं विधीयते ” ॥ इति ।
इह केचिद्वैश्वदेवाख्यस्य कर्मणः अन्नसंस्कारार्थत्वमिच्छन्ति ।

तत्राश्वलायनः (१।२।१)—“सायंप्रातः सिद्धस्य हविष्यस्य जुहुयात् ” इति ।

आपस्तंबश्च (२।६।१५।१३)—“यस्याग्नौ न क्रियते यस्य चाग्रं न दीयते न तद्भोक्तव्यम् ” इति । ५
यमोऽपि—“होमाग्रदानरहितं न भोक्तव्यं कथंचन ।

“अविभक्तेषु संसृष्टेष्वेकेनापि कृतं च यत् । न सर्वैरपि कर्तव्यं लौकिकाग्नौ कृतं यदि” ॥ इति ।
अन्ये वैश्वदेवस्यात्मसंस्कारार्थत्वमिच्छन्ति । तथा चाश्वलायनः (३।१।४)—“तानेतान-
हरहः कुर्वीत ” इति । आपस्तंबः (१।४।१३।१)—“देवेभ्यः स्वाहाकारः आकाशात् ” इति ।

बोधायनः—

“प्रवासं गच्छतो यस्य गृहे कर्त्ता न विद्यते । पंचानां महतामेषां स यज्ञैः सह गच्छति ॥

“प्रवासे कुरुते चैतान्यद्यन्नमुपपद्यते । न चेदुत्पद्यते चान्नमद्भिरेतान्समापयेत् ” ॥ इति ।

मनुरपि (२।२८)—“महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ” इति ।

कात्यायनोऽपि—

“सायंप्रातर्वैश्वदेवः कर्त्तव्यो बालिकर्म च । अनश्रताऽपि सततमन्यथा किल्बिषी भवेत्” ॥ इति । १५
वचनद्वयबलाद्बुभयार्थं वैश्वदेवकर्मत्यपरे । तथा च स्मृत्यर्थसारे—“वैश्वदेवाख्यं कर्मान्नस्य
चात्मनश्च संस्कारार्थं ” इति । व्यासोऽपि—

“गृहस्थो वैश्वदेवाख्यं कर्म प्रारभते दिवा । अन्नस्य चात्मनश्चैव संस्कारार्थं तदिष्यते” ॥ इति ।
तदेतद्विज्ञानेश्वरीयमाधवीयादौ पुरुषार्थत्वेन व्यवस्थापितम् । तथाहि केचिद्वैश्वदेवस्य
पुरुषार्थत्वमन्नसंस्कारत्वं चेच्छन्ति तदयुक्तम् । परस्परविरोधात् । अन्नसंस्कारत्वे ह्यन्नस्य २०
प्राधान्यं वैश्वदेवस्य गुणता पुरुषार्थत्वे तु तद्विपर्ययः । एकस्यैव युगपत्प्राधान्यं गुणत्वं च
विरुध्येयातां तर्ह्यस्त्वन्नसंस्कारतैवेति न वाच्यम् । तत्र हि “प्रतिपाकमावृत्तिप्रसंगप्रति-
प्रधानं गुणावृत्तिः” इति न्यायात् तस्मात्पुरुषार्थत्वमेव न्याय्यमिति । अत एव गृह्यपरिशिष्टेऽ-
भिहितम्—“प्रोषितोऽप्यात्मसंस्कारं कुर्यादेव विचारयन् ” इति ।

गोभिलोऽपि (१।४।२२-२४)—“यथेकस्मिन्काले व्रीहियवौ पच्येयातामन्यतरस्य हुत्वा २५
कृतं मन्येत यथेकस्मिन्काले पुनः पुनरन्नं पच्येत सकृदेव बलिं कुर्वीत । यथेकस्मिन्काले बहुधानं
पच्येत गृहपतिमाहानसादेवेनं बलिं कुर्वीत ” इति । अयमर्थः । नानाद्रव्यकान्नपाकेऽपि पुनः
पुनः पाकेऽपि बहूनामविभक्तानां भ्रात्रादीनां पृथक्पृथक्पाकेऽप्येकस्मादेव गृहपतिपाकादेव
होतव्यमिति । स्मृतिसंग्रहे—

“एकपाकेन वसतां पितृदेवद्विजार्चनम् । एकं भवेद्विभक्तानां तदेव स्याद्गृहे गृहे ” ॥ इति । ३०

“सायंप्रातः सिद्धस्य ” इत्यादिवचनजातं उत्पात्तिप्रयोगप्रदर्शनपरम् । “तानेतान्यज्ञानहरहः
कुर्वीत ” इत्यादिरधिकारविधिरिति माधवीये । पंचमहायज्ञान्प्रशंसति भृगुः—

“यत्फलं सोमयागेन प्राप्नोति धनवान्द्विजः । सम्यक्पंचमहायज्ञैः दरिद्रस्तावदाप्नुयात् ” ॥

अकरणे प्रत्यवायमाह स एव—

“पंचयज्ञांस्तु यो माहान्न करोति गृहाश्रमी । तस्य नास्ति परो लोको लोके भवति निन्दितः ॥

“अकृत्वा वैश्वदेवं तु भुंजते ये द्विजोत्तमाः । सर्वे ते निष्फला ज्ञेयाः पतन्ति नरकेऽशुचौ ” ॥

द्विजोत्तमा ब्राह्मणाः । वसिष्ठः—

५ “अकृत्वा वैश्वदेवं तु भुंजते ये द्विजाधमाः । स्वप्रधानान्नपाकेन काकयोनिं व्रजति ते ” ॥

व्यासोऽपि—

“ऋषीन्देवान्पितृन्वैश्व भूतानि ब्राह्मणांस्तथा । तर्पयन्विधिना विप्रो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥

“वैश्वदेवेन ये हीना आतिथ्येन वहिष्कृताः । सर्वे ते वृषला ज्ञेयाः प्राप्तवेदा अपि द्विजाः ॥

“अकृत्वा पंचयज्ञांस्तु भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ।

१० “अकृत्वा वैश्वदेवं तु यो भुंक्तेऽनापदि द्विजः । स मूढो नरकं याति कालसूत्रपवाक्शिराः ” ॥

मनुः (३।८०, ९३, ७२)—

“ऋषयः पितरो देवा भूतान्यतिथयस्तथा । आशंसन्ते कुटुम्बिभ्यस्तेभ्यः कार्यं विजानता (८०) ॥

“एवं यः सर्वभूतानि ब्राह्मणो नित्यमर्चति । स गच्छति परं स्थानं तेजोमूर्तेः पथर्जुना (९३) ॥

“देवतातिथिभूतानां पितृणामात्मनश्च यः । न निर्वपति पंचानामुल्लुसन्न स जीवति” (७२) ॥

१५ आत्मा ब्रह्म । निर्वापः पृथक्करणं यजनामिति यावत् । हारीतः—“यदेवेभ्यो जुहोति देवलोकं तेन जयति यत्पितृभ्यः पितृलोकं तेन यत्स्वाध्यायमधीते ऋषिलोकं तेन यद्भूतेभ्यो बलिं हरति भूतलोकं तेन यद्ब्राह्मणांस्तर्पयति मनुष्यलोकं तेनाभिजयति ” ॥ इति ।

कूर्मपुराणे (उ. १८ पृ. ५८८)—

“अकृत्वा तु द्विजः पंचमहायज्ञान्द्विजोत्तमः । भुंजीत चेत्स मूढात्मा तिर्यग्योनिषु जायते” ॥ इति ।

२० संवर्तः—

“पंचयज्ञविधानं च कुर्यादहरहर्द्विजः । न हापयेच्च तच्छक्तः श्रेयस्कामो द्विजोत्तमः ॥

“हापनं तस्य कुर्वीत सदा मरणजन्मनोः ” ॥ स्मृत्यंतरे—

“होमस्तत्र न कर्तव्यः शुष्कान्नेन फलेन वा । पंचयज्ञविधानं तु न कुर्यान्मृतिजन्मनो” ॥ इति ।

श्राद्धे वैश्वदेवकालमाह मनुः (३।२६५)—

२५ “उच्छेषणं तु तत्तिष्ठेद्यावद्विप्रा विसर्जिताः । ततो गृहवलि कुर्यादिति धर्मो व्यवस्थितः” ॥ इति ।

ततः विप्रविसर्जनानंतरं गृहवलिं वैश्वदेवं कुर्यादिति तद्व्याख्याने । भविष्यपुराणे—

“कृत्वा श्राद्धं महान्नाहो ब्राह्मणांश्च विसृज्य च । वैश्वदेवादिकं कर्म ततः कुर्यान्नराधिप” ॥ इति ।

मार्कण्डेयः—

“ततो नित्यक्रियां कुर्याद्भोजयेच्च तथाऽतिथीन् । ततस्तदन्नं भुंजीत सह भृत्यादिभिर्नरः” ॥

१० नित्यक्रियां श्राद्धारंभात् पूर्वमकृतां देवार्चनवैश्वदेवादिकां ब्राह्मणविसर्जनानंतरं कुर्यादिति चंद्रिकायाम् (पृ. ४८७ पं. २२) व्याख्यातम् । तत्रैव (पृ. ४८८ पं. ८-११)—

“यदा श्राद्धं पितृभ्यस्तु दातुमिच्छति मानवः । वैश्वदेवं तदा कुर्यान्निर्वृत्ते श्राद्धकर्मणि ॥

“प्रतिवानरिकां होमः श्राद्धादौ क्रियते यदि । देवा हव्यं न गृह्णन्ति कव्यं च पितरस्तथा” ॥

मत्स्यपुराणे—

“ततश्च वैश्वदेवांतं नभृत्यस्तुतवांधवः । भुंजीतातिथिसंयुक्तः सर्वं पितृनिषेवितम् ” ॥ इति ।

मध्येऽपि वैश्वदेवादिकमुक्तं । आदित्यपुराणे —

“पितृन्संतर्प्य विधिवद्वर्लिं दद्याद्विधानतः । वैश्वदेवं ततः कुर्यात्पश्चाद्ब्राह्मणवाचनम्” ॥ इति ।
अस्यार्थश्चंद्रिकायामुक्तः (पृ. ४८७ पं. २५) — “ब्राह्मणभोजनेन पितृन्संतर्प्य विकिररूपं बलिं
प्रदायानंतरं वैश्वदेवं कृत्वा पश्चात्स्वस्तिवाचनादिविसर्जनांतं कुर्यात् । “वैश्वदेवं प्रकुर्वीत
नैत्यकं बलिमेव च” इति द्वयोरानंतर्येण विधानाद्वैश्वदेवानंतरमेव बलिहरणं कर्तव्यमिति । ५

प्रकारांतरमुक्तं स्मृत्यंतरे—

“वैश्वदेवाहुतीरग्नावर्गब्राह्मणभोजनात् । जुहुयाद्भूतयज्ञादि श्राद्धं कृत्वा ततः स्मृतम्” ॥ इति ।
अर्वागब्राह्मणभोजनादित्यनेनाग्नौकरणानंतरं वैश्वदेवाहुतीर्जुहुयादित्युक्तम् । एवं च श्राद्ध-
समाप्त्यनंतरं श्राद्धमध्येऽपि विकिररूपबलिदानानंतरमग्नौकरणानंतरं वा वैश्वदेवानुष्ठानं बलि-
हरणं च कर्तव्यम् । न श्राद्धादौ कर्तव्यम् । अग्नौकरणानंतरकरणपक्षे तु श्राद्धसमाप्त्यनंतरं १०
भूतयज्ञादिकं कर्तव्यमित्युक्तं भवति । एतच्च वैश्वदेवादिकं पृथक्पाकादेव कर्तव्यम् ।

तथा च सूत्रकारः— “ब्राह्मणभोजनार्थादन्येनाग्नेन वैश्वदेवादीन्कुर्यात्समाप्ते वा” ॥ इति ।

लोकाक्षिरपि—

“गृहाग्निद्विजदेवानां यतीनां ब्रह्मचारिणाम् । श्राद्धपाको न दातव्यो यावत्पिंडान्न निर्वपेत्” ॥ इति ।

पैठीनसिः—

१५

“पितृपाकात्समुद्धृत्य वैश्वदेवं करोति यः । आसुरं तत् भवेच्छ्राद्धं पितृणां नोपतिष्ठते” ॥ इति ।

लोकाक्षिः—

“पित्रर्थं निर्वपेत्पाकं वैश्वदेवार्थमेव च । वैश्वदेवं न पित्रर्थं न दार्शं वैश्वदेविकम्” ॥

दार्शं दर्शश्राद्धम् । अमावास्याश्राद्धार्थं निरुत्तमन्नं न वैश्वदेवार्थं भवतीत्यर्थः ॥

आहिताग्नेर्विशेषमाह स एव—

२०

“पक्षांतं कर्म निर्वर्त्य वैश्वदेवं च साम्निकः । पिंडयज्ञं ततः कुर्यात्ततोऽन्वाहार्यकं बुधः” ॥ इति ।

पक्षांतं कर्म अग्न्यन्वाधानं अन्वाहार्यकं अमावास्याश्राद्धम् । “न दार्शं वैश्वदेविकम्” इत्येतत्तु
आहिताग्न्यनाहिताग्निसाधारणम् ।

चंद्रिकायां प्रकारांतरमुक्तम्— “अग्नौकरणानंतरं विकिरानंतरं वा पृथक्पाकादेव कार्यम् ।

श्राद्धांते तु पितृपाकात्समुद्धृत्य वैश्वदेवादिकं कुर्यात्” । तथा च पैठीनसिः—

२५

“श्राद्धं निर्वर्त्य विधिवद्वैश्वदेवादिकं ततः । कुर्याद्विक्षां ततो दद्याद्भन्तकारादिकं तथा” ॥

ततः पितृपाकसमुद्धृतादन्नादित्यर्थः । साम्निकदर्शश्राद्धे वैश्वदेवार्थं पृथक्पाकः अनाहिताग्नि-
दर्शश्राद्धे न पृथक्पाकनियम इति । अन्ये तु पैठीनसिर्वचनस्य तथा व्याख्याने प्रमाणाभावा-
च्छ्राद्धे सर्वत्र वैश्वदेवार्थं पृथक्पाक एवेत्याहुः । एवमेव शिष्टा आचरन्ति ।

संग्रहे तु—

३०

“वृद्धावादौ क्षये चांते दर्शे मध्ये महालये । अन्त एव तु कुर्वीत वैश्वदेवं चतुर्विधम्” ॥ इति ।

वृद्धौ वृद्धिश्राद्धे । क्षये मृताहश्राद्ध इत्यर्थः ।

वृद्ध्यादिचतुष्टयव्यतिरिक्तश्राद्धेषु विशेषो दर्शितः संग्रहे—

“याजुषाः सामगाः पूर्वं मध्ये कुर्वन्ति बह्वृचाः । अथर्वणास्तृतीयांशे वैश्वदेवं त्रिधा मतम्” ॥ इति ।

एतदेवाभिप्रेत्य गृह्यपरिशिष्टेऽभिहितम्—

३५

‘संप्राप्ते पार्वणश्राद्धे एकोद्विष्टे तथैव च । अग्रतो वैश्वदेवं स्यात्पश्चादेकादशेऽहनि” ॥ इति ।

अथातिथ्यम्— तत्र व्यासः—

“ आचम्य च ततः कुर्यात्प्राज्ञो द्वावावलोकनम् । मुहूर्तस्याष्टमं भागमुदीक्ष्यो ह्यतिथिर्भवेत् ” ॥

शंखः—“ गोदोहमात्रमंगणेऽतिथीन् प्रतीक्षमाणं आसीत् ” इति । माधवीये—

“ ततो गोदोहमात्रं वै कालं तिष्ठेद्गृहांगणे । अतिथिग्रहणार्थाय तदूर्ध्वं वा यथेच्छया ॥

५ “ नाडिकायाश्चतुर्भागं गोदोहं ब्रुवते बुधाः ” ॥

चंद्रिकायाम्—

“ गोदोहकालं कांक्षेत कृत्वा भूतबलिं द्विजः । अतिथिं तत्र संप्राप्तं पूजयेत्स्वागतादिना ” ॥

मनुः (३१९४)—

“ कृत्वैतद्वलिकर्मैवमतिथिं पूर्वमाशयेत् । भिक्षां च भिक्षवे दद्याद्विधिवद्ब्रह्मचारिणे ” ॥

१० कूर्मपुराणे (उ. १८ पृ. ५८८)—

“ गोदोहमात्रकालं वै प्रतीक्ष्यो ह्यतिथिः स्वयम् । अभ्यागतान्यथाशक्तिं पूजयेदतिथीन् यथा ॥

“ भिक्षां वै भिक्षवे दद्यात् विधिवत् ब्रह्मचारिणे । दद्यादन्नं यथाशक्ति ह्यर्थिभ्यो लोभवर्जितः ॥

“ सर्वेषामप्यलाभे तदन्नं गोभ्यो निवेदयेत् ” ॥ व्यासः—

“ गवाह्निकं परगवे दद्यादपि तृणादिकम् । अकृत्वा स्वयमाहारं स्वर्गलोकं स गच्छति ” ॥

१५ गवान्हिकमंत्रो मार्कण्डेयेन दर्शितः—

“ सौरभेय्यः सर्वहिताः सर्वपापप्रणाशनाः । प्रतिगृह्णतु मे ग्रासं गावस्त्रैलोक्यमातरः ” ॥ इति ।

भारतेऽपि—

“ दिने द्विरभिषेकश्च पितृदैवतपूजनम् । गवान्हिकप्रदानं च संविभागोऽतिथिष्वपि ॥

“ ग्रासमप्येकमन्नस्य यो ददाति च गोर्दिने । स्वर्गलोकमवाप्नोति नरकं च न पश्यति ” ॥

२० मनुः (३१८९, ११८)—

“ विघसाशी भवेन्नित्यं नित्यं चामृतभोजनः । विघसो भुक्तशिष्टं स्याद्यज्ञशिष्टं तथामृतम् ॥

“अघं स केवलं भुंक्ते यः पचत्यात्मकारणात् । यज्ञशिष्टासनं ह्येतत्सतामन्नं विधीयते” ॥ (११८)

इति । गीतायामपि (३।१३)—

“ यज्ञशिष्टाशिनः संतो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः । भुंजते ते त्वघंपापा ये पचत्यात्मकारणात् ” ॥

२५ देवलः—

“ देवार्थे ब्राह्मणार्थे च पचमानो न लिप्यते । अघं स केवलं भुंक्ते यः पचत्यात्मकारणात् ॥

“नात्मार्यं पाचयेदन्नं नात्मार्यं घातयेत्पशून्” । श्रुतिरपि (तै. ब्रा. २।८।३ ऋ सं. १०।११७-६)—

“ केवलाघो भवति केवलादी ” ॥ इति । हारीतः—

“अतिथीनागतान् शक्यता पूजयेद्विचारतः।अन्यानभ्यागतान् विप्रान् पूजयेच्छक्तितो गृही”॥इति।

३० आपस्तम्बः (२।२।४।१।१२) “अतिथीनेवाग्रे भोजयेत् । बालान्वृद्धान्गोसंवृद्धान् स्त्रीश्चांत-
वर्तनीः ” ॥ इति । “ शेषंभोज्यतिथीनां स्यात् । न सारान् गृहे भुंजीतानवशेषमतिथिभ्यो

नात्मार्यमभिरूपमन्नं पाचयेत् ” इति । आगामिभ्योऽतिथिभ्यो गृहे गव्यादिरसानवशेष्य

स्वयंभुंजीतेत्यर्थः ॥ गौतमोऽपि (५।२३)—“ भोजयेत्पूर्वमतिथिकुमारव्याधितगर्भिणी-

नुवाग्निनीम्यविरान् जघन्यांश्च ” ॥ इति ।

३५ नुवाग्निन्यो दुहितरो भगिन्यश्च । स्थविरा वृद्धाः । जघन्याः परिचारकाः ।

बोधायनोऽपि (२।३।११-१८)—“सायंप्रातर्यदन्नं स्यात्तेन वैश्वदेवं बलिमुपहृत्य ब्राह्मण-
क्षत्रियविद्वद्भूदानभ्यागतान्यथाशक्ति पूजयेद्यदि बहूनां न शक्नुयादेकस्मै गुणवते दद्याद्यो वा
प्रथममुपागतः स्याच्छूद्रश्चेदागतस्तं कर्मणि नियुज्याच्छ्रोत्रियाय वाऽग्रं दद्याद्ये नित्य-
भाक्तिकाः स्युस्तेषामनुपरोधेन संविभागो विहितो न त्वेव कदाचिददत्त्वा भुंजीताथाप्यत्रा-
न्नगीतौ श्लोकावुदाहरति

“यो मामदत्त्वा पितृदेवताभ्यो भृत्यातिथिभ्यश्च सुहृज्जनान्य ।

“संपन्नमश्रन्विषमत्ति मोहात्तमप्यहं तस्य च मृत्युरास्मि ॥

“हुताग्निहोत्रः कृतवैश्वदेवः पूज्यातिथीन्भृत्यजनावशिष्टम् ।

“तुष्टः शुचिः श्रद्धधदत्ति यो मां तस्यामृतं स्यां स च मां भुनक्ति ” ॥

स एव (२।७।१९; २।३।६१-६२)—

“अग्रे तु भोजयेदतिथीन् अंतर्वत्नीरनंतरम् । बालवृद्धांस्तथा दीनान्व्याधितांश्च विशेषतः ॥

“अन्ने श्रितानि भूतानि ‘अन्नं प्राणमिति’ श्रुतिः । तस्मादन्नं प्रदातव्यमन्नं हि परमं हविः ॥

“हृतेन शाम्यते पापं हुतमन्नेन शाम्यति । अन्नं दक्षिणया शांतिमुपयातीति नः श्रुतिः” ॥ इति ।

याज्ञवल्क्योऽपि (आ. १०४-१०५; १०७-१०८)—

“अन्नं पितृमनुष्येभ्यो देयमप्यन्वहं जलम् । स्वाध्यायं चान्वहं कुर्यान्न पचेदन्नमात्मने ॥ १५

“बालः सुवासिनीवृद्धगर्भिण्यातुरकन्यकाः । संभोज्यातिथिभृत्यांश्च दंपत्योः शेषभोजनम् ।

“अतिथित्वे तु वर्णानां देयं शक्त्याऽनुपूर्वशः ।

“सत्कृत्य भिक्षवे भिक्षा दातव्या सुव्रताय च । भोजयेच्चागतान्काले सखिसंबंधिबांधवान्” ॥ इति ।

मनुः (४।३२)—

“शक्तितोऽपचमानेभ्यो दातव्यं गृहमेधिना । संविभागश्च भूतानां कर्तव्योऽनुपरोधतः” ॥ २०

अपचमानेभ्यः ब्रह्मचारिसंन्यासिभ्यः । स एव (३।९५-९६; १।११-१।१६)—

“यत्पुण्यफलमामोति गां दत्त्वा विधिर्वद्गुरोः । तत्पुण्यफलमामोति भिक्षां दत्त्वा द्विजो गृही ॥

“भिक्षां वाऽप्युदपात्रं वा सत्कृत्य विधिपूर्वकम् । वेदतत्त्वार्थविदुषे ब्राह्मणायोपपादयेत् ॥

“सुवासिनीः कुमारीश्च रोगिणो गर्भिणीस्तथा । अतिथिभ्योन्वगे वैतान्भोजयेदविचारयन् ॥ १।१४ ॥

“भुक्तवत्सु तु विप्रेषु स्वेषु भृत्येषु चैव हि । भुंजीयातां ततः पश्चादवाशिष्टं तु दंपती ॥ १।१६ ॥ २५

“अदत्त्वा तु य एतेभ्यः पूर्वं भुक्ते विचक्षणः । संभुंजानां न जानाति श्वगृध्रैर्जग्धिमात्मनः ॥ १।१५ ॥

“इतरानपि सख्यादीन् संप्रीत्या गृहमागतान् । सत्कृत्यान्नं यथाशक्ति भोजयेद्द्वैर्यया स्वयम् ॥ १।१३ ॥

“यदि त्वतिथिधर्मेण क्षत्रियो गृहमावजेत् । भुक्तवत्सु तु विप्रेषु कामं तमपि भोजयेत् ॥ १।११ ॥

“वैश्यशूद्रावपि प्राप्तौ कुटुंबेऽतिथिधर्मणौ । भोजयेत्सह भृत्यैस्तावानृशंस्यं प्रकल्पयन्” ॥ १।१२ ॥ इति ।

सङ् भृत्यैः स्वभृत्यैः सह स्वभृत्यभोजनकाल इत्यर्थः । स एव (३।११०)—

“न ब्राह्मणस्य त्वतिथिर्गृहे राजन्य उच्यते । वैश्यशूद्रौ सखा चैव ज्ञातयो गुरुरेव च” ॥ इति ।

न क्षत्रियादयो ब्राह्मणेनातिथिसत्कारमर्हति । किं तु भोजनमात्रमित्यर्थः ॥

तथा च स्मृतिरत्ने—

“ब्राह्मणं त्वनधीयानमधीयानं नृपं विषम् । पूर्वं च भोजयेत्तुल्यान्प्रत्युत्थानविवर्जितम् ॥

“शूद्रमभ्यागतं कर्म कारयित्वाऽथ भोजयेत् । मातृजातीयसदृशं पूजयेदनुलोमजम्” ॥ इति । ३५

आपस्तम्बोऽपि (२।२।४।१६-१९)—“ब्राह्मणानधीयानायासनमुदकमन्नमितिदेयं न प्रत्युत्तिष्ठे-

द्राजन्यवैश्यशूद्रमभ्यागतं कर्माणि नियुज्यादथास्मै दद्यात् ” इति । राज्यन्यवैश्यावधीयाना-
वपि न प्रत्युत्तिष्ठेदित्यर्थः । विष्णुपुराणे (३।११।६८-६९)—

“ ततः सुवासिनी दुःखिगर्भिणी वृद्धबालकान् । भोजयेत्सत्कृताग्नेन प्रथमं तु परं गृही ॥

“ अभुक्तवत्सु चैतेषु भुञ्जन् भुङ्क्ते सुदुष्कृतम् । मृतश्च गत्वा नरकं श्लेष्मभुक् जायते वृष ” ॥ इति ।

५ मार्कण्डेयोऽपि—

“ पूजयित्वाऽतिथीन् स्वांश्च ज्ञातीन्वंधूंस्तथाऽर्थिनः । विकलान्बालवृद्धांश्च भोजयेदातुरांस्ततः ॥

“ वाञ्छेत्क्षुचृट्परीतात्मा यश्चान्नं रससंयुतम् । श्रीमंतं ज्ञातिमासाद्य यो ज्ञातिरवसीदति ॥

“ सीदता यत्कृतं पापं तत्सर्वं प्रतिपद्यते ” इति ॥ पराशरः (१।४३-४५, ४६)—

“ अपूर्वः सुव्रती विप्रो ह्यपूर्वश्चातिथिस्तथा । वेदाभ्यासरतो नित्यं त्रयोऽपूर्वा दिनेदिने ॥ ४३ ॥

१० “ यतिश्च ब्रह्मचारी च पक्वान्नं स्वामिनावुभौ । तयोरन्नमदत्वा तु भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ ४५ ॥

“ दद्याच्च भिक्षात्रितयं परिव्राट्ब्रह्मचारिणाम् । इच्छया च ततो दद्याद्विभवे सत्यवारितम् ॥

“ यतिहस्ते जलं दद्याद्भैक्ष्यं दद्यात्पुनर्जलम् । तद्भैक्ष्यं मेरुणा तुल्यं तज्जलं सागरोपमम् ” ॥ ४६ ॥ इति ।

वृत्तिहपुराणे—

“ भिक्षां च भिक्षवे दद्यात् परिव्राट्ब्रह्मचारिणोः । अकल्पितान्नादुद्धृत्य सर्वव्यंजनसंयुताम् ” ॥ इति ।

१५ यमः—

“ सत्कृत्य भिक्षवे भिक्षां यः प्रयच्छति मानवः । गोप्रदानसमं पुण्यं तस्याह भगवान्यमः ” ॥ इति ।

ब्रह्मचारिणं स्वस्तीति वाचयित्वा तद्धस्ते जलं प्रदाय भिक्षां दद्यादित्याह गौतमः (५।१६)—

“ स्वस्ति वाच्य भिक्षादानमपूर्वम् ” इति ॥ हारीतः—

“ भक्त्या च शक्तितो नित्यं विष्णुमभ्यर्च्य सादरम् । भिक्षां च भिक्षवे दद्यात्परिव्राट्ब्रह्मचारिणोः ॥

२० “ विष्णुरेव यतिश्चायामिति निश्चित्य भावयेत् । यतिर्यस्य गृहे भुङ्क्ते तस्य भुङ्क्ते हरिः स्वयम् ॥

“ हरिर्यस्य गृहे भुङ्क्ते तस्य भुङ्क्ते जगत्त्रयम् ” । व्यासः—

“ यः पात्रपूरणीभिक्षां यतिभ्यः संप्रयच्छति । विमुक्तः सर्वपापेभ्यो नासौ दुर्गतिमाप्नुयात् ” ॥ इति ।

वैश्वदेवात्पूर्वं भिक्षौ गृहमागते सति कर्तव्यमाह पराशरः (१।४४-४७)—

“ वैश्वदेवे तु संप्राप्ते भिक्षुके गृहमागते । उद्धृत्य वैश्वदेवार्थं भिक्षुकं तु विसर्जयेत् ॥ ४४ ॥

२१ “ वैश्वदेवकृतं पापं शक्तो भिक्षुर्व्यपोहतुम् । न हि भिक्षुकृतान् दोषान्वैश्वदेवो व्यपोहति ” ॥ ४७ ॥ इति ।

संप्राप्ते प्रसक्ते अननुष्ठिते सतीति यावत् । वैश्वदेवकृतं इति वैश्वदेवस्य पश्चात्करणेन प्रसक्ते

यो दोषः स भिक्षादानेन निवर्त्यते । भिक्षापरिहारेण तु यो दोषः नासौ पूर्वकृतेनापि वैश्वदेवेन

निवर्त्यते इत्यर्थः । तथा च हारीतः—

“ अकृते वैश्वदेवे तु भिक्षुके गृहमागते । उद्धृत्य वैश्वदेवार्थं भिक्षां दत्वा विसर्जयेत् ॥

२२ “ पश्चात्कृते वैश्वदेवे दोषं भिक्षुर्व्यपोहति । न भिक्षुर्वर्जनोत्थं तु वैश्वदेवो व्यपोहति ॥

“ तस्मात्समाहितो भिक्षां दद्यात्प्राप्ताय भिक्षवे ” इति । व्यासेन भिक्षवो दर्शिताः—

“ यतिश्च ब्रह्मचारी च विद्यार्थी गुणपोषकः । अध्वगः क्षीणवृत्तिश्च पठेते भिक्षुकाः स्मृताः ” ॥ इति ।

मनुरपि—

“ व्याघिनम्यार्थीनस्य कुटुंबात्प्रच्युतस्य च । अध्वानं वा प्रपन्नस्य भिक्षाचर्या विधीयते ” ॥ इति

एवं च

“ न दद्याद्यतये स्वर्णं तंदुलं ब्रह्मचारिणे । पक्कान्नं तु गृहस्थाय दाता दुर्गाणि गच्छति” ॥ इति वचनं भिक्षुकव्यतिरिक्तगृहस्थविषयं वेदितव्यम् । यमः—

“ आहारमात्रादधिकं न कश्चिद्भैक्षमाहरेत् । युज्यते स्तेयदोषेण कामतोऽधिकमाहरन् ॥

“ तस्मान्नोपहरेद्भैक्ष्यं अतिरिक्तं यतिर्वती ” ॥ इति । चंद्रिकायाम्—

“ माधूकरं य आदाय ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति । दाता तु नरकं याति भोक्ता भुंजीत किल्बिषम् ॥

“ हस्तदत्ता तु या भिक्षा लवणव्यंजनानि च । भोक्ता ह्यशुचितां याति दाता स्वर्गं न गच्छति” ॥

यमः—“अपचन्तमतिक्रम्य पचंतं यस्तु भोजयेत् । क्रिमीणां तु भजेद्योनिं वर्षाणामधिकं शतम् ॥

“अहुत्वाऽग्निमसंतर्प्य तपस्विनमुपागतम् । अशित्वा तु परे लोके स्वानि मांसानि खादति” ॥ इति ।

आपस्तंबः (१।१।३।२६) । “ स्त्रीणां प्रत्याचक्षाणानां समाहितो ब्रह्मचारीष्टं दत्तं हुतं प्रजां १०

पशून्ब्रह्मवर्चसमन्नाद्यं वृंक्ते । तस्मादुह वै ब्रह्मचारिसंघं चरंतं न प्रत्याचक्षीत” इति । समाहितः

व्रताध्ययननिष्ठ इत्यर्थः । अत एव वसिष्ठपराशरौ (वासिष्ठ ध. सू. ३।४)—

“अवृता ह्यनधीयाना यत्र भैक्षचरा द्विजाः । तं ग्रामं दंडयेद्राजा चोरभक्तप्रदो हि सः” ॥ इति ।

ब्रह्मचारिकवृत्तं मध्वादिर्वर्जनं स्वगृह्यप्रसिद्धानि चत्वारि प्राजापत्यादीनि चात्र व्रतशब्दाभि-

धेयानि तदुभयविधव्रतरहिताः स्वाध्यायमप्यनधीयाना ब्रह्मचारिणो यत्र ग्रामे भैक्षमाचरन्ति तं १५

ग्रामं राजा दंडयेत् । यतश्चौरसदृशेभ्यो भक्तमन्नं प्रयच्छतीत्यर्थः । व्यासः—

“ द्वाविमौ पुरुषो लोके सूर्यस्योपरि तिष्ठितः । अन्नप्रदाता दुर्भिक्षे सुभिक्षे हेमवस्त्रदः ” ॥

मनुः (३।९८, ९७)—

“ विद्यातपःसमृद्धेषु हुतं विप्रमुखाग्निषु । निस्तारयाति दुर्गाच्च महतश्चैव किल्बिषात् ॥ ९८ ॥

“नश्यन्ति हव्यकव्यानि नराणामविजानताम् । भस्मीभूतेषु विप्रेषु मोहाद्वृत्तानि दातृभिः” ॥ ९७ ॥ २०

अविजानतां अपात्रदाने दोषमजानतां दातृणां हव्यकव्यानि नश्यन्ति । हव्यं दैवं कव्यं पित्र्यम् ।

भस्मीभूतेषु निस्तेजस्केषु । स एव (३।१४४; १३४-१३५)—

“ काममभ्यर्चयेन्नित्यं नाभिरूपमपि त्वरिम् । द्विषता हि हविर्भुक्तं भवति प्रेत्य निष्फलम् ॥

“ देयानि श्रोत्रियायैव हव्यकव्यानि दातृभिः । अर्हत्तमाय विप्राय तस्मै दत्तं महाफलम् ॥

“ सहस्राणि सहस्राणामनृचां यत्र भुंजते । एकस्तान् मंत्रविद्विप्रः सर्वानर्हति धर्मतः ॥ २५

“ज्ञाननिष्ठा द्विजाः केचित्तपोनिष्ठास्तथापरे । स्वाध्यायज्ञाननिष्ठाश्च कर्मनिष्ठास्तथैव च ॥ १३४ ॥

“ज्ञाननिष्ठेषु कव्यानि प्रतिष्ठाप्यानि यत्नतः । हव्यानि तु यथान्यायं सर्वेष्वेव चतुर्ध्वपि” ॥ इति ।

बृहस्पतिरपि—

“ नष्टं शौचे व्रतभ्रष्टे विप्रे वेदविवर्जिते । दीयमानं रुदत्यन्नं यन्मया दुष्कृतं कृतम् ॥

“ वेदविद्याव्रतस्नाते श्रोत्रिये गृहमागते । क्रीडंत्योषधयः सर्वा यास्यामः परमां गतिम्” ॥ इति । ३०

अयं च गुणदोषविवेको वैश्वदेवांते न कर्तव्य इत्यभिप्रेत्यातिथिलक्षणमाह

पराशरः (१।३९-४०, ४६)—

“ इष्टो वा यदि वा द्वेष्यो मूर्खः पंडित एव वा । संप्राप्तो वैश्वदेवांते सोऽतिथिः स्वर्गसंक्रमः ॥

“ दूराध्वोपगतं श्रांतं वैश्वदेव उपस्थितं । अतिथिं तं विजानीयान्नातिथिः पूर्वमागतः ॥

“ नैकग्रामीणमतिथिं संग्रहीत कदाचन । अनित्यमागतो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते” ॥ इति । ३५

वैश्वदेवान्ते वैश्वदेवस्योपरि षटिकापादपरिमिते काले समागतमेवातिथिलक्षणं नान्यद्विद्यादि-
स्वर्गसंक्रमः स्वर्गप्राप्तिहेतुः । नातिथिः पूर्वमागतः इति वैश्वदेवे समागतः तस्मिन्नेवातिथिः नोत्तरेद्यु-
रित्यर्थः । तथा च मनुः (३।१०२-१०३)—

“ एकरात्रं हि निवसन् अतिथिर्ब्राह्मणः स्मृतः । अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ॥

५ “ नैकग्रामीणमतिथिं विप्रं सांगतिकं तथा । उपस्थितं गृहे विद्याद्भार्या यत्राग्नयोऽपि वा ” ॥

सांगतिकं संगतेन चरतं कचित्कचिदतिथित्वेन संगतपूर्वमिति यावत् । तं नातिथिं विद्यादत्र
स्वकीये परकीये वा गृहे भार्याग्नयो वसन्ति तत्रोपस्थितमतिथि विद्यात् । नान्यं विप्रोषित-
भार्यस्य स्वस्याभ्याशमागतमित्यर्थः । आपस्तंबः (२।३।६।५)—“ स्वधर्मयुक्तं कुटुंबिन-
मभ्यागच्छति धर्मपुरस्कारो नान्यप्रयोजनः सोऽतिथिर्भवति ” इति । आदितो यच्छब्दो

१० द्रष्टव्यः । अंते स इति दर्शनात् । स एव (२।३।६।३)—“ अग्निरिव ज्वलन्नतिथिरभ्या-
गच्छति ” ॥ इति । तस्मादसौ भोजनादिभिस्तर्पयितव्यः । निराशस्तु गतो गृहान् दहेदित्यर्थः ।

स एव (२।४।१।५-६, १०-१३)—“ सर्वान् वैश्वदेवे भागिनः कुर्वीताश्वचांडालेभ्यो नानर्हभ्यो
दद्यादित्येके । ये नित्या भाक्तिकास्तेषामनुपरोधेन संविभागो विहितः । काममात्मानं भार्या पुत्रं
वोपसंध्यान्न त्वेव दासकर्मकरं तथा चात्मनोऽनुपरोधं कुर्याद्यथा कर्मसु समर्थः स्यात् ” ॥ इति ।

१५ बोधायनः—“ श्रान्तोऽदृष्टपूर्वः अश्रुतः केवलमन्नार्थी नान्यप्रयोजनो य एति सोऽतिथि-
र्भवति । अपि वा सर्ववर्णानामन्यतमः काले यथोपपन्नः सर्वेषामतिथीनां श्रेष्ठतमोऽतिथि-
र्भवति ” ॥ इति । गौतमोऽपि (५।३६, ३९-४२)—“ असमानग्रामोऽतिथिरैकरात्रिको-
ऽधिवृक्षसूर्योपस्थायी । ब्राह्मणस्यानतिथिरब्राह्मणो यज्ञे संवृतश्चेत् । भोजनं तु क्षत्रियस्योर्ध्वं
ब्राह्मणेभ्योऽन्यान् भृत्यैः सहानृशंस्यार्थम् ” ॥ इति । अब्राह्मणः क्षत्रियादिः अनतिथिः । न

२० तत्रातिथिधर्मा अनुष्ठेयाः । अयज्ञे यज्ञादन्यत्र । यज्ञे त्वागतस्य कर्तव्याः । स चेदब्राह्मणः
संवृतः अप्रकाशो दरिद्रः । प्रभूतस्य तु भवत्येव । आनृशंस्यार्थं नृशंसोऽयमिति लोको माऽऽकु-
शदित्यर्थः । संवर्त्तः—

“ तिथिपर्वोत्सवाः सर्वे त्यक्ता येन महात्मना । सोऽतिथिः सर्वभूतानां शेषानभ्यागतान्विदुः ” ॥
व्यासः—

२५ “ सुदूरादाशया प्राप्तः क्षुत्तृष्णाश्रमकर्षितः । यः पूज्यतेऽतिथिः सम्यगयूपः क्रतुरेव सः ॥

“ पापो वा यदि चांडालो विप्रघ्नः पितृघातकः । वैश्वदेवे तु संप्राप्तः सोऽतिथिः स्वर्गसंक्रमः ॥

“ अज्ञातकुलनामानं याचमानमकिंचनम् । ब्राह्मणं प्राहुरातिथिं स पूज्यः शक्तितो द्विजैः ॥

“ अकिंचनमसंबंधमन्यदेशादुपागतम् । असंपूज्यातिथिं भुंजन्भुक्त्वा कामं व्रजत्यघः ” ॥

सुमंतुः—“ अभ्यागतो ज्ञातपूर्वस्त्वज्ञातोऽतिथिरुच्यते ॥

३० “ यस्याध्वस्त्रिणाः पथिका गृहमायांति कर्षिताः । पूज्यन्ते तृणभूम्याद्यैः पितरस्तेन पुत्रिणः ” ॥
याज्ञवल्क्यः—(आ. १११)

“ अध्वर्नानोऽतिथिर्जयः श्रोत्रियो वेदपारगः । मान्यावेतौ गृहस्थस्य ब्रह्मलोकमभीप्सुभिः ” ॥

आश्वमेधिके—“ दृगाध्वगं श्रान्तमनुव्रजन्ति देवाश्च सर्वे पितरोऽग्नयश्च ॥

“ तस्मिन् द्विजे तुप्यति पूजिताः स्युर्द्विजे निराशा अपि ते प्रयान्ति ” । द्विजे संदिते निरा-

३५ कृते इति यावत् ।

“ बुभुक्षितं पिपासार्तमतिथिं श्रांतमागतम् । तदा तं भावयेदत्र व्यासोऽयं समुपास्थितः ” ॥ इति ।
 आपस्तंबः (२।३।७।७) । “ असमुदेतश्चेदतिथिर्बुवाण आगच्छेदासनमुदकमन्नं श्रोत्रियाय
 ददामीत्येव दद्यादेवमस्य समृद्धं भवति ” इति । विद्यादिरहितोऽसमुदेतः । स्मृतिरत्नसारे—
 “ अज्ञातकुलगोत्रस्तु अध्वश्रांतो बुभुक्षितः । संप्राप्तो वैश्वदेवान्ते सोऽतिथिः स्वर्गसंकमः ” ॥ इति ।
 वैश्वदेवांत इति दिवसाभिप्रायम् । सायं तु वैश्वदेवकाले कालातरे च प्राप्तोऽतिथिरेव च । ५

तथा च मनुः (३।१०५)—

“अप्रणोद्योऽतिथिः सायं सूर्योढो गृहमेधिना । काले प्राप्तस्त्वकाले वा नास्यानश्नन् गृहे वसेत्” ॥ इति ।
 सूर्योढ इति अस्तंगच्छता सूर्येण देशांतरगमनाशक्तिमुत्पाद्य गृहं प्रापित इत्यर्थः ।

प्रचेता अपि—

“ यः सायं वैश्वदेवांते सायं वा गृहमागतः । देववत्पूजनीयोऽसौ सूर्योढः सोऽतिथिः स्मृतः ” ॥ इति १०
 याज्ञवल्क्यः (आ. १०७)— “ अप्रणोद्योऽतिथिः सायमपि वाग्भूतृणौदकैः ” इति ॥ संग्रहे—
 “ सायं प्राप्तायातिथये प्रदद्यादासनोदके । अन्नं चैव यथाशक्ति सत्कृत्य विधिपूर्वकम् ” ॥ इति ।
 स्मृतिरत्ने— “ दिवा तिथौ तु विमुखे गते यत्पातकं भवेत् । तदेवाष्टगुणं पूसां सूर्योढे विमुखे गते ॥
 “ तस्माच्छक्त्या च भक्त्या च सूर्योढमतिथिं नरः । पूजयेत्पूजिते तस्मिन्पूजिताः सर्वदेवताः ॥
 “ धाता प्रजापतिः शक्रो बन्धिर्वायुगणोऽर्यमा । प्रविश्यातिथिमेनं वै भुंजते नात्र संशयः ” ॥ इति । १५
 उक्तलक्षणेऽतिथावागते सति यत्कर्तव्यं तदाह पराशरः—

“ अतिथिं तत्र संप्राप्तं पूजयेत्स्वागतादिना । तथासनप्रदानेन पादप्रक्षालनेन च ॥

“ श्रद्धया चान्नदानेन प्रियप्रश्नोत्तरेण च । गच्छतश्चानुयानेन प्रीतिमुत्पादयेद्गृही ॥

“ न पृच्छेद्गोत्रचरणे न स्वाध्यायं श्रुतं तथा । हृदये कल्पयेद्देवं सर्वदेवमयो हि सः ” ॥ इति ।

चरणमाचरः । श्रुतं व्याकरणमीमांसादि । यमोऽपि—

“ न पृच्छेद्गोत्रचरणे देशं नाम कुलं श्रुतम् । अध्वनोऽभ्यागतं विप्रं भोजनार्थमुपास्थितम् ॥

“ देशं नाम कुलं विद्यां पृष्ट्वा योऽन्नं प्रयच्छति । न स तत्फलमामोति दत्त्वा स्वर्गं न गच्छति ” ॥

विष्णुपुराणे (३।११।६०)—

“ स्वाध्यायगोत्रचरणमपृष्ट्वा च तथा कुलम् । हिरण्यगर्भबुध्या तं मन्येताभ्यागतं गृही ” ॥

शातातपोऽपि— “ चित्ते विभावयेत्तस्मिन्व्यासः स्वयमुपागतः ” इति । व्यासोऽपि— २५

“ न पृच्छेद्गोत्रचरणं न स्वाध्यायं न च श्रुतम् । शोभनाशोभनाकारं तं मन्येत प्रजापतिम् ॥

“ अन्नशकांबुदानेन स्वशक्त्या पूजयेत्पुमान् । शयनप्रस्तरमहीप्रदानैर्मृदुभाषणैः ” ॥

यमः—

“ चक्षुर्दद्यान्मनोदद्याद्वाचं दद्याच्च सूनुताम् । उत्थाय चासनं दद्यात्स्वधर्मः पंचलक्षणः ॥

“ संमुखे तुष्ट आदित्यः संभाषेण सरस्वती । स्वागतेनाग्रयः प्रीता आसनेन शतक्रतुः ॥ ३०

“ पितरः पादशौचेन अन्नाद्येन प्रजापतिः । शयनेन च तुष्टाः स्युर्ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ” ॥

हारीतः—

“ अदृष्टपूर्वमज्ञातमतिथिं प्राप्तमर्चयेत् । स्वागतासनदानेन प्रत्युत्थानेन चांबुना ॥

“ स्वागतेनाग्रयस्तुष्टा भवन्ति गृहमेधिनः । आसनेन तु दत्तेन प्रीतो भवति देवराट् ॥

“ पादशौचेन पितरः प्रीतिमायांति दुर्लभम् । अन्नदानेन युक्तेन तृप्यते हि प्रजापतिः ॥

“ आसनादिप्रदानेन सर्वास्तुष्यन्ति देवताः ” ॥ अत्र विशेषमाह मनुः (३।१०७)—

“ आसनावसथे शय्यामनुव्रज्यामुपासनम् । उत्तमेषूत्तमं कुर्याद्धीने हीनं समे समम् ” ॥ इति ।

गौतमोऽपि (५।३४-३५)—शय्यासनावस्थानुव्रज्योपासनानि सट्वश्रेयसोः समान्यल्पशोऽपि ५ हीने ” इति । सट्वक् आत्मना तुल्यः । श्रेयानधिको विद्यावृत्तादिना । तयोरात्मना तुल्यानि शय्यादीनि देयानि । हीनेऽप्यल्पशो देयानीत्यर्थः । स एव (५।३०-३३)—

“ श्रोत्रियस्य तु पाद्यमर्घ्यमन्नविशेषांश्च प्रकारयेत् । नित्यं वा संस्कारविशिष्टम् । मध्यतोऽन्नदानं अवैद्ये साधुवृत्ते । विपरीते तु वृणोदकभूमीः स्वागतमंततः पूजा अनत्याशश्च ” ॥ इति ।

अन्नविशेषाः पायसादयः । नित्यं वा यदेवास्य गृहे नित्यं तदेव मरीचिभर्जनादिसंस्कार- १० विशिष्टं साधयेत् । अवैद्ये विद्यारहिते साधुवृत्ते उपस्थिते मध्यतः मध्यमेन संस्कारेणान्नं देयम् । यद्यवैद्यः साधुवृत्तश्च न भवति स विपरीतः । तस्मै वृणादि दद्यात् । अनत्याशः यदतिथये न दत्तं न तदश्रीयादित्यर्थः । तथा च वसिष्ठः—

“ मांसमन्नं तथा शाकं गृहे यद्वोपपादितम् । न वै स्वयं तदश्रीयादतिथिं यन्न भोजयेत् ॥

“ यद्येकपक्तौ विषमं ददाति स्नेहाद्भयाद्वा यदि वाऽर्थहेतोः ।

१५ “ वेदेषु दृष्टामृषिभिश्च गीतां तां ब्रह्महत्यां मुनयो वदन्ति ” ॥ इति ।

देवल्लोऽपि—“ अघृतं भोजयेद्विप्रं यो गृहे सति सर्पिषि । परत्र निरयं घोरं गृहस्थः प्रतिपद्यते ॥

“ मृष्टमन्नं स्वयं भुक्त्वा पश्चात्कदशनं नरः । ब्राह्मणान्भोजयेन्मूर्खो नरके चिरमावसेत् ” ॥

मनुरपि (३।१०६)—

“ नैव स्वयं तदश्रीयादतिथिं यन्न भोजयेत् । धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं चातिथिपूजनम् ” ॥ इति ।

२० आपस्तम्बः (२।३।६।७-८)—“ तमभिमुखोऽभिगम्य यथावयः समेत्य तस्यासनमाहारयेत् । शक्तिविषयेनावहुपादमासनं भवतीत्येके । तस्य पादौ प्रक्षालयेत् ” ॥ इति ।

स एव (२।३।६।१४-१५)—“ सान्त्वयित्वा तर्पयेद्रसैर्भक्ष्यैरद्भिरवराधयेन्त्यावसथं दद्यादुपाशय्यामुपस्तरणमुपधानं सावस्तरणमभ्यंजनं चेति ” । सावस्तरणमुपरि पटसहितमुपधानम् । अभ्यंजनं पादयोस्तैलं घृतं वा । एतत्सर्वं भोजनात्प्रागूर्ध्वं वाऽपेक्षिते काले दद्यादित्यर्थः ॥

२५ आश्वमेधिके भगवान्—

“ पादाभ्यंगांघ्रिपानैस्तु योऽतिथिं पूजयेन्नरः । पूजितस्तेन राजेंद्र भवामीह न संशयः ।

“ क्षुत्पिपासागदार्ताय देशकालागताय च । सत्कृत्यान्नं प्रदातव्यं यज्ञस्य फलमिच्छता ” ॥ इति ।

ऐश्वर्योपेतस्य गृहे समागतस्याप्यातिथ्यं कर्तव्यमभ्युदयकामिनेत्याह पराशरः—

“ यस्य छत्रं हयश्चैव कुंजरारोहमृद्धिमत् । ऐंद्रं स्थानमुपासीत तस्मात्तं न विचारयेत् ” ॥ इति ।

३० यस्य छत्रहयौ विद्येते तस्यातिथ्यं कुर्वन्नैद्रं पदमवाप्नुयात् । कुंजरस्यारोहो यस्मिन्नैद्रपदे तत्कुंजरारोहं ऋद्धिरमृतपानाप्सरःसेवादिरस्मिन्नस्तीति ऋद्धिमत् । छत्रादिमन्तं जातिकुलाचारैर्हीनमपि न विचारयेत् । पूज्योऽयं न वेति न संदिह्यात्किं त्वीश्वरबुद्ध्या पूजयेत् ।

अत एवाह भगवान् (अ. १०।४१)—

“ यद्यद्विभूतिमन्तत्वं श्रीमद्विजितमेव वा । तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोऽशंसंभयम् ” ॥ इति

याज्ञवल्क्यः (आ. १०९)—

“महोक्षं वा महाजं वा श्रोत्रियायोपकल्पयेत् । सत्क्रियान्वासनं स्वादु भोजनं सूत्रतं वचः” ॥
अत्र विज्ञानेश्वरः (पृ. ३१ पं. १४)—“महांतपुक्षाणं धौरेयं महाजं वा श्रोत्रियायोपकल्पयेत् ।
भवदर्थमस्माभिः परिकल्पितमिति तत्प्रीत्यर्थं न तु दानाय व्यापादनाय वा प्रतिश्रोत्रियमुक्षा-
संभवात्तस्मात्सत्क्रियाद्येव कर्तव्यमिति ” । मधुपर्काह्नीनाहापस्तंबः (२।४।८।५-९)— ५
“गोमधुपर्काह्नीं वेदाध्याय आचार्यऋत्विक्स्नातको राजा वा धर्मयुक्तः आचार्यायर्त्विजे श्वसुराय
राज्ञ इति परिसंवत्सरादुपतिष्ठभ्यो गौर्मधुपर्कश्च । दधिमधुसंसृष्टं मधुपर्कः पयो वा मधुसंसृष्टमभाव
उदकम् ” इति । सांगस्य वेदस्याध्येता वेदाध्यायः । सोऽतिथिर्मधुपर्कमर्हति । गां च दक्षिणाम् ।
धर्मयुक्त इति राज्ञो विशेषणम् । वाशब्दः समुच्चये । परिसंवत्सरात् संवत्सरं वर्जयित्वा तदुपर्यागतेभ्यो
मधुपर्को गौर्दक्षिणेत्यर्थः । गौतमोऽपि (५।२५-२९)—“ऋत्विगाचार्यश्वशुरपितृव्यमातुलाना- १०
मुपस्थाने मधुपर्कः संवत्सरे पुनर्यज्ञविवाहयोर्वाग्राज्ञः श्रोत्रियस्याश्रोत्रियस्यासनोदके ” ॥ इति ।
मनुरपि (३।११९-१२०)—

“राजर्त्विक्स्नातकगुरुन् प्रियश्वशुरमातुलान् । अर्हयेन्मधुपर्केण परिसंवत्सरागतान् ॥
“राजा च श्रोत्रियश्चैव यज्ञकर्मण्युपस्थितौ । मधुपर्केण संपूज्यौ न त्वन्यत इति स्थितिः” ॥ इति ।
उपस्थितौ संवत्सरादवर्गप्यागतौ । अन्यतः अन्यदा स्थितिः सिद्धान्त इत्यर्थः । १५

याज्ञवल्क्यश्च (आ. ११०)—

“प्रतिसंवत्सरं त्वर्ध्याः स्नातकाचार्यपार्थिवाः । प्रियो विवाहश्च तथा यज्ञं प्रत्यर्त्विजः पुनः” ॥ इति ।
अर्ध्याः मधुपर्केण संपूज्या इत्यर्थः । अतिथिं प्रत्याह मनुः (३।१०९)—
“न भोजनार्थं स्वे विप्रः कुलगोत्रे निवेदयेत् । भोजनार्थं हि ते शंसन्वांताशीत्युच्यते बुधैः” ॥ इति ।
विप्रः अतिथिभूतः । वांताशी उद्वीर्णाशी । स हि कुलगोत्रे उद्वीर्यान्नरूपेणाश्नातीत्यर्थः । २०

याज्ञवल्क्यः (आ. ११२)—

“परपाकरुचिर्न स्यादनिंद्यामंत्रणादृते । वाक्पाणिपादचापल्यं वर्जयेच्चातिभोजनम् ” ॥ इति ।
अनिन्द्यामंत्रणं “त्रिना अनिन्देनामंत्रितो नातिक्रामेदिति ” स्मरणात् । अतिथिरूपेण परपाक-
भोजनप्रसक्तिप्रतिषेधार्थनिर्दार्यवादमाह मनुः (३।१०४)—
“उपासते ये गृहस्थाः परपाकमबुद्धयः । तेन ते प्रेत्य पशुतां व्रजंत्यन्नाद्यदायिनाम् ” ॥ इति । २५
परपाकः परेषां पक्वान्नं तेन परपाकोपासनेन ।

याज्ञवल्क्यः (आ. ११३)—“अतिथिं श्रोत्रियं तृप्तं आसीमांतमनुव्रजेत् ” ॥ इति ।
मुख्यकल्पाभावेऽनुकल्पमाहापस्तंबः (२।२।४-१४)—“अभावे भूमिरुदकं तृणानि कल्याणी
वागित्येतानि वै सतोऽगारे न क्षीयन्ते कदाचनेति ” । मनुरपि (३।१०१)—

“तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूत्रता । एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन” ॥ इति । ३०
तृणान्यासनाभावे । भूमिः शय्याभावे । उदकं पादाभ्यञ्जनाभावे । सूत्रता कल्याणी वाक्
अन्नाभावे इत्यर्थः । अतिथिसत्कारं प्रशंसति व्यासः—

“सुक्षेत्रे वापयेद्वीजं सुपात्रे निक्षिपेद्धनम् । सुक्षेत्र इव सत्पात्रे दत्तमन्नं न नश्यति ” ॥ इति ।

शातातपः—

“स्वाध्यायेनाग्निहोत्रेण यज्ञेन तपसा तथा । नावाप्नोति गृही लोकान्यथा त्वतिथिपूजनात्” ॥ ३५

अकरणे प्रत्यवायमाह स एव—

“अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते । तस्मात्सुकृतमादाय दुष्कृतं तु प्रयच्छति” ॥

विष्णुरपि (६७।३३)—

“अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते । पितरस्तस्य नाश्रंति दशवर्षाणि पंच च ॥

५ “काष्ठभारसहस्रेण धृतकुंभशतेन च । अतिथिर्यस्य भग्नाशस्तस्य होमो निरर्थकः” ॥ इति ।

मनुरपि (३।१००)—

“सिलानप्युच्छतो नित्यं पंचाग्नीनपि जुह्वतः । सर्वं सुकृतमादत्ते ब्राह्मणोऽनर्चितो व्रजन्” ॥

आश्वमेधिके—

“सांगोपांगांस्तथा वेदान् पठतीह दिने दिने । न चातिथिं पूजयति वृथा स पठति द्विजः ॥

१० “पाक्यज्ञैर्महायज्ञैः सोमसंस्थाभिरेव च । ये यजंति न चार्चंति गृहेष्वतिथिमागतम् ॥

“तेषां यशोऽभिक्रामानां दत्तामिष्टं च यद्भवेत् । वृथा भवति तत्सर्वमाशया हतया हतम्” ॥

विष्णुः—

“वैश्वदेवांतिके प्राप्तमतिथिं यो न पूजयेत् । स चांडालत्वमाप्नोति सद्य एव न संशयः ॥

“निर्वासयति यो विप्रं देशकालातिथि गृहात् । पतितस्तत्क्षणादेव जायते नात्र संशयः” ॥ इति ।

१५ व्यासः—

“अतिथिं पूजयेद्यस्तु श्रांतं चादृष्टमागतम् । सवृषं गोशतं तेन दत्तं स्यादिति मे मतिः ॥

“पथि श्रांतमविज्ञातमतिथिं क्षुत्पिपासितम् । यो न पूजयते भक्त्या तमाहुर्व्रह्मघातकम् ॥

“अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते । स दत्त्वा दुष्कृतं तस्य पुण्यमादाय गच्छति” ॥ इति ।

आनुशासनिके—

२० “गृहानाश्रयमाणस्य अग्निहोत्रं च जुह्वतः । सर्वं सुकृतमादत्ते यः सायं नार्चितोऽतिथिः” ॥ इति ।

आपस्तम्बः (२।३।७।१-३)—“स एष प्राजापत्यः कुटुंबिनो यज्ञो नित्यप्रततो योऽतिथीना-
मग्निः स आहवनीयो यः कुटुम्बे स गार्हपत्यो यस्मिन्पच्यते सोऽन्वाहार्हपचन ऊर्जं पुष्टिं प्रजां
पञ्चान् इष्टापूर्तमिति गृहाणामश्नाति यः पूर्वोतिथेरश्नाति” इति ।

श्रुतिरपि (तै. आ. भृगूपनिषदि ९।१।१०)—“न कंचन वसतौ प्रत्याचक्षीत । तद्व्रतम् ।

२५ तस्माद्यया च कया च विधया ब्रह्मन् प्राप्नुयात् । अराध्यस्मा अन्नमित्याचक्षते” इति ।

वस्तुत्यर्थमागतं न निवारयेत् । वासे चान्नं दातव्यम् । तस्माद्येनकेन च प्रकारेण ब्रह्मसंग्रहं
कुर्यात् । यस्मादन्नवंतो गृहिणोऽभ्यागतायतिथये अराधि संसिद्धमस्मै अन्नमित्याचक्षत इत्यर्थः ।

व्यासः—

“वेदाभ्यानोऽन्वहं शक्त्या महायज्ञक्रिया क्षमा । नाशयंत्याशु पापानि देवानामर्चनं तथा ॥

३० “तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कृत्वा कर्माणि वै द्विजः । भुञ्जीत स्वजनैः सार्धं स याति परमां गतिम्” ॥ इति ।

इति मनुष्ययज्ञः । इति पञ्चमहायज्ञाः ॥ अथ भोजनं निरूप्यते । तत्र व्यासः

“यज्ञोपर्वन्ती भुञ्जीत नृगंशरंकृतः शुचिः । नायं प्रातर्नातग वै मध्यायां तु विशेषतः ॥

“नायज्ञशिष्टमश्नीयात् कुट्टो नान्यमानसः” ॥ इति ।

धर्मोऽद्योते—

“ अस्नाताशी मलं भुंक्ते अजपः पूयशोणितम् । अहुताशी कृमिं भुंक्ते अदाता विषमश्रुते ॥
“ एकः संपन्नमश्नाति वस्ते वासश्च शोभनम् । योऽसंविभज्य भृत्यानां को नृशंसतरस्ततः ॥
“ पितृदैवतभृत्यानां मातापित्रोर्गुरोस्तथा । विषसं वाग्यतोऽश्नीयादेवं धर्मो न हीयते ” ॥

अपराधैः—

“ आचार्यो ब्रह्मलोकेशो देवलोकस्य चर्त्विजः । जामयोऽप्सरसां लोके वैश्वदेवस्य बांधवाः ॥
“संबन्धिनः स्वर्लोकस्य पृथिव्या मातृमातुलौ । आकाशेशास्तु विज्ञेया बालवृद्धकुशातुराः” ॥
मनुः (४।६२)—“ सायंप्रातद्विजातीनामशनं श्रुतिचोदितम् ।
“ नांतरा भोजनं कुर्याद्गृहिहोत्रसमो विधिः । नातिप्रगे नातिसायं न सायंप्रातराशितः ” इति ।
अतिप्रगे अपरात्रे । अतिसायमर्धरात्रे । न सायंप्रातराशितः । रात्रावहनि वाऽद्विर्न भुंजीतेत्यर्थः । १०
श्रुतिरपि (तै. सं. १।४।९)—“ तस्मात् द्विरन्धो मनुष्येभ्य उपह्रियते ” इति ।
हारीतोऽपि— “ कृतहोमस्तु भुंजीत सायंप्रातरुदारधीः ” ॥ गौतमः (९।५९)—“ सायं-
प्रातस्त्वन्नमभिपूजितमनिदं न भुंजीत ” ॥ इति । आपस्तम्बोऽपि (२।१।१।२)—“ कालयो-
र्भोजनमन्यत्र प्रायश्चित्तात् ” ॥ इति । अत्र हरदत्तः—“ परिसंख्येयं भोजनस्य रागप्राप्तत्वात् अन्ये
तु नियमं मन्यन्ते । शक्तौ सत्यां कालयोर्भोजनमवश्यं कर्तव्यम् । प्राणाग्निहोत्रस्यालोपाय ” ॥ इति । १५
तथा च बोधायनः (२।७।२४)—

“ गृहस्थो ब्रह्मचारी वाऽयोनशंस्तु तपश्चरेत् । प्राणाग्निहोत्रलोपेन अवकीर्णी भवेत्तु सः ” ॥
अन्यत्र प्रायश्चित्तान्प्रायश्चित्ते तु तदेव विधानम् । अथाप्युदाहरन्ति—
“ अंतरा प्रातराशं च सायमाशं तथैव च । सद्योपवासी भवति यो न भुंक्ते कदाचन ” ॥ इति ।
“ प्राणाग्निहोत्रमंत्रास्तु निषिद्धे भोजने जपेत् । त्रेताग्निहोत्रमंत्रास्तु द्रव्यालाभे यथा जपेत् ॥ २०
“ इत्येवमाचरन्त्यस्तु ब्रह्मभूयाय कल्पते ” ॥ इति ।

व्यासः—

“ सायंप्रातर्मनुष्यानां अशनं वेदनिर्मितम् । नांतरा भोजनं कुर्यादुपवासविधिर्हि सः ॥
“ न संध्ययोर्न प्रभाते नार्धरात्रे कदाचन ” ॥ इति ।

शंखः—

“ उपलिप्ते शुचौ देशे पादौ प्रक्षाल्य वै करौ । आचम्यार्द्राननोऽक्रोधः पंचार्द्रो भोजनं चरेत् ” ॥ २५

व्यासोऽपि—

“ पंचार्द्रो भोजनं कुर्यात्प्राङ्मुखो मौनमास्थितः । हस्तौ पादौ तथा चास्यमेषु पंचार्द्रता मता ” ॥ इति ।

देवलः—

“ पादौ प्रक्षाल्य हस्तौ च द्विराचम्य च वाग्यतः । प्राङ्मुखोऽन्नानि भुंजीत शुचिः पीठमधिष्ठितः ” ॥ १०

मनुः (४।७६)—

“ आर्द्रपादस्तु भुंजीत नार्द्रपादस्तु संविशेत् । पंचार्द्रो भोजनं कुर्वन् मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ” ॥

विष्णुपुराणे (३।११।७३, ७५-७६)—“ प्रशस्तरत्नपाणिस्तु भुंजीत प्रयतो गृही ।

“ पुण्यगंधधरः शस्तमाल्यधारी नरेश्वर । नैकवस्त्रधरोऽथार्द्रपाणिपादो नरेश्वर ।

“ विशुद्धवदनः प्रीतो भुंजीत न विदिङ्मुखः ” ॥ इति । १५

देवलः—

“सम्यक् कृतोपलेपस्तु बहिराचम्य वाग्यतः । प्राङ्मुखोऽन्नं समश्रीयात्सम्यग्विधृतभाजनः ॥

“यस्तु भोजनशालायां भोक्तुकाम उपस्पृशेत् । आसनस्थो न चान्यत्र स विप्रः पंक्तिदूषकः” ॥

स्मृतिरत्नावल्याम्—

५ “भोक्तुकामे यदा विप्रे ह्याचांते त्वासनस्थिते । अभिवादं करोत्यन्य आचामेत्स पुनस्ततः” ॥

आपस्तंबः (१।५।१६।९)—“भोक्ष्यमाणस्तु प्रयतोऽपि द्विराचमेत्” ॥ इति । संवर्तः—

“आचम्यैव तु भुंजीत भुक्त्वा चोपस्पृशेदपः । अनाचांतस्तु योऽश्रीयात् प्रायश्चित्तीयते हि सः ॥

“अनाचांतः पिबेद्यस्तु अपि वा भक्षयेत् द्विजः । गायत्र्यष्टसहस्रं तु जपं कृत्वा विशुध्यति” ॥ इति ।

बोधायनः—“उपलिप्ते समस्थाने शुचौ श्लक्ष्णासनान्विते ।

१० “चतुरश्रं त्रिकोणं च वर्तुलं चार्धचंद्रकम् । कर्तव्यमानुपूर्वेण ब्राह्मणादिषु मंडलम्” ॥

शंखः—“आदित्या वसवो रुद्रा ब्रह्मा चैव पितामहः । मंडलान्युपजीवंति तस्मात्कुर्वीत मंडलम्” ॥

वृद्धत्रेयः—

“यातुधानाः पिशाचाश्च असुराश्चाथ राक्षसाः । घ्नन्ति वै बलमन्नस्य मंडलेन विवर्जितम् ॥

“ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च श्रीर्हुताशन एव च । मंडलान्युपजीवंति तस्मात्कुर्वीत मंडलम् ॥

१५ “उपलिप्तो शुचौ देशे निच्छिद्रं चतुरश्रकम् । गोमयं मंडलं कृत्वा भोक्तव्यमिति निश्चितम् ॥

“पात्रावस्थानतो न्यूनमधिकं वा न कारयेत्” ॥ पितामहः—

“चतुरश्रं ब्राह्मणस्य त्रिकोणं क्षत्रियस्य तु । वर्तुलं चैव वैश्यस्य शूद्रस्याभ्युक्षणं स्मृतम्” ॥

बोधायनः—

“मंत्रेणैव द्विराचम्य गोमयेनोपलेपिते । भस्मना वारिणा वाऽपि मंडलं कारयेत्ततः” ॥ इति

२० मन्त्रः प्रणव इति स्मृतिरत्ने । आश्वमेधिके—“स्नातः शुचिः शुचौ देशे निर्जने हुतपावकः ॥

“मंडलं कारयित्वाऽथ चतुरश्रं द्विजोत्तमः । क्षत्रियश्चेत्ततो वृत्तं वैश्योऽर्धेन्दुसमाकृति ॥

“आर्द्रपादस्तु भुंजीयात्प्राङ्मुखः स्वासने शुचौ । पादाभ्यां धरणीं स्पृष्ट्वा पादेनैकेन वा पुनः” ॥ इति ।

अत्रिः—“भूम्यां पादौ प्रतिष्ठाप्य यो भुंक्ते वाग्यतः शुचिः । भोजने भोजने विप्रास्त्रिरात्रफलमश्नुते ॥

“आसनारूढपादास्तु ब्राह्मणा यत्तु भुंजते । मुखेन धर्मितं चान्नं तुल्यं गोमांसभक्षणे” ॥

२५ चंद्रिकायां (पृ. २२१ पं. १८)—

“गुप्ते चैव प्रदेशे तु प्राङ्मुखो वाऽप्युदङ्मुखः । सुखासने समासीनः पादौ कृत्वा महीतले” ॥

शांडिल्यः—

“भुवं स्पृष्ट्वा तु पादाभ्यां पात्रं सव्येन पाणिना । इज्याप्रदेशाभिमुखः समश्रीयात्प्रसन्नधीः ॥

“आहारं तु रहः कुर्यात् विहारं चैव सर्वदा । गुप्ताभ्यां लक्ष्म्युपेतः स्यात्प्रकाशे हीयते श्रिया” ॥

३० भारते—“महाशनानामेकाते भोजनं हि सुखायते” ॥ व्यासः—

“प्राङ्मुखोऽन्नानि भुंजीत सूर्याभिमुख एव वा । आसीनस्त्वासने शुद्धे भूम्यां पादौ निधाय च” ॥ इति ।

गोभिलः—

“प्राङ्मुखावस्थितो विप्रः प्रतीचीं वा यथा सुखम् । उत्तरं-पितृकार्ये च दक्षिणं तु विवर्जयेत् ॥

आपस्तम्बः (१।११।३१।१)—“ प्राङ्मुखोऽन्नानि भुञ्जीत ” इति । मनुः (२।५२)—
 “आयुष्यं प्राङ्मुखो भुङ्क्ते यशस्यं दक्षिणामुखः । श्रियः प्रत्यङ्मुखो भुङ्क्ते ऋतं भुङ्क्ते उदङ्मुखः” ॥ इति ।
 एतत्काम्यविषयम् । वर्ज्यासनमाह प्रचेताः—

“ गोशकुन्मृन्मयं भिन्नं तथा पालाशमेव च । लोहबद्धं सदैवार्कं वर्जयेदासनं बुधः ” ॥

कौशिकः—

“ भिन्नासनं योगपदं तथैव मृगचर्म च । कृष्णाजिनं च यत्नेन वर्जयेत्पुत्रवान् सदा ” ॥ इति ।

आपस्तम्बः—

“ यत्नेन धारयेद्विप्रः पवित्रं दक्षिणे करे । भुञ्जानस्तु विशेषेण चान्नदोषैर्न लिप्यते ” ॥

बोधायनः (२।३।६०)—

“ भोजनं हवनं दानमुपहारः प्रतिग्रहः । न बहिर्जानु कार्याणि तद्वदाचमनं स्मृतम् ” ॥ इति । १०

व्यासः—“स्वयं प्रक्षाल्य पात्राणि दत्तमन्नं तु भार्यया । भोक्तव्यं सघृतं सोष्णं हितं पथ्यं मितं तथा” ॥

विष्णुपुराणे (३।११।७७)—

“ अन्नं प्रशस्तं पथ्यं च प्रोक्षितं प्रोक्षणोदकैः । न कुत्सितादृतं नैव जुगुप्सितमसंस्कृतम् ” ॥

भोजनपात्राण्याह याज्ञवल्क्यः—

“ अमन्नं वाथ कांस्यं वा राजतं वा हिरण्यम् । तानि पात्राणि सर्वेषां यथाविभवमाचरेत् ” ॥ १५

पैठीनसिः—“ प्रशस्तशुद्धपात्रेषु भुञ्जीताकुपितो द्विजः ।

“ सौवर्णे राजते ताम्रे पद्मपत्रपलाशयोः । भोजनेऽभोजने चैव त्रिरात्रफलमश्नुते ॥

“ एक एव तु यो भुङ्क्ते विमले कांस्यभाजने । चत्वारि तस्य वर्धते ह्यायुः प्रज्ञा यशो बलम् ” ॥

पद्मपत्रपलाशपत्रभोजनं गृहिव्यतिरिक्तविषयम् ।

“ पलाशपद्मपत्रेषु गृही भुक्त्वैन्दवं चरेत् । ब्रह्मचारियतीनां तु चांद्रायणफलं भवेत् ” ॥ इति २०

व्यासस्मरणात् रत्नावल्यां तु—

“ वल्लीपलाशपत्रेषु स्थलजे पौष्करे तथा । गृहस्थश्चेत्समश्नीयाच्छुद्धै चांद्रायणं चरेत् ” ॥

स्मृतिरत्ने तु—

“ कदलीगर्भपत्रे च पद्मपत्रे जलास्पृशि । वल्लीपलाशपत्रे च भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ” ॥ इति ।

“ पालाशेषु तु पत्रेषु मध्यमेषु तु भारते । यस्तु भुङ्क्ते स लभते प्राजापत्य दिनेदिने ” ॥ २५

इति भारतवचनं

“ य इच्छत्यूर्ध्वगामित्वं परं स्थानं च शाश्वतम् । पद्मपत्रेषु भोक्तव्यं मासमेकं निरंतरम् ” ॥ इति

पैठीनसीवचनं च यतिब्रह्मचारिविषयम् । काम्यविषयमिति स्मृतिरत्ने । स्मृतिर्चितामणौ—

“ एक एव तु भुञ्जीत विमले कांस्यभाजने । पलाशं शतिकादूर्वागत उर्ध्वं ययेच्छया ” ॥ इति ।

कांस्यपात्रं गृहस्थैकविषयम् । यत्यादीनां निषेधात् । तदाह प्रचेताः—

“ तांबूलाभ्यञ्जने चैव कांस्यपात्रे च भोजनम् । यतिश्च ब्रह्मचारी च विधवा च विवर्जयेत् ” ॥ इति
 अपराकै—

“ कांसिकस्य तु यत्पापं गृहस्थस्य तथैव च । कांसिभोजी यतिः सर्वं प्राप्नुयात्किल्बिषं ततः ” ॥

संवर्त्तः—

“शूद्राणां भाजने भुक्त्वा भुक्त्वा वा भिन्नभाजने । अहोरात्रोषितो भूत्वा घृतं प्राश्य विशुध्यति”॥

मनुः (४।६५)—

“ न पादौ धावयेत्कांस्ये कदाचिदपि भाजने । न भिन्नपात्रे भुंजीत न भावप्रतिदूषिते ” ॥

५ पैठीनसिः—

“ सौवर्णं राजतं वाऽपि शूद्रपात्रं न तु स्पृशेत् । इतरेषां तु शुद्धिः स्यात्तापवर्षणतस्तथा ॥

“ ब्रह्मपात्रे तु यो भुंक्ते मासमेकं निरंतरम् । त्रिभिश्चांद्रायणैस्तुल्यं महापातकनाशनम् ” ॥

ब्रह्मपात्रं पिशाचौदुम्बरपात्रम् । द्रविडभाषायां पेयति ।

“ पनसाग्रे नालिकेरकदलीविल्वपात्रके । उहीने काञ्जिपात्रे च चांद्रायणफलं भवेत् ” ॥

१० मनुः—

“ वटार्काश्वत्थपात्रेषु कुंभीतिंदुकपत्रयोः । कोविदारकरंजेषु भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत्”॥

व्यासः—

“ करे कर्पटके चैव ह्यायसे ताम्रभाजने । वटार्काश्वत्थपात्रेषु भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत्”॥

गांडित्यः—

१५ “ नातिदोषावहं कांस्यं भोजनेऽश्वत्थमेव च । कुटुंबिनामकामानामपीच्छन्तीह केचन ” ॥ इति ।

प्रचेताः—

“ मृन्मये पर्णपृष्ठे वा कर्पासे तान्तवेऽश्मनि । नाश्रीयान्न पिवेच्चैव न करेण तथांजलौ ” ॥

कर्पासे पात्रे तांतवे वस्त्रे । संग्रहे—

“ करे कर्पटके चैव शिलायां च प्रमादतः । औदुम्बरे पालाशे च भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत्”॥ इति ।

२० हारीतः—“ न काष्ण्यायसे मृन्मये वा पात्रेऽश्रीयान्न भिन्नपात्रे न भूमौ ताम्ररजतसुवर्णशंख-
शुक्तिस्फटिकानां भिन्नेऽभिन्ने वा न दोषः ” ॥ इति ।

ताम्रपात्रभोजनं ब्रह्मचारिविधवाविषयमिति स्मृतिरत्ने—

आपस्तंब. विशेषमाह (२।८।१९।३-४)—औदुम्बरश्वमसः सुवर्णनाभः प्रशस्तो न चान्येन
भोक्तव्यः” इति । औदुम्बरस्ताम्रमयश्वमसः । भोजनपात्रं सुवर्णनाभः स्वर्णेन मध्येऽलंकृतः ।

२५ एक एव तत्र भुंजीतेत्यर्थः । तच्च पात्रं भूमौ स्थापनीयम् ॥

तदाह व्यासः—“पंचार्द्रो भोजनं कुर्याद्भूमौ पात्रं निधाय च । उपवासेन तत्तुल्यं मनुराह प्रजापतिः॥

“ भूमौ पात्रं प्रतिष्ठाप्य यो भुक्ते वाग्यतः शुचिः । भोजने भोजने चैव त्रिरात्रफलमश्नुते ” ॥

तच्च स्थापनं प्राणाहुतिपर्यंतं पश्चात्तु यंत्रिकामारोप्य भोक्तव्यम् । तदाह व्यासः—

“ न्यस्तपात्रे तु भुंजीत पंचग्रासान् महामुने । शेषमुद्धृत्य भोक्तव्यं श्रूयतामत्र कारणम् ॥

३० “ त्रिप्रपा दोषसंस्पर्शः पादचेलरजस्तथा । सुखेन भुंक्ते त्रिप्रोऽपि पित्रर्थं तु न लुप्यते ” ॥ इति ।

पैतृकभोजने भूमिपात्रप्रतिष्ठापनं न लोपनीयमित्यर्थः ।

स्मृतिरत्ने—“ प्राणाहुत्यूर्ध्वमुद्धृत्य पात्रं यंत्रे विनिक्षिपेत् ॥

एतत्सर्वं संगृह्योक्तं स्मृत्यर्थसारे—“ पादौ प्रक्षाल्य द्विराचम्य प्राङ्मुखो उदङ्मुखो
वा यज्रोपवीती सौत्तरवासाः विभवे सति रत्नहिरण्यपाणिर्गंधाक्षनमालयान्वितः प्रशस्तश्लक्ष्ण

२५ चतुष्पात्पीठे सुखासीनो भूमौ पादौ पादं वा प्रतिष्ठाप्यान्तर्जानुकरौ वाग्यतस्तच्चित्तः चतुश्च.

गोमयमण्डले ब्रह्मग्रंथिरहितपवित्रदक्षिणपाणिः प्रक्षाल्य तत्पात्रं भूमौ निधाय प्राणाहुत्यनंतरं यंत्रिकादौ पात्रं निधाय पंचयज्ञावशिष्टं संस्कृतं मितं घृताद्युपस्कृतं मातृभार्यादिदत्तमतिथ्यभ्यागतपुत्रभृत्यादिपरिवृत एकांते भुंजीत ” ॥ इति ।

बोधायनोऽपि (२।७।२-४,६)—“ सर्वावश्यकावसाने प्रक्षालितपाणिपादोऽप आचम्य सुसंमृष्टोपलिप्ते शुचौ संवृते देशे प्राङ्मुख उपविश्योद्धृतमान्हियमाणं भूर्भुवःसुरोमित्युपस्थाय वाचं यच्छेत् । न्यस्तमन्नं महाव्याहृतिभिः प्रदक्षिणमुदकं परिषिच्य सत्येन पाणिना अविमुंचन्नमृतोपस्तरणमसीति पुरस्तादपः पीत्वा पंचान्नेन प्राणाहुतीर्जुहोति “ प्राणे निविष्टोऽमृतं जुहोमि शिवो माऽविशाप्रदाहाय प्राणाय स्वाहा ” ॥ इति । पंचभिः पर्यायैर्हुत्वा तूष्णीं भूयो वृतयेत् प्रजापतिं मनसा ध्यायन् नान्तरा वाचं विसृजेद्यदि विसृजेत् । भूर्भुवःसुवरोमिति जपित्वा पुनरेव भुंजीत अथाप्युदाहरन्ति ।

१०

‘आसीनः प्राङ्मुखोऽश्वीयाद्वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन्नास्कंदयंस्तन्मनाश्च भुक्त्वाऽन्नं समुपस्पृशेत्’ ॥ इति ।
सुमंतुः—

“ अन्नं निधाप्य दर्व्या तु न हस्तेन कदाचन । पूजयित्वा तदन्नं चापोशनं तु समंत्रकम् ” ॥

व्यासः—

“ अन्नं दृष्ट्वा प्रणम्यादौ प्रांजलिः कथयेत्ततः । अस्माकं नित्यमस्त्वेतादिति भक्त्याऽथ वंदयेत् ” ॥ १५

मनुः (२।५४-५५)—“ पूजयेदशनं नित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन् ।

“ पूजितं ह्यशनं नित्यं बलमूर्जं प्रयच्छति । अपूजितं तु यद्भुक्तमुभयं तु हिनस्ति तत् ” ॥

भारतेऽपि—

“ अन्नं पूर्वं नमस्कुर्व्यात्प्रहृष्टेतान्तरात्मना । नान्यदालोकयेदन्नं न जुगुप्सेत तत्परः ” ॥ इति ।

माधवीये—

२०

“ ततो महाव्याहृतिभिः पात्रं तत्परिषिच्य च । ऋतेन सायं सत्येन प्रातश्च परिषेचयेत् ॥

“ सोदकं दक्षिणं पाणिं कुर्यादन्नं प्रदक्षिणम् । अपेयं तद्भवेत्तोयं पीत्वा चांद्रायणं चरेत् ” ॥

परिषेचनावशिष्टं जलमपेयमित्यर्थः । आश्वमेधिकेऽपि—

“ पाणिना जलमुद्धृत्य कुर्यादन्नं प्रदक्षिणम् । अपेयं तद्विजानीयात्पीत्वा चांद्रायणं चरेत् ॥

“ परिषेकजलादन्यत्पेयमेतत्तु मंत्रवत् ” । गोभिलः ()—“ व्याहृतीभिर्गायत्र्या अभिमन्त्र्य २५

ऋतं त्वा सत्येन परिषिचामीति सायं सत्यं त्वर्त्तेन परिषिचामीति प्रातः परिषिचति ” । संग्रहे—

“ आपोशनमकृत्वा तु यद्यन्नं विस्वृतं भवेत् । तदन्नं मांसतुल्यं स्याद्भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥

“ अकृत्वा परिषेकं च यस्त्वन्नं परिमर्दयेत् । अभोज्यं तद्भवेदन्नं भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥

“ परिषेचनतः पश्चात्पूर्वं प्राणाहुतेस्तथा । पुनरन्नं न गृह्णीयादिति वेदविदो विदुः ” ॥ इति ।

परिषेचनानन्तरभावी विशेषो भविष्यपुराणे दर्शितः—

३०

“ भोजनातिर्क्वचिदन्नाग्रधर्मराजाय वै बलिम् । दत्त्वाऽथ चित्रगुप्ताय प्रेतभ्यश्चेदमुच्चरेत् ” ॥

मंत्रः “ यत्र कचन संस्थानां क्षुत्तृष्णोपहतात्मनाम् । प्रेतानां वृक्षयेऽक्षयमिदमस्तु यथासुखम् ” ॥ इति ।

हारीतस्तु—

“ अन्नपतये नमः । भुवनपतये नमः । भूतानां पतये नमः । इति बलित्रयं भूमौ दद्यात् ” इति ।

स्मृत्यर्थसारे— गायत्र्यान्नमभ्युक्ष्य ॐभूरित्यादि दशहोत्रा चाभिमन्त्र्य धर्माय नमः । चित्र-
गुप्ताय नमः । सर्वभूतेभ्यो नम इति च भूमौ बलिं दद्यात् ” ॥ इति ।

पराशरः—“ ततः प्रक्षाल्य हस्तं च ध्यात्वा चान्नाधिदैवतम् ।

“समन्त्राचमनं कृत्वा प्राणाद्याहुतिपञ्चकम् । दशनस्पृष्टिरहितं कृत्वा भुञ्जीत वाग्यतः” ॥ इति ।

५ गोभिलः—

“ अंतश्चरसि भूनेषु गुहायं विश्वतो मुखः । त्वं यज्ञस्त्वं हि विष्णुस्त्वं हि वषट्कार आपो-
ज्यातीरसोमृतं त्वं ब्रह्मत्वं प्रजापतिर्ब्रह्म भूर्भुवः सुवरोममृतोऽस्तरणमसि ” इत्यपः पीत्वा दश
होतारं मनसाऽनुद्रुत्यात्वरन्पंच ग्रासान्गृह्णीयात् । प्राणाय स्वाहेति गार्हपत्यमेव तेन जुहोति ।
अपानाय स्वाहेत्वन्नाहार्यपचनमेव तेन जुहोति । व्यानाय स्वाहेत्याहवनीयमेव तेन जुहोति ।

१० उदानाय स्वाहेति सभ्यमेव तेन जुहोति । समानाय स्वाहेत्यावसथ्यमेव तेन जुहोति ” इति ।

एते मन्त्राः प्रणवाद्याः कर्तव्याः । तथा च शौनकः—

“स्वाहांताः प्रणवाद्याश्च नाम्ना मन्त्रास्तु वायवः । जिह्वयैव ग्रसेदन्नं दशनैस्तु न संस्पृशेत्” ॥ इति ।
स्मृतिरत्ने—

“ हस्तं प्रक्षालयेच्चैव पश्चात्प्रयतमानसः । धारयेत्सव्यहस्तेन पात्रं तद्वाग्यतो द्विजः ॥

१५ “ अमृतोऽपस्तरणमसीत्यापोशनक्रियां चरेत् । अंगुष्ठस्तर्जनी चैव मध्यमा च तृतीयका ॥

“ तिस्रो द्वे वांगुली चैव प्रशस्ता पात्रधारणे । प्राणाय प्रणवोपेतं प्राणायान्नाहुतिस्ततः ॥

“ अपानाय ततो हृत्वा व्यानाय तदनंतरम् । उदानाय ततः कुर्यात्समानाय तु पंचमीम् ॥

“ विज्ञाय तत्त्वमेतेषां जुहुयादात्मविद् द्विजः ॥

“यथा रसं न जानाति जिह्वाप्राणाहुतौ द्विजः । तथा समाहितः कुर्यात् प्राणाहुतिमतंद्रितः” ॥ इति ।

२० याज्ञवल्क्यः (आ. १०६)—

“ आपोशनेनोपरिष्ठादघस्ताच्चैव भुञ्जता । अनग्रममृतं चैव कार्यमन्नं द्विजन्मनः ” ॥

वृद्धशातातपः—

“ आपोशनं परीधानं पूर्वमाच्छादनं परम् । भवत्यन्नमनग्रं हि सोत्तरीयं तथामृतम् ” ॥

स्मृत्यर्थसारे—“आपोशनं वामभागे सुरापानसमं भवेत् । तदेव दाक्षिणे भागे सोमपानसमं भवेत्” ॥

२५ स्मृतिरत्ने—“आपोशनं तु यः कुर्याद्वामभागे तथैव च । सद्यः पिबेत् सुरापानमित्येतन्मनुरब्रवीत् ॥

“ आपोशनं करे कृत्वा कृत्वा पात्रे तिलोदकम् । श्वानमूत्रेण तत्तुल्यं पुनः पूरयते यदि ” ॥

संग्रहे—“गृहीत्वाऽपोशनं हस्ते पात्रे चैव तिलोदकम् । पूरणं चेत्पुनः कुर्यात्सुरापानसमं भवेत् ॥

“ आपोशनं करे कृत्वा पात्रस्थान्नं न लंघयेत् । हस्तेन लंघितं चान्नं भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥

“ आपोशनं करे विप्रो य आशीर्वचनं वदेत् । अभोज्यं तद्भवेदन्नं दाता भवति निष्फलः ॥

३० “ आपोशनं गृहीत्वा तु स्वास्ति कुर्वति ये द्विजाः । न देवास्तृप्तिमायांति निराशाः पितरो गताः ॥

“ भुञ्जानोऽभिवदेद्यस्तु तदन्नं परिवर्जयेत् ॥

“ आपोशनं चासनं च तैलाभ्यंगं तथैव च । स्वयंकरकृतं प्रोक्तमायुः श्रीपुत्रहानिदम् ” ॥

वासिष्ठः—“आपोशनं सर्वतीर्थं तेनान्नं तु न लंघयेत् । बाहुना लंघितं चान्नमभोज्यं मनुब्रवीत्” ॥

अत्रिः—“शब्देनापः पयः पीत्वा शब्देन घृतपायसम् । शब्देनापोशनं कृत्वा सुरापानसमं भवेत् ॥

३५ “ आपोशनमकृत्वा तु यस्तु भुञ्जीत मूढधीः । श्वमुक्करसमो भुक्त्वा नग्नं प्रतिपद्यते ” ॥

श्रुतिरत्ने—

“ आपोशनमकृत्वा तु यो भुंक्तेऽनापदि द्विजः । भुञ्जानो यदि वा ब्रूयाद्वायव्यष्टशतं जपेत् ” ॥

हारीतः—

“ पंचप्राणाहुतीः कुर्याच्छुद्धाच्चैर्गभिवारितैः । उच्छिष्टेन घृतं दद्यात् प्राघुतेर्लवणान्वितम् ” ॥

व्यासः—

“ प्राणाग्निहोत्रं शुद्धाच्चैर्लवणव्यञ्जनान्वितैः । कुर्यात् प्राणाहुतीरन्तर्निगिरेन्न तु चर्वयेत् ” ॥

स्मृतिसारे—“ मध्यमानामिकांगुष्ठैर्गृहीत्वाऽन्नं मितं पुनः ॥

“ प्राणाय चेत्यपानाय व्यानाय च यथाक्रमम् । उदानाय समानाय स्वाहेति जुहुयात्क्रमात् ” ॥

स्मृत्यर्थसारे—“ आपोशनं गृहीत्वा सर्वांगुलिभिर्ग्रसन्प्राणायपानाय व्यानायोदानाय समानाय स्वाहेति पंचाहुतीः सघृताः सक्षीरा वा हुत्वा कृत्स्नमन्नं सागुष्ठं ग्रसेत् ” ॥ इति । १०

शौनकेः—“ तर्जनीमध्यमांगुष्ठलम्ना प्राणाहुतिर्भवेत् । मध्यमानामिकांगुष्ठैरपाने जुहुयात्ततः ॥

“ कनिष्ठानामिकांगुष्ठैर्व्याने च जुहुयाद्भुविः । तर्जनी तु बहिः कृत्वा उदाने जुहुयात्ततः ॥

“ समाने सर्वहस्तेन समुदायाहुतिर्भवेत् ” ॥ उदाने स्मृत्यन्तरे विशेषो दृश्यते

“ कनिष्ठातर्जन्यंगुष्ठैरुदाने जुहुयाद्भुवः ” ॥ इति । वाग्यमनमाह मनुः—

“ स्नास्यतो वरुणः शक्तिर्जुह्वतोऽग्निः श्रियं हरेत् भुञ्जतो मृत्युरायुष्यं तस्मान्मौनं त्रिषु स्मृतम् ” ॥ इति । १५

व्यासः—

“ मौनं वाचो निवृत्तिः स्यान्नात्र भाषा न संस्कृतम् । नान्यदेवेरेणं विष्णुं सदा ध्यायेच्च कीर्तयेत् ॥

“ कवले कवले चैव कुर्याद्भोविदंकीर्तनम् । नाशौचं कीर्तने तस्य पवित्रं भगवान् हरिः ” ॥

“ देवताभिधानं चाप्रयतः ” इत्यापस्तंबवचनं (१।११।३।१४) देवतान्तरविषयं इत्याहुः ।

तथा स्मृत्यन्तरे—

“ देवतान्तरनामानि नाशुचिः परिकीर्तयेत् । नारायणस्य नामानि सदा सर्वत्र कीर्तयेत् ” ॥

अत्रिः—

“ मौनव्रतं महाकष्टं हुङ्कारेणापि नश्यति । तथा सति महान् दोषः तस्मात्तं नियतश्चरेत् ” ॥ इति ।

एतच्च काष्ठमौनं पंचग्रासविषयम् । तथा च मनुः—

“ अनिदन्भक्षयेन्नित्यं वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन् । पंचग्रासान् महामौनं प्राणाद्याप्यायनं महत् ” ॥ २५

स्मृत्यर्थसारे—

“ आस्ये चान्नस्य निक्षेपो मंत्रैः प्राणादिपंचकैः । तदेव भोजनं ज्ञेयं तत्रैव नियमः स्मृतः ॥

“ प्राणाहुतिषु सर्वासु हतास्वेव त्यजेत् गृही । पात्रस्य धारणं मौनं तावात्सिद्धिर्भवेद्भुजैः ॥

“ अन्नस्य वा निषेधार्थमुपदंशस्य वा पुनः । धर्मार्थं विसृजेद्वाचं नासद्वाचं कदाचन ” ॥

शांडिल्यः—

“ नावश्यं भोजने मौनं कुटुंबाश्रमवासिनाम् । वाचोपचारः कर्तव्यो भुञ्जतां सह भोजने ” ॥

स्मृतिरत्नावल्याम्—“ प्राणाग्निहोत्रादन्यत्र नासौ मौनं समाचरेत् ॥

“ यदि भुञ्जीत तूष्णीं तु सर्वत्रैव तु भोजने । स पापो आतरं हन्ति संततिं चाचिराच्छ्रियम् ” ॥ इति ।

एतदेवाभिप्रेत्याह व्यासः—

“ मौनी वाऽप्यथवाऽमौनी प्रहृष्टः संयतेन्द्रियः । भुञ्जीत विधिवद्विप्रो न चोच्छिष्टानि चाहरेत् ” ॥ इति । ३५

वामेन पात्रस्पर्शः कर्तव्यः । तत्र यमः—

“समुत्थितस्तु यो भुंक्तं यो भुंक्ते मुक्तभाजने । एवं वैवस्वतः प्राह भुक्त्वा सांतपनं चरेत्” ॥ इति ।
मुक्तभाजने वामहस्तेनास्पृष्टभाजने इत्यर्थः । बोधायनोऽपि (२।७।३)— “सव्येन पाणिना
अविमुंचन्नमृतोपस्तरणमसीत्यपः पीत्वा प्राणाहुतीर्जुहोति ” ॥ इति । एतच्च प्राणाहुत्यनंतरं
५ वैकल्पिकम् । “ प्राणाहुतौ हुतायां वा त्यजेत्पात्रस्य धारणम् ” ॥ इति गोभिलस्मरणात् ।
आपस्तंबोऽपि (२।८।१९।७-८)— “ नापजहीतापजहीत वा ” इति । भोजनपात्रं सव्येन
पाणिना न विमुंचेत् । प्राणाहुत्यूर्ध्वं मुंचेद्वेत्यर्थः बोधायनः । (२।७।१२-१४)— “ ब्रह्मणि
म आत्माऽमृत्वायेत्यक्षरेणात्मानं योजयेत् । सर्वकृतुयाजिनामात्मयाजी विशिष्यते ” इति ॥
चंद्रिकायाम् (पृ. २२३ पं. २१)—

१० “ यथा हि तूलमैषीकमग्नौ प्रोतं प्रदीप्यते । तद्वत्सर्वाणि पापानि दह्यंते ह्यात्मयाजिनः ” ॥ इति ।
मार्कण्डेयः—

“ अश्रीयात्तन्मना भूत्वा पूर्वं तु मधुरं रसम् । लवणाम्लौ तथा मध्ये कटुतिक्तादिकं ततः ॥

“ प्राक् द्रवं पुरुषोऽश्रीयात् मध्ये तु कटिनाशनम् । अंते पुनर्द्रवाशी तु बलारोग्ये न मुंचति ” ॥

मनुः (४।३४)—

१५ “ न सीदेत्स्नातको विप्रः क्षुधा शक्तः कथंचन । न जीर्णमलवद्वासा भवेच्च विभवे सति ” ॥
धर्मोद्योते—

“ काले साम्यं लघु स्निग्धमुष्णं क्षिप्रं द्रवोत्तरम् । बुभुक्षुरन्नमश्रीयात् मात्रा तावद्वितागमः ॥

“ काले प्राणायते भुक्तं साम्यमन्नं न बाधते । लघु प्रजीर्यते क्षिप्रं स्निग्धोष्णं बलवर्धनम् ॥

“ स्निग्धभुक्तं तथा चान्नं धातुसाम्यं करोति हि । मात्राशी सर्वकालं स्यात् मात्रा ह्यग्नेः प्रवर्तिका ” ॥

२० भारते— “ गुणास्तु पाणितभुक्तं भजंते आरोग्यमायुः प्रतिभा बलं च ।

“ अनाविलं चास्य भवेदपत्यं न चैनमत्याश इति क्षिपंति ” ॥

व्यासः— “ नार्जीर्णे भोजनं कुर्यात्कुर्यान्नातिबुभुक्षितः ।

“ आहारकाले संप्राप्ते यो न भुंक्ते बुभुक्षितः । तस्य सीदति कार्याग्निर्निरिन्धन इवानलः ॥

“ पात्रेष्वर्थानुरूपेषु पुत्रभृत्यादिभिर्वृतः । सुसंस्कृतं हितमितं भुंजीतान्नमकुत्सयन् ॥

२५ “ यवगोधूमशाल्याह्वं मांसशाकादिसंयुतम् । तिक्ताम्ललवणोपेतं व्यंजनैश्च सुगंधिभिः ॥

“ भक्ष्यप्रकारान्विविधान् कंदमूलफलानि च । अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम् ॥

“ अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिर्वर्जयेत् । न निंदेन्नभक्ष्यांस्तु स्वाद्वस्वादूनकुत्सयन् ॥

“ आर्द्रपाणिपदास्यंस्तु प्राड्मुखो ब्रह्मसूत्रधृक् । द्वात्रिंशद्ग्रासमश्रीयाद्दीर्घमायुर्जजीविषुः ” ॥

आपस्तंबः (२।४।९।३)—

३० “ अष्टौ ग्रासा मुनेर्भक्ष्याः षोडशारण्यवासिनः । द्वात्रिंशतं गृहस्थस्यापरिमितं ब्रह्मचारिणः ” ॥ इति ।

द्वात्रिंशतं प्रथमार्थे द्वितीया । आहिताग्निविषये कालयोर्भोजनमित्ययमपि नियमो नास्तीत्याहुः ।

स एव (२।४।९।३)—

“ आहिताग्निरनृद्धाश्च ब्रह्मचारी च ते त्रयः । अश्रंत एव सिध्यंति नैषां सिद्धिरनश्रताम् ” ॥ इति ।

अनृद्धग्रहणं दृष्टान्तार्थम् । सिध्यंति स्वकार्यक्षमा भवंतीत्यर्थः । स एव (२।८।१९।५-६, ९-११)—

१५ “ यावद्ग्रासं सन्नयन्नस्कंदयन्कृत्स्नं ग्रासं ग्रहीत सहांगुष्ठं न च मुशसब्दं कुर्यात् पाणिं च
नावधुन्यात् ” इति ।

यावदेव ग्रसितुं शक्यं तावदेव संनयन् पिंडीकुर्वन् अस्कंदयन् भूमावन्नलेपानपातयन् ।
सहांगुष्ठमास्ये ग्रासप्रवेशे यथांगुष्ठोऽप्यनुप्रविशति तथा सर्वानेव ग्रासान्प्रसीतेत्यर्थः ।

स एव (२।८।१९।१६) “सोत्तराच्छदनश्चैव यज्ञोपवीती भुंजीत” इति । उत्तराच्छादनमु-
परिवासः । व्यासः—

“वक्त्रप्रमाणं पिंडांश्च ग्रसेदेकैकशः पुनः । वक्त्राधिकस्तु यः पिंड आत्मोच्छिष्टः स उच्यते ॥ ५

“पिंडावशिष्टमन्यच्च वक्त्रान्निःसृतमेव च । अभोज्यं तद्विजानीयात् भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥

“सदा चात्यशनं नाद्यान्नातिहीनं च कर्हिचित् । यथान्नं व्यथा न स्यात्तथा भुंजीत नित्यशः” ॥ इति ।

अथ भोजननियमाः । तत्र पराशरः (६।६३, ६४)—

“यो वेष्टितशिरा भुंक्ते यो भुंक्ते दक्षिणामुखः । वामपादकरः स्थित्वा तद्वै रक्षांसि भुंजते ॥

“भुंजानश्चैव यो विप्रः पादं हस्तेन संस्पृशेत् । स्वमुच्छिष्टमसौ भुंक्ते यो भुंक्ते मुक्तभाजने ॥ १०

“पादुकास्थो न भुंजीत न पर्यंकस्थितोऽपि वा । श्वानचंडालदृक् चैव भोजनं परिवर्जयेत्” ॥ ६४ ॥ इति ।

वसिष्ठः (१२।२०)—“न मुखशब्दं कुर्यात्सर्वाभिरंगुलीभिरश्रीयात्पाणिं च नावधूनुयात्” ॥ इति ।

व्यासः—

“यस्तु पाणितले भुंक्ते यस्तु फूत्कारसंयुतम् । प्रसृतांगुलिभिर्यश्च तस्य गोमांसवच्च तत् ॥

“हस्त्यश्वरथयानोष्ट्रमास्थितो नैव भक्षयेत् । श्मशानाभ्यंतरस्थो वा देवालयगतोऽपि वा ॥ १५

“शयनस्थो न भुंजीत न पाणिस्थं न चासने । नार्द्रवासा नार्द्रशिरा न चायज्ञोपवीतवान् ॥

“न प्रसारितपादस्तु पादारोपितपाणिमान् । न बाहुसव्यसंस्थश्चैव न च पर्यंकमास्थितः ॥

“न वेष्टितशिराश्चापि नोत्संगकृतभाजनः । नैकवस्त्रो द्रुष्टमध्ये सोपानत्कः सपादुकः ॥

“न चर्मोपरिसंस्थश्च चर्मवेष्टितपार्श्ववान् । ग्रासशेषं च नाश्रीयात् पीतशेषं पिबेन्न च ॥

“शाकमूलफलेशूणां दंतच्छेदैर्न भक्षयेत् । ब्रह्मणां भुंजतां मध्ये न चाश्रीयात् त्वरान्वितः ॥ २०

“वृथा न विकिरेदन्नं नोच्छिष्टः कुत्रचिद्ब्रजेत् । यत्त्यक्तं भुवि तच्चान्नं भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत्” ॥

कूर्मपुराणे (उत्त० १९।१९)—

“यो भुंक्ते वेष्टितशिरा यश्च भुंक्त उदङ्मुखः । सोपानत्कश्च यो भुंक्ते सर्वं विद्यात्तदासुरम्” ॥ इति ।

मनुः (४।६२)—

“न कुर्वीत वृथा चेष्टां न वार्यजलिना पिबेत् । नोत्संगे भक्षयेद्भक्ष्यं न जातु स्यात्कुतूहली” ॥ २५

चंद्रिकायाम् (पृ. २२६ पं. १९)—

“नोच्छिष्टो भक्षयेकिंचिन्न गच्छन्वा कदाचन । खट्वाखटो न भुंजीत न पाणिस्थं कदाचन ॥

“नास्नातो न च संविष्टो न चैवान्यमना नरः । न चैव शयने नोर्व्यामुपविष्टो न शब्दवत् ॥

“न चैकवस्त्रो न वदन्प्रेक्षतामप्रदाय च । पादप्रसरणं कृत्वा न च वेष्टितमस्तकः ” ॥ इति ।

बोधायनः (२।७।७-८)—“सर्वभक्षापूपकंदमूलमांसानि दन्तैर्न वधेन्नातिसुहितः स्यात्” इति ॥ ३०

बृहस्पतिः—

“खादितार्थं पुनः खात्वा मोदकादिफलादि च । दंपत्योर्भुक्तशिष्टं च भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥

“न स्पृशेत् वामहस्तेन भुंजानोऽन्नं कदाचन । न पादौ न शिरो बस्ति न पदाभाजनं स्पृशेत्” ॥

याज्ञवल्क्यः (आ. १६५)—“गोब्राह्मणानलान्नानि नोच्छिष्टो न पदा स्पृशेत् ” ॥ इति ।

एतानि अशुचिर्न स्पृशेत् । पादेन त्वनुच्छिष्टोपि न स्पृशेदित्यर्थः ।

यमः—

“अंके नारोपयेत्पादं पाणिना नाक्रमेद्भुवम् । अंगं वा न स्पृशेत्पद्भ्यां पादं पादांतरेण च ॥

“न भिन्नभाजनेऽश्रीयान्न भूम्यां न च पाणिषु । नांधकारे न चाकाशे न च देवालयादिषु ” ॥

आश्वमेधिके—“उत्थाय च पुनः स्पृष्टं पादस्पृष्टं च लंघितम् ।

५ “केशकीटातिपन्नं च मुख्यमाज्यविवर्जितम् । अन्नं तद्राक्षसं ज्ञेयं तस्माद्यत्नेन वर्जयेत् ।

“राक्षसोच्छिष्टभुविप्रः सप्तपूर्वान्परानपि । रौरवे नरके घोरे स्वपितृन्पातयिष्यति” ॥ हारीतः—

“एकवस्त्रो न भुंजीत कपाटमपिघाय च । यानस्थः शयनस्थो वा पादुकास्थोऽपि वा पुनः ॥

“ज्योत्स्नोल्कालोकमार्गेषु प्रदोषे च महानिशि । कोणे चामार्जिते नाद्यात्संधे शय्यासु हर्म्यके” ॥

संग्रहे—“शय्याया वेत्रासने चंद्रिकायामुल्कालोके द्वारि मार्गप्रदेशे गेहे धूलिधुसरे भित्तिसंधौ

१० लक्ष्मीकामो वर्जयेदन्नभुक्तिम् ” इति । बृहस्पतिः—

“अग्न्यागारे गवां गोष्ठे देवब्राह्मणसंनिधौ । जप्ये भोजनकाले च पादुके परिवर्जयेत् ॥

“उत्संगे न च भुंजीत न च पाणितलेऽपि च । शून्यागारे च नाश्रीयान्न च पाण्यासनस्थितः” ॥

कूर्मपुराणे (३।१८।२०-२२)—

“नार्धरात्रे न मध्याह्ने नाजीर्णे नार्द्रवस्त्रधृक् । न भिन्नभाजने चैव न भूम्यां न च पाणिषु ॥

१५ “नोच्छिष्टो घृतमादद्यान्न मूर्धानं स्पृशन्नपि । न ब्रह्म कीर्तयन्वाऽपि न निःशेषं न भार्यया” ॥

याज्ञवल्क्यः (आ. १३१)—“न भार्यादर्शनेऽश्रीयान्नैकवासा न संस्थितः ” इति ।

भार्यायामात्मपुरतः स्थितायां नाश्रीयादवीर्यवदपत्योत्पत्तिभयात् । तथा च श्रुतिः—

“जायाया अन्ते नाश्रीयादवीर्यवदपत्यं भवति” इति । अतस्तथा सह भोजनं दूरादेव निरस्त-

मिति विज्ञानेश्वरः (पृ. ३८ पं. ६९) । तथा च बृहद्यमः—

२० ‘माता वा भागिनी वाऽपि भार्या वाऽन्याश्च योषितः । न ताभिः सह भोक्तव्यं भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत्’ ॥

इति । तथा चंद्रिकायाम्—

“नासनारूढपादस्तु न च सार्धं तु भार्यया । शून्यालये तु नाश्रीयान्न च देवाग्निवेश्मसु ” ॥

विष्णुः (६।८।४६)—

“नाश्रीयान्धार्यया सार्धं नाकाशे न तटे स्थितः । शयानः प्रोढपादश्च कृत्वा नैवावसक्थिकाम्” ॥

२५ मनु. (४।४३)—

“नाश्रीयान्धार्यया सार्धं नैनां वीक्षेत चाश्रतीम् । क्षुवंतीं जुंभमाणां वा न चासीना यथासुखम्” ॥ यत्तु

“ब्राह्मण्या सह योऽश्रीयाद्वाच्छिष्टं वा कदाचन । न तस्य दोषमिच्छंति नित्यमेव मनीषिणः ॥

“उच्छिष्टमितरस्त्रीणां योऽश्रीयाद्वाह्नयः क्वचित् । प्रायश्चित्ती स विज्ञेयः संकीर्णो मूढचेतनः” ॥

इति न तत्सर्वदा दोषाभावप्रतिपादनपरम् ‘कदाचनेति’ वचनात् । अत एवादित्यपुराणम्—

३० “ब्राह्मण्या भार्यया सार्धं क्वचिद्भुंजीत चाध्वानि । अथोवर्णाद्विया सार्धं भुक्त्वा पतति तत्क्षणात्” ॥ इति ।

यदपि बोधायनेनोक्तम् (१।१।१८-१९)—“यानि दक्षिणतस्तानि व्याख्यास्यामो यथैत-

दनुपेतेन सह भोजनं त्रिया सह भोजनं पर्युपितभोजनम् ” इति तदपि तस्य दूराचारत्वप्रति-

पादनपरम् । तथा च स एव (१।१।२३-२४)—“मिथ्येतदिति गौतमः । उभयं चैव नाद्रियेत ।

शिष्टमृतिविशेषदर्शनात्” इति । उच्छिष्टे घृतमेवने विशेषः । आपस्तम्बः (२।४।९।७)—

३५ “उपेतः स्त्रीगामनुपेतस्योच्छिष्टं वर्जयेत्” इति । “वर्मविप्रतिपत्तावभोज्यम्” (१।१।४।१२) इति च ॥

बृहस्पतिः—

“ नोच्छिष्टं ग्राहयेदाज्यं जग्धशिष्टं च संत्यजेत् । न भिन्नकांस्ये संध्यायां पतितानां च संनिधौ ॥

“ शूद्रशेषं न भुंजीयात् श्राद्धानं शिशुभिः सह । शूद्रभुक्तावशिष्टं तु नाद्याद्भाण्डस्थितं त्वपि ॥

“ पात्रांतरे निधायस्माद्व्याघ्रिरवशेषतः ” ॥ इति । पाकभांडात् पात्रांतरे निधाय तत आदाय शूद्रादिभ्यो निरवशेषं देयम् । एवं सति पाकभाण्डस्थं भोज्यमित्यर्थः । अत्रिः—

“ क्षीरं लवणसंयुक्तमुच्छिष्टे घृतसेचनम् । रजस्वलामुखास्वादः सुरापानसमं त्रयम् ” ॥ इति । उच्छिष्टघृतसेचने विशेषमाह स एव—

“ प्राणाहुतौ घृताभावे पश्चात् भुंजीत नो घृतम् । प्राग्घुतेर्घृतसद्भावे भुक्तिमध्ये न दुष्यति ” ॥ इति ।

शातातपः—

“ अग्रासनोपविष्टस्तु यो भुंक्ते प्रथमं द्विजः । बहूनां पश्यतां सोऽज्ञः पंक्या हरति किल्बिषम् ” ॥ १०

उशनाः—“ नादत्वा मृष्टमश्रीयाद्बहूनां चैव पश्यताम् । नाश्रीयुर्बहवश्चैव तथा चैकस्य पश्यतः ॥

“ अश्नाति यो भृत्यजनस्य मध्ये मृष्टान्नमेको रसगृध्नुबुद्धिः ॥

“ दीनैः कटाक्षैरभिवीक्ष्यमाणो व्यक्तं विषं हालहलं स भुंक्ते ” ॥

यमः—“ यस्त्वेकपंक्तौ विषमं ददाति स्नेहाद्भयाद्वा यदि वाऽर्थहेतोः ॥

“ वेदेषु दृष्टामृषिभिश्च गीतां तां ब्रह्महत्यां मुनयो वदन्ति ” ॥

व्यासः—“ एकपंक्युपविष्टानां विषमं यः प्रयच्छति । यश्चैवाश्नाति विषमं स कुर्याद्ब्रह्महाव्रतम् ॥

“ पंक्तिभेदी पृथक्पाकी नित्यं ब्राह्मणनिन्दकः । आदेशी वेदविक्रेता पंचैते ब्रह्मघातकाः ” ॥

गोमिलः—

“ एकपंक्युपविष्टानां विप्राणां सह भोजने । यद्येकोऽपि त्यजेत्पात्रं नाश्रीयुरिति रेप्यनु ॥

“ मोहाद्भुंक्ते तु यस्तत्र स सांतपनमाचरेत् ।

“ भुंजानेषु तु विप्रेषु यस्तु पात्रं परित्यजेत् । भोजने विघ्नकर्त्ताऽसौ ब्रह्महापि तथोच्यते ।

‘एकपंक्युपविष्टानां विप्राणां भोक्तुकामिनाम्यो विघ्नं कुरुते मर्त्यस्ततोऽन्यो नास्ति पापकृत्’ ॥ इति ।

पराशरः (११।८-९)—

“ एकपंक्युपविष्टानां विप्राणां सह भोजने । यद्येकोऽपि त्यजेत्पात्रं शेषमन्नं न भोजयेत् ॥

“ मोहाद्भुंजीत यस्तत्र पंक्या उच्छिष्टभाजने । प्रायश्चित्तं चरेद्विप्रः कृच्छ्रं सांतपनं तथा ॥ २५

“ भुंजानेषु तु विप्रेषु योऽग्रे पात्रं परित्यजेत् । स चोरः स च पापिष्ठो ब्रह्मघ्नः स खलूच्यते ॥

“ अप्येकपंक्तौ नाश्रीयाद्ब्राह्मणः स्वजनैरपि । को हि जानाति किं कास्य प्रच्छन्नं पातकं भवेत् ॥

“ एकपंक्युपविष्टानां दुष्कृतं यदुरात्मनाम् । सर्वेषां तत्समं तावद्यावत् पंक्तिर्न भिद्यते ” ॥ इति ।

पंक्तिभेदप्रकारमाह स एव

“ अग्निना भस्मना चैव स्तंभेन सलिलेन च । द्वारेण चैव मार्गेण पंक्तिभेदो बुधैः स्मृतः ” ॥ ३०

यमोऽपि—

“ उदकं च तृणं भस्म द्वारं पंथास्तथैव च । एभिरंतरितं कृत्वा पंक्तिदोषो न विद्यते ” ॥ इति ।

स्मृत्यंतरे—

“ अग्निना भस्मना चैव स्तंभेन सलिलेन च । द्वारेण निम्नभूम्या वा षड्भिः पंक्तिर्विभिद्यते ” ॥

स्मृत्यर्थसारे—“ नाशुष्कपाणिपादो भुंजीत न तिष्ठन्न गच्छन्न प्रव्हो न शयानो नार्द्रवस्त्रो न प्रौढपादो नासनारूढपादो न विदिङ्मुखो न शयने न खट्वायां नासंध्यां न जानुनि नोत्संगे वा पादतले वा भाजनं निधाय भुंजीत न शयनादिस्थो न शिशुभिः सह न पश्यतामप्रदाय न भार्यया सहाश्रीयाद्विवाहवर्जम् न दुष्टपंक्तौ जलवृणाग्निभस्मपाथिस्तंभादिभिः पंक्तिर्भिद्यते ” । इति ।

५ स्मृतिरत्ने—

“ शयनस्थो न भुंजीत न पाणिस्थं न चासने । न कुर्यात्स्कंदनं शब्दं क्रोधमन्यत्र चिंतनम् ॥

“ शिशूनां भर्त्सनं चापि श्वचंडालादिदर्शनम् । अशुचीनां तथा मध्ये प्रेक्षतामप्यनश्रताम् ॥

“ नाकाले विषयुक्तं च नाश्रीयाद्दहतं तथा ” ॥ व्यासः—

“ उदकयामपि चंडालं श्वानं कुक्कुटमेव च । भुंजानो यदि पश्येत्तु तदन्नं तु परित्यजेत् ॥

१० “ रजस्वलादृष्टमन्नं भुक्त्वा वमनमिष्यते । चंडालदृष्टमन्नं च सूतिकादृष्टमेव च ॥

“ चंडालं पतितं प्रेतं श्वशूद्रादीन् रजस्वलाम् । एतान्निरीक्ष्य भुंजानो वमित्वोपवसेत् त्र्यहम् ” ॥

संवर्त्तः—

“ उदकयामपि चंडालं ग्रामसूकरकुक्कुटौ । भुक्त्यंतरे समीक्ष्यैतान् जपेत् पूर्वोदितामृचम् ” ॥

मानस्तोक इत्यृचम् । स्मृतिरत्ने च—

१५ “ चंडालं पतितं श्वानमुदकयां सूतिकां तथा । दृष्ट्वा भुक्त्यंतरे स्नात्वा मानस्तोके ऋचं जपेत् ” ॥

आश्वमेधिके—

“ उदकयामपि चंडालं श्वानं वा काकमेव वा । भुंजानो यदि पश्येत्तु तदन्नं तु परित्यजेत् ॥

“ भुंजानो यदि तन्मोहात् द्विजश्चांद्रायणं चरेत् ” । कात्यायनः—

“ चंडालपतितोदकया वाक्यं श्रुत्वा द्विजोत्तमः । भुंजीत ग्रासमात्रं तु दिनमेकमभोजनम् ” ॥ इति ।

२० प्रजापतिः—

“ उदकयायाः करेणान्नं भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् । प्राजापत्यमशक्तश्चेत् त्रिरात्रं स्पृष्टभोजने ॥

“ अशक्तौ तु तदर्धं स्यात्त्रिगुणं सहभोजने । चतुर्गुणं तदुच्छिष्टे पानीयेऽर्धार्धमेव च ” ॥ इति ।

भोजनपात्रस्य उच्छिष्टस्पर्शं सति कर्तव्यमुक्तं स्मृत्यर्थसारे—

“ उच्छिष्टस्पर्शनं ज्ञात्वा तत्पात्रं परिहृत्य च । ततः पश्चाद्भोग्येन भूमिं समनुलिप्य च ॥

२५ “ अन्नं पात्रे निधायैव तदन्नं परिवेष्टयेत् । परिषिच्याथ भुंजीत भोजने न च दोषभाक् ” ॥ इति ।

पात्रस्पर्शभावे अन्योन्यस्पर्शं तत्रैवोक्तम्—

“ एकपंक्तिषु भुंजानो ब्राह्मणो ब्राह्मणं स्पृशेत् । तदन्नमत्यजन् भुक्त्वा गायत्र्यष्टशतं जपेत् ” ॥ इति ।

तदन्नं त्यजेत् । अत्यक्त्वा भुंजीत चेत् गायत्र्याष्टशतं जपेदित्यर्थः । इदं चापद्विषयम् ॥

अत एवाह पराशरः—

३० “ उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पृष्टः शुना शूद्रेण वा द्विजः । उपोष्य रजनीमेकां पंचगव्येन शुध्यति ” ॥ इति ।

शूद्रेणानुच्छिष्टशूद्रेणेत्यर्थः । स्मृत्यंतरे—

“ एकपंक्तौ तु भुंजान उच्छिष्टं संस्पृशेद्यदि । विमृज्यान्नं ततः स्नायान्नुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ” ॥

उच्छिष्टान्नस्पर्शं अत्रिः—

“ अशुद्धः स्वयमप्यन्नमशुद्धं तु यदि स्पृशेत् । विशुध्यत्युपवासेन भुक्ते कृच्छ्रेण शुध्यति ” ॥

श्राद्धे अन्योन्यस्पर्शने कर्तव्यमाह शंखः—

“ श्राद्धपंक्तौ तु भुञ्जानो ब्राह्मणो ब्राह्मणं स्पृशेत् । तदन्नमत्यजन्भुक्त्वा गायत्र्यष्टशतं जपेत् ” ॥
उच्छिष्टस्पर्शेऽप्याह—

“ उच्छिष्टलेपनस्पर्शे प्रक्षाल्यान्येन वारिणा । भोजनांते नरः स्नात्वा गायत्रीं त्रिशतं जपेत् ” ॥
पात्रयोरन्योन्यस्पर्शेऽप्याह—

“ उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पर्शे स्पृष्टपात्रं विसृज्य च । सर्वान्नं पूर्ववद्वा भोजयेत्तु द्विजोत्तमः ” ॥
संवर्तः—

“ कृते मूत्रे पुरीषे वा भुक्तोच्छिष्टे तथैव च । श्वादिस्पृष्टो जपेद्देव्याः सहस्रं स्नानपूर्वकम् ॥
“ चंडालाद्यैस्तु संस्पृष्ट उच्छिष्टस्तु द्विजोत्तमः । गोमूत्रयावकाहारः षट्पात्रेण विशुध्यति ” ॥

व्यासोऽपि—

“ उच्छिष्टोऽद्भिरनाचांतश्चंडालादीन्स्पृशेत् द्विजः । प्रमादाद्वै जपेत्स्नात्वा गायत्र्यष्टसहस्रकम् ॥
“ चंडालपतितादींस्तु कामाद्यः संस्पृशेत् द्विजः । उच्छिष्टस्तत्र कुर्वीत प्राजापत्यं विशुद्ध्ये ॥
“ अशुद्धान्स्वयमेवैतान् अशुद्धस्तु यदि स्पृशेत् । विशुध्यत्युपवासेन तथा कृच्छ्रेण वा पुनः ” ॥ इति ।

मनुः—

“ पुच्छे बिडालकं स्पृष्ट्वा स्नात्वा विप्रो विशुध्यति । भोजने कर्मकाले च विधिरेष उदाहृतः ” ॥ इति । १५
इतरांगस्पर्शे त्वाचमनमेव । “ मार्जारमूषकस्पर्शे कर्म कुर्वन्नुपस्पृशेत् ” इति बृहस्पतिस्मरणात् ।

वृद्धमनुः—

“ न पिबेन्न च भुञ्जीत द्विजः सव्येन पाणिना । नैकहस्तेन च जलं शूद्रेणावर्जितं पिबेत् ॥
“ पिबतो यत्पतेत् तोयं भाजने मुखनिःसृतम् । अभोज्यं तद्भवेदन्नं भोक्ता भुञ्जीत किल्बिषम् ॥
“ पीतावशेषितं तोयं ब्राह्मणो न पुनः पिबेत् । पिबेद्यदि हि तन्मोहात् द्विजश्चांद्रायणं चरेत् ” ॥ इति । २०

शातातपः—

“ उद्धृत्य वामहस्तेन यत्तोयं पिबति द्विजः । सुरापानेन तत्तुल्यं मनुराह प्रजापतिः ” ॥

पराशरः—

“ अर्धभुंक्ते तु यो विप्रस्तस्मिन्पात्रे जलं पिबेत् । हतं दैवं च पित्र्यं च आत्मानं चोपघातयेत् ॥
“ पिबतः पतितं तोयं भाजने मुखनिःसृतम् । अभोज्यं तद्विजानीयाद्भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ” ॥ २५

शंखः—

“ पीतावशेषितं पीत्वा पानीयं ब्राह्मणः क्वचित् । त्रिरात्रं तु व्रतं कुर्यात् वामहस्तेन वा पुनः ” ॥ इति ।

व्यासः—

“ हस्ते च विद्यमाने तु ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः । तोयं पिबति वक्त्रेण श्वानयोनिं व्रजत्यधः ” ॥

अत्रिः—

“ आस्येन न पिबेत्तोयं तिष्ठन्नांजलिना पिबेत् । वामहस्तेन शय्यायां तथैवान्यकरेण वा ॥
“ तोयं पाणिनस्स्पृष्टं ब्राह्मणो न पिबेत्क्वचित् । सुरापानेन तत्तुल्यं मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥
“ वामहस्तेन यो भुंक्ते योऽपि पिबति वा द्विजः । सुरापानेन तुल्यं स्यादित्येवं मनुरब्रवीत् ॥
“ भुञ्जानो दक्षिणं बाहुं न संयुज्यात् कदाचन । उद्धृत्य वामहस्तेन वृषार्तः संलिलं पिबेत् ॥
“ वामेनैव पिबेत्तोयं भोजने पात्रमत्यजन् । त्यजन्पिबेत्तु रुधिरमत्यजन्नमृतं पिबेत् ” ॥

यमः—

“ न हस्तेन पिवेत्तोयं भुक्तौ तु द्विजसत्तमः । अन्येन कांस्यपात्रेण पिवेदन्यैश्च साधनैः ” ॥
हस्तेन दक्षिणेन भुक्तिग्रहणादन्यत्र पाणिना पाने न दोषः । अंजलिना तन्निषेधात् ।

तथा च याज्ञवल्क्यः (आ. १३८)—

५ “ जलं पिवेन्नांजलिना शयानं न प्रबोधयेत् । नाक्षैः क्रीडेन्न धर्मघ्नैर्व्याधितैर्वा न संविशेत् ” ॥ इति ।
शांडिल्योऽपि—

“ पिवेत् भोजनपात्रेण पाणिना वा न भोजने । प्रभूतं न पिवेत्तोयं नापिबन्नशनं चरेत् ॥

“ पीताऽवाशिष्टं चषके पुनस्तन्न पिवेज्जलम् ” ॥

व्यासः—“ पानीयानि पिवेद्येन तत्पात्रं द्विजसत्तमः । अनुच्छिष्टं भवेत्तावद्यावद्भूमौ न निक्षिपेत् ॥

१० “ पात्रशिष्टं तु यत्तोयं पाने पादावनेजने । भूमौ तदंबु निःस्राव्य शिष्टं तत्पानमर्हति ” ॥ इति ।

बृहस्पतिः—“ पर्णपृष्ठे न भुंजीयाद्रात्रौ दीपं विना तथा ” । कात्यायनः—

“ नृणां भोजनकाले तु यदा दीपो विनश्यति । पाणिभ्यां पात्रमादाय भास्करं मनसा स्मरेत् ॥

“ पुनश्च दीपितं कृत्वा तच्छेषं भोजयेन्नरः । पुनरन्नं न भोक्तव्यं मुक्त्वा पापैर्विलिप्यते ” ॥

जातातपः—

१५ “ हस्तदत्तानि चान्नानि प्रत्यक्षलवणं तथा । मृत्तिकाभक्षणं चैव गौमांसाभ्यशनं स्मृतम् ॥

“ लवणं व्यंजनं चैव घृतं तैलं तथैव च । लेह्यं पेयं च विविधं हस्तदत्तं न भक्षयेत् ” ॥

यमः—

“ हस्तदत्ता तु या भिक्षा लवणव्यंजनानि च । भोक्ता ह्यशुचितां याति दाता स्वर्गं न गच्छति ॥

“ हस्तदत्तास्तु ये स्नेहा लवणव्यंजनानि च । दातारं नोपतिष्ठते भोक्ता भुंजीत किल्बिषम् ” ॥

२० अत्रिः—

“ घृतं वा यदि वा तैलं ब्राह्मण्या नखनिःसृतम् । अभोज्यं तद्विजातीनां भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥

“ यत्त्यक्तं भुवि तच्चान्नं भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ” ॥ इति । आपस्तंबः—

“ घृतं तैलं च लवणं पानीयं पायसं तथा । भिक्षा च हस्तदत्ता तु न ग्राह्या यत्रकुत्रचित् ॥

“ तस्मादन्तर्हितं चान्नं पर्णेन च तृणेन वा । प्रदद्यान्न तु हस्तेन नायसेन कदाचन ॥

२५ “ उदकं यच्च पक्वान्नं यो दर्व्या दातुमिच्छति । स भ्रूणहा सुरापश्च स स्तेनो गुरुतल्पगः ” ॥

यमः—

“ दर्व्या देयं शृतान्नं च समस्तव्यंजनानि च । तैलपक्कमपक्कं च न तु दर्व्या कदाचन ” ॥

रत्नावल्याम्—

“ अपक्वं स्नेहपक्वं च हस्तेनैव प्रदापयेत् । यत्किञ्चिदितरद्भक्ष्यं दद्याद्दर्व्यैव नान्यथा ” ॥

३० पराशरः—

“ आयसेन तु पात्रेण तदन्नमुपदीयते । शुनोच्छिष्टमसौ भुक्ते दाता तु नरकं व्रजेत् ॥

“ अयःपात्रमयोग्यं स्यात्सानानाचमनकर्मसु । तत्र स्थितं घनरसं नोपयोग्यं द्विजातिभिः ॥

“ हस्ते दद्यानि यः स्नेह लवणव्यंजनानि च । दाता तु नरकं याति भोक्ता भुंजीत किल्बिषम् ” ॥ इति ।

संमते—

३५ “ वेत्रचर्मकृतं चैव तालपत्रकुशैः कृतम् । आयसं वर्जयेद्भुक्तौ वर्ज्यं यागोपयोगि यत् ” ॥

गौतमः—

“ काहलभ्रामणग्राव्णां चक्रस्योलूखलस्य च । एतेषां निनदो यावत् तावत्कालमभोजनम् ” ॥

स्मृतिरत्ने—

“ तैलयन्त्रेक्षुयन्त्रादेः शब्दो यावत् प्रवर्तते । तावत्कालं न भोक्तव्यं शूद्रस्य पतितस्य च ” ॥ इति ।

व्यासः—

“ श्लेष्म शृङ्घाणिको सर्गो नान्नकाले प्रशस्यते । बलिमांगल्यजप्यादौ न होमे न महाजने ” ॥

रत्नावल्याम्—

“ भक्ष्यं चेच्छिशुमारभ्य देयं भोज्यं फलादि वा । नोच्छिष्टं कस्यचिद्व्यान्नाद्यादुच्छिष्टमेव च ॥

“ मातापितृगुरुच्छिष्टं बालोऽश्रंस्तु सुखी भवेत् । भुक्त्वा दन्नानुपानं तु न कर्तव्यं सुखार्चिना ॥

“ भुक्त्वा क्षीरोदनं पश्चान्नातिवृत्त उपस्पृशेत् ” ॥ मनुः—

१०

“ पीत्वाऽपोशनमश्रीयत्पात्रदत्तमगर्हितम् । भार्याभृतकदासेभ्य उच्छिष्टं शेषयेत्ततः ॥

“ न शूद्राय मतिं दद्यादुच्छिष्टं न हविष्कृतम् ” (४।८०) ॥ इति । आपस्तम्बः (१।११।३१-२२)—

“ नाब्राह्मणायोच्छिष्टं प्रयच्छेद्यदि प्रयच्छेदंतान्स्कुप्त्वा तस्मिन्नवधाय प्रयच्छेत् ” ॥ इति । यदि प्रयच्छेदिति दासादिविषयम् । दंतान्नखेन स्कुप्त्वा दंतमलमुच्छिष्टे निधाय प्रयच्छेदित्यर्थः ॥

पुलस्त्यः—

१५

“ भोजनं तु न निःशेषं कुर्यात्प्राज्ञः कथंचन । अन्यत्र दधिसक्त्वाज्यं फलं क्षीरं मधूदकात् ॥

व्यासः—

“ पानीयं पायसं सर्पिर्दधिसक्तुमधून्यपि । एतेषां परिशिष्टं तु न प्रदेयं कदाचन ” ॥

वसिष्ठः—“ न निःशेषकृतस्यादन्यत्र दधिमधुसर्पिपयःसक्तुभ्यः ” ॥ इति ।

विष्णुपुराणेऽपि (३।११।८२)—

२०

“ नाशेषं पुरुषोऽश्रीयददन्यत्र जगतीपते । मध्वंबुदधिसर्पिभ्यः सक्तुभ्यश्च विवेकवान् ” ॥ इति ।

बृहद्विष्णुः—“ ब्राह्मणो ब्राह्मणोच्छिष्टभोजने एकाहमुपवसेत् ” ॥ इति ।

शंखः—“ ब्राह्मणोच्छिष्टाशने महाव्याहृतिभिरभिमंज्यापः पिबेत् । पितुर्ज्येष्ठस्य भ्रातुरुच्छिष्टं भोक्तव्यं धर्मविप्रतिपत्तावभोज्यम् ” ॥ इति । मनुः (१।१।१५२)—

“ अभोज्यानां च भुक्त्वाऽन्नं स्त्रीशूद्रोच्छिष्टमेव च । जग्ध्वा मांसमभक्ष्यं च सप्तरात्रमभोजनम् ” ॥ इति । २५

आपस्तम्बोऽपि (१।१।२६।४-५)—शूद्रोच्छिष्टभोजने तु “ सप्तरात्रमभोजनं स्त्रीणां च ” ॥ इति ।

बृहस्पतिः—

“ नवश्राद्धस्य यच्छिष्टं शूद्रशिष्टं तथैव च । दंपत्योर्भुक्तशिष्टं च भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ” ॥

इदमभ्यासविषयम् ।

देवलः—“ अवलीढं श्वमार्जारध्वाक्षकुक्कुटमूषकैः । भोजने नोपयुंजीत तदमेध्यं हि सर्वतः ” ॥ ३०

याज्ञवल्क्यः (आचारे १६७-१६८)—

“ अनिर्चितं वृथामांसं केशकीटसमान्वितम् । शुक्रं पर्युषितोच्छिष्टं श्वस्पृष्टं पतितेक्षितम् ॥

“ गोघातं शकुनोच्छिष्टं पदास्पृष्टं च कामतः । उदक्यास्पृष्टसंघुष्टं पर्यायान्नं च वर्जयेत् ” ॥

पराशरः (६।६६-६७)—

“ शृतं द्रोणाढकस्यान्नं काकश्वानोपघातितम् । केनेदं शुध्यते चान्नं ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् ” ॥

“ काकश्वानोपलीढं तु द्रोणान्नं न परित्यजेत् ” । अन्नं संगृह्य स्वयं शास्त्रज्ञोऽपि केनेदं शुध्यतीति ब्राह्मणान् पृच्छेदित्यर्थः । स एव (६।६९)—

५ “ काकश्वानावलीढं तु गवाघातं खरेण वा । स्वल्पमन्नं त्यजेद्विप्रः शुद्धिद्रोणाढके भवेत् ” ॥
द्रोणाढकप्रमाणमाह स एव (६।६७-६८)—

“ वेदवेदाङ्गविद्विप्रैर्धर्मशास्त्रानुपालकैः । प्रस्थद्वात्रिंशतिद्रोणः स्मृतो द्विप्रस्थ आढकः ” ॥ इति ।

भविष्यत्पुराणे तु

“ पलद्वयं तु प्रसृतिः द्विगुणं कुडुवं मतम् । चतुर्भिः कुडुवैः प्रस्थः प्रस्थाश्चत्वार आढकः ॥

१० “ आढकैस्तैश्चतुर्भिस्तु द्रोणस्तु कथितो बुधैः । कुम्भो द्रोणद्वयं प्रोक्तः खारी द्रोणस्तु षोडश ” ॥
अनयोर्देशभेदेन व्यवस्था । लालाहतान्नशुद्धिप्रकारमाह पराशरः (६।७)—

“ अन्नस्योद्धृत्य तन्मात्रं यच्च लालाहतं भवेत् । सुवर्णोदकमभ्युक्ष्य हृताशेनोपतापयेत् ॥

“ विप्राणां ब्रह्मघोषेण भोज्यं भवति तत्क्षणात् ” ॥ इति ।

संवर्त्तः—

१५ “ श्वकाकोच्छिष्टगोशिष्टभक्षणे तु त्र्यहं क्षिपेत् । विडालमूषकोच्छिष्टे पंचगव्यं पिबेत् द्विजः ” ॥
यत्तु चतुर्विंशतिमतेऽभिहितम्

“ श्वकाकोच्छिष्टगोशिष्टक्रिमिकीटादिभक्षणे । अमेध्यानां च सर्वेषां चरेच्चांद्रायणत्रयम् ” ॥ इति ।
तदेतदभ्यासविषयमिति माधवीये ।

अंगिराः—

२० “ चंडालपतितादीनामुच्छिष्टान्नस्य भक्षणे । चांद्रायणं चरेद्विप्रः क्षत्रः सांतपनं चरेत् ” ॥ इति ।
वालाद्युच्छिष्टस्य स्वल्पशुद्ध्या भोज्यत्वमाह पराशरः—

“ वालैर्नकुलमार्जारैरन्नमुच्छेषितं यदा । तिलदर्भोदकैः प्रोक्ष्य शुध्यते नात्र संशयः ” ॥ इति ।
प्रोक्षणमकृत्वा भुक्ते सति पंचगव्यं संवर्त्तोक्तं द्रष्टव्यम् । त्र्युच्छिष्टजलपाने हारीतः—

“ छ्युच्छिष्टस्थिता आपो यदि कश्चित्पिबेत् द्विजः । शङ्खपुण्यां विपक्वेन त्र्यहं क्षीरेण शुध्यति ” ॥ इति ।

२५ मनुः (११।१४८)—“ शूद्रोच्छिष्टाश्च पीत्वाऽपः कुशवारि पिबेत् त्र्यहम् ” ॥ इति ।

संवर्त्तः—“ शूद्रोच्छिष्टं जलं पीत्वा त्रिरात्रं यावकं पिबेत् ” ॥ इति ।

देवलः—“ निशुद्धमपि चाहारं मक्षिकाकुमिजन्तुभिः । केशरोमनखैर्वाऽपि दूषितं परिवर्जयेत् ” ॥

वसिष्ठः (१४।२३)—

“ कामं तु केशकीटादीनुद्धृत्याद्भिः प्रोक्ष्य भस्मनाऽवकीर्य वाऽचम्य प्रशस्तमुपयुंजीत ” ॥ इति ।

३० बोधायनः (२।७।५)—“ केशकीटनखरोमाखुपुरीषाणि दृष्ट्वा तावन्मात्रमन्नमुद्धृत्य प्रोक्ष्य शेषं भोज्यम् ” ॥ इति ।

संवर्त्तः—“ केशैः पिपीलिकाभिर्वा कीटैर्वाऽमेध्यसेविभिः । यदन्नमुपहन्येत ततस्तन्मात्रमुद्धरेत् ॥

“ मृद्भस्मताम्रवैदूर्यहिरण्यरजतादिभिः । गोवालदूर्भैर्युक्तेन वारिणा शेषमुक्षयेत् ॥

“ पात्रस्थमतिहर्तव्यं हस्तस्थ तु परित्यजेत् । मुखस्थमभिनिष्कास्य घृतप्राशनमाचरेत् ॥

३५ “ केशकीटनखान्प्राप्य अस्थिकंटकमेव च । होमतप्तं घृतं पीत्वा तत्क्षणादेव शुध्यति ” ॥

स्मृत्यर्थसारे—“ भोजने केशकीटादिदूषिते तावन्मात्रं समुद्धृत्य जलं भस्म मृदं वा क्षिप्त्वा भुञ्ज्यान्मुखे दृष्टौ निष्ठीव्य जलं प्राश्य निष्ठीव्य घृतं प्राश्यात्प्राक् कीटादिस्थितौ त्यागः तस्य भुक्तावुपवासः ” ॥ इति । पराशरः (६।६२)—

“ अन्नाद्ये कीटसंयुक्ते मक्षिकाकेशदूषिते । तदंतरा स्पृशेच्चापस्तदन्नं भस्मना स्पृशेत् ” ॥ इति । मनुः (५।१२४)—

“ पक्षिजग्धं गवाघ्रातं अवधूतमवश्रुतम् । दूषितं केशकीटैश्च मृत्प्रक्षेपेण शुध्यति ” ॥ अवधूतं संमार्जनरजःपक्षवातादिदूषितम् । अवाङ्मुखेन यत्र क्षवथुः कृतः तदवश्रुतमित्यर्थः । याज्ञवल्क्यः (आ. १८९)—

“ गोघ्रातेऽन्ने तथा केशमक्षिकाकीटदूषिते । सलिलं भस्म मृदाऽपि प्रक्षेप्तव्यं विशुद्ध्ये ” ॥ यत्तु गौतमेनोक्तम् (१७।८-९)—“ नित्यमभोज्यं केशकीटावपन्नम् ” । इति तत्केश- १०
कीटादिभिः सह यत्पक्वं तद्विषयमिति माधवीये विज्ञानेश्वरीयादौ (पृ. ५४ पं. २५)—

अथ भक्ष्याभक्ष्यविवेकः । व्यासः—

“ अभक्ष्यस्य निवृत्त्या तु विशुद्धं हृदयं भवेत् । आहारशुद्धौ चित्तस्य विशुद्धिर्भवति स्वतः ॥

“ अभक्ष्यभक्षणाच्चित्तमशुद्धं भवति स्वतः । तस्मादभक्ष्यं यत्नेन दूरतः परिवर्जयेत् ” ॥

मनुः (५।४)—

“ अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात् । आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्रान् जिघांसति ” ॥

अंगिराः—

“ द्विविधं गर्हितं प्रोक्तं नित्यमन्नं मनीषिभिः । जातितो गर्हितं चैव तथैवाश्रयगर्हितम् ॥

“ लशुनादिकमन्नं यत्तज्ज्ञेयं जातिगर्हितम् । अभोज्यानां विजानीयादन्नमाश्रयगर्हितम् ” ॥

अपराकै—

“ जातिदुष्टं क्रियादुष्टं कालाश्रयविदूषितम् । संसर्गाश्रयदुष्टं वा सहस्रेषु स्वभावतः ” ॥

जातिदुष्टादीनामुदाहरणमुक्तं स्मृतिरन्ते—

“ लशुनं गृजरं चैव पल्लुङ्कवकादि च । वार्ताकनालिकालाबु ह्यवेयाज्जातिदूषितम् ” ॥

“ न भक्षयोत्क्रियादुष्टं यद्दृष्टं पतितादिभिः ॥

“ कालदुष्टं तु विज्ञेयमस्नेहाक्तं चिरस्थितम् । दधिभक्ष्यविकाराज्यमधुवर्ज्यं तदिष्यते ॥

“ सुरालशुनसंसृष्टं पीयूषादिसमान्वितम् । संसर्गाद्दुष्यते तद्धि शूद्रोच्छिष्टवदाचरेत् ॥

“ विचिकित्सा तु हृदये यस्मिन्नन्ने प्रजायते । सहस्रेषु तु विज्ञेयं पीयूषादि स्वभावतः ॥

“ रसदुष्टं विकाराद्धि रसस्येति निदर्शितम् ” । उदाहृतमित्यर्थः । मनुः (५।५)—

“ लशुनं गृजनं चैव पल्लुङ्कवकादि च । अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्यप्रभवानि च ॥

“ लोहितान्वृक्षनिर्यासान् ब्रश्चनप्रभवांस्तथा । शैलुं गव्यं च पीयूषं प्रयत्नेन विवर्जयेत् ” ॥ इति । ३०

लशुनं सूक्ष्मं श्वेतकंदनालम् । गृजनं शाकविशेषः । पल्लुङ्कः स्थूलकंदो लशुनविशेषः । कवकं भूमौ छात्राद्याकारेणोत्पन्नम् । लोहिता वृक्षनिर्यासाः लाक्षादयः । लोहितग्रहणान्निर्यासत्वेऽप्यपाटल-
श्वेतवर्णाहिङ्गुर्पूरादेरप्रतिषेधः । शैलुः श्लेष्मातकः । पीयूषोऽभिनवं पयः ।

धर्मसारसुधानिधौ—

“अलावुं गृजनं चैव पलाण्डुं पिंडमूलकम् । गांधारककरंभाणि लवणान्यौषराणि च ॥

“आरक्तानपि निर्यासान् प्रत्यक्षलवणानि च । व्रश्चनप्रभवं सर्वं हिंगुद्रव्यं विनैव तु ॥

“भूतृणं शिशुकं चैव ब्राह्मणो नैव भक्षयेत्” ॥ इति । पलांडुः पलण्डुविशेषः ॥

५ “लशुनं दीर्घपत्रं च कटुगन्धं महौषधम् । पलंडुश्च पलांडुश्च लतार्कश्च परारिकः ॥

“गृजनं यवनेष्टं च पलण्डोर्दश जातयः” ॥ इति स्मरणात् ।

पराशरः (११।१०-११)—“पीयूषं श्वेतलशुनवृंताकफलगृजनम् । पलांडुवृक्षनिर्यासदेवस्वकवकानि च ॥

“उष्ट्रीक्षीरमवीक्षीरमज्ञानान्द्रुजते द्विजः । त्रिरात्रमुपवासेन पंचगव्येन शुद्धयति” ॥ इति ।

श्वेतशब्दो लशुनवृंताकाभ्यां संबध्यते । तेन रक्तलशुनवार्ताकादौ नेदं व्रतामित्युक्तं भवति ।

११ त्रिरात्रमुपोष्य चतुर्थे दिवसे पंचगव्यं पिबेत् । एतच्चाबुद्धिपूर्वभक्षितोद्धारितविषयम् । बुद्धिपूर्वं सप्तरात्रं सांतपनम् । आवृत्तौ चांद्रायणम् ।

तथा च मनुः (५।१९) —

“छत्राकं विद्वराहं च लशुनं ग्रामकुक्कुटम् । पलांडुं गृजनं चैव मत्या जग्ध्वा पतेत् द्विजः ॥

“अमत्यैतानि षड् जग्ध्वा कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् । यतिचांद्रायणं वाऽपि शेषेषूपवसेदहः” ॥ इति ।

१५ पतेत् द्विज इति मतिपूर्वचिरकालाभ्यासाविषयम् । आवृत्तौ चांद्रायणमाह याज्ञवल्क्यः (आ. १.७६) —

“पलांडुं विद्वराहं च छत्राकं ग्रामकुक्कुटम् । लशुनं गृजनं चैव जग्ध्वा चांद्रायणं चरेत्” ॥

अमतिपूर्वाभ्यासे शंखेनोक्तम्—“लशुनपलण्डुगृजनाविद्वराहग्रामकुक्कुटकुंभकिभक्षणे द्वादश-
रात्रं पयः पिबेत्” इति ।

शातातपः—“पलांडुलशुनगृजनकुसुंभामेध्यभक्षणे द्विजस्तप्तकृच्छ्रं चरेत्” ॥ इति ।

२० पैठीनसिः—“वृंताकनाळिकापोतकुसुंभाश्मंतकानि च” इति । वर्ज्यानीति शेषः ।

नालिका शिरुकांजेरि । पूतिका उपोतकि पशळै । उशनाः—

“कुसुंभं नालिकाशाकं वृंताकं पौतिकं तथा । भक्षयन् पतितस्तु स्यादपि वेदांतगो द्विजः” ॥

पौतिकः सोमप्रतिनिधिः ।

“न बीजान्युपयुंजीत रोगापत्तिमृते द्विजः । फलान्येषामनंतानि बीजानां हि विनाशयेत्” ।

२५ व्यासः—

“खट्वासंज्ञे च वार्ताकं तथैवोद्विरजं वृणम् । लवणं भौमिकं विप्रो मोहेनापि न भक्षयेत्” ॥

विष्णुः—“वर्जयेच्छ्वेतवृंताकमलावुं वर्तुळं तथा । छत्राकं लशुनं चैव गृजनं चासुरिं तथा ॥

देवलः—“कंदूरं श्वेतवृंताकं कुभांडं च विवर्जयेत्” । कंदूरा प्रावृषायणी । तस्याः फलं कंदूरम् ।

अत्यंतकंदूतिजनकं बहुरोमयुक्तम् । वर्षाकालोद्भवं वृत्तालावुसदृशं कुभांडम् । स एव—

३० “वष्टीमुपोतकीं चैव रक्तशिशुं परित्यजेत् ॥

“कालिङ्गालावुबीजानि येषां कुशो विज्ञांति तु । ये भक्षयन्ति पिण्याकं ते वै निग्यगामिनः” ॥

कालिङ्गं पुच्छकायि कोम्मटिकायि ।

“वार्ताकवत्कालिगवित्रोदुवगभिस्सटाः । एतांस्तु सेवते यस्तु तस्य दूरतगः श्रियः” ॥

दूरतगे दग्निगिति पाठांतरम् ।

“ चर्मकोशातकी शेलुः पिण्याकं शिशुमूलकम् । उपोतकीरक्तलतापूतिगंधाशुचीनि वै ॥

“ एतानि भुक्ते यस्तस्य मंत्रसिद्धिः कथं भवेत् । सकंटकं तु कूष्मांडं वृताकं तु सकंटकम् ॥

“ वर्जयेत्सर्वनिर्यासान् वृक्षवल्लीसमुद्भवान् । निर्यासमपि वा हिंशुं धूपं न परिवर्जयेत् ॥

“ बिंबवार्ताककालिंगमधूकबिसकान्यदन् । अंत्यकाले जगन्नाथं गोविंदं न स्मरिष्यति ” ॥

सारसमुच्चये—

“ बिंबं च श्वेतवृताकं अलाबुं वर्तुलं तथा । छत्राकं लशुनं चैव मधुकं सुरसं त्यजेत् ॥

“ कुंभीकंदुकवृताककोविदारांश्च वर्जयेत् ” ॥ सुरसं नोच्चिह् । कुंभी । कंचुकं वर्तुलालाबु ॥

विज्ञानेश्वरीये—

“ नालिकाशणछत्राककुसुंभालाबुविद्भवान् । कुंभीककंदुवृताककोविदारांश्च वर्जयेत् ॥

“ तथा कालप्ररूढानि पुष्पाणि च फलानि च विकारवच्च यत्किंचित्तथत्वेन विवर्जयेत् ॥ १०

तथा वटवृक्षाश्वत्थदधित्थनीपमातुलंगफलानि च वर्जयेदिति । संग्रहे—

“ तिलपिष्टं गृजनं च मूलकं शिशुगृजनम् । छत्राकं विद्धुराहं च बिंबं कोशातकीफलम् ॥

“ अलाबुं श्रीफलं ये वै खादयन्ति नराधमाः । तेषां गेहेऽशुभा ज्येष्ठा वसेद्धारिद्रिसौहृदा ” ॥

गृजनं रक्तशिगलम् । तिलपिष्टं पिण्याकम् । कोशातकी पेरुमशाक् ।

“ उत्पलत्रयकंदं च कंदं च कुमुदद्वयम् । सूरणद्वयकंदं च वर्जयेत्तु विचक्षणः ” ॥

आंबलू । अल्लि । उत्पलत्रयं । कुमुदद्वयं । नैलकू । सूरणद्वयं । काटकर्णे । अमणंदाळू ।

भृगुः—“आरनालद्वयं चैव कोशातक्यादि वर्जयेत् । कुलत्थजातिभेदं च प्रियंगु चैव वर्जयेत्” ॥

गृजनादिकशाकांश्च रक्तबाष्पां वर्जयेत् । आरनालद्वयं त्रिफलै । कुटिनकां रक्तबाष्पां । शंकीरै

“ अंकुराण्यपवित्राणि वंशादीनां विवर्जयेत् ॥

“ शृंगाटं लशुनं शिशुं नालिकासुनिषण्णकम् । सौभाजनं रक्तबाष्पं ग्रामपुष्पं त्रिकंटकम् ॥ २०

“ द्रोणपत्रं लिलिंगं च तंडुलीयं तपस्विनी । कोशातकीयं वर्ज्यानि फलेषु त्याज्यमुच्यते ” ॥ छाकं च

लशुनं तालफलमूले पटोलिकाबिंबकं भांडनारादफलानि परिवर्जयेत् । शृंगाटं । नैरीजिलूयले ॥

नाळिका । शरूकांजेरि । सुनिषण्णं । आरै । सौभाजनं शिगलुविशेषः । ग्रामपुष्पं त्रिकर्णिकम् ।

तंडुलीयं । शरूकिरै । छागं । ताळिपनै । पटोलिका । पेपोडल ।

“ तंडुलांभःकणं तद्दन्ननिःस्रावमेव च । दग्धशाकोदनादीनि सर्वथा परिवर्जयेत् ” ॥ २५

अन्ननिःस्रावो यवागुः । विज्ञानेश्वरीये—

“ यस्यामंतः कुंडिकायां त्रिफला निहिता भवेत् । तस्यास्तु कंजिका ग्राह्या नेतरस्याः कदाचन ” ॥ इति

बृहद्यमः—

“ उत्पलत्रयकंदं च शणशाकं तथैव च । उदुंबरं न खादेच्च भव्यार्थी पुरुषः क्वचित् ॥

“ नालिकां नालिकेरं च श्लेष्मातकफलानि च । भूतृणं शिगलुकं चैव खट्वाकं कवकं तथा ॥ १०

“ एतेषां भक्षणं कृत्वा प्राजापत्यं चरेत् द्विजः । अलाबुं शिशुकं चैव भुक्ताऽप्येतद्भ्रतं चरेत् ॥

“ औदुंबरं च कामेन तप्तकृच्छ्रेण शुध्यति ” ॥ इति । नाळिकेरं पोनेवेष्टं । अवशिष्टनिषिद्धफला-

दिषु “ शेषेषूपवसेदहः ” इति मन्त्रं (५।२०) द्रष्टव्यम् । तथा च चतुर्विंशतिमते—

“ कंदमूलफलादीनि अज्ञानाद्भक्षयेत्तु यः । उपवासो भवेत्तस्य पराशरवचो यथा ” ॥ इति ।

शंखः—“अलावुशिगुश्लेष्मातककोविदारवनछत्राकवृताकभक्षणे पंचगव्यं च पिवेत्” ॥ इति ।
 सुमंतुः—“एतान्यातुरस्य भिषक्क्रियायां प्रतिषिद्धानि न भवंति । यानि चान्यान्येवं प्रकाराणि
 तेष्वप्यदोषः” इति । तदेकसाध्यव्याध्युपशमनार्थं लशुनादिभक्षणे त्वाह स एव—“लशुन-
 पलंडुगृजनभक्षणे सावित्र्यष्टसहस्रेण मूर्धनि संपातान्नयेत्” ॥ इति ।

५ आपस्तंबः (२।८।१८।१-२)—

“विलयनं मथितं पिण्याकं मधुमासं च वर्जयेत् । कृष्णधान्यं शूद्रान्नं ये चान्ये अनश्यसंमताः” इति ।
 विलयनं नवनीतमरुम् । यस्य दध्ने मथनमात्रं जलमिश्रणं नास्ति तत् मथितम् ।

गौतमः—“उद्धृतस्नेहाविलयनपिण्याकमथिप्रभृतीनि चात्तवीर्याणि नाश्रीयात्” इति ।

मनुः (४।६२)—

१० “न भुंजीतोद्धृतस्नेहं नाति सौहित्यमाचरेत् । वृथाकृसरसंयावं पायसापूपमेव च ॥

“अनुपाकृतमांसानि देवान्नानि हवींषि च” ॥ उद्धृतस्नेहं पिण्याकादि । अतिसौहित्यं
 अतिवृत्तिः । वृथा देवादिभ्यो नार्पितम् । कृसरं तिलमिश्रमोदनम् । अनुपाकृतं यज्ञशिष्टम् ॥
 देवस्वामिकं ब्रीह्यादिदेवतान्नम् । हविस्तु देवतायै निवेदयिष्यमाणं स्थापितं वर्जयेदित्यर्थः ।

“शुक्तं पर्युषितं चैव शूद्रस्योच्छिष्टमेव च । अनिर्दशाया गोः क्षीरमौष्ट्रमैकशफं तथा ॥

१५ “आविकं संधिनीक्षीरं विवत्सायाश्च गोः पयः । आरण्यानां च सर्वासां मृगीणां महिषीर्विना ॥

“स्त्रीक्षीरं चैव वर्ज्यानि सर्वशुक्तानि चैव हि । दधिभक्ष्यं च शुक्तेषु सर्वं च दधिसंभवम् ॥

“यानि चैवाभिषूयन्ते पुष्पमूलफलैः शुभैः” । कालातिपत्या स्वरसंविहाय रसांतरमापन्नं शुक्तम् ।

“अत्यम्लं शुक्तमाख्यातं निन्दितं ब्रह्मवादिभिः” ॥ इति स्मरणात् । तत्र दध्यादि भक्ष्यमित्यर्थः ।

“यत्किञ्चित्स्नेहसंयुक्तं भक्ष्यं भोज्यमगर्हितम् । तत्पर्युषितमप्याद्यं हविःशेषं च यद्भवेत् ।

२० “चिरस्थितमपि त्वाद्यमस्नेहाक्तं द्विजातिभिः । यवगोधूमजं सर्वं पयसश्चैव विक्रिया” ॥

पर्युषितमेकाहांतरितम् वर्ज्यम् । स्नेहयुक्तं तु भक्ष्यमपूपादि भोज्यम् । स्नेहायुक्तमपि हविःशेषं
 यवादिकमदनीयमित्यर्थः । याज्ञवल्क्यः (आ. १६९-१७०)—

“अन्नं पर्युषितं भोज्यं स्नेहाक्तं चिरसंस्थितम् । अस्नेहा अपि गोधूमयवगोरसविक्रियाः ॥

“संधिन्यनिर्दशावत्सगोपयः परिवर्जयेत् । औष्ट्रमैकशफं स्त्रैणमारण्यकमथाविकम्” ॥ इति ।

२५ अस्नेहा अपि चिरसंस्थिता अपि गोधूमादयो भोज्या । यदि न विकारांतरमापन्नाः ।

“अपूपधानाकरंभसक्त्यावकतेलपायसशकानि शुक्तानि परिवर्जयेत्” (१४।३७) इति

वसिष्ठस्मरणात् । या वृषेण संधीयते सा संधिनी । “वशां वंध्यां त्रिजानीयात् वृषाक्रांतां च

साधिनीम्” इति त्रिकांडीस्मरणात् (२।९।६९) । या चैकां वेलामतिक्रम्य दुह्यते या च

वत्सांतरेण संधीयते सा च संधिनी । संधिनी चानिर्दशावत्सा च संधिन्यनिर्दशावत्साः । ताश्च

३० गावः । तासां पय इत्यर्थः । गौतमः (१७।२५)—“स्यंदिनीयमसूंसंधिनीनां च” ॥ इति ।

चवत्पयस्तनी स्यंदिनी । यमसूः यमलप्रसवित्री ।

शंखः—“सर्वासां द्विस्तनीनां क्षीरमभोज्यमजावर्ज्यम्” इति ।

देवलः—“अभोज्यं प्राहुराहारं शुक्तं पर्युषितं च यत्” ॥ मनुः—

“शुक्तानि हि द्विजोऽन्नानि न भुंजीत कदाचन । प्रक्षालितानि निर्दोषाण्यापद्धर्मा यथा भवेत्” ॥

३५ यमः—

“मसृग्मापमयुक्तं तथा पर्युषितं च यत् । तत्तत्प्रक्षालनं कृत्वा भुंजीत गृभिचारितम्” ॥ इति ।

गौतमः (१७।१२-१४, १८-२१)—“भावदुष्टं शुक्तं केवलं दधि पुनःसिद्धं पर्युषितं अशाक-
भक्षस्नेहमांसमधु ” ॥ इति । आपस्तंबः (१।५।१७।२०)—“शुक्तं चापरयोगम् ” ॥ इति ।
परेण द्रव्येण योगो यस्य न तदपरयोगं तदेव शुक्तं वर्ज्यम् । अदध्यादिसंसृष्टमभोज्यमित्यर्थः ।

शंखः—“दधि भक्ष्यं च शक्तेषु सर्वं च दधिसंभवम् । ऋजीषपक्वं भक्ष्यं स्यात्सर्पिर्युक्तमिति स्थितिः ॥

“अपूपाश्च करंभाश्च धानावटकसक्तवः । शाकं स्निग्धमपूपं च सूपं कृसरमेव च ॥

“यवागूः पायसं चैव यच्चान्यत्स्नेहसंयुतम् । सर्वं पर्युषितं भोज्यं शुक्तं चेत्परिवर्जयेत् ” ॥

ऋजीषपक्कमूष्मपक्कम् । करंभाः दधिमिश्रसक्तवः । वटका माषविकारः । स एव—

“अपूपाः सक्तवो धानास्तक्रं दधि घृतं मधु । एतत्पण्येषु भोक्तव्यं भांडलेपो न चेद्भवेत् ” ॥

व्यासः—

“भोज्यमन्नं पर्युषितं स्नेहाक्तं चिरसंभृतम् । अस्नेहा व्रीहयश्चोष्णा विकाराः पयसस्तथा” ॥ १०

स्मृतिरन्ते—

“घृतात्फेनं घृतान्महं पीयूषमथवार्द्रगोः । सगुहं मरिचाक्तं तु तथा पर्युषितं दधि ” ॥

चतुर्विंशतिमते—“दीर्घं तक्रमपेयं च नष्टं स्वादु च फेनवत्” । घृतादुद्धृतं फेनमात्रं न पेयमित्यर्थः ।

आपस्तंबः (१।५।१७।१४-१९)—“नापणीयमन्नमश्रीयात्तथा रसानामाममांसमधुलवणानि
परिहाप्य तैलसर्पिषी तूपयोजयेत् उदकेऽवधाय । कृतान्नं पर्युषितमाखाद्यपेयानाद्यं शुक्तं च ॥ १५

फाणितपृथुकतंडुलकरंभरुजसक्तुशाकमांसपिष्टक्षीरविकारौषधिवनस्पतिमूलफलवर्जम् ” इति ।

अस्यार्थः । आपणः पण्यवीथिः । तत्र क्रीतं लब्धं वा आपणीयं तच्च कृतान्नं नाश्रीयात् ।

व्रीह्यादिषु न दोषः । रसानां मध्ये मांसादिग्राह्यं तैलसर्पिषी तूदकेन संसृज्योपयोजयेत् । कृतान्नं

पर्युषितं पूर्वेद्युः पक्तं खरविशदं द्रवं मृदुविशदं चाखाद्यमपेयमनाद्यं च शुक्तमपर्युषितमपि

तथा अखाद्यं फाणिदादीन्वर्जयित्वा । फाणितमिक्षुरसः । पृथुकतंडुलाः । पक्कधान्यतंडुलाः । २०

“हरिद्रा गोरसश्चूर्णं लवणं धान्यमौषधमान त्वेषां पाकदोषोऽस्ति क्रमुकस्य गुहस्य च” इति स्मृतेः ॥

भरुजाः भ्रष्टयवाः । अन्यत्प्रसिद्धम् अत्र केचित्पर्युषितमभोज्यमुदके रात्रौ निक्षिप्य तदुपयोजयेत् ।

जले निक्षिप्तस्य पर्युषितत्वदोषो नास्तीति व्याचक्षते । तथा च स्मर्यते—

“शाकं पुनः श्रितं बन्हौ जले क्षिप्तं तथौदनम् । तीर्थं पर्युषितं भोज्यं यच्चान्यत्स्नेहसंयुतम्” ॥ इति ।

वसिष्ठस्तु ॥ (१४।२८-२९)—“अन्नं पर्युषितं कामं तु दध्ना घृतेन वाऽभिघारितमुपयुंजीत ” इति । २५

चंद्रिकायाम्—“दध्यादियुक्तं पर्युषितं कृसरवद्भोज्यम् ” इति ॥

विष्णुः (५।१।३९-४२)—“गोधूमजं पयोविकारं स्नेहाक्तं शुष्कषाण्डवं वर्जयित्वा पर्युषितं
प्राश्योपवसेत् । व्रश्चनमेध्यप्रभावांश्च लोहितान्वृक्षनिर्यासान्वृथाकृसरसंयावपायसापूपशङ्कुलीश्च

देवान्नानि हवींश्च च गोजामहिषीवर्जं सर्वपयांसि अनिर्दशाहेतान्यपि च स्यंदिनीसंधिनीविवत्सा-
क्षीरं चामेध्यभुजश्च दधिवर्जं केवलं सर्वशुक्तानि च” इति । आपस्तंबः (१।५।१७।२१-२५)— ३०

“सर्वं मध्यमपेयं तथैलकं पय उष्ट्रीक्षीरमृगीक्षीरसंधिनीक्षीरयमसूक्षीराणीति धेनोश्चानिर्दशाया-

स्तथा कीलालौषधीनां च ” इति । एलका अविः । तस्याः पयः ऐलकम् । सुरार्था ओषधयः

कीलालौषधयः ।

शातातपः—“संधिन्या अंतर्दशाया अवत्सायाश्च गौःक्षीरप्राशने वृथामांसे प्राजापत्यम्” ॥ इति ।

स एव—“उष्ट्रीक्षीरं मृगीक्षीरं मृतसूतकं योस्तथा । चोरस्यान्नं नवश्राद्धं भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत्” ॥

“उष्ट्रीखरीमानुषीक्षीरप्राशनं पुरुषस्य पुनरुपनयनं च” ॥ इति ।

शंखः—“क्षीराणि यान्यपेयानि तद्विकाराशने बुधः । सप्तरात्रव्रतं कुर्यात्प्रयत्नेन समाहितः” ॥

एतानि कामतोऽभ्यासविषयाणि । अकामतः सकृत्पाने विष्णुः (५१।३९)—

५ “गोजामहिषीवर्जं सर्वपयांसि प्राश्योपवसेत्” ॥ इति । अत्रिरपि—

“अविकोष्ट्रयोश्च यत्क्षीरं मृगाणां वनचारिणाम् । छागजं गार्दभं क्षीरं भुक्त्वा दिनमभोजनम्” ॥ इति ।

चतुर्विंशतिमते—

“स्त्रीक्षीरं च द्विजः पीत्वा कथंचित्काममोहितः । पुनः संस्कृत्य चात्मानं प्राजापत्यं समाचरेत् ॥

“अजोष्ट्रीसन्धिनीक्षीरं मृगाणां वनचारिणाम् । अनिर्दशाया गोश्चैव पीत्वा दिनमभोजनम्” ॥ इति ।

१० सुमंतुः—

“कूष्माण्डं बृहती चैव तरुणीमूलकं तथा । श्रीफलं च कलिंगं च धात्रीं प्रतिपदादिषु ॥

“शिरः कपालमात्रं च नखचर्मतिलानि च । आम्लमामलकं चैव अष्टम्यादिषु वर्जयेत्” ॥ इति ।

तरुणीपुष्प (पुष्प) । मूलकं मुलंगि (मुळा) । श्रीफलं बिल्वकायि (बेलफल) । कलिंगं

कोम्भटिकायि (कलिंगडें) । शिरः टेंक्यायि (नारळ) । कपालं सोरकायि (भोपळा) ।

१५ आत्रं पोच्चकायि (करटुली) । अम्लं चिन्तकायि (चिंच) । अत्र निषिद्धानामपि तिथि-

निबंधनत्वेन निषेध आहिताग्न्यनृतानिषेधवद्दोषाधिक्यप्रदर्शनपरः । बोधायनः—

“ओदनं तु पुनःपक्तं नालिकेररसं तथा । तथा तोयमभूमिष्ठं ब्राह्मणो नैव भक्षयेत्” ॥

स्मृतिसारे—

“क्षीरे तु लवणं दत्त्वा उच्छिष्टेऽपि च यद्घृतं । स्नानं रजकतीर्थेषु ताम्रे गव्यं सुरासमम् ॥

२० “भानुवारे दिवारात्रं सप्तम्यां च तथैव च । धात्रीफलं नरः खादन्नलक्ष्मीको भवेत्सदा” ॥

अपरार्के—

“दिवा कपित्थछायायां रात्रौ दधिश्मीधु च । धात्रीफलेषु सप्तम्यामलक्ष्मीर्वसते सदा” ॥

मनुः—

“वीर्यहानिर्यशोहानिः प्रजाहानिस्तथैव च । भवेद्यस्मात्ततो रात्रौ धात्रीं यत्नेन वर्जयेत् ॥

२५ “धानां खादेन्न च दिवा दधिसक्तंस्तथा निशि । सर्वं च तिलसंबद्धं नाद्यादस्तमये व्रती ॥

“तिक्तार्द्रकदधिश्चाणातिलशकादिनिश्यदन् । त्यज्यते रूपवाक् श्रीभिः पुष्पितस्त्री रताद्यथा” ॥

तिक्तं । त... । आर्द्रकं । इ... । श्राणा । तत । स्मृत्यंतरे—

“आमलक्याः फलं चैव जंवीरं तिन्तिणीफलम् । प्रज्ञाप्रतापलक्ष्मीवान् सदैतर्जयन्निजि ॥

“नालिकेगेटकं कांस्ये ताम्रपात्रस्थितं मधु । ताम्रपात्रस्थितं गव्यं मद्यतुल्यं घृतं विना ॥

३० “अपि प्रस्थानममये रात्रौ दधि न भक्षयेत् । मधुपर्कप्रधानं तु वर्जयित्वा विशेषतः” ॥ इति ।

ज्ञातातपः—

“रात्रौ धानादधिनक्तन्ध्रयस्कामो विवर्जयेत् । भोजनं तिलसंबद्धं रनानं चैव विशेषतः” ॥

बृद्धहारीतः—

“सकाम्यं नालिकेगंडुकांस्ये च रसमैक्षवम् । ताम्रपात्रयुतं गव्यं क्षीरं च लवणान्वितम् ॥

“ घृतं लवणसंयुक्तं सुराकल्पं विवर्जयेत् । प्रत्यक्षलवणं नाद्यात् पक्वं परगृहागतम् ” ॥ इति ।
प्रत्यक्षलवणं चक्षुर्ग्राह्यमेव दत्तं नाद्यम् । ओदनाद्यंतर्हितं दत्तमदनीयमित्यर्थः ।

भक्ष्याण्याह भृगुः—

“ भेदैस्तु कारवल्यानि सर्वं ग्राह्यमितीरितम् ।

“ कंदं पिंडीकृतं चैव क्षुद्रकंदं तथैव च । महाकंदवादिकन्दं च आहरेत् विचक्षणः ॥

“ सहकारप्रभेदं च तथैव पनसद्वयम् । कदल्यादिषु भेदं च गृह्णीयात्तु प्रयत्नतः ॥

“ कूश्मांडोर्वारुकं चैव सिंही व्याघ्री तथैव च । कार्कोटकादिसंग्राह्यं कलंजादीनि वर्जयेत् ” ॥ इति ।

कारवल्ली ... पिंडीकृतं । ... क्षुद्रकंदं... महाकंदं ... सहकारभेदश्चूतादिः । पनसद्वयं ।

... उर्वारुकं । वौ ... सिंही ... व्याघ्रीकार्कोटं । ... कलंजं । ... आदिशब्देन पलांडादयो

वर्ज्या गृह्यन्ते । मरीचिः—“ कदलीचूतपनसनारीकेलतिंतिणीकारवल्लीव्याघ्रीशिंबभेदबृहती- १०

भेदासिंहिव्याघ्रनखी कर्कंधूर्वारुककूश्मांडकार्कोटकानि सूरणकंदक्षुद्रकंदमहाकंदवल्लीकंदशृंगि-

बेरोत्पलकंदपिंडीकृतशकुटकंदानि च मरीचिसर्षपाणुमुद्गाढककुलुत्थतिल्वमाषमसूरकादीनि

शाकेषु जीवन्तीरक्तबाष्पाणि चान्यानि च भक्ष्याणि यथालाभमाहरेत् ” इति । शिंबअव । व्याघ्र-

नखी ... कलकंड । ... सूरणं । ... वल्लिकंदं । वौ ... पिंडीकृतं । ... शकूटं ... तिल्वं

... मसूरं । जीवन्ति । ... झरसी । ... बाष्पं ... रक्तबाष्पं तु वर्ज्यम् । स एव— १५

“ तुंबीदलं च भंजी च शिंबुमुद्गफलानि च । शाकिनीं शत पर्वाणामभ्रं चाश्वासनंदिनीम् ॥

“ अगस्त्यं शकुटं शाकं विहितं ब्राह्मणस्य च । एकमूलानि चान्यानि गृह्णीयादनिषेधितान् ” ॥

तुंबीदलं । ... भंजी । ... मुद्गलं...शतपर्वा...अभ्रं ...अगस्त्यं । चूति ।

एकमूलानिमाह ... बोधायनः—

“ आभ्रं च शृंगिवेरं च कर्करीफलमेव च । नाळिकेरफलं चाभ्रं कपित्थं बदरीफलम् ॥

“ द्राक्षाराजादनं जंबुफलं ताटङ्कमप्यथ । खर्जूरं वेत्रकं चैव मातुलुङ्गं च दाडिमम् ॥

“ फलान्येतानि पक्वानि कालपक्वानि चाहरेत् ।

“ आजकं जरिकं चैव मरीचं सर्षपं तथा । राजमाषं महामाषं श्यामाकं कृष्णमाषकम् ।

“ माषं मुद्गं महामुद्गं निष्पावं तिलतिल्वकौ । काळायमुद्गनिष्पावशिंबमाषकुलुत्थकाः ।

“ सयूषा वा वियूषा वा पचनीया गुणान्विताः । धान्यानामपि सर्वेषां कृष्णधान्यं विवर्जयेत् ॥ २५

“ अथवान्यदलब्धं चेच्छुद्धं तदपि चाहरेत् । माहिषं क्षीरमाजं च गव्यं भक्ष्यं विनिर्दिशेत् ॥

“ अमेध्येषु च ये वृक्षा उप्ताः पुष्पफलोपगाः । तेषामपि न दुष्यन्ति पुष्पाणि च फलानि चेत् ” ॥ इति ।

कर्करी ... राजादनं । ... दाढमं . . गौली भांजीचमत्स्याक्षीमुद्गशिंबाभ्रतुंबिकाः । निर्लनो

पोतकीचैवकारं गाळर्कशाकिनी । गौळी...मत्स्याक्षी...नील्यतोपोतकी ..कारगं ॥

“ मंडूकपर्णी जीवन्ती कुबेराक्षी च पिप्पली । आगस्ती वैष्णवी शाकी विष्णुभक्तिविवर्धिनी ॥ ३०

मंडूकपर्णी । वल्ला ... जीवन्ति । ... कुबेराक्षी ...

व्याघ्रः—“ धात्रीफलं सदा यस्तु भक्षयेदप्रमादतः । तस्य नारायणो देवः परमात्मा प्रसीदति ” ॥

पुराणे । “ अतसी तुलसी चैव धात्रीफलमथाच्युतम् । यस्योदरे प्रवर्तते तस्य सन्निहितो हरिः ” ॥ इति ।

अच्युतं तळकायि । चंद्रिकायाम्—

“ भक्ष्यं भोज्यं च लेह्यं च नमो नारायणेति यः । अभिमन्त्र्य स्पृशन्भुङ्क्ते स याति परमां गतिम् ” ॥ इति । ३५

श्रुतिः “ विष्णुनात्तमश्रंति विष्णुना पीतं पिबंति विष्णुना घ्रातं जिघ्रंति ” इति ।

शांडिल्यः—

“ वासोभूषणमाल्यादि गंधं तैलं तथौषधम् । सर्वं भगवते दत्त्वा उपभुञ्ज्यान्निवेदितम् ” ॥ इति ।

जावालशाखायां श्रूयते—“ रुद्रेणात्तमश्रंति रुद्रेण पीतं पिबंति रुद्रेण घ्रातं जिघ्रंति ” ॥

५ कठश्रुतावपि—“ त्रिगुप्सातमश्रीयाद्यदि पाप्मन् शिवानर्पितं भुंक्ष्व तदैवो भुङ्क्ष्व मलं भुंक्ष्व विषं भुंक्ष्व किमिं भुंक्ष्व अघं भुंक्ष्व अधो गच्छ गच्छ ” इति । अस्यार्थः । त्रिगुः त्रिनेत्रः । तेनप्सातं भक्षितमश्रीयात् । हे पाप्मन् शिवानर्पितं यदि भुंक्ष्व अश्रीयाः तदा एनः पातकं अघमुपपातकं तत् शिवानर्पितभोजने भवतीति । व्यासः—

“ देवासुरनरैः स्थाप्ये लिंगे चंडाय शंभुना । दत्तस्तस्मै न सर्वत्र प्रसादः शिवशासनात् ॥ ”

१० “ नाश्रीयात्स्थावरे लिंगे चंडाय विनिवेदितम् ” ॥ इति । आदित्यपुराणे—

“ लिंगे स्वायंभुवे बाणे रत्नजे रौप्यनिर्मिते । सिद्धप्रतिष्ठिते लिंगे चंडभागो न विद्यते ” ॥

पाद्मे—

“ बाणलिंगे स्वयंभूते चंद्रकांते हृदि स्थिते । चांद्रायणसमं ज्ञेयं शंभोर्निर्माल्यभक्षणम् ” ॥ इति ।

एतत्सर्वं वैदिकमार्गपूजितगृहदेवतानिर्माल्यविषयम् ।

१५ “ स्वस्य देवस्य यद्वत्तं चरुकं तु न संशयः । तत्प्राशयेत्स्वयं प्राज्ञो नैवान्यस्मै प्रदापयेत् ” ॥ इति वचनात् । चरुकं हविः । अन्यस्मै पुत्रादिभ्योऽन्यस्मै । तथा च पाद्मे—

“ ततः स्वयं तु भुंजीत शुद्धं पुत्रादिभिः सहः । निवेदितं च देवाय तच्छेषं चात्मशुद्धये ” ॥ इति ।

गृहदेवताव्यतिरिक्तदेवतानिवेदितभक्षणं निषेधति दत्तात्रेयः—

“ निर्माल्यं भक्षयित्वैवमुच्छिष्टमगुरोरपि । मासं पयोव्रतो भुक्त्वा जपन्नष्टाक्षरं सदा ॥

२० “ ब्रह्मकूर्चं ततः पीत्वा शुद्धो भवति मानवः ॥

“ निर्माल्यं नैव संरक्षेत्कूपे सर्वं च निक्षिपेत् । स्वीकुर्याद्यदि तन्मोहाद्रौरवे नरके पतेत् ॥

“ भक्षिकापादमात्रं तु निर्माल्यं न स्पृशेत्कचित् । यदि स्पृशेत्स मोहाद्वै नरकेषु निमज्जति ” ॥ इति ।

संग्रहेऽपि—“ निर्माल्यं च निवेद्यं च भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ” ॥ यत्तु पुराणवचनम्—

“ प्रापणेन महाविष्णोर्वैश्वदेवं करोति यः । प्राणाग्निहवनं चैव तेन लोका जितास्त्रयः ” ॥ इति ।

२५ तत्तांत्रिकविषयम् । अत एव महाभारते—

“ पांचरात्रविदो मुख्यास्तस्य गेहे महात्मनः । प्रापणं भगवद्भुक्तं भुंजते चाग्रभोजनम् ॥

“ प्राणाग्निहोत्रं यच्चान्यत्सर्वं कुर्वति तेन तु ” ॥ इति ।

पार्वणश्राद्धशिष्टभोजनमाह मनुः—

“ एवं निर्वपणं कृत्वा पिंडांस्तांस्तदनंतरम् । प्रक्षाल्य हस्तावाचम्य ज्ञातिप्रायं प्रकल्पयेत् ॥

३० “ ज्ञातिभ्यः सत्कृतिं दत्त्वा ब्राह्मणानपि भोजयेत् ” ॥ ज्ञातिप्रायं ज्ञातिबाहुल्यम् प्रकल्पयेत् ।

ज्ञातीन् संघातयेदित्यर्थः । बांधवान् संबंध्यादीन् । चंद्रिकायाम्—

“ एवं देवान् पितृंश्चैव तर्पयित्वा द्विजोत्तमः । पुत्रमित्रादिसहितो गृहस्थो भोक्तुमर्हति ” ॥ इति

आदित्यपुराणे—

“ भगिन्यां बाधवाः पूज्याः श्राद्धेऽपि च सदैव हि । दाग्निोपहता दीनाः छिन्नांगाश्चाविकांगुलिः ॥

“ वृथाजाता विरेकाश्च व्याधिभारप्रपीडिताः । एते भोजनमर्हति भोक्तुः सर्वत्र सर्वदा ॥

“ बन्दिमागधसूताश्च तौर्यत्रिकविदस्तथा । अलब्धलाभाः श्राद्धेषु नाशयन्ति महद्यशः ॥

“ तस्मात्तेऽपि विभर्त्तव्याः स्वकलत्रं विभज्य च ” इति ॥ अत्राहुः—

“ नवश्राद्धेषु यच्छिष्टं गृहे पर्युषितं च यत् । दंपत्योर्भुक्तशेषं च न भुंजीत कदाचन ” ॥ इति विज्ञानेश्वरेण नवश्राद्धशेषं वा भोज्यत्वप्रतिपादनादापस्तम्बेन च न चातद्गुणायोच्छिष्टं ५
प्रयच्छेदिति श्राद्धविशेषेऽपि निमंत्रिते तिसृदशगुणेभ्य एव पितृशेषदाननिषेधादिष्टैः सह भुज्यता-
मिति इष्टानां च शिष्टान्नभोजनानुज्ञानात् शेषं चैवानुमान्य च प्रदक्षिणीकृत्य शेषमनुज्ञाप्य
अनुज्ञातो गृह्यान् बालवृद्धांश्च परितोष्य भुंजतीति याज्ञवल्क्यबोधायनादिभिरभ्य-
नुज्ञानविधानात् मन्वादिवचनेषु तथादर्थनाच्च ।

“ एकोद्दिष्टे च यद्भोक्तुरभोज्यं शिष्टमोदनम् । चंद्रसूर्योपरागे च शिष्टमन्नं विवर्जयेत् ” ॥ १०
इति विशेषनिषेधाच्च

“ स्त्रीशूद्रानुपानीतानां श्राद्धोच्छिष्टं न दापयेत् । यो दद्याद्रागसंमोहान्न तद्गच्छति वै पितृन् ” ॥
इत्यादिभुक्तिपात्रस्थोच्छिष्टविषयत्वात्पितृशेषभोजने न दोष इति । अन्ये त्वाहुः—

“ श्राद्धीयमन्नं पितृभुक्तशेषं ये भुंजते ते नरकानशेषान् ।

“ प्रयान्ति कर्ता पितरश्च सर्वे भुंजीत कर्त्ता सह तत्सपिण्डैः ॥

“ श्राद्धशेषं तु यो भुंक्ते तत्कर्त्ता ज्ञातिभिर्विना । तस्य वैवस्वतो भोक्तुर्मलं प्राशयते पितृन् ” ॥ इति ।
इत्यादिना सपिण्डव्यतिरिक्तानां निषेधान्नपार्वणेषु अन्येषां पितृशेषं भोज्यमिति ।

अथ भोज्याभोज्यान्नाः । तत्रापस्तम्बः—

“ द्वावेवाश्रमिणौ भोज्यौ ब्रह्मचारी गृही तथा । मुतेरन्नं न भोज्यं स्यात्सर्वेषां लिङ्गिनां तथा ” ॥
लिङ्गिनः पाशुपतादयः ।

“ यत्यन्नं यतिपात्रस्थं यतिना प्रेषितं च यत् । अन्नत्रयं न भोक्तव्यं भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ” ॥ २०
प्रजापतिः—

“ श्रद्धाधानस्य भोक्तव्यं चोरस्यापि विशेषतः । न त्वेव बहुयाज्यस्य यश्चोपनयते बहून् ॥

“ अवलितस्य मूर्खस्य दुष्टवृत्तस्य दुर्मतेः । अन्नमश्रद्धाधानस्य यो भुंक्ते भ्रूणहा स वै ” ॥

मनुः (४।२२४-२२६)—

“ श्रोत्रियस्य कदर्यस्य वदान्यस्य च वार्धुषेः । मीमांसित्वोभयं देवाः सममन्नमकल्पयन् ॥ २५

“ तान्प्रजापतिरित्याह मा क्रुद्धं विषमं समम् । श्रद्धापूर्तं वदान्यस्य हतमश्रद्धयेतरत् ॥

“ श्रद्धयेष्टं च पूर्तं च नित्यं कुर्यादितद्रितः । श्रद्धाकृते हृत्क्षये ते भवतः स्वागतैर्धनैः ” ॥ इति ।
कदर्यो लुब्धः ।

“ आत्मानं धर्मकृत्यं च पुत्रदारांश्च पीडयेत् । लोभाद्यः पितरौ भृत्यान् स कदर्य इति स्मृतः ” ॥
इत्युक्तः । वार्धुषिः निषिद्धवृत्त्युपजीवी आत्मस्तुतिपरनिंदाकर्त्ता च ।

“ द्विजो निषिद्धया वृत्त्या जीवन्वार्धुषिकः स्मृतः ॥

“ यस्तु निंदेत्परगुणान्प्रशंसत्यात्मनो गुणान् । स वै वार्धुषिको नाम हव्यकव्येषु गर्हितः ” ।
इति विष्णुस्मरणात्—

आपस्तम्बः (१।६।१९।२-१०) — “क आश्यान्नः यं ईप्सेदिति कण्वः । पुण्य इति कौत्सः । यः कश्चिद्वादिति वार्ष्ण्यायणिः । यदि ह रजः स्थावरं पुरुषे भोक्तव्यम् । अथ चेच्चलं दानेन निर्दोषो भवति शुद्धा भिक्षा भोक्तव्या । एककुणिका काण्वकुत्सौ तथा पुष्करसादिः । सर्वतोपेतं वार्ष्ण्यायणीयम् । पुण्यस्येप्सतो भोक्तव्यम् । पुण्यस्याप्यनीप्सतो न भोक्तव्यम् ” इति ।

५ गौतमः (१।७।१) — “प्रशस्तानां स्वकर्मसु द्विजातीनां ब्राह्मणो भुंजीत” ॥ पराशरः (६।१८) — “क्षत्रियश्चापि वैश्यश्च क्रियावंतौ शुचिव्रतौ । तद्गृहेषु द्विजैर्भोज्यं हव्यकव्येषु नित्यशः” ॥ इति । स्मृतिरत्ने—

“ब्राह्मणस्य सदाऽश्रियात् क्षत्रियस्य तु पर्वसु । उत्सवेषु तु वैश्यस्य शूद्रस्य न कदाचन” ॥ इति । मनुः (४।२०५-२०६) —

१० “नाश्रोत्रियतते यज्ञे ग्रामयाजहुते तथा । स्त्रिया क्लीबेन च हुते भुंजीत ब्राह्मणः क्वचित् ॥ “अश्रीकमेतत् साधूनां यत्र जुह्वत्यमी हविः । प्रतीपमेतद्देवानां तस्मात्तत्परिवर्जयेत्” ॥ ग्रामयाजो बहूनां याजकः । एतद्भोजनं साधूनामश्रीकममंगलम् । प्रतीपं प्रतिकूलमित्यर्थः । स एव (४।२०७, २०९-२२३) — “मत्तकुद्धातुराणां च न भुंजीत कदाचन ॥ (२०७) “गणान्नं गणिकान्नं च विदुषां यज्जुगुप्सितम् ॥ (२०९)

१५ “स्तेनगायकयोश्चान्नं तक्ष्णो वार्धुषिकस्य च । दीक्षितस्य कर्द्व्यस्य बद्धस्य निगलेन च ॥ (२१०) “अभिषस्तस्य षण्ढस्य पुंश्चल्या दांभिकस्य च ॥ (२११) “चिकित्सकस्य मृगयोः क्रूरस्योच्छिष्टभोजिनः । उग्रान्नं सूतिकान्नं च पर्याचान्नमनिर्दशम्” ॥ (२१२) अनिर्दशं सूतिकान्नमित्यन्वयः ।

“अनर्चितं वृथामांसमवीरायाश्च योषितः । द्विषदन्नं नगर्यन्नं पतितान्नमवष्टुतम् ॥ (२१३) २० अनर्चितमवज्ञया दत्तमवीरायाः पतिपुत्रहीनायाः । नगर्यन्नमितिदेशसंबन्धेनान्नस्य निषेधः । “पिशुनादृतिनोश्चान्नं क्रतुविक्रयकस्य च । शैलूषतंतुवायान्नं कृतघ्नस्यान्नमेव च ॥ (२१४) शैलूष. नटः ।

“कर्मारस्य निषादस्य रंगावतरकस्य च (२१५) । श्ववतां शौण्डिकानां च चेलनिर्णेजकस्य च ॥ (२१६) । कर्मारः अयस्कारः । श्ववतां श्वपेषकाणाम् । शौण्डिकानां सुराविक्रयिणाम् । चेलनिर्णेजकस्य २५ वस्त्रशोधकस्य ।

“सुवर्णकर्तुर्वेनस्य शस्त्रविक्रयिणस्तथा (२१६) ॥ रंजकस्य नृशंसस्य यस्य चोपपतिर्गृहे ॥ वैदेहकेनां वृष्यामुत्पन्नो वेनः । रंजकस्य वस्त्रादीनां नीलादिरागकारस्य । नृशंसस्य निर्दयस्य । यस्य गृहे उपपतिर्जरो वर्तते तस्य चान्नं न भुंजातेत्यर्थः ।

“मृष्यंति ये चोपपतिं स्त्रीजातीनां च सर्वशः । अनिर्दशं च प्रेतान्नमतुष्टिकरमेव च ॥ (२१७) ३० “राजान्नं तेज आदत्ते शूद्रान्नं ब्रह्मवर्चसम् । आयुः सुवर्णकारान्नं यशश्चर्मवक्त्रंतिनः ॥ (२१८) “कारुकान्नं प्रजा हन्ति बलं निर्णेजकस्य च” ॥ कारुकान्नं कर्मकारान्नम् ।

“गणान्नं गणिकान्नं च लोकेभ्यः परिकुंतति । (२१९) “पुंश्चिकित्सकस्यान्नं पुंश्चल्यास्त्वन्नमिन्द्रियम् । विष्टा वार्धुषिकस्यान्नं शस्त्रविक्रयिणो मलम् ॥ (२२०) इन्द्रियं रेतः ।

१५ “य एतेऽन्ये त्वभोज्यान्नाः क्रमशः परिकीर्तिताः । तेषां त्वगस्थिरोमाणि वदन्त्यन्नं मनीषिणः ॥ (२२१)

“भुक्त्वाऽतोऽन्यतमस्यान्नममत्या तु व्यहं क्षिपेत् । मत्या भुक्त्वाचरेत्कुच्छं रेतोविण्मूत्रमेव च ॥ (२२२)
 “नाद्याच्छूद्रस्य पक्वान्नं विद्वानश्राद्धिनो द्विजः । आममेवाददीतास्मादावृत्तावैकरात्रिकम्” ॥ (२२३)
 इति । अत्रामस्याभ्यनुज्ञानात्पूर्वोक्तेषु मत्तक्रुद्धादिषु पक्वामयोरुभयोरपि निषेधः ।

याज्ञवल्क्यः (आ. १६१)—

“ऋदर्यबद्धचोराणां क्लीबरागावतारिणाम् । वैणाभिश्चस्तवाधुर्व्यगणिकागणदीक्षिणाम्” ॥ ५
 वीणावादनजीवी वेणुच्छेदजीवी च वैणः । गणदीक्षी बहुयाजकः । अन्नं नाद्यादित्यनुवर्तते ।
 स एव (आ. १६२)—

“चिकित्सकातुरक्रुद्धपुंश्चलीमत्तविद्विषाम् । क्रूरोऽग्रपतितवात्यढांभिकोच्छिष्टभोजनाम्” ॥
 क्रूरो दृढाभ्यन्तरक्रोपः । उग्रः वाक्कायव्यापारेण उद्वेजकः ।

“अवीरस्त्रीस्वर्णकारस्त्रीजितग्रामयाजिनाम् । शस्त्रविक्रयिकर्मारतुन्नवायश्ववृत्तिनाम्” ॥ (१६३) १०
 ग्रामयाजी ग्रामस्य शांत्यादिकर्ता बहूनां वोपनेता ।

स एव (१६४-१६५)—

“नृशंसराजरजककृतघ्नवधजीविनाम् । चेलधावसुराजीवसहोपपतिवेश्मनाम् ॥

“पिशुनानृत्तिनोश्चैव तथा चाक्रिकबन्दिनाम् । एषामन्नं न भोक्तव्यं सोमविक्रयिणां तथा” ॥
 चाक्रिकस्तैलिकः । द्विजानामेवैतेषामन्नं न भोक्तव्यम् । शूद्रस्य प्राप्त्यभावात् । १५

संग्रहे—“त्यजेदनुपर्नान्नमन्धस्य पतितस्य च । वेदाध्ययनहीनस्य कन्याविक्रयिणस्तथा ॥

“दरिद्रस्य च मूर्खस्य यतिनिंदापरस्य च । अयाज्ययाजकस्यान्नं निर्मर्यादस्य कर्मिणः ॥

“देवद्रोहपरस्यान्नं तथा विज्ञानद्विषणः । दग्धागस्यायसैर्द्विषैः सोमविक्रयिणस्तथा” ॥ इति ।

यमः—“चक्रोपजीवी गांधर्वः कितवस्तस्करस्तथा । ध्वजी दारोपजीवी च शूद्राध्यापकयाजकौ ॥

“कुलालश्चित्रकर्मा च वार्धुषिश्चर्मविक्रयी । अभोज्यान्ना इमे षण्डमार्जारवाखुकुकुटौ ॥ २०

“पतिताश्चापविद्धाश्च चंडाला अधमाश्च ये ।

“न जुहोत्युचिते काले नास्नाति न ददाति च । पितृदेवार्चनाद्धीनः स षण्डः परिकीर्तितः ।

“हंभार्थं यजते यश्च तप्यते च तपस्तथा । न परत्रार्थं इत्युक्तः स मार्जारः प्रकीर्तितः ॥

“विभवे सति नैवार्थं ददाति न जुहोति च । तमाहुर्गखुं तस्यान्नं भुक्त्वा कुच्छ्रेण शुध्यति ॥

“सभागतानां यः सभ्यः पक्षपातं समाश्रयेत् । तमाहुः कुक्कुटं देवास्तस्याप्यन्नं विगर्हितम् ॥ २५

“स्वधर्मं यः समुत्सृज्य परधर्मं समाचरेत् । अनापदि तु विद्वाद्भिः पतितः परिकीर्त्यते ॥

“देवत्यागी पितृत्यागी गुरुणामप्यपूजकः । ग्रीवाहणस्त्रीवधकृत् अपविद्धः प्रकीर्तितः ॥

“आशाकरस्त्वदाता च दातुश्च प्रतिषेधकः । शरणागतं यस्त्यजति स चंडालः प्रकीर्तितः” ॥

स्मृतिरत्ने—“अवलिप्तस्य मूर्खस्य दुष्टवृत्तस्य दुर्मतेः । अन्नमश्रद्धानस्य यो भुंक्ते भ्रूणहा स वै” ॥

अपरार्के—“विभवे चाग्निहीनस्य न चाश्रीयादनापादि । स्मार्ताग्निर्वैदिकस्याग्नेः परिग्रहमकुर्वतः ॥ ३०

“विष्णुं जामातरं मन्ये तस्य मन्युं न कारयेत् । अप्रजायां तु कन्यायां नाश्रीयात्तस्य वै गृहे ॥

“भुंजीयाद्यदि मोहात्मा श्वशुरो नरकं व्रजेत्” ॥ इति ।

आपस्तम्बः (१६।१८।१०-१३)—“त्रयाणां वर्णानां क्षत्रियप्रभृतीनां समावृत्तेन न
 भोक्तव्यम् । प्रकृत्या ब्राह्मणस्य भोक्तव्यं कारणादभोज्यम् । यत्राप्रायश्चित्तं कर्मासेवते प्रायश्चित्त-

वति चरितनिर्वेषस्य भोक्तव्यम् । सर्ववर्णानां स्वधर्मे वर्तमानानां भोक्तव्यं शूद्रवर्जमित्येके” इति ।
 अस्यार्थः । समावृत्तः क्षत्रियादीनां गृहे न भुंजीत । ब्राह्मणस्य त्वन्नं स्वभावेनैव भोक्तव्यम् ।
 यदा प्रायश्चित्तवत्यात्मनि चोदितं प्रायश्चित्तं मुक्त्वा कर्मान्तरमासेवते तदैतस्मात्कारणाद-
 भोज्यम् । चरितनिर्वेषस्य कृतप्रायश्चित्तस्य भोक्तव्यम् । एतन्महापातकप्रायश्चित्तव्यतिरिक्त-
 ५ विषयम् । “नास्यास्मिन्लोके प्रत्यापतिर्विद्यते कल्मषं तु निर्हण्यते ” इति स्मरणात् ।

“ शूद्रवर्जिनां सर्ववर्णानामन्नं भोज्यमित्येके मन्यन्त ” इति ।

स एव (१।६।१८-३३; १९।१)—

“ संधान्नमभोज्यम् । परिक्रुष्टं च । सर्वेषां च शिल्पाजीविनाम् । ये च शस्त्रमाजीवंति । ये चाधिम् ।
 भिषग्वार्धुषिको दीक्षितो क्रीतराजकोऽग्नीषोमीयसंस्थायामेव । हुतायां वा वपायां दीक्षितस्य
 १० भोक्तव्यम् । यज्ञार्थे वा निर्दिष्टे शेषात् । भुंजीरन्निति हि ब्राह्मणम् । क्लीबो । राज्ञां प्रैषकरः । अहवि-
 र्याजी । चारी । आविधिना च प्रव्रजितो यश्चाग्निनपास्यति । यश्च सर्वान्वर्जयते सर्वान्नी च श्रोत्रियो
 निराकृतिवृषलीपतिः । मत्त उन्मत्तो बद्धोऽणिकः प्रत्युपविष्टो यश्च प्रत्युपवेशयते तावन्तं कालम्”
 इति । अभिचारादौ अहविषा रुधिरादिना यो जुहोति स अहविर्याजी । चारी आविधिना प्रव्र-
 जितः शाक्यादिः । यश्च सर्वान्भोजने वर्जयति यश्च सर्वेषामन्नं भुंक्ते तावप्यभोज्यान्नौ । निरा-

१५ कृतिः निःस्वाध्यायः । अणिकः पुत्रात् श्रुतग्राही । प्रत्युपविष्टः ऋणादिना कारणेनाऽधमर्णादिकं
 निरुध्य तत्पाश्वर्षे उपविष्टः । तस्य परिहारमकुर्वस्तेन सहासीनः प्रत्युपवेशयिता । एते मत्तादयः
 यावन्मदाद्यनुवृत्तिस्तावन्तं कालमभोज्यान्ना इत्यर्थः । स एव (१।६।१९।१४-१५)—

“ चिकित्सकस्य मृगयोः शल्यकुन्तस्य पाशिनः । कुलटायाः षंडकस्य च तेषामन्नमनाद्यम् । अथा-
 प्युदाहरन्ति । अन्नादेर्भ्रूणहा माध्वर्चनेनाभिर्शंसति । स्तेनः प्रमुक्तो राजनि याचन्नचृतसंकरः” इति ।
 २० भ्रूणहा स्वीयं पापमन्नादेर्माधिं लिंपति । अनेनाः निष्पापः मिथ्यावादिनि माधिं । याचन्नसत्य-
 प्रतिज्ञे माध्वित्यर्थः । व्यासः—

“ निहन्त्यन्नं मनः प्राणान् चक्षुः श्रोत्रे तथैव च । स्मृतिं मेधां धृतिं शुक्लं पारक्यं योऽन्नमश्नुते॥

“ परपाकान्पुष्टस्य सततं गृहमेधिनः । इष्टं दत्तं तपोधीतं यस्यान्नं तस्य तद्भवेत् ॥

“ यस्यान्नेन तु भुंक्तेन भार्या समधिगच्छति । यस्यान्नं तस्य ते पुत्रा अन्नाद्रेतः प्रजायते ” ॥

२५ यमः—

“ किल्विपं हि मनुष्याणामन्नमाश्रित्य तिष्ठति । यो हि यस्यान्नमश्नोति स तस्याश्नाति किल्विपम् ॥

“ स्वपाके वर्तमाने यः परपाकं निषेवते । स श्वत्वं सूकरत्वं च गर्दभत्वं च गच्छति ॥

“ परपाकं परगृहे नाद्याद्विप्रो विचक्षणः । गृहस्थपतनं ह्येतत् परपाकोपजीवनम् ” ॥ इति ।

मनुः (३-१०४)

३० “ उपासने ये गृहस्थाः परपाकमनुद्धयः । तेन ते प्रेत्य पशुतां व्रजन्त्यन्नादिदायिनाम् ” ॥

जमदग्निः—

“ पितृदेवक्रियां कृत्वा परपाकरतिस्तु यः । दातुः कर्मफलं याति भोक्ता भुंजीत किल्विपम्” ॥

यमः—

“ परपाकं सदा नाद्यान्नुत्वाऽप्यग्निं यथाविधि । न हि हित्वा स्वकार्याणि परकार्यरतो भवेत् ॥

३५ “ परान्नोदरस्येन यः करोति शुभाशुभम् । अन्नदस्य त्रयो भागाः कर्त्ता भागेन लिप्यते ॥

“ भूमिं गां च सुवर्णं च रत्नानि विविधानि च । सर्वतः प्रतिगृह्णीयात् भोजनं तु विसर्जयेत् ” ॥

उशनाः—

“ परान्नं परवस्त्रं च परांबु परयोषितः । परवेश्मनिवासश्च हरन्त्येतानि संपदम् ” ॥

रत्नावल्याम्—

“ सर्वं तु तरितुं शक्यमन्नलोपो हि दुस्तरः । कुष्ठकृतं हि मनुष्याणामन्नमाश्रित्य तिष्ठति ” ॥ ५

लिखितपराशरौ—

“ परपाकनिवृत्तस्य परपाकरतस्य च । अपचस्य च भुक्त्वाऽन्नं द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ॥

“ गृहीत्वाऽग्निं समारोप्य पंचयज्ञान् न निर्वपेत् । परपाकनिवृत्तोऽसौ मुनिभिः परिकीर्तितः ॥

“ पंचयज्ञान् स्वयं कृत्वा पराभेनोपजीवति । सततं प्रातरुत्थाय परपाकरतस्तु सः ॥

“ गृहस्थधर्मा यो विप्रो ददाति परिवर्जितः । ऋषिभिर्वर्मतत्त्वज्ञैरपचः परिकीर्तितः ॥ १०

“ अपचाय च यद्दानं दातुश्चास्य कुतः फलम् । दाता प्रतिगृहीता च द्वौ तौ निरयगामिनौ ॥

“ परिवित्तेस्तु यच्चान्नं परिवेत्रन्नमेव च । कुंडान्नं गोलकान्नं च देवलान्नं तथैव च ॥

“ पुरोहितस्य यच्चान्नं भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ” ॥ इति । अभ्यासाभिप्रायेण दं चांद्रायणव्रतम् ।

अनभ्यासे त्वीदृशान्नभोजने भरद्वाज आह—

“ निराचारस्य विप्रस्य निषिद्धाचरणस्य च । अन्नं भुक्त्वा द्विजः कुर्याद्दिनमेकमभोजनम् ” ॥ इति । १५

पराशरः—

“ सदाचारस्य विप्रस्य तथा वेदांतवेदिनः । भुक्त्वाऽन्नं मुच्यते पापादहोरात्रांतरान्नरः ” ॥ इति ।

शातातपः—

“ यो हि हित्वा विवाहाग्निं गृहस्थ इति मन्यते । अन्नं तस्य न भोक्तव्यं वृथापाको हि स स्मृतः ॥

‘वृथापाकस्य भुक्त्वाऽन्नं प्रायश्चित्तं चरेत् द्विजः । प्राणायामांस्त्रिरभ्यस्य घृतं प्राश्य विशुध्यति’ ॥ इति । २०-

अपराकं—

“ अभोज्यं ब्राह्मणस्यान्नं वृषलेन निमंत्रितम् । तथैव वृषलस्यान्नं ब्राह्मणेन निमंत्रितम् ” ॥

गौतमः—

“ ब्राह्मणान्नं ददच्छूद्रः शूद्रान्नं ब्राह्मणो ददत् । अभोज्यं तु तयोरन्नं भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ” ॥

पराशरः—

“ आमं वा यदि वा पकं शूद्रान्नमुपभोजयेत् । किल्बिषं भजते भोक्ता यश्च विप्रः पुरोहितः ॥

“ आमं शूद्रस्य विप्रार्थं यस्तु पाचयते द्विजः । त्रयस्ते नरकं यांति दाता भोक्ता च पाचकः ॥

“ गुर्वर्थमतिथीनां च भृत्यानां च विशेषतः । प्रतिगृह्य तु दातव्यं न भुंजीत स्वयं ततः ॥

“ अकृत्वैव निवृत्तिं यः शूद्रान्नान्प्रियते द्विजः । आहिताग्निर्विशेषेण स शूद्रगतिभागभवेत् ॥

“ शूद्रान्नरसपुष्टस्य ह्यधीयानस्य नित्यं शः । जपतो जुह्वतो वाऽपि गतिरूर्ध्वा न विद्यते ॥ (१२।३१) ३०

“ शूद्रान्नं शूद्रसंपर्कः शूद्रेण तु सहासनम् । शूद्रात् ज्ञानागमश्चापि ज्वलंतमपि पातयेत् ॥

“ मृतसूतकपुष्टान्नं द्विजं शूद्रान्नभोजिनम् । अहं तन्न विजानामि कां कां योनिं गमिष्यति ॥ (३३)

“ गृध्रो द्वादशजन्मानि दश जन्मानि सूकरः । श्वयोनौ सप्तजन्म स्यादित्येवं मनुब्रवीत् ” ॥ (३४) इति ।

वसिष्ठः (२१।२९)—

“ शूद्राभेन तु भुक्तेन जठरस्थेन यो मृतः । स वै खरत्वमुहूत्वं शूद्रत्वं चोपगच्छति ” ॥

स्मृतिभास्करे—

“आमं शूद्रस्य पक्वान्नं पक्वमुच्छिष्टभोजनम् । तस्मादामं च पक्वं च दूरतः परिवर्जयेत् ॥
“षण्मासान् यो द्विजो भुङ्क्ते शूद्रस्यान्नं विगर्हितम् । स तु जीवन् भवेच्छूद्रो मृतः श्वा चाभिजायते ॥
“सूतके मृतके भुक्त्वा गृहीते शशिभास्करे । जलादौ हस्ततो भुक्त्वा न भूयः पुरुषो भवेत् ॥” इति ।

५ शूद्राद्यन्नभोजने प्रायश्चित्तमाह पराशरः (११।४-५)—

“शूद्रान्नं सूतकान्नं च अभोज्यस्यान्नमेव च । शंकितं प्रतिषिद्धान्नं शूद्रोच्छिष्टं तथैव च ॥
“यादि भुक्तं तु विप्रेण अज्ञानादापदापि वा । ज्ञात्वा समाचरेत्कुच्छ्रं ब्रह्मकूर्चं तु पावनम् ॥” इति ।
अज्ञाने आपदि च ब्रह्मकूर्चं ज्ञात्वा भोजने प्राजापत्यमित्यर्थः । एतच्च ब्रह्मकूर्चमविद्वद्विषयम् ।
विद्वांसं प्रत्याह स एव (११।१९, १८)—

१० “आपत्काले तु विप्रेण भुक्तं शूद्रगृहे यदि । मनस्तापेन शुध्येत द्रुपदां वा शतं जपेत् ॥ (१९)
“शुष्कान्नं गोरसं स्नेहं शूद्रगेहाद्यदागतम् । पक्वं विप्रगृहे भुक्तं भोज्यं तन्मनुरब्रवीत् ॥ (१८)
शुष्कान्नं ब्रीहितंडुलादि । स एव (११।१४)—

“घृतं क्षीरं तथा तैलं गुडं स्नेहेन पाचितम् । गत्वा नदीतटे विप्रो भुंजीयाच्छूद्रभोजनम् ॥” इति ।
एतच्च मार्गशांत्यादौ पूर्ववर्णासंभवे वेदितव्यमिति माधवीये । चतुर्विंशतिमते—

१५ “आरनालं तथा क्षीरं कांदुकं दधिसक्तवः । स्नेहपक्वमपक्वं च शूद्रस्यापि न दुष्यति ॥” इति ।
अंगिराः—

“स्वपात्रे यत्तु विन्यस्तं द्रव्यं तच्छुचि नित्यशः । पात्रांतरगतं ग्राह्यं शूद्राद्यद्रुहमागतम् ॥
“शूद्रवेश्मनि विप्रेण क्षीरं वा यदि वा दधि । निवृत्तेन न भोक्तव्यमित्युक्तं स्मृतिवेदिभिः ॥
निवृत्तेन शूद्राद्यन्नभोज्यन्नान्निवृत्तेनेत्यर्थः ।

२० मनुः—“गोरसं चैव सक्तुश्च तैलं पिण्याकमेव च । अपूपान्भक्षयेच्छूद्राद्यच्चान्यत्पयसा कृतम् ॥
हारीत.—“कंदुपकं स्नेहपकं पायसं दधि सक्तवः । एतानि शूद्रानीतानि भोज्यानि मनुरब्रवीत् ॥” इति ।
अपूपादिपचनार्थं परिमंडलतया कृतमयोमयं पात्रं कंदुः । तत्र पक्वं कंदुपकमित्यर्थः ।
शंखः—“गृहाश्चरथभूम्यर्थं गवार्थं तु विशेषतः । श्रोत्रियेण तु भोक्तव्यं शूद्राणां तु यमोऽब्रवीत् ॥
शातातपः—

२५ “तैलं घृतं दधि क्षीरं तथैवेक्षुरसं गुडम् । शूद्रमांडस्थितं तक्रं तथा मधु न दुष्यति ॥
संग्रहे—

“ह्यंगवीनं गोक्षीरं पिण्याकं दधि सक्तवः । स्नेहपक्वं च तक्रं च शूद्रादपि न दुष्यति ॥” इति ।
घृतादिभोजने हेयोपादेयौ शूद्रौ विविनक्ति पराशरः—

“मद्यमांसरतं नित्यं नीचकर्मप्रवर्तकम् । तं शूद्रं वर्जयेद्विप्रः श्वपाकमिव दूरतः ॥

३० “द्विजशुश्रूषणरतान् मद्यमांसविवर्जितान् । स्वकर्मनिरतान्नित्यं तान् शूद्रान्नं त्यजेत् द्विजः ॥” इति ।
एतत्सर्वमापदिष्यम् । तथा च मनुः (१०।१०४)—

“आममेवाददीतास्मादवृत्तावैकगात्रिकम् । जीवितात्ययमापन्नो योऽन्नमत्ति यतस्ततः ॥

“लिप्यते न न पापेन पन्नपन्नमिवांभसा ॥” इति । याज्ञवल्क्यः (आ. १६६)—

“शूद्रेषु दानगोपालकुलमित्रार्थमाग्निः । भोज्यान्ना नापिताश्चैव यश्चात्मानं निवेदयेत् ॥

वेवलः—

“ स्वदासो नापितो गोपः कुम्भकारः कृषीवलः । ब्राह्मणेनापि भोज्यान्नाः पंचैते शूद्रयोनयः ” ॥

पराशरः (११।२०-२३)—

“ दासा नापितगोपालकुलभिन्नार्धसीरिणः । एते शूद्रेषु भोज्यान्ना यश्चात्मानं निवेदयेत् ॥

“ शूद्रकन्यासमुत्पन्नो ब्राह्मणेन तु संस्कृतः । संस्कारात्तु भवेद्दासो ह्यसंस्कारात्तु नापितः ॥ ५

“ क्षत्रियात् शूद्रकन्यायां सूतो जायेत नामतः । स गोपाल इति ज्ञेयो भोज्यो विप्रैर्न संशयः ॥

“ वैश्यकन्यासमुद्भूतो ब्राह्मणेन तु संस्कृतः । स ह्यर्धसीरी विज्ञेयो भोज्यो विप्रैर्न संशयः ” ॥ इति ।

एतानि याज्ञवल्क्यादिवचनानि युगातरविषयाणि ।

“ शूद्रेषु दासगोपालकुलभिन्नार्धसीरिणाम् । भोज्यान्नता कलौ नास्ति तीर्थसेवा च दूरतः ” ॥ इति

निषेधस्मरणात् । अभोज्यान्नानां नटादीनां जलाद्रौ पीते प्रायश्चित्तमाह पराशरः (११।२४-३६)— १०

“ भांडास्थितमभोज्येषु जलं दधि घृतं पयः । अकामतस्तु यो भुंक्ते प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥

“ ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा उपसर्पति । ब्रह्मकूर्चोपवासेन याज्यवर्णस्य निष्कृतिः ॥

“ शूद्राणां नोपवासः स्यात् शूद्रो दानेन शुध्यति । भाण्डस्थमन्त्यजानां तु जलं दधि पयः पिबेत् ।

“ ब्रह्मकूर्चोपवासेन द्विजातीनां तु निष्कृतिः ॥ (६।२९)

“ चंडालघटसंस्थं तु यत्तोयं पिबति द्विजः । तत्क्षणात्क्षिपते यस्तु प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ (२४) १५

“ यदि न क्षिप्यते तोयं शरीरे यस्य जीर्यते । प्राजापत्यं न दातव्यं कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ” ॥ (२६) इति ।

श्वशृगालादिमरणोपहतकूपादिजलपाने वर्णविशेषेण प्रायश्चित्तमाह स एव (११।३८-४२)—

“ कूपे च पतितं दृष्ट्वा श्वशृगालादिमर्कटम् । अस्थिचर्मादिपतितं पीत्वा मेध्या अपो द्विजः ॥

“ नारं तु कुणपं काकं विड्वराहं खरोष्ट्रकम् । गवयं सौप्रतीकं च मायूरं खाद्गृकं तथा ॥

“ वैयाघ्रमार्क्षं सैहं वा कूपे यदि निमज्जति ।

“ तटाकस्याथ दृष्टस्य पीतं स्यादुदकं यदि । प्रायश्चित्तं भवेत्पुंसः क्रमेणैतेन सर्वशः ॥

“ विप्रः शुध्येत्रिरात्रेण क्षत्रियस्तु दिनद्वयम् । एकाहेन तु वैश्यस्तु शूद्रो नक्तेन शुध्यति ॥

“ चंडालखातत्रापीषु पीत्वा सलिलमग्रजः । अज्ञानाच्चैकभक्तेन त्वहोरात्रेण शुध्यति ॥ (६।२३)

“ चंडालभाण्डसंसृष्टं पीत्वा कूपगतं जलम् । गोमूत्रयावकाहारः त्रिरात्राच्छुद्धिमाप्नुयात् ” ॥ (२४) इति ।

महातटाकादिषु चंडालादिसंबन्धे न कश्चिद्दोषः । अल्पेषु कूपवन्न्यायः ॥ इति । माधवीये— २५

यमः—“ अल्पानामेव पयसां महत्सु न तु दूषणम् ।

“ अक्षोभ्याणामपां नास्ति प्रसृतानां च धावताम् । स्तोकानामुद्धतानां च दोषदृष्टत्वमिष्यते ॥

“ तथाक्षोभ्यतटाकादिनदीवापीसरांसि च । चंडालाद्यशुचिस्पर्शे तीर्थतः परिवर्जयेत् ” ॥

तीर्थ जलावतरणप्रदेशः ।

हारीतः—“ क्लिप्ते भिन्ने शवे तोये तत्रस्थं यदि तत्पिबेत् । शुध्यै चांद्रायणं कुर्यात्तत्तत्कृच्छ्रमथापि वा ॥ १०

“ सीरखातप्रपातोयं पीत्वा चांद्रायणं चरेत् । अज्ञानादापदावापि पंचगव्येन शुध्यति ” ॥ इति ।

पराशरः—(२१।१५।१)

“ भुंक्तेऽज्ञानात् द्विजश्रेष्ठश्चंडालान्नं कथंचन । गोमूत्रयावकाहारो दशरात्रेण शुध्यति ॥

“ अमेध्यरेतो गोमांसं चंडालान्नमथापि वा । यदि भुक्तं तु विप्रेण कृच्छ्रं चांद्रायणं चरेत् ” ॥

अमेध्यं विण्मूत्रादि । तदुपदुष्टस्यान्नस्य भोजनं अमेध्यभोजनम् ॥

यत्तु चतुर्विंशतिमतेऽभिहितम्—

“ विण्मूत्रभक्षणे विप्रश्चरेच्चांद्रायणद्वयम् । श्वादीनां चैव विण्मूत्रे चरेच्चांद्रायणत्रयम् ” ॥ इति एतदभ्यासविषयम् । अत्र विष्णुः—(५१।४) “ सर्वेष्वेतेषु द्विजानां प्रायश्चित्तांते पुनःसंस्कारं कुर्यात् ” ॥ इति । हारीतः—“हस्तदत्तभोजने दुष्टपंक्तिभोजने व्यक्तमूत्रपुरीषकरणे मृतसूतकान्न-
५ भोजने शूद्रैः सह संसृप्ते त्रिरात्रमभोजनम् ” ॥ इति । इदं कामकृतविषयम् । अकामतस्तु “दिन-
मेकमभोजनम् ” विज्ञानेश्वरेणोक्तं द्रष्टव्यम् (प्रा. पृ. ३१४ पं. २३) । यत्तु मार्कण्डेयः—
“भुक्त्वा तु ब्राह्मणाशौचे चरेत्सांतपनं द्विजः । शूद्रस्य च तथा भुक्त्वा द्विजश्चांद्रायणं चरेत्” ॥ इति ।
एतत्कामकृताभ्यासविषयम् । यच्च शखेनोक्तम्—

“ शूद्रस्य सूतके भुक्त्वा षण्मासान्वतमाचरेत् । ब्राह्मणस्य तथा शौचे भुक्त्वा मासं व्रती भवेत् ” ॥

१० इति तदत्यंताभ्यासविषयम् । पराशरः । (११।१५—१७)—

“ अज्ञानाद् भुंजते विप्राः सूतके मृतकेऽपि वा । प्रायश्चित्तं कथं तेषां वर्णे वर्णे विनिर्दिशेत् ॥

“ गायत्र्यष्टसहस्रेण शुद्धिः स्याच्छूद्रसूतके । वैश्ये पंचसहस्रेण त्रिसहस्रेण क्षत्रिये ॥

“ ब्राह्मणश्च यदा भुंक्ते द्वेसहस्रे तु जापयेत् । अथवा वामदेव्येन साम्ना चैकेन शुध्यति ” ॥ इति ।

अत्र विकल्पः । सर्वशौचोत्तरकालमेव प्रायश्चित्तं द्रष्टव्यम् । तथा च विष्णुः (२२।७)—

१५ “ ब्राह्मणादीनामाशौचे यः सक्नुदेवान्नमश्नाति तस्य तावदेवाशौचं यावत्तेषाम् । अज्ञानेनापदाद्वा
भोजने अहःस्वाशौचापगमे प्रायश्चित्तं कुर्यात् ” ॥ इति । संग्रहेऽपि—

“ अघेभोक्तुर्धियाशौचं शिष्टाहं चैद्वं ततः । मोहात्तावदधं यावद्भुक्तं जीर्णं पतत्यधः ॥

“ आपत्स्वहरघे भोक्तुरिदं ज्ञातेर्न दोषकृत् ” ॥ इति । अघे धीपूर्वं भुक्तवतः शिष्टाहमधं
भवति । अघानंतरं चांद्रायणादि । अज्ञानात्तत्र भोक्तुस्तदहरेवाधं यावद्भुक्तं जीर्णं सदधो व्रजति ।

२० आपत्काले धीपूर्वमेव भुक्तवतोऽपि दिनमेवाधम् । एतत्सर्वं सर्पिण्डस्य न दोषकृदित्यर्थः ।
अत्रिः— “ शूद्रान्नं सूतकान्नं च श्राद्धान्नं चैव वर्जयेत् ।

“ नम्रप्रच्छादने श्राद्धे नवश्राद्धे तथैव च । एकोद्विष्टे महत्यामे न भूयः पुरुषो भवेत् ” ॥

विष्णुः—“प्राजापत्यं नवश्राद्धे पादोनं त्वाग्रमासिके । त्रैपक्षिके तदर्धं तु पंचगव्यं द्विमासिके ॥

“ भुक्तं चेत्पार्वणश्राद्धे प्राणायामान् षडाचरेत् । उपवासस्त्रिमासादि वत्सरांतं प्रकीर्तितम् ॥

२५ “ प्राणायामत्रयं वृद्धावहोरात्रं सर्पिण्डे । आमरूपे स्मृतं नक्तं व्रतपाराणिके तथा ” ॥ इति ।
इदमापदिष्यम् । अनापदि तु हारीतः—

“ चांद्रायणं नवश्राद्धे प्राजापत्यं तु मिश्रके । एकाहस्तु पुराणेषु प्रायश्चित्तं विधीयते ” ॥ इति ।
मिश्रके आद्यमासिके । चतुर्विंशतिमते—

“ प्राजापत्यं नवश्राद्धे पादोनं तूनमासिके । त्रैपक्षिके तदर्धं स्यात्पादौ द्वैमासिके ततः ॥

३० “ पादोनं कृच्छ्रमुद्विष्टं पाण्मासे चान्द्रिके तथा । त्रिरात्रं चाद्यमासेषु प्रत्यहं चेदहः स्मृतम् ” ॥ इति ।
तत्रैव—

“ शूद्रस्य तु नवश्राद्धे चरेच्चांद्रायणद्वयम् । सार्धचांद्रायणं मासे त्रिपक्षे त्वंद्वं स्मृतम् ॥

“ मास्तद्वये पराकः स्यादूर्ध्वं सांतपनं स्मृतम् ” ॥ इति । यत्तु शंखचचनम्—

“ चांद्रायणं नवश्राद्धे पराको मासिके स्मृतः । पक्षत्रयेऽतिकृच्छ्रः स्यात् पाण्मासे कृच्छ्र एव तु ॥

“आब्दिके पादकृच्छ्रः स्यादेकाहं पुनराब्दिके। अत उर्ध्वं न दोषः स्यात् शङ्खस्य वचनं यथा”॥इति।
इदं दुर्मृतपतितादिश्रद्धविषयम् । भरद्वाजः—

“अपांक्त्यान्यदुद्दिश्य श्राद्धमेकादशेऽहनि । ब्राह्मणस्तत्र भुक्त्वाऽन्नं शिशुचांद्रायणं चरेत् ॥
“आमश्राद्धे तथा भुक्त्वा तप्तकृच्छ्रेण शुध्यति । संकल्पिते तथा भुक्त्वा त्रिरात्रं क्षपणं भवेत्”॥इति ।
ब्रह्मचारिणस्तु बृहद्यम आह—

“मासिकादिषु योऽश्रीयादसमाप्तव्रतो द्विजः । त्रिरात्रमुपवासोऽस्य प्रायश्चित्तं विधीयते ॥
“प्राणायामत्रयं कृत्वा घृतं प्राश्य विशुध्यति ” ॥ इति । कामतस्तु स एवाह—
“मधुमांसं च योऽश्रीयाच्छ्राद्धं सूतिक एव वा । प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं व्रतशेषं समापयेत् ” ॥
अभ्यासे पुनरुपनयनं बोधायनोक्तं द्रष्टव्यम् । “आमश्राद्धे तु सर्वत्रार्धं आमश्राद्धे भवेदर्धम्” इति
षट्त्रिंशन्मतेऽभिधानात् । यत्तूशनसोक्तम् -

“दशकृत्वः पिबेदापो गायत्र्याः श्राद्धभुक् द्विजः । ततः संध्यामुपासीत शुध्येत्तु तदनंतरम्”॥इति
तदनुक्तप्रायश्चित्तश्राद्धविषयमिति माधवीये । संस्काराङ्गश्राद्धभोजने तु व्यासः—
“निर्वृत्ते चूडहोमे तु प्राङ्नामकरणात्तथा । चरेत्सांतपनं भुक्त्वा जातकर्मणि चैव हि ॥
“अतोऽन्येषु तु भुक्त्वाऽन्नं संस्कारेषु द्विजोत्तमः । नयोगादुपवासेन शुध्यते निंबभोजने”॥ इति ।

धौम्यः—

“ब्रह्मोदने च सोमे च सीमंतोन्नयने तथा । जातश्राद्धे नवश्राद्धे भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत्” ॥ इति ।

शातातपः—

“वनस्पतिगते सोमे परान्नं ये तु भुञ्जते । तेषां मासकृतं पुण्यं दातारमधिगच्छति ” ॥

सनत्कुमारः—

“एकादश्यां मुनिश्रेष्ठ यो भुंक्ते मूढचेतनः । प्रतिग्रासमसौ भुंक्ते किल्बिषं श्वानविट्समम् ॥ २०
“निष्कृतिर्मद्यपस्योक्ता धर्मशास्त्रे मनीषिभिः । एकादश्यन्नकामस्य निष्कृतिः कापि नोदिता”॥इति।
कात्यायनः—“अष्टवर्षाधिको मर्त्यो ह्यपूर्णाशीतिवत्सरः । एकादश्यामुपवसेत्पक्षयोरुभयोरपि” ॥
कण्वः—“एकादशीमुपवसेन्न कदाचिदतिक्रमेत् ” इति । विष्णुः—“एकादश्यां न भुञ्जीत
कदाचिदपि मानवः ” इति । आपस्तम्बः (२।१।४-६)—“पर्वसु चोभयोरुपवासः औपस्तमेव
कालांतरे भोजनम् तृप्तिश्चान्नस्य ” इति । उभयोर्द्विपत्योः यत्कालांतरे भोजनं तदप्यौपवस्त्रमेव २५
उपवास एव तदपि “दिवा न रात्रौ न तस्य सायमश्रीयात् ” इति श्रौते दर्शनात् ।

स्मृत्यंतरे—

“अर्कद्विपर्वरात्रौ च चतुर्दश्यष्टमी दिवा । एकादश्यामहोरात्रं भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत्” ॥ इति ।

शौनकः—

“अष्टम्यां च चतुर्दश्यां न कुर्याद्भोजनं दिवा । आदित्यपर्वसंक्रातौ व्यतीपाते पितुर्दिने ॥ ३०
“अभितश्चोपवासस्य न कुर्यान्निशि भोजनम् ” ॥ इति । अत्र प्रायश्चित्तमाह स एव—
“त्यं सुमेधं जपेन्मन्त्रं दशवारं जलेऽष्ट वा । अष्टम्यां वा चतुर्दश्यां दिवा भुक्तेरकल्मषम् ॥
“सपर्वतो जपेन्मन्त्रं पर्वति दश चेज्जले । पर्वद्वये भानुवारे रात्रौ भुक्तेरकल्मषम् ॥
“स इद्वरो जपेन्मन्त्रं शतं वै विष्णुमंदिरे । एकादश्यामहोरात्रं भुंक्ते यदि न पापकृत् ॥ . .

“आयं पृणन्ति मन्त्रं च दशवारं न किल्बिषम् । रात्रौ भुंक्ते वत्सरांते मन्वादिषु युगादिषु ” ॥
ग्रहणे भोजननिषेधमाह व्यासः—

“नाद्यात्सूर्यग्रहात्पूर्वमन्त्रि सायं शशिग्रहात् । ग्रहकाले च नाश्रीयात्स्नात्वाऽश्रीयाच्च मुक्तयोः ॥

“मुक्ते शशिनि भुंजीत यदि न स्यान्महानिशा । अमुक्तयोरस्तगयोरद्याद् दृष्ट्वा परेऽहनि ॥

५ “सूर्यग्रहे तु नाश्रीयात्पूर्व यामचतुष्टयम् । चंद्रग्रहे तु यामांस्त्रीन्वालवृद्धातुरैर्विना” ॥
वालादिविषये स एवाह—

“अपराण्हे न मध्यान्हे मध्यान्हे न तु संगवे । भुंजीत संगवे चेत्स्यान्न पूर्व भुजिमाचरेत् ” ॥

मार्कण्डेयः—“ग्रहणं तु भवेदिदोः प्रथमादधियामतः । भुंजीतात्त्वर्तनात्पूर्व प्रथमे प्रथमादधः” ॥

रात्रौ प्रथमयामे ग्रहणे दिवा प्रथमयामे भुंजीत । अन्यत्रावर्तनादध इत्यर्थः ।

१० स एव—“रवेरावर्तनादूर्ध्वमवगिव निशीथतः । चतुर्थे प्रहरे चेत्स्याच्चतुर्थप्रहरादधः” ॥ इति ।
वृद्धगौतमः—

“चंद्रसूर्यग्रहे नाद्यात्स्मिन्नहनि पूर्वतः । राहोर्विमुक्तिं विज्ञाय स्नात्वा कुर्वीत भोजनम् ॥

“संध्याकाले यदा राहुर्ग्रसते शशिभास्करौ । तदहर्नैव भुंजीत रात्रावपि कदाचन ” ॥ इति ।

चंद्रस्य ग्रस्तोदये तदहर्न भुंजीत । रवेर्ग्रस्तोदये पूर्वरत्रौ न भुंजीतेत्यर्थः । चंद्रस्य ग्रस्तास्त-

१५ मये अहर्न भुंजीत भास्करे ग्रस्तास्तमिते रात्रावित्यपि व्याचक्षते । तथा च वसिष्ठः—

“ग्रस्तोदये विधोः पूर्व नाहर्भोजनमाचरेत् । ग्रस्तोदिते तथा सूर्ये न रात्रौ भोजनं चरेत् ” ॥

भृगुः—

“ग्रस्तावेवास्तमानं तु रवींद्र प्राप्नुतो यदि । तयोः परेद्युरुदये स्नात्वाऽभ्यवहरेन्नरः ” ॥

मार्कण्डेयः—

२० “चंद्रस्य यदि वा भानोर्यस्मिन्नहनि भार्गव । ग्रहणं तु भवेत्तस्मिंस्तत्पूर्वं भोजनं नरः ॥

“नाचरेत्संग्रहं चैव तथैवास्तमुपागते । यावत्तयोर्नोदयः स्यात् नाश्रीयात्तावदेव तु ॥

“मुक्तिं दृष्ट्वा तु भुंजीत स्नानं कृत्वा ततः परम् ” ॥ इति । मनुरपि—

“अमुक्तयोरस्तगयोर्दृष्ट्वा स्नात्वापरेऽहनि ” ॥ विष्णुधर्म—

“अहोरात्रं न भुंजीत चंद्रसूर्यौ ग्रहेऽस्तगौ । मुक्तिं बुद्ध्वा तु भोक्तव्यं स्नानं कृत्वा ततः परम्” ॥ इति ।

२५ ग्रहे गृहणे । ग्रस्तास्तगे शशिनि ग्रहणात् पूर्वस्यां रात्रौ परस्मिन्नाह्नि च न भुंजीत ।

ग्रस्तास्तगे सूर्ये ग्रहणात् पूर्वस्मिन्नाह्नि परस्यां रात्रौ च न भुंजीतेत्यर्थः । दक्षः—

“अयने विषुवे चैव चंद्रसूर्यग्रहे तथा ! अहोरात्रोषितः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ” ॥

इदं पुत्रिव्यतिरिक्तविषयम् ।

“संक्रान्त्यामुपवासं च कृष्णैकादशिवसरे । चंद्रसूर्यग्रहे चैव न कुर्यात्पुत्रवान्गृही ” ॥ इति

३० स्मरणात्—

पट्टत्रिगन्मत—“सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने । सचैलं तु भवेत्स्नानं सूतकान्नं च वर्जयेत्” ॥

सूतकान्नं राहुसूतकान्नम् । वृद्धमनुः—

“आरनाळं च तक्रं च पाथेयं घृतपाचितम् । उदकं च कुशच्छन्नं न दुष्येद्राहुसूतके ” ॥

स्तृतिरत्ने—

३५ “आग्नाळं तथा क्षीरं कंदकं दधि सक्तवः । स्नेहपकं च तेलं च न कदाचिन्प्रदुष्यति” ॥ इति ।

व्यासः—

“संवत्सरस्यैकमपि चरेत्कृच्छ्रं द्विजोत्तमः । अज्ञातभुक्तशुद्ध्यर्थं ज्ञातस्य तु विशेषतः” ॥ इति ।

भक्ष्यमांसमाह याज्ञवल्क्यः (आ. १७७)—

“भक्ष्याः पंचनखाः सेधागोधाकच्छपशल्यकाः । शशश्च मत्स्येष्वपि हि सिंहतुण्डकरोहिताः ॥

“तथा पाठीनराजीवसशलकाश्च द्विजातिभिः” ॥ मनुः (५।१८)—

“श्वविधं शल्यकं गोधां खड्गकूर्मशशांस्तथा । भक्ष्यान्पंचनखेष्वहुरनुष्ट्रांश्चैकतोदतः” ॥ इति ।

गौतमः (१७।२७)—“पंचनखाश्चाशल्यकशशश्वाविड्गोधाखड्गकच्छपाः” ॥ इति ।

याज्ञवल्क्यः (आ. १७९)—

“प्राणात्यये तथा श्राद्धे प्रोक्षितं द्विजकाम्यया । देवान्पितृन्समभ्यर्च्य खादन् मांसं न दोषभाक्” ॥

प्रोक्षितं यागशिष्टम् । स्मृतिरत्ने—

“प्रोक्षितं भक्षयेन्मांसं ब्राह्मणस्य च काम्यया । यथाविधिनियुक्तं च प्राणानामेव चात्यये” ॥ इति ।

मनुः (५।३५)—

“नियुक्तस्तु यथान्यायं पललं यः परित्यजेत् । स प्रेत्य पशुतां याति संभवानेकविंशतम्” ॥ इति ।

मनुः (५।४१)—

“मधुपर्के च यज्ञे च पितृदेवत्यकर्मणि । अत्रैव पशवो हिंस्या नान्यत्रेत्यब्रवीन्मनुः” ॥ १५

यज्ञव्यतिरिक्ते सर्वत्र कर्मणि कलौ प्राणिवधो मांसभक्षणं च निषिद्धम् ।

“वरातिथिपितृभ्यस्तु न पशूपाकृतिः कलौ” इति स्मरणात् ।

यज्ञार्थे पशुवधे मांसभक्षणे च न दोषोऽस्तीत्याह मनुः (५।३९-४०)—

“यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयंभुवा । यज्ञो हि भूत्यै सर्वस्य तस्माद्यज्ञे वधोऽवधः ॥

“ओषध्यः पशवो वृक्षास्तिर्यचः पक्षिणस्तथा । यज्ञार्थं निधनं प्राप्ताः प्राप्नुवन्त्युच्छ्रितं पुनः” ॥ २०

“यज्ञाय जग्धि मांसस्येत्येष दैवो विधिः स्मृतः । अतोऽन्यथाप्रवृत्तिस्तु राक्षसो विधिरुच्यते (३१) ॥

“नाद्यादविधिना मांसं विधिज्ञोऽनापदि द्विजः । जध्वा ह्यविधिना मांसं प्रेतस्तैरद्यतेऽवशः (३३) ॥

“असंस्कृतान्पशून्मंत्रैर्नाद्याद्विप्रः कथंचन । मंत्रैस्तु संस्कृतानद्याच्छाश्वतं धर्ममास्थितः (३६) ॥

“या वेदविहिता हिंसा नियताऽस्मिंश्चराचरे । अहिंसांमेव तां विद्याद्देवाद्धर्मो हि निर्बभौ (४४) ॥

“यावन्ति पशुरोमाणि तावत्कुत्वो हि मारणम् । वृथा पशुघ्नः प्राप्नोति प्रेत्य जन्मानि जन्मानि ॥ २५

“यो हिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया । स जीवश्च मृतश्चैव न कचित्सुखमेधते (४५) ॥

“नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते कश्चित् । न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत् (४८) ॥

“स्वमांसं परमांसेन यो वर्धयितुमिच्छति । अनभ्यर्च्य पितृन्देवांस्ततोऽन्यो नास्त्यपुण्यकृत् (५२) ॥

“मांसं भक्षयिताऽमुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहम् । एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः (५५) ॥

“अनुमंता विशसिता निहंता क्रयविक्रयी । संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातुकः (५१) ॥ ३०

खादके हि सत्यनुमंत्रादयो भवन्ति ते न वधमकुर्वतोऽपि खादकस्य दोषो भवति । तस्मान्न

खादकः स्यादित्यर्थः । मांसवर्जने फलमाह स एव (५।५३-५४)—

“वर्षे वर्षेऽश्वमेधेन यो यजेत शतं समाः । मांसानि च न स्वादेद्यस्तयोः पुण्यफलं समम् ॥

“फलमूलाशनैर्मेध्यैर्मुन्यन्नानां च भोजनैः । न तत्फलमवाप्नोति यन्मांसपरिवर्जनात्” ॥ इति ।

“ न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने । प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला ” ॥
मद्ये मदकरद्रव्ये अविहिताप्रतिषिद्धे तांबूलादिके । मैथुने अविहिताप्रतिषिद्धे अनृतौ स्वदार-
गमन इत्यर्थः । मांसभक्षणे दोषाभाववचनं प्राणात्ययविषयम् । “ नात्ता दुष्यत्यदन्नाद्यान्
प्राणानामेव चात्यये ” इति च तेनैव (५।३०) स्मरणात् ।

५ देशविशेषविषयं युगांतरविषयं वेति स्मृतिरत्नादौ । तथा च व्यासः—

“ समुद्रयानं मांसस्य भक्षणं शस्त्रजीविका । शीथुपानमुदीच्यानां अविगीतानि धर्मतः ॥

“ मंत्रेणासंस्कृतं मांसं नाद्याद्विप्रः कलौ युगे । यज्ञे तु प्राकृतं मांसमश्रीयाद्विधिचोदितम् ” ॥ इति ।

बोधायनः (२।७।९-१४)—“ अमृतापिधानमसीत्युपरिष्ठादपः पीत्वा चान्तो हृदयमभिमुशति
प्राणानां ग्रंथिरसि रुद्रो मा विशांतकस्तेनाग्नेनाप्यायस्व इति । पुनराचम्य दक्षिणपादांगुष्ठे

१० पाणि निःस्त्रावयति अंगुष्ठमात्रः पुरुषोऽंगुष्ठं च समाश्रितः । ईशः सर्वस्य जगतः प्रभुः प्रीणाति
विश्वभुगिति । हुतानुमंत्रणमूर्ध्वहस्तः समाचरेत् । श्रद्धायां प्राणे निविश्यामृतं हुतं प्राणमग्नेना-
प्यायस्व श्रद्धायामपाने० श्रद्धायां व्याने० श्रद्धायामुदाने० श्रद्धायां समाने निविश्येति
यथालिङ्गमनुषंगः ब्रह्माणि म आत्माऽमृतत्वायेत्यक्षेरणात्मानं योजयेत् । सर्वक्रतुयाजिना-
मात्मयाजी विशिष्यते ” इति । गद्यव्यासोऽपि—

११ “ ततस्तृप्तः सन्नमृतापिधानमसीत्यपः प्राश्य तस्माद्देशान्मनागपसृत्य विधिवदाचामेत् ” इति ।

भरद्वाजः—

“ भुक्त्वा अमृतापिधानमसीति च निपीयकम् । आचांतः पुनराचामेद्यावन्मंडलशोधनम् ” ॥ इति ।

देवलः—

“ भुक्तोच्छिष्टं समादाय सर्वस्मार्त्किचिदाचमम् । उच्छिष्टभागधेयेभ्यः सोदकं निर्वपेद्भुवि ” ॥

२० विष्णुः (२।८।३२)—“ न हस्तौ प्रक्षाल्य चुलकं गृह्णीयात् ” इति ।

संग्रहे—

“ अमृतापिधानमसीत्यवशिष्टजलं पिबेत् । तच्छेषं रौरवेत्युक्त्वा बलिप्रांते विसर्जयेत् ” ॥ इति ।

शातातपः—

“ अर्धं पीत्वा तु गंडूपं अर्धं त्याज्यं महीतले । रसातलगता नागास्तेन प्रीणन्ति नित्यशः ॥

२५ “ हस्तं प्रक्षाल्य गंडूपं यः पिबेत्पापमोहितः । स देवांश्च पितृंश्चैव आत्मानं चैव घातयेत् ” इति ।
गंडूपमत्र उत्तरापोशनम् ।

तथा च मार्कण्डेयः—“ उत्तरापोशनात्पूर्वं न हस्तं क्षालयेत् द्विजः ॥

“ अर्धं पिबन्ति गंडूपमर्धं त्यजति भूतले । प्रीणन्ति पितरः सर्वे याश्चान्या भूमिदेवताः ॥

“ हस्तं निर्लिङ्गं संक्षाल्य विधूयोद्धूय पात्रतः । गंडूपं धारयेद्यस्तु सुरामिव स धारयेत् ” ॥ इति ।

३० गंडूपार्थत्यागमाह स एव—

“ गन्धर्वेषु पुण्यनिलये पद्मानुदनिवासिनाम् । अर्थिनामुदकं दत्तमक्षय्यमुपतिष्ठतु ॥

“ उत्तगपोशनात्पश्चात्पात्रं हस्तेन न स्पृशेत् । यदि स्पृशेत्तु मोहेन सचैलः स्नानमाचरेत् ॥

“ पीत्वा भुक्त्वा च यो मर्त्यः शून्यपात्रं परित्यजेत् । स भूयः क्षुत्पिपासार्ता भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥

“ अमृत्य ततः पश्चाद्गंडूपान्योदशाचरेत् । विप्रस्य दक्षिणे भागे देवास्तिष्ठन्ति नित्यशः ॥

आसीन एव गंडूषान्वामभागे विसर्जयेत् ” । शांडिल्यः—

“ माषादिचूर्णैर्मृद्भिर्वा प्रक्षाल्य करयोर्द्वयम् । प्रक्षाल्य जानू पादौ च काष्ठैर्दंतान् विशोधयेत् ” ॥

और्वः—

“ आस्यं प्रक्षाल्य गंडूषं पिबेद्भुक्त्वा च यो द्विजः । दैवं श्राद्धमसौ हन्यात्पित्र्यमात्मानमेव च ” ॥

गंडूषकाले आस्यस्थं जलं न पिबेदित्यर्थः । देवलः—

“ भुक्त्वाऽऽचामेद्यथोक्तेन विधानेन समाहितः । शोधयेत् मुखहस्तौ च मृदाद्भिर्घर्षणैरपि ॥

“ तस्मिन्नाचमनं कुर्याद्यत्र भाण्डेऽथ भुक्तवान् । यद्युत्तिष्ठत्यनाचांतो भुक्तवानासनात्ततः ॥

“ स्नानं सद्यः प्रकुर्वीत सोऽन्यथा प्रयतो भवेत् ” ॥ इति । गौतमः—

“ गंडूषस्याथ समये तर्जन्या वक्त्रचालनम् । कुर्वीत यदि मूढात्मा रौरवे नरके पतेत् ॥

“ गंडूषं पादशौचं च कृत्वा वै कांस्यभाजने । षण्मासान्भुवि निक्षिप्य उद्धृत्य पुनराहरेत् ” ॥ इति । १०

स्मृत्यन्तरे—

“ भुक्त्वोच्छिष्टस्त्वनाचांतः शूद्रादीन्यदि पश्यति । ज्ञानतोऽज्ञानतो वाऽपि तैः साकं भुक्तवानसौ ” ॥

रत्नावल्याम्—

“ दंतानां शोधनं कृत्वा पवित्रं तु विसर्जयेत् । विसृज्य भूमौ पात्रे वा पश्चाद्वा दंतशोधनम् ” ॥

स्मृत्यर्थसारे—“ ‘अमृतापिधानमसीति’ गंडूषमर्धं पीत्वाऽर्धं भूमौ बहिर्निनीय वर्तुलपवित्रं १५

विस्रस्य भूमौ पात्रे वा क्षिप्त्वा सम्यगुच्छिष्टं प्रक्षाल्य द्विराचामेत्ततो हस्तौ संमृज्य परिस्राव्यां-
गुष्ठाभ्यां चक्षुषोर्निषिच्य चक्षुषी स्पृष्ट्वाऽग्निमुपस्पृश्य इष्टदेवतां स्मरेत् ” ॥ इति ।

स्मृतिरत्ने—“ दंतशोधनकाष्ठं तु भूमावेव समुत्सृजेत् । भुक्त्वा तत्र प्रयत्नेन किञ्चित्प्रक्षाल्य वारिणा ॥

“ अनूढस्तु न कुर्वीत भुक्त्वा वै दंतधावनम् । पादुकारोहणं चैव तिलैश्च पितृतर्पणम् ” ॥ इति ।

गौतमः—

“ आचांतः पुनराचामेदायंगौरिति मंत्रतः । द्रुपदां वा त्रिरावृत्य सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥

“ हस्तौ निघृष्यांगुष्ठाभ्यामक्षणोर्बु विनिक्षिपेत् ” ॥

मंत्रः—“ शय्यातिं च सुकन्यां च च्यवनं शक्रमश्विनौ । भुक्तमात्रः स्मरेद्यस्तु चक्षुस्तस्य न हीयते ” ॥

स एव—

“ प्राणानां ग्रंथिरसीत्यालभेद्धृदयं ततः । अक्षरेण स्वमात्मानं योजयेद्ब्राह्मणीति हि ” ॥ २५

कुत्सः—“ आचांतो नाभिदेशं तु प्राणानां ग्रंथिरसीति । विमृश्यादित्यमीक्षेत रात्रौ दीपमुखं ततः ” ॥

व्यासः—“ आचम्यांगुष्ठमात्रेति पादांगुष्ठेति तु दक्षिणे ।

“ निःस्रावयेद्धस्तजलमूर्ध्वहस्तः समाहितः । हुतानुमंत्रणं कुर्याच्छ्रद्धायामिति मंत्रतः ” ॥

अत्रिः—“ आचांतोऽप्यशुचिस्तावद्यावत्पात्रमनुद्धृतम् । उद्धृतेऽप्यशुचिस्तावद्यावन्मंडलशोधनम् ॥

“ भूमावपि हि लिप्तायां तावत्स्यादशुचिः पुमान् । आसनाद्भुत्तस्तस्माद्यावन्न स्पृशते महीम् ” ॥ इति । ३०

एतद्ब्रह्मचारिविषयम् । “ भार्याभृतकदासेभ्य उच्छिष्टं शेषयेत्ततः ” इति गृहस्थस्योक्तत्वादिति

स्मृतिरत्ने । शातातपः—

“ आचम्य पात्रमुत्सृज्य किञ्चिदार्द्रेण पाणिना । मुख्यान्प्राणान् समालभ्य नाभिं पाणितलेन च ॥

“ भुक्त्वा नैव प्रतिष्ठेत नैव चार्द्रेण पाणिना । पाणिं मूर्ध्नि समाधाय स्पृष्ट्वाऽग्निं च समाहितः ” ॥

आपस्तम्बः—(२।२।४।२३) “ यत्र भुज्यते तत्समूह्य निर्हृत्यावोक्ष्य तं देशमत्रेभ्यो लेपा-
न्संकृष्याद्भिः संसृज्योत्तरतः शुचौ देशे रुद्राय निनयेदेवं वास्तु शुभं भवति” इति । यत्र स्थाने
भुज्यते तत्रत्यमुच्छिष्टं समूह्य राशीकृत्यान्यतो निर्हृत्य तं देशमवोक्षेत् । येषु पाकः कृतः तान्य-
मत्राणि तेभ्योऽन्नलेपाच्च व्यञ्जनलेपांश्च संकृष्य काष्ठादिनाऽपकृष्याऽद्भिः संसृज्य गृहस्योत्तरतः

५ शुचौ देशे रुद्राय निनयेत् । रुद्रायेदमस्त्विति निनयेत् । एवं कृते वास्तुगृहं शिवं समृद्धं भवतीत्यर्थः ।
विष्णुपुराणे (३।११।८६-९५)—“ भुक्त्वा सम्यक् द्विराचम्य प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपि वा ।

“ स्वच्छः प्रशांतचित्तस्तु कृतासनपरिग्रहः । अभीष्टदेवतानां तु कुर्वीत स्मरणं नरः ।

“ अग्निराप्याययेद्वातुं पार्थिवं पवनेरितः । दत्तावकाशो नभसा जरयेदस्तु मे सुखम् ।

“ अन्नं बलाय मे भूमेरपामग्न्यानिलस्य च । भवत्वेतत्परिणतं ममोस्त्वव्याहतं सुखम् ।

१० “ प्राणापानसमानानामुदानव्यानयोस्तथा । अन्नं पुष्टिकरं चास्तु ममास्त्वव्याहतं सुखम् ॥

“ अगस्तिरग्निर्वद्वानलश्च भुक्तं मयाऽन्नं जरयत्वशेषम् ।

“ सुखं च मे तत्परिणामसंभवं यच्छत्त्वरोगो मम चास्तु देहे ॥

“ विष्णुः समस्तोन्द्रियदेहदेही प्रधानभूतो भगवान्यथैकः ।

“ सत्येन तेनान्नमशेषमेतदारोग्यदं मे परिणाममेतु ॥

१५ “ विष्णुरत्ता यथैवान्नं परिणामश्च वै यतः । सत्येन तेन मे भुक्तं जीर्यत्वन्नमिदं तथा ॥

“ इत्युच्चार्य स्वहस्तेन परिमृज्य तथोदरम् । अनायासप्रदायीनि कुर्यात्कर्माण्यतन्द्रितः ॥

“ सच्छास्त्रादिविनोदेन सन्मार्गाद्यविरोधिना । दिनं नयेत्ततः संध्यामुपतिष्ठेत्समाहितः” ॥ इति ।

वाहटः—“ भुक्त्वोपविशतस्तुन्दमोजो भवति तिष्ठतः ।

“ आयुश्चक्रामतो मृत्युः धावतः स्वपतो वपुः । भुक्त्वा राजवदासीत गत्वा शतपदं शनैः” ॥ इति ।

२० व्यासः—

“ भुक्त्वा वै सुखमास्थाय तदन्नं परिणामयेत् । इतिहासपुराणाभ्यां वेदार्थानुपबृंहयेत्” ॥

विष्णुः—“ भुक्त्वोपविष्टो विश्रांतो ब्रह्म किञ्चिद्विचारयेत्” ॥

दक्षः—“ इतिहासपुराणाभ्यां षष्ठसप्तमकौ नयेत् । अष्टमे लोकयात्रा तु बहिः संध्या ततः परम्” ॥ इति ।

मार्कण्डेयः—

२५ “ भूयोऽप्याचम्य कर्तव्यं तांबूलस्य च भक्षणम् । श्रवणं चेतिहासस्य ततः कुर्यात्समाहितः” ॥ इति ।

याज्ञवल्क्यः (११३)—

“ अतिथिं श्रोत्रियं वृत्तमा सीमांतमनुव्रजेत् । अहःशेषं समासीत शिष्टैरिष्टैश्च बन्धुभिः” ॥

शंखः—

“ विचार्य च पुराणार्थान्वेदार्थान्भक्तिमास्थितः । विष्णुं सदा हृदि ध्यायेत्सकलं निष्कलं तु वा” ॥

३० लिखितः—

“ भुक्त्वोपस्थाय मार्त्ताण्डं पुराणानि सदा पठेत् । भावशुद्ध्या हरौ भक्तिः पुगणश्रवणाद्भवेत्” ॥

अत्रिः—

“ दिवा स्वापं न कुर्वीत गच्छेन्नैव दिवा स्त्रियम् । आयुःश्रयकरी निद्रा दिवा स्त्री पुण्यनाशिनी ॥

“ इतिहासपुगणानि धर्मशास्त्राणि चाभ्यसेत् । वृथा विविधवाक्यानि परिवादांश्च वर्जयेत्” ॥

अखंडादर्श—

- “ भुक्त्वा तु सुखमासीनः तांबूलेनास्यशोधनम् । शुभ्यामलकधातूनामेकेनाथ विशोधनम् ॥
 “ सुपूगं च सुपत्रं च चूर्णेन च समन्वितम् । प्रदद्यात् द्विजदेवेभ्यः तांबूलं चर्वयेद्बुधः ॥
 “ एकपूगं सुखारोग्यं द्विपूगं निष्फलं भवेत् । अतिश्रेष्ठं त्रिपूगं तु अधिकं नैव दुष्यति ॥
 “ पर्णमूले भवेद्ब्याधिः पर्णाग्रे पापसंभवः । चूर्णपर्णं हरत्यायुः सिरा बुद्धिविनाशिनी ॥ ५
 “ तस्मादग्रं च मूलं च सीरां चैव विशेषतः । चूर्णपर्णं वर्जयित्वा तांबूलं खादयेन्नरः ॥
 “ अखंडितं च क्रमुकं पर्णमक्षालितं तथा । अशोधितं तथा चूर्णं भक्षयन् सर्वदोषभाक् ॥
 “ अनिधाय मुखे पर्णं पूगं खादति यो नरः । सप्तजन्मदरिद्रः स्यान्नरकेषु निमज्जति ॥
 “ चूर्णमंतर्न कुर्वीत न बहिश्चावकुंचनम् । प्रातःकाले फलाधिक्यं चूर्णं मध्यंदिनेऽधिकम् ॥
 “ सायं पर्णस्य चाधिक्यं त्रिधा तांबूलभक्षणम् ” ॥ वाहटः— १०
 “ तांबूलं कटुतिक्तमुष्णमधुरं क्षारं कषायान्वितं वातघ्नं किमिनाशनं कफहरं कायाग्निसंदीपनम् ॥
 “ स्त्रीसंभाषणभूषणं रुचिकरं शोकस्य विच्छेदनं तांबूलस्य तु ये त्रयोदशगुणाः स्वर्गेऽपि ते दुर्लभाः ॥
 “ प्रत्युषसि भुक्तिसमये वरयुवतीनां च संगमेऽभिमतेऽराजसु विद्वन्मध्ये तांबूलं यो न खादयेत्स पशुः ॥
 “ दंतावलीदुर्बलताक्षिरोगं जडत्वभंगे नयनादिकेषु बलक्षयं वक्रगतं करोति तांबूलमत्यंतनिषेवणेन ॥
 “ आयुः प्रज्ञां बलं बुद्धीं रेतः शक्तिर्विनश्यति । जिह्वा रसं न गृह्णाति सदा तांबूलचवर्णात् ” ॥ इति । १५
 “ अथ सायंसन्ध्याविधिः ।

व्यासः—“सूर्येऽस्तशिखरं प्राप्ते पादशौचक्रियान्वितः । बहिः संध्यामुपासीत कुशपाणिः समाहितः ॥

- “ अमृतं मद्यगंधं च दिवा मैथुनमेव च । पुनाति वृषलस्यान्नं बहिःसंध्या ह्युपासिता ॥
 “ आचम्य संध्यां संकल्प्य मार्जयित्वा च पूर्ववत् । अग्निश्च मेत्यपः पीत्वा गृह्योक्तैश्चैव मार्जयेत् ॥
 “ गायत्र्यापस्त्रिरुत्क्षिप्य प्रदक्षिणमथाचरेत् । संध्यां ध्यात्वोपविष्टस्तु वाग्यतः सुसमाहितः ॥ २०
 “ प्रणवव्याहृतियुतां गायत्रीं पूर्ववज्जपेत् । कृत्वा स्वशाखाविहितमादित्यमुपतिष्ठते ॥
 “ वारुणीभिरुपस्थाय दिशश्चैवोपतिष्ठते ” ॥ इति । याज्ञवल्क्यः (आ. ११४)—
 “ उपास्य पश्चिमां संध्यां ह्रुत्वाऽग्नीस्तानुपास्य च । भृत्यैः परिवृतो भुक्त्वा नातिवृत्तोऽथ संविशेत् ” ॥

स्मृतिरत्ने—

“ हुताग्निर्वेदितगुरुः कृतातिथ्यश्च शक्तितः । वैश्वदेवं बलिं चापि कृत्वाऽश्रीयाद्यथाविधि ” ॥ इति । २५

व्यासः—

“ हुत्वाऽग्निं विधिवन्मंत्रैर्भुक्त्वा यज्ञावशिष्टकम् । सभृत्यबांधवजनः स्वपेच्छुष्कपदो निशि ” ॥

बोधायनः—

“ मेरुकांचनदानानि वाजपेयशतानि च । कन्याकोटिप्रदानं च न समं सायमाहुतेः ” ॥

शांडिल्यः—

- “ अन्नैः प्रभूतैर्देवेशं विविधैः पृथगर्चयेत् । संध्ययोरुभयोः कुर्यात्पूजां सर्वोपचारकैः ॥
 “ नक्तं कुटुंबिकोऽश्रीयाद्धितं पथ्यं सुवृप्तिमत् । नोत्तराभिमुखः स्वप्यात् पश्चिमाभिमुखो न च ॥
 “ न वाऽऽकाशे न नद्यो वा नाशुचिर्नासने कचित् । न शीर्णायां तु खट्वायां शून्यागारे न चैव हि ” ॥

विष्णुपुराणे (३१११०१-१०९)—

“ पुनः पाकमुपादाय सायमप्यवनीपते । वैश्वदेवानिमित्तं वै पत्न्या सार्धं बलिं हरेत् ॥ ३५

“ तत्रापि श्वपचादिभ्यः तथैवान्नविसर्जनम् । अतिथिं चागतं तत्र स्वशक्त्या भोजयेद्बुधः ॥
 “ पादशौचासनः प्रवहः स्वागतोक्त्या च पूजयेत् । ततश्चान्नं प्रदानेन शयनेन च पार्थिव ॥
 “ दिवातिथौ तु विमुखे गते यत्पातकं नृप । तदेवाष्टगुणं पुंसां सूर्योदये विमुखे गते ॥
 “ कृतपादादिशौचश्च भुक्त्वा सायं ततो गृही । गच्छेच्छय्यामस्फुटितामपि दारुमयीं नृप ॥
 ५ “ नाविशालां न वै भग्नां नासमां मलिनां न च । न च जंतुमयीं शय्यामधितिष्ठेदनास्तृताम् ॥
 “ प्राच्यां दिशि शिरः शस्तं याम्यायामथवा नृप । सदैव स्वपतः पुंसो विपरीतं तु रोगदम् ” ॥ इति ।

शौनकः—

“ निशायाः प्रथमे यामे जपयज्ञार्चनादिकम् । स्वाध्यायो भोजनं प्रोक्तं वर्जयित्वा महानिशा ॥
 “ पश्चात्तेन तथा यामे जपयज्ञार्चनादिकम् । ब्रह्माभ्यासोऽपि तत्रैव वर्जयित्वा तु भोजनम् ” ॥ इति ।

१० अनध्याये प्रदोषेषु च सायं गायत्रीजपे संकोचमाचरति शिष्टाः । आहुश्च—

“ चतुर्थ्यां सप्तप्रदोषायां शतार्धं सचतुष्टयम् । सप्तात्रिंशच्च सप्तम्यामष्टाविंशत्रयोदशे ॥
 “ अष्टाविंशदनध्याये इतरेषु यथोदितम् । शस्ता प्रदोषे दर्शे च गायत्री दशसंख्यया ॥
 “ अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नित्यादर्धं जपेद् बुधः । प्रतिपत्सु तृतीयांशं पर्वण्यल्पतरं जपेत् ” ॥ इति ।

संग्रहान्तरे—

१५ “ नित्यादर्धं चतुर्थीवसुमनुतिथिषु स्याज्जपः सप्तमी या ।

“ सप्तात्रिंशच्च तस्यां प्रतिपदि च पुनः षड्युता त्रिंशदेव ॥

“ तद्वत्पर्वद्वयेऽपि त्रियुतदशतिथावष्टभिर्विंशतिं स्यात् ॥

“ देवं विश्वादिकालेष्वखिलमतमिदं सायमेवं न कल्ये ” । प्रदोषोऽपि दर्शितः—

“ विघ्नार्ककामरात्र्यादौ द्वेकार्धघटिका क्रमात्तरंध्राद्वियामोदयात्प्राक् प्रदोषः स्यात्कलादिभिः ” ॥ इति ।

२० विघ्नः चतुर्थी । अर्कः सप्तमी । कामस्रयोदशी । रंध्रो नव । रात्र्यादौ चतुर्थी सप्तमी त्रयोदश्यः क्रमेण द्वेकार्धघटिकाः संति चेत्प्रदोषः । तथा रात्र्यादौ तृतीया नवघटिका चेत् प्रदोषः । अधिका चेन्नास्ति रात्र्यादौ । षष्ठी यामद्वयाधिका चेन्न प्रदोषः । द्वादश्यामुदयात्प्राक् कलामात्रत्रयोदशीसत्वे प्रदोष इत्यर्थः । स्मृतिरन्ते—

“ षष्ठी च द्वादशी चैव अर्धरात्रेणनाडिका । प्रदोषं तु प्रकुर्वीत तृतीया नवनाडिका ” ॥ इति ॥

२५ गायत्रीजपसंकोचे मूलस्मृतिर्गवेषणीया स्मृतिरन्ते—

“ प्रणवव्याहृतीनां च गायत्र्याः शिरसस्तथा । नित्ये नैमित्तिके काम्ये व्रते यज्ञे क्रतौ तथा ॥

“ देवतार्चनमंत्राणां नानध्यायः स्मृतः सदा ” ॥ इति । धर्मोद्योतेऽपि—

“ सौराणां रात्रिमंत्राणां पैतृकाणां च नैत्यिके । जपहोमादिकार्येषु नानध्यायो न काम्यके ” ॥ इति ।

स्मृत्यर्थसारे—“ सायंसंध्यामुपास्य होमं वैश्वदेवमातिथ्यं च कृत्वा भूत्यै परिवृतो लघु

३० भुक्त्वा स्त्रिया सह सुगंधानुलेपनमाल्यतांबूलादि सेवमानं स्वपेत् । न संध्यायां शून्यालये श्रमधानं एकवृक्षे चतुष्पथे शिवमातृकाय क्षयमस्कंदभैरवाद्युपेतदेवगृहेषु देवकुले च न स्वपेत् । न धान्ये न भोगिदेवविप्राग्रे गुरुणां चोपजीविनां नाशुचिरार्द्रवस्त्रपादो न नग्नः स्वपेत् । प्राक्-शिग वा दक्षिणाशिरा वा इष्टा देवतां नत्वा स्वपेत् । वेणवं दंडं शयनीयसमीपे निधाय प्रक्षालित-पादः कृतगर्धं स्वपेत् । प्रदोषापरयामौ विद्यया नयेत् ” इति ।

आचारसारे—

- “ शुचिं देशं विविक्तं तु गोमयेनोपलेपयेत् । प्रागुदक्प्रवणे चैव संविशेत्तु सदा बुधः ॥
 “ प्राक्शिरास्तु स्वपेन्नित्यं तथा वै दक्षिणाशिराः । उदक्शिरा न स्वपेत्तु तथा प्रत्यक्शिरा न च ॥
 “ महादेवगृहे वाऽपि मातृवैश्वानरे न स्वपेत् । न यक्षनागायतने स्कंदस्यायतने तथा ॥
 “ तरुच्छायासु च तथा शर्करास्थिषु पांसुषु । न स्वपेच्च तथा दर्भे विना दीक्षां कथंचन ॥ ५
 “ धान्यगोदेवविप्राणां गुरूणां च तथोपरि । न चापि भिन्नशयने नाशुचौ नाशुचिस्तथा ॥
 “ नार्द्रवासा न नग्नश्च नोत्तराधरमस्तकः । नाकाशे पर्वते शून्ये न च चैत्यद्रुमे तथा ” ॥

आकाशे निरावणप्रदेशे । स्मृतिरत्ने—

- “ अक्षिरोगी ह्यपस्मारी ज्वरी कुष्टी क्षयी तथा । श्वासकासीति तैर्युक्तामेकशय्यां तु वर्जयेत् ।
 “ दंतिदंतमये विद्युद्गधे दग्धे पलाशजे । न शयीत नरो धान्ये शयने पंचदारुजे ॥ १०
 “ अश्मपीठस्थिते चैव करिभग्नकृते तथा ” ॥ पंचदारूणि उदुंबरवटाश्वत्थप्लक्षजंबूद्रुमाः ।

गार्ग्यः—

- “ सुखानुकूले शयने वामपार्श्वे न संविशेत् । आयुर्वामकरे प्रोक्तमुत्तानं बलवर्धनम् ॥
 “ स्वगृहे प्राक्शिराः शेते श्वाशुरे दक्षिणाशिराः । प्रत्यक्शिराः प्रवासे तु न कदाचिदुदक्शिराः ” ॥
 विष्णुः—“ सुप्रक्षालितचरणतलो रक्षां कृत्वोदकपूर्णघटादिमंगलोपेतामात्माभिरुचितापनुपहतां १५
 सुत्रामाणमिति पठन् शय्यामधिष्ठाय रात्रिसूक्तं जपित्वा विष्णुं नमस्कृत्य “ अपसर्प सर्प भद्रं
 ते ” इति श्लोकं जपित्वा इष्टदेवतां नमस्कृत्य—समाधिमास्थायान्यांश्च वैदिकान् मंत्रान्सावित्री
 जपित्वा मंगलश्रुतं शंखं च शृण्वन् दक्षिणाशिराः स्वपेत् ” । नार्द्रवासाः स्वपेत् । न पलाशशयने न
 पंचदारुकृते न गजभग्नकृते न विद्युद्गधे नाग्निप्लुष्टे न बालमध्ये न नारीमध्ये न धान्ये न गोगुरुहुता-
 शनदेवविप्राणामुपरि नोच्छिष्टो न दिवा न तैलाभ्यक्तशिराः स्पपेन्नादीक्षितः कृष्णचर्मणि ” इति । २०

श्लोकः—

- “ अपसर्प सर्प भद्रं ते दूरं गच्छ महायशाः । जनमेजयस्य यज्ञांते आस्तीकवचनं स्मरन् ” ॥

रत्नावल्याम्—

- “ मंगल्यं पूर्णकुंभं तु शिरःस्थाने निधाय तु । वैदिकैर्गार्ग्यैर्मन्त्रैः रक्षां कृत्वा स्वपेन्निशि ॥
 “ रात्रिसूक्तं जपेत्स्मृत्वा सर्वाश्च सुखशायिनः । नमस्कृत्वाऽव्ययं विष्णुं समाधिस्थः स्वपेन्निशि ” ॥ २५

सुखशायिनोऽपि गोभिलेन दर्शिताः—

- “ अगस्तिर्माधवश्चैव मुचकुंदो महाबलः । कपिलो मुनिरास्तीकः पंचैते सुखशायिनः ॥
 “ पादौ प्रक्षाल्य संमृज्य द्विराचम्य शुचिस्ततः । शुष्यत्पादास्यपाणिस्तु संविशेन्माधवं स्मरन् ” ॥ इति ।
 पाठ्यं श्लोकौ दर्शितौ—

- “ जरत्कारोर्जरत्कार्या समुत्पन्नो महायशाः । आस्तीकः सत्यसंधो मां पन्नगेभ्योऽभिरक्षतु ॥ ३०
 “ नर्मदायै नमः प्रातः नर्मदायै नमो निशि । नमोऽस्तु नर्मदे तुभ्यं पाहि मा विषसर्पतः ” ॥

दक्षः—

- “ प्रदोषपश्चिमौ यामौ वेदाभ्यासेन योजयेत् । यामद्वयं शयानस्तु ब्रह्मभूयाय कल्पते ” ॥ इति ।

मनुः (४।१४)—

- “ वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतंद्रितः । तद्धि कुर्वन् यथाशक्ति प्राप्नोति परमा गतिम् ” ॥ ३५

“ ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारानिरतः सदा । पर्ववर्जं व्रजेच्चैनामनृतौ रतिकाम्यया (३।४५) ॥

‘ उपवीती स्त्रियं गच्छेद्वतुकाले तु वै बुधः । निवीतमनृतौ कुर्यात्तद्दोषविनिवृत्तये ॥

“ अमुक्तवसना योषिद्विमुक्तवसनः पुमान् । संविशेतामुभौ मुक्तवसनौ कलिराविशेत् ॥

“ दाराप्रियैरलंकारैरलंकृत्य प्रसन्नधीः । प्रियासमीपे शयने संविशेत्प्रहरद्वयम् ” ॥

१५ बोधायनः—“ जघन्ये रात्रिपर्याये सर्वर्तुगमनमुपादिशन्ति ” । इति । वृद्धहारीतः—“ सुपुत्रकामो यः सोऽपररात्रे स्वदारमैथुनं कुर्यात् । ऋतुगमने यज्ञोपवीतमनृतुगमने निवीतम् ” ॥ इति ।

व्यासः—“ इत्येतदखिलेनोक्तहमन्यहनि वै मया । ब्राह्मणानां कृत्यजातमपवर्गफलप्रदम् ॥

“ नास्तिक्यादथवालस्यात् ब्राह्मणो न करोति यः । स याति नरकान्धोराण्काकयोनिषु जायते ॥

“ नान्यो विमुक्तये पन्था मुक्त्वाश्रमविधिं स्वकम् । तस्मात्कर्माणि कुर्वीत तुष्टये परमेष्ठिनः ” ॥ इति ।

इति वैद्यनाथदीक्षितविरचिते स्मृतिमुक्ताफले

आन्धिकधर्मनिरूपणं नाम द्वितीयः परिच्छेदः ॥

अथावशिष्टसकलधर्माः । तत्र मनुः (४।३५-३६)—

“ कृत्तकेगनखश्मश्रुदान्तः शुक्लावरः शुचिः । स्वाध्याये चैव युक्तः स्यान्नित्यमात्महितेषु च ॥

“ वैणवीं धारयेद्यष्टिं सोदकं च कमण्डलम् । यज्ञोपवीतं वेदं च शुभे रौक्मे च कुण्डले ” ॥

१५ कमण्डलुस्ताम्रादिमयः । “ कलौ पञ्च न कुर्वीत भातृजायां कमण्डलुम् ” । इति मृन्मयनारिकेलकमण्डलुनिषेधात् । वेदो धर्मपुञ्जः । स एव (४।३७)—

“ नेक्षेतोद्यन्तमादित्यं नास्तं यन्तं कदाचन । नोपसृष्टं न वारिस्थं न मध्यं न भसो गतम् ” ॥

उपसृष्टं राहुग्रस्तम् । इदं चन्द्रस्याप्युपलक्षणमिति वदन्ति ।

“ मृदं गां दैवतं त्रिषं घृतं मधु चतुष्पथम् । प्रदक्षिणानि कुर्वीत प्रज्ञानं च वनस्पतिम् ” ॥ (३९)

२० मृदं मृत्कूटम् । प्रज्ञातं प्रसिद्धम् ।

“ नाग्निं मुखेनोपधमेन्नागं नेक्षेत च स्त्रियम् । नामेध्यं प्रक्षिपेदग्नौ न च पादौ प्रतापयेत् ” ॥ (५३)

अमेध्यं अशुद्धं वस्तु ।

“ अधस्तान्नोपदध्याच्च न चैनमतिलंघयेत् । न चैनं पादतः कुर्यान्न प्राणाबाधमाचरेत् ” ॥ (५४)

प्राणाबाधमात्मनः परस्य वा पीडनम् ।

२५ “ नाग्नीयात्संधिवेलायां न गच्छेन्नापि संविशेत् । न चैव विलिखेद्धूमिं नात्मनोऽभिहरेत्स्रजम् ” ॥ (५५)

आत्मनोर्थे स्रजं स्वयं नाहरेत् ।

“ नाप्सु मूत्रं पुरीषं वा निष्ठीवं वा समुत्सृजेत् । अमेध्यलिप्तमन्यद्वा लोहितं वा विषाणि वा ” ॥ (५६)

“ नैकः स्वपेच्छून्यगृहे न शयानं प्रबोधयेत् । नोदक्ययाऽभिभाषेत न यज्ञमवृतो व्रजेत् ” ॥ (५७)

न शयानं श्रेयांसं सुप्तम् । “ न श्रेयांसं प्रबोधयेत् ” इति विशेषस्मरणात् । ‘ न यज्ञमवृतः ’

१० आर्त्विज्यं करिष्यन् ।

“ न वारयेत् गां धयन्तीं न चाचक्षीत कस्यचित् । न दिवीन्द्रायुधं दृष्ट्वा कस्यचिद्दर्शयेद्धधः ” ॥ (५९)

“ नैकः प्रपथेताध्वानं न चिरं पर्वते वसेत् । (६०) न कुर्वीत वृथा चेष्टां न वार्यजलिना पिबेत् ” ॥ (६१)

“ न नृत्येद्यथा गायेन्न वादित्राणि वादयेत् । नास्फोटयेन्न च क्ष्वेदेत्संस्क्रान्तोऽपि न रावयेत् ” ॥ (६४)

स्फोटोऽगुलिभगजातः शब्दः । क्ष्वेदोऽगुल्यास्यसंयोगजातः शब्दः । संस्क्रान्तोऽपि कामपरवशोऽपि

१५ मैथनादिषु न रावयेन्न शब्दं कुर्यात् ।

नृत्तादिविधायकं वचनं प्रतिलोमशूद्रादिविषयमिति स्मृतिरतने—

“ न पादौ धावयेत् कांस्ये कदाचिदपि भाजने । (६५)

“ उपानहौ च वासश्च धृतमन्यैर्न धारयेत् । उपवीतमलंकारं स्रजं करकमेव च ॥ (६६)

“ नाविनीतैर्वज्रेद्युर्नैर्न च क्षुब्धाधिपीडितैः । न भिन्नशृङ्गाक्षिखुरैर्न वालाधिविरूपितैः ॥ (६७)

धुर्यैः अश्वादिभिः ।

“ विनीतैस्तु व्रजेन्नित्यमाशुगैर्लक्षणान्वितैः । वर्णरूपोपसंपन्नैः प्रतोदेनातुदन्भृशम् ॥ (६८)

“ बालातपं प्रेतधूम्रं वर्जयेद्विन्नमासनम् । न छिन्धान्नखरोमाणि दंतैर्नोत्पाटयेन्नखान् ॥ (६९)

“ न मृल्लोष्ठानि मृत्नीयान्न छिन्ध्यात्करजैस्त्वृणम् । न कर्म निष्फलं कुर्यादायत्यामसुखोदयम् ॥ (७०)

आयत्यां कालांतरे ।

“ लोष्ठमर्दीं तृणच्छेदी नखखादी च यो नरः । स विनाशं व्रजत्याशु सूचकोऽशुचिरेव च ॥ (७१) १०

“ न विग्रह्यकथां कुर्याद्विहिर्माल्यं न धारयेत् । गवां च यानं पृष्ठेन सर्वथैव विगर्हितम् ॥ (७२)

“ अद्वारेण तु नातीयात् ग्रामं वा वेश्म वा वृत्तम् । रात्रौ तु वृक्षमूलानि दूरतः परिवर्जयेत् ॥ (७३)

“ नाक्षैः क्रीडेत्कदाचिच्च स्वयं नोपानहौ हरेत् । अचक्षुर्विषयं दुर्गं न प्रपथेत् कर्हिचित् ॥ (७४)

“ न विण्मूत्रमुदीक्षेत न बाहुभ्यां नर्दीं तरेत् । (७७)

“ अधितिष्ठेन्न केशास्तु न भस्मास्थिकपालिकाः । न कार्पासास्थि न तुषान् दीर्घमायुर्जिजीविषुः ॥ (७८) १५

अधितिष्ठेत्पदा । कपालिकाः भिन्नभाण्डशकलान् ।

“ न संवसेच्च पतितैर्न चंडालैर्न पुलकसैः । न मूर्खैर्न वलितैश्च नान्त्यैर्नान्त्यावसायिभिः ॥ (७९)

अंत्याः प्रतिलोमाः । अंत्यावसायिनः श्वपाकादयः ।

“ न शूद्राय मतिं दद्यान्नोच्छिष्टं न हविष्कृतम् । न चास्योपदिशेद्धर्मं न चास्य व्रतमादिशेत् ॥ (८०)

“ यस्तस्य धर्ममाचष्टे यश्चैवादिशति व्रतम् । सोऽसंवृतं नाम तमः सह तनैव गच्छति ॥ (८१) २०

“ न संहताभ्यां पाणिभ्यां कंडूयेतात्मनः शिरः । न स्पृशेच्चैतदुच्छिष्टो न च स्नायाद्विना ततः ॥ (८२)

ततः शिरसो विना । अदृष्टार्थस्नानविषयमेतत् ।

“ केशग्रहप्रहारांश्च शिरस्येतानि वर्जयेत् । शिरःस्नातस्तु तैलेन नांगं किंचिदुपस्पृशेत् ॥ (८३)

“ देवतानां गुरो राज्ञः स्नातकाचार्ययोस्तथा । नाक्रामेत्कामतश्छायां बभ्रुणो दीक्षितस्य च ॥ (१३०)

बभ्रुः कपिला गौः । छाग इत्यन्ये ।

“ मध्यंदिने वाऽर्धरात्रे श्राद्धं भुक्त्वा च सामिषम् । संध्ययोरुभयोश्चैव न सेवेत चतुष्पथम् ॥ (१३१) २५

“ उद्वर्तनमपस्नानं विण्मूत्रं रक्तमेव च । श्लेष्मनिष्ठचूतवांतानि नाधितिष्ठेच्च कामतः ॥ (१३२)

उद्वर्तनं शरीरात्त्यक्तं मलम् । अपस्नानं मृतस्नानजलम् ।

“ वैरिणं नोपसेवेत सहायं चैव वैरिणः । अधार्मिकं तस्करं च परस्यैव च योषितम् ॥ (१३३)

“ क्षत्रियं चैव सर्पं च ब्राह्मणं च बहुश्रुतम् । नावमन्येत वै भूष्णुः कृशानपि कदाचन ॥ (१३४) ३०

“ एतत्त्रयं हि पुरुषं निर्दहेदवमानितम् । नात्मानमवमन्येत पूर्वाभिरसमृद्धिभिः ॥ (१३६)

“ आ मृत्योः श्रियमाकांक्षेन्नैनां मन्येत दुर्लभाम् ॥ (१३७)

“ सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम् । प्रियं च नानृतं ब्रूयात् एष धर्मः सनातनः ॥ (१३८)

“ भद्रं भद्रमिति ब्रूयाद्भद्रमित्येव वादयेत् । शुष्कवैरं विवादं च न कुर्यात्केनचित्सह ॥ (१३९)

शुभाशुभेषु सर्वत्र भद्रं भद्रमितीरयेत् ।

“नातिकल्यन्नातिसायं नातिमध्यंदिने तथा । नाज्ञातेन समं गच्छेन्नैको न वृषलैः सह ॥ (१४०)

“हीनांगानतिरिक्तांगान्विद्याहीनान्वयोधिकान्तरूपद्रवीणहीनांश्च जातिहीनांश्च नाक्षिपेत् ॥ (१४१)

“न स्पृशेत्पाणिनोच्छिष्टो विप्रो गोब्राह्मणानलान् च अपि पश्येदशुचिः स्वच्छो ज्योतिर्गणान्दिवि ॥

(१४२)

“अनातुरः खानि स्वानि न स्पृशेदनिमित्ततः । रोमाणि च रहस्यानि सर्वाण्येतानि वर्जयेत् ॥ (१४४)

“मैत्रं प्रसाधनं स्नानमञ्जनं दन्तधावनम् । पूर्वाह्ण एव कुर्वीत देवतानां च पूजनम् ॥ (१५२)

मैत्रमुच्चारः ।

“देवतान्यभिगच्छेत्तु धार्मिकांश्च द्विजोत्तमान् । ईश्वरं चैव रक्षार्थं गुरुनेव च पर्वसु ॥ (१५३)

१० ईश्वरं राजानम् ।

“यद्यत्परवशं कर्म तत्तद्यत्नेन वर्जयेत् । यद्यदात्मवशं तु स्यात्तत्तत्सेवेत यत्नतः ॥ (१५९)

“सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् । एतद्विद्यात्समान्सेनं लक्षणं सुखदुःखयोः ॥ (१६०)

“आचार्यं च प्रवक्तारं पितरं मातरं गुरुम् । न हिंस्याद्ब्राह्मणं गां च सर्वांश्चैव तपस्विनः ॥ (१६२)

न हिंस्यात्प्रतिकूलं न कुर्यात् ।

१५ “नास्तिक्यं वेदनिंदां च देवतानां च कुत्सनम् । द्वेषं दंभं च मानं च क्रोधं तैक्ष्ण्यं च वर्जयेत् ॥ (१६३)

“परस्य दण्डं नोद्यच्छेत् क्रुद्धो नैनं निपातयेत् । अन्यत्र पुत्राच्छिष्याद्वा शिष्यार्थं ताडयेत्तु तौ ॥ (१६४)

“ब्राह्मणायावैगूर्यं द्विजातिर्वधकाक्षया । शतं वर्षाणि तामिस्ते नरके परिवर्तते ॥ (१६५)

अवगूर्यं दण्डमुद्यम्य ।

“ताडयित्वा वृणेनापि संरम्भान्मतिपूर्वकम् । एकविंशतिमा जातीः पापयोनिषु जायते ॥ (१६६)

२० “अयुध्यमानस्योत्पाद्य ब्राह्मणस्यासृगङ्गतः । दुःखं सुमहदामोति प्रेत्याप्राज्ञतया नरः ॥ (१६७)

“यावतः शोणितं पांसून्संगृह्णाति द्विजन्मनः । तावतोब्दानमुत्रान्यैः शोणितोत्पादकोद्यते ॥ (१६८)

अन्यैः इहलोके हिसितैः ।

“न पादपाणिचपलो न नेत्राचपलोऽनृजुः । न स्याद्वाक्चपलश्चैव न परद्रोहकर्मधीः ॥ (१७७)

“ऋत्विक्पुरोहिताचार्यमातुलातिथिसंश्रितैः । बालवृद्धातुरैर्वैद्यैर्ज्ञातिसंबन्धिबांधवैः ॥ (१७९)

२५ “मातापितृभ्यां जार्माभिर्भ्रात्रा पुत्रेण भार्यया । दुहित्रा दासवर्गेण न विवादं समाचरेत् ॥ (१८०)

“एतैर्विवादं संत्यज्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ” (१८१) । जार्माभिः भगिनीभिः ।

“तस्मादेतैरधिक्षिप्तः सहेतासंज्वरः सदा ” ॥ (१८५)

याज्ञवल्क्यः (आ. १५२-१५३)—

“देवत्विक्स्नातकाचार्यराज्ञां छायां परस्त्रियः । नाक्रामेद्रक्ताविण्मूत्रघृविनोद्वर्तनानि च ॥

३० “विप्राहिक्षत्रियात्मानो नावज्ञेयाः कथंचन । आ मृत्योः श्रियमन्विच्छेन्न कंचिन्मर्मणि स्पृशेत् ” ॥

विप्रो बहुश्रुतः । अहिः सर्पः ।

“गोब्राह्मणानलान् नोच्छिष्टो न पदा स्पृशेत्तानि निंदाताडने कुर्यात्पुत्रं शिष्यं च ताडयेत् ” ॥ (१५५)

पादेन त्वनुच्छिष्टोऽपि ।

“मातापित्रतिथिभ्रातृजामिसंबन्धिमातुलैः । वृद्धबालातुराचार्यवैद्यसंश्रितबांधवैः ॥ (१५७)

३५ “ऋत्विक्पुरोहितामात्यभार्यादासमनाभिभिः । विवादं वर्जयित्वा तु सर्वान्लोकान्जयेद् गृही ” ॥ (१५८)

“ परशय्यासनोद्यानगृहयानानि वर्जयेत् । अदत्तान्यग्निहीनस्य नान्नमथादनापदि ॥ (१६०)

शांडिल्यः—“ शुद्धिं कुर्यात्तथा विद्वान्मलानां देहजन्मनाम् ॥

“ कृतकेशनखश्मश्रुस्त्रिपक्षेषु गृही भवेत् । नाप्सु स्वप्रतिबिम्बं तु तेजस्कामो निरीक्षयेत् ॥

“ निष्फलं वर्जयेत्कर्म प्रेतधूमं नदीतरम् । नांतरागमनं कुर्याद्देवताबलिपीठयोः ” ॥

व्यासः—

“ न कुर्याद्बहुभिः सार्धं विरोधं ब्राह्मणैस्तथा । आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ॥

“ तिथिपक्षांश्च न ब्रूयान्न नक्षत्राणि निर्दिशेत् । न चात्मानं प्रशंसेत् परनिंदां च वर्जयेत् ॥

“ यस्तु देवानृषीन् विप्रान् वेदान् वा निंदति द्विजः । न तस्य निष्कृतिर्दृष्टा शास्त्रेषु च मुनीश्वरैः ॥

“ निन्दयेद्यो गुरुं देवान्न वेदांश्चोपबृंहयेत् । कल्पकोटिशतं साग्रं रौरवे पच्यते नरः ॥

“ तूष्णीमासीत् निंदायां न ब्रूयात्किंचिदुत्तरम् । कर्णौ पिधाय वस्तव्यं न चैतानवलोकयेत् ॥ १०

“ विवादं स्वजनैः सार्धं न कुर्याद्द्वै कदाचन ॥

“ न पापं पापिनं ब्रूयात् अपापं वा द्विजोत्तमः । सत्येन तुल्यदोषः स्यान्मिथ्या द्विर्दोषवान्भवेत् ॥

“ नेक्षेतोद्यंतमादित्यं शशिनं चानिमित्ततः । नास्तं यंतं न वारिस्थं नोपसृष्टं न मध्यमम् ॥

“ तिरोहितं वाससा वा नादर्शाद्यनुगामिनम् । न गन्नां स्त्रियमीक्षेत पुरुषं वा कदाचन ॥

“ न पश्येत्प्रेतसंस्पर्शं न क्रुद्धस्य गुरोर्मुखम् । न तैलोदकयोश्चच्छायां न पत्नीं भोजने सतीम् । १५

“ नोदके चात्मनो रूपं न कूपे श्वभ्र एव वा । न लंघयीत् मतिमान् नाधितिष्ठेत् कथंचन ॥

“ न हीनानुपसेवेत् न च तीक्ष्णमतिर्भवेत् । नात्मानं चावमन्येत दैन्यं यत्नेन वर्जयेत् ॥

“ न सर्पश्चैः क्रीडेत स्वानि खानि न च स्पृशेत् । नाभिहन्याज्जलं पभ्यां पाणिना वा कदाचन ॥

“ न शातयेदिष्टकाभिः फलानि न फलेन च । न म्लेच्छभाषां शिक्षेत न कर्षेच्च पदासनम् ॥

“ न दंतैर्नखरोमाणि छिंद्यात्सुप्तं न बोधयेत् । न बालातपमासेवेत्प्रेतधूमं विवर्जयेत् ॥ २०

“ नाकारणाद्वा निष्ठीवेत्स्वयं नोपानहौ हरेत् । न पादक्षालनं कुर्यात्पादेनैव कदाचन ॥

“ नाग्नौ प्रतापयेत्पादौ न कांस्ये धावयेद्बुधः । नातिप्रसारयेद्देवं ब्राह्मणं गामथापि वा ॥

“ वार्यग्निगुरुविप्रान्वा सूर्यं वा शशिनं प्रति । नाशुद्धोऽग्निं परिचरेन्न देवप्रतिमां स्पृशेत् ॥

“ नावगाहेद्गधांबु नाप्सु रेतः समुत्सृजेत् । व्यतिक्रामेन्न प्रपन्नान्नाप्सु मैथुनमाचरेत् ॥

“ चैत्यवृक्षं न वै छिंद्यान्नाप्सु धीवनमुत्सृजेत् । न चाग्निं लंघयेद्द्विमात्रोपदध्याधः क्वचित् ॥ २५

“ न कूपमवरोहेत् न वीक्षेताशुचिः क्वचित् । अग्नौ न प्रक्षिपेदग्निं नाग्निं प्रशमयेत्तथा ॥

“ सुहृन्मरणमार्तिं वा न स्वयं श्रावयेत्परान् । न भिंद्यात्पूर्वसमयमभ्युपेतं कदाचन ॥

“ परस्परं पशून्बालान्पक्षिणो नावबोधयेत् । सायं प्रातर्गृहद्वारं भिक्षार्थं नावघाटयेत् ॥

“ स्वयमाग्निं न हस्तेन स्पृशेन्नाप्सु चिरं वसेत् । न वीजयेच्च वस्त्रेण समवायं च वर्जयेत् ॥

“ नोपानद्दर्जितो यायान्न विना च कर्मण्डलुम् । नाग्नेर्गोब्राह्मणादीनामंतरेण व्रजेत्क्वचित् ॥ ३०

“ वर्जयेन्मार्जनीरेणुं स्नानवस्त्रघटोदकम् ” ॥ विष्णुपुराणे (३।१२।८-१०)—

“ नावगाहेज्जलौघस्य वेगमध्ये नरेश्वर । प्रदीप्तं वेश्म न विशेषारोहेच्छिखरं तरोः ॥

“ न कुर्याद्वृत्तसंघर्षं न कुर्यान्नासिकारवम् । नासंवृतमुखो जृम्भेच्छ्वासकासौ विवर्जयेत् ॥

“नोच्चैर्हसेत्सशब्दं च इमश्रूणि च न भक्षयेत् । दुष्टस्त्रीसंनिकर्षं च वर्जयेन्निशि सर्वदा ॥
 “नैकः शून्याटवीं गच्छेन्न च शून्यगृहे वसेत् । स्नानार्द्रधारणीं चैव दूरतः परिवर्जयेत् ॥
 “उपसर्पेन्न च व्यालांश्चिरं तिष्ठेन्न चोत्थितः । अतीव जागरस्वप्ने तद्वत्स्नानासने बुधः ॥
 “न सेवेत तथा शय्यां व्यायामं च नरेश्वर । दंष्ट्रिणः शृंगिणश्चैव प्राज्ञो दूरेण वर्जयेत् ॥

५ “वालातपमवश्यायं पुरोवातं च वर्जयेत् ।

“विरोधं नोत्तमैर्गच्छेन्नाधमैश्च सदा बुधः । विवादश्च विवाहश्च तुल्यशीलैस्तथेष्यते ॥

“अप्यल्पहानिः सोढव्या वैरादर्थ्यागमं त्यजेत् । योषितो नावमन्येत न चासां विश्वसेद्बुधः ।

“नोर्ध्वं न तिर्यक् दूरं वा निरीक्षन् पर्यटेद्बुधः । युगमात्रं महीपृष्ठं नरो गच्छेद्विलोकयन् ” ॥

स्मृत्यन्तरे—“दिगंबरं मुक्तकच्छं तथा कौपीनधारिणम् । गृहस्थं भजते तावदलक्ष्मीः कलहोत्सुकम् ॥

१० “दीपच्छाया नरच्छाया वस्त्रकेशनखोदकम् । अजारजः खररजस्तथा संमार्जनीरजः ।

“स्त्रीणां पादरजश्चापि शक्रस्यापि श्रियं हरेत् ॥

“हविर्गधो गवां रेणुर्वेदानां ध्वनिरेव च । अपि गोदोहमात्रेण सर्वपापं व्यपोहति ॥

“द्रव्याणामुत्तमानां चलधने श्रीर्विनिश्चयति । तथाधमानां गृह्णाति तमलक्ष्मीश्च सत्वरम् ॥

“यद्गृहे लक्ष्यते नित्यं रंगवल्लभ्यनुलेपनम् । तद्गृहे वसते लक्ष्मीर्नित्यं पुण्यफलान्विता ” ॥

१५ संग्रहे—

“अजखरकरभाश्वपादपांसुस्तुषकणिकागृहमार्जनीरजश्च ॥

“परमुखपरवस्त्रशूर्पजातो मरुदपि देहभृतां करोत्यलक्ष्मीम् ॥

“अनवधानतया गृहमार्जनी स्पृशति यद्यपि गात्रमथ क्षणात् ॥

“शिरसि दीपशिखा च यदा भवेत्कनकयुक्तजलेन विशोधयेत् ॥

२० “अच्छिद्रकुंभस्रुततोयधारास्नानं नखश्मश्रुशिरोरुहांभः ।

“स्नानांबुदेहांवुपरस्य पुंसां दारिद्र्यदुःखाजयमृत्युदं स्यात् ” ॥

आपस्तम्बः (१।१।३०।७, १०-१४; ३।१९-१७)—“पूर्वेण ग्रामान्निष्क्रमणप्रवेशनानि शीलयेदुत्तरेण वा । सर्वान् रागान्वाससि वर्जयेत् (१०) । कृष्णं च स्वाभाविकम् (११) । दिवा च शिरसः प्रावरणं वर्जयेन्मूत्रपुरीषयोः कर्म परिहाप्य (१४) । स्तृहर्ती च गां नाचक्षीत । संसृष्टो च

२५ वत्सेनानिमित्ते । नाधेनुमधेनुरिति ब्रूयात् । धेनुं भव्येत्येव ब्रूयात् । न भद्रं भद्रमिति ब्रूयात्पुण्यं प्रशास्तमित्येव ब्रूयात् । वत्सतंत्रीं च नोपरि गच्छेत् । प्लेखावन्तरेण च नातीयात् । नासौ मे सपत्न इति ब्रूयात् । यद्यसौ मे सपत्न इति ब्रूयात् द्विपतं भातृव्यं जनयेत् । नैद्रधनुरिति परस्मै ब्रूयात् । न पततः संचक्षीत ” इति । स्तृहर्ती सस्यधान्यादिकं भक्षयन्तीं गां स्वामिने न ब्रूयात् । भविष्यन्ती धेनुः धेनुं भव्या । वत्सानां वंधनी रज्जुः वत्सतंत्री । प्लेहो डोलास्तम्भौ तयोर्मध्ये

३० न गच्छेत् । पततः पक्षिणः संधीभूय स्थितान् न संजक्षीत । डयन्त एत इति न गणयेदित्यर्थः । स एव (२।१।१५)—“नित्यमुदधानान्यद्भिररिक्तानि स्युर्गृहमेधिनोर्व्रतम् ” इति । गृहे यावन्ति उदधानानि उदपात्राणि घटकरकादीनि तानि सदा अद्भिररिक्तानि स्युरित्यर्थः ।

स एव (१।१।३०।१-२७)—“नगरप्रवेशनानि च वर्जयेत् । प्रश्रं च न विब्रूयात् । अथाप्युदाहरंति ।

“मूलं तूलं बृहति दुर्विबुक्तः प्रजां पशूनायतनं हिनस्ति ।

३५ “धर्मप्रल्हाद न कुमालनाथ रुदन्ह मृत्युर्व्युवाच प्रश्नमिति ” ।

“गार्दभं यानमारोहणे विषमारोहणावरोहणानि च वर्जयेत् । बाहुभ्यां च नदीतरम् । नावं च सांशयिकीम्” । इति । प्रश्नं पृष्ठं दुर्निरूपमर्थमिदमित्थमिति विविच्य न ब्रूयात् । अपि चास्मिन्नर्थे श्लोकमुदाहरति । दुर्विवक्तुस्तदेव दुर्वचनं मूलं तूलं च वृहति । मूलं पित्रादयः । तूलमागामिनी-संपत्तदुभयमप्युत्पाटयति । प्रजादिकं च हिनास्ति । अतो दुर्विवचनसंभवात् प्रश्नमात्रमेव न विब्रूयात् । इतिहासोऽत्र । कस्यचिद्वेषधर्मप्रल्लादः कुमालनश्च द्वौ शिष्यावास्ताम् । तौ कदाचि- ५
दरण्यान्महान्तौ समिद्धारावाहृत्य श्रमादाचार्यगृहे प्राक्षिपताम् । तयोरेकेनाचार्यपुत्रः शिशु-
राक्रान्तो मृतः । ततः शिष्यावाहूयाचार्यः पप्रच्छ केनायं मारित इति । तावुभावपि न मयेत्यूचतुः ।
ततो मुनिर्मृत्युमाहूय पप्रच्छ । केनायं व्यापादित इति । ततो मृत्युः रुदन्नेव प्रश्नं व्युवाच
विविच्य कथितवान् । हे धर्मप्रल्लाद न कुमालनाय । कुमालनस्य नेदं पतनीयमिति तवास्ती-
त्यर्थाद्विद्म्यत इति रुदन् व्युवाचेत्यर्थः ।

१६

स एव (१।११।३१।१९-२१)—“दिवादित्यः सत्वानि गोपायति नक्तं चंद्रमास्तस्मादमा-
षास्यायां निशायां स्वाधीय आत्मनो गुप्तिमिच्छेत्प्रायत्यब्रह्मचर्याभ्यां कालेचर्यया च । सह
ह्येतां रात्रिं सूर्याचंद्रमसौ वसतो न कुसृत्या ग्रामं प्रविशेद्यदि प्रविशेत् नमोरुद्राय वास्तोष्पतय
इत्येतामृचं जपेदन्यां वा रौद्रीम्” इति । स्वाधीयः भृशतरमात्मनो गुप्तिं रक्षामिच्छेत्केन प्रकारेण
प्रायत्येन ब्रह्मचर्येण काले चर्यया कालकृतदेवार्चनजपादिक्या च । कुसृत्या कुमारेण । १५
अन्यां वा रौद्रीं इमां रुद्राय तव स इत्यादिकामित्यर्थः ।

अत्र वाजसनेयिनां गृह्ये—“वनं प्रवेक्ष्यन्ननुमंत्रयते नमो रुद्राय वनसदे स्वस्ति मा
संपारयेति । पंथानमारोक्ष्यन्ननुमंत्रयते नमो रुद्राय पथिषदे स्वस्तिमा संपारयेत्यग्ः
प्रवेक्ष्यन्ननुमंत्रयते । नमोरुद्रायप्सुषदे स्वस्ति मा संपारयेति । तस्माद्यत्किंचन कर्म कुर्वन्
स्यात्तत्सर्वं नमोरुद्रायेत्येव कुर्यात् । ‘सर्वो ह्येष रुद्र’ इति श्रुतेरिति” । गौतमः (१।८, ९, १०-१२-३२-३७)—“न रुद्रश्मश्रुरकस्मात् । नाग्निमपश्च युगपद्धारयेत् । न भस्मेऽह्नि-
करीषकपालामेध्यान्यधितिष्ठेन्नन् (१५) । न म्लेच्छानुच्यवार्मिकैः सह संभाषे-
संभाष्य पुण्यकृतो मनसा ध्यायेत् (१७) । ब्राह्मणेन वा सह संभाषेत (१८) ।
धेनुभव्येति ब्रूयात् । अभद्रं भद्रमिति । कपालं भगादिति । नणिधेनुरिति इंद्रदेवता-
नाचक्षीत । न चैनां वारयेत् (२५) । विद्वद्भिर्यजमानान्यवारणानि न कुर्यात् ।
सह भोजनांजन्त्यवेक्षणकुद्वारप्रवेशनपद- ३३-३४-३५-३६-३७-३८-३९-४०-४१-४२-४३-४४-४५-४६-४७-४८-४९-५०-५१-५२-५३-५४-५५-५६-५७-५८-५९-६०-६१-६२-६३-६४-६५-६६-६७-६८-६९-७०-७१-७२-७३-७४-७५-७६-७७-७८-७९-८०-८१-८२-८३-८४-८५-८६-८७-८८-८९-९०-९१-९२-९३-९४-९५-९६-९७-९८-९९-१००-
रोहणावरोहणप्राणव्यायच्छनानि च वर्जयेत् । न रुद्रिणां नादनदिने-
गोपायेत् । न प्रावृत्य शिरोऽहनि पश्येत् । न गार्ग्यं । मृत्रोच्चने-
लेखनं अशुचिना काष्ठादिना शिरःप्रसृतेः कृच्छ्रं । अत्र वृत्तिर्यत्र-
वेक्षणं तैलाभ्यंगं कुर्वन्त्या अवेक्षन् । न रुद्रं न रुद्रं पादेन-
पीठकादिः । प्राणव्यायच्छनं प्राणोन्नेत्युच्यते । न रुद्रं न रुद्रं-
३३-३४-३५-३६-३७-३८-३९-४०-४१-४२-४३-४४-४५-४६-४७-४८-४९-५०-५१-५२-५३-५४-५५-५६-५७-५८-५९-६०-६१-६२-६३-६४-६५-६६-६७-६८-६९-७०-७१-७२-७३-७४-७५-७६-७७-७८-७९-८०-८१-८२-८३-८४-८५-८६-८७-८८-८९-९०-९१-९२-९३-९४-९५-९६-९७-९८-९९-१००-

भेदनविलेखनविमर्दनावस्फोटनानि नाकस्मात् कुर्यान्नोपरिवत्सतन्तीं गच्छेन्न कुलं कुलः स्यात् । न यज्ञमवृतो गच्छेत् । दर्शनाय तु कामम् । प्रशस्तमङ्गल्येदेवायतनचतुष्पथान् प्रदक्षिणमावर्तेत (६७) । मनसा वा तत्समग्रमाचारमनुपालयेदापत्कल्पो यच्चात्मवन्तो वृद्धाः सम्यग्विनीता दंभलोभमोहवियुक्ता वेदविद आचक्षते तत्समाचरेत् ” इति ।

- ५ बोधायनः (२।३।२८-३१; ४०)—“वेणवं दंडं धारयेद्वृक्मकुण्डले च पदा पादस्य प्रक्षालनमाधिष्ठानं च वर्जयेत् ” । “ शुक्ला रुक्षाः परुषा वाचो न ब्रूयात् (४०) । न कूपमवेक्षेत (४७) । न गर्तमवेक्षेत (४८) । न तत्रोपविशेद्यत एनमन्य उत्थापयेत् (४९) । पुररेणुकुण्ठित-शरीरस्तत्परिपूर्णनेत्रवदनस्तु नगरे वसन् सुनियतात्मा सिद्धिमवाप्स्यती न तदास्ति (५३) । “ रथाश्वगजधान्यानां गवां चैव रजः शुभम् । अप्रशस्तं समूहन्याः श्वाजाविखरवाससाम् ” ॥

- १० पूज्यान् पूजयेदिति ॥ (५५) ।

देवलः—

“ आत्मानं न शपेद्दोषान् न ब्रजेन्न स्वपेद्दिवा । न नक्तं विलिखेद्भूमिं गाश्च रात्रौ तु न स्पृशेत् ॥
“ ब्राह्मणान्त्वपतीन् वृद्धान् स्वांश्च ज्ञातीन्यतीनपि । नाक्रोशेन्नावमन्येत पूजयेद्देवतं यथा ॥
“ यः काष्ठपादुकारूढो गृहात्परगृहं ब्रजेत् । तं दृष्ट्वा तु दुराचारं सूर्यश्चैव निमीलति ” ॥

- १५ अपरार्के—

“ छाया स्याद्वासवर्गस्तु दुहिता कृपणस्तथा । तस्मादेतैरधिक्षितः सहेतासंज्वरः सदा ” ॥

मार्कण्डेयः—

“ असत्प्रलापमनृतं वाक्पारुष्यं च वर्जयेत् । असच्छास्त्रमसद्वादमसत्सेवां च वै नरः ” ॥

चतुर्विंशतिमते—

- २० “ कृष्णसर्पं द्विजं दृष्टं शूद्रं च प्रतिवादकम् । गर्दभं जारजातं च दूरतः परिवर्जयेत् ॥
“ नोद्यानादावकालेषु प्राज्ञस्तिष्ठेत्कदाचन ” ॥ स्मृतिरत्ने—
“ वासस्तिरोहितं सूर्यमादर्शेन्नुनि विंवितम् । आयुष्कामो न वीक्षेत न च्छायामात्मनो जले ॥
“ नांजयन्तीं स्त्रियं नेत्रे न चाभ्यक्तामनावृताम् । न पश्येत्प्रस्वपन्तीं च तेजस्कामो द्विजोत्तमः ॥
“ नासहायो ब्रजेद्रात्रावुत्पथे न चतुष्पथे । न यज्ञमवृतो गच्छेदात्विज्यार्थं क्वचित् द्विजः ॥
२५ “ नमस्कृत्य ब्रजेत्कामं दिदृक्षुर्यज्ञमेव वा । दिवा स्वप्नं तथा लस्यं पैशुन्यं च तथा मदम् ॥
“ अभियोगमयोगं च श्रेयोर्थी परिवर्जयेत् ” ॥

अपरार्के—“निंदा मृत्युपदं ज्ञेयं निवृत्तिस्तमसः पदम् । सर्वभूतात्मभूतत्वादार्जवं ब्रह्मणः पदम् ॥

“ द्वौ मासौ पाययेद्दत्तं वृत्तीये द्विस्तनं दुहेत् । चतुर्थे त्रिस्तनं शेषं यथान्यायं यथावलम् ॥

“ अंतःपुरं वित्तगृहं परद्रोहिगतं तथा । न गच्छेद्द्वंधनागारं वध्यभूमिं च गर्हिताम् ॥

- ३० “ गोपयेज्जन्मनक्षत्रं घनमायुर्गृहे वलम् । वेगरोधो न कर्तव्यस्त्वन्यत्र क्रोधवेगतः ॥

“ नोपेक्षितव्यो व्याधिः स्यान्मृदुरल्पोपि वा नृणाम् । विभीतककपित्थार्कं स्नुहिच्छायां न चाश्रयेत् ॥

“ स्तंभदीपमनुष्याणामन्येषां प्राणिनां तथा । गोगजाश्वजपुच्छेषु मुखेषु च विशेषतः ॥

“ यद्वृक्षमुदकं तस्य विपृषो दूरस्त्यजेत् ” ॥

धर्मसारे—“खगवाताः शूर्पवातो वातो प्राणिमुखोत्थितः सुकृतानि निहंत्येते संस्पृष्टाः पुरुषस्य च” ॥

शातातपः—

“ रेणवः शुचयः सर्वा वायुना समुदीरिताः । अन्यत्र रासभाजाविसमुहाजिनवाससाम् ॥

“ अजाविरेणुसंस्पर्शादायुर्मर्त्यस्य हीयते । श्वकाकोष्ठसरोलूकसूकरग्रामपक्षिणाम् ” ॥

धर्मसारे—

“ गोविप्रयोर्ब्राह्मणाग्नयोर्द्विपत्योर्गुरुशिष्ययोः । अंतरेण न गच्छेत्तु हरस्य वृषभस्य च ” ॥ देवलः— ५

“ विद्या वित्तं तपश्चेति त्रीणि तेजांसि देहिनः । इह चामुत्र च श्रेयः सदैतैः साध्यते त्रिभिः ॥

“ विद्यया विमलं ज्योतिर्वित्तत्यागात्सुखोदयम् । तपसा विमलं भूतिं प्राप्नुयान्मानवास्त्रिभिः ” ॥

शंखलिवितौ—

“ आपत्स्वपि च कष्टासु परस्वं कामयेत न । नाभक्ष्यं भक्षयेत्किञ्चिन्नापूर्वचरितं चरेत् ॥

“ अकर्तव्यं न कर्तव्यं प्राणैः कंठगतैरपि । कर्तव्यमेव कर्तव्यं प्राणैः कंठगतैरपि ” ॥ १०

बृहस्पतिः—

“ यथा विद्या यथा कर्म यथा वित्तं यथा वयः । जानंस्तथैव कुर्वीत न वेषादिभिरुद्धतः ॥

“ यद्यपि स्यात्त्रिलोकज्ञः त्रैलोक्याकर्षणक्षमः । तथापि लौकिकाचारं मनसाऽपि न लंघयेत् ” ॥

यमः—“ परकीयरहस्यानि नैवोपशृणुयात्कचित् ॥

“ दुष्टवाक्यं न च ब्रूयाद्ब्राह्मणानां विशेषतः । तूष्णीमासीत् निन्दायां न ब्रूयात् किञ्चिदुत्तरम् ॥ १५

“ यानि मिथ्याभिशास्तानां पतंत्यश्रूणि रोदनात् । तानि मित्रपशून् घ्नन्ति तेषां मिथ्याभिशांसिनाम् ॥

“ शपता यत्कृतं पुण्यं शप्यमानं तु गच्छति । शप्यमानस्य यत्पापं शपन्तमनुगच्छति ” ॥

बृहस्पतिः—

“ उपकाराय यो ब्रूयाद् ब्राह्मणार्थं गवामपि । ब्रह्मयोनिशतं प्राप्य देवत्वमधिगच्छति ” ॥

व्यासः—

२०

“ वेदशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम् । व्यसनेनैव मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा ” ॥

याज्ञवल्क्यः (आ. १२३)—

“ वयोबुद्ध्यर्थवाग्वेषश्रुताभिजनकर्मणाम् । आचरेत्सदृशीं वृत्तिमजिह्वामशठां तथा ” ॥

स्मृत्यर्णवे—

“ सर्वेषां ब्राह्मणो विद्यावृत्त्याचारान् यथाविधि । प्रब्रूयादितरेभ्यश्च स्वयं चैव तथा भवेत् ॥ २५

“ अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्रेयोऽनुशासनम् । वागेव मधुरा श्लक्षणा प्रयोज्या धर्ममीप्सता ॥

“ सन्मानाद्ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत भयादिव । अमृतस्येव चाकांक्षेद्वमानस्य सर्वतः ॥

“ अवमानात्तपोवृद्धिः संमानाच्च तपःक्षयः । अर्चितः पूजितो विप्रो दुग्धा गौरिव गच्छति ” ॥

व्यासः—

“ प्रथमा गतिरात्मैव द्वितीया गतिरात्मजः । संतो गतिस्तृतीयोक्ता चतुर्थी धर्मसंग्रहः ” ॥ ३०

दक्षः—

“ पैशून्यमनृतं मायां कामं क्रोधं तथाप्रियम् । द्वेषं संगं परद्रोहं विकर्माणि विवर्जयेत् ॥

“ आयुर्वित्तं गृहच्छिद्रं मंत्रो मैथुनमौषधम् । आयौ दानावमानौ च नव गोप्यानि सर्वदा ” ॥

स्मृतिसारे—“ रक्तमाल्यं न धार्यं स्याच्छुक्लं धार्यं तु पंडितैः ॥

“वर्जयित्वा तु कमलं तथा कुवलयं विभो । रक्तं शिरस्यधार्यं तु तथा नाग्नेयमित्यपि ” ॥

वामनपुराणे—“देशानुशिष्टं कुलधर्ममग्र्यं स्वगोत्रधर्मं च न संत्यजेत ।

“नानर्थसिद्धिं समुपाचरेत् नासत्प्रलापं न च सत्यहीनम् ॥

“न निष्ठुरं नाम न शास्त्रहीनं वाक्यं वदेत्साधुजनेन येन ॥

५ “निधो भवेन्नैव च धर्मवेदी संगं न चासत्सु जनेषु कुर्यात् ॥

“वृथाटनं वृथादानं वृथा च पशुमारणम् । न कर्तव्यं गृहस्थेन वृथा दारपरिग्रहः ” ॥

बोधायनः (१।५।८७)—“यद्यौवने च रतिविभ्रमेण सद्वाऽसद्वा यादृशं वा यथा वा ।

“उत्तरे चेद्वयसि साधुवृत्तस्तदेवास्य भवति नेतराणि ” ॥

देवलः—“अग्नेर्वृषलभुक्तस्य ग्रहणं नास्त्यनापदि । श्वपाको वृषलो भोक्तुं ब्राह्मणाग्निं च नार्हतः ॥

१० “चंडालाग्नेरमेध्याग्नेः सूतकाग्नेश्च कर्हिचित् । पतिताग्नेश्चिताग्नेश्च न शिष्टैर्ग्रहणं स्मृतम्” ॥ इति ।

आश्वमेधिके—“पचनाग्निं न गृहीयात् परवेश्मनि जातुचित् ॥

“तेन पक्वेन चान्नेन यत्कर्म कुरुते शुभम् । तच्छुभस्य फलस्यार्थं अग्निदस्य भवेद्द्रुवम् ” ॥

दक्षः—

“मेखलाजिनदंडेन ब्रह्मचारीति लक्ष्यते । गृहस्थो यद्विदेदाद्यैर्नखरोम्णा वनाश्रितः ॥

१५ “त्रिदंडेन यतिश्चात्र लक्षणानि पृथक् पृथक् । यस्यैतल्लक्षणं नास्ति प्रायश्चित्ति न चाश्रमी ॥

“कुटुंबी वर्जयेद्विषं दार्वं शैलं च मृन्मयम् । गृहभित्तिषु संस्थं च योगनिद्रारसोत्सुकम् ॥

“कुटुम्बिनो विनाऽन्येषां तीर्थयात्रा विशिष्यते । कुटुम्बिनो गृहे सर्वं निर्गतो विकलो भवेत्” ॥

सायणीये—

“पुंसां दीपप्रशमनात्स्त्रीणां कूष्मांडखंडनात् । अचिरेणैव कालेन वंशच्छेदो भविष्यति ॥

२० “क्षुतस्खलितजृम्भेषु नृणामायुः प्रहीयते । तत्क्षणात्परिहर्तव्यं जीवधून्यंगुलिस्वनैः ” ॥

क्षुते ‘शतं जीव’ इति स्खलिते पांसूनादाय ललाटे निधाय परिहार्यम् । जृम्भणे अंगुलिस्फोटनेन परिहर्तव्यमित्यर्थः ।

“अयोवीजजलान्नाग्निक्षीरधान्यौषधादिकम् । रात्रौ दानुर्गृहं शून्यं प्रतिसंग्रहणं शुभम् ” ॥

किञ्चिद्द्रव्यादानेन क्षीरादिदाने नक्तं न दोष इत्यर्थः ।

२५ स्मृत्यंतरे—“तृतीयमासादारभ्य न कुर्याद्गर्भिणीपतिः ।

“क्षौरं शवानुगमनं दूरयात्रां प्रतिग्रहम् । श्राद्धं च सागरस्नानं प्रेतनिर्हरणं तथा ॥

“गृहारंभप्रवेशौ च देवतास्थापनं तथा । केशश्मश्रुनखादींस्तु धारयेद्गर्भिणीपतिः ” ॥ इति ।

पुराणे—

“धर्मो मित्रं प्रमीतस्य विद्या मित्रं प्रवासिनः । भार्या मित्रं गृहस्थस्य दानं मित्रं मरिष्यतः ॥

३० “केशान्मासत्रयादूर्ध्वं गर्भवान्त्रापयेद्यदि । गर्भध्वंसेन तत्तुल्यं ब्रह्महत्यासमं भवेत् ॥

“क्षौरं शवानुगमनं नखकृतनं च श्राद्धं च वास्तुकरणं ह्यतिदूरयानम् ॥

“उद्वाहवारिधिजलस्नपनोपयोगं आयुःक्षयं भवति गर्भिणिकापतीनाम् ” ॥

सारसमुच्चये—

“बीजानां वापनं क्षौरं वास्तुकर्म कृषिं तथा । रात्रौ विप्रो न कुर्वीत कुर्वन्निक्षप्रं विनश्यति ॥

“चौलाब्दे च विवाहाब्दे ह्यौपनायनिके तथा । मात्रापित्रोर्मृताब्दे च क्षौरं नैव समाचरेत् ॥
चंद्रिकायाम्—

“नोदन्वदंभासि स्नायान्नखश्मश्रुनिक्कृतनम् । अंतर्वत्न्याः पतिः कुर्वन्व्रजते नरकं ध्रुवम् ॥
“वापयेन्न कृतोद्वाहो वर्षं वर्षार्धमेव वा । भुंजीत पार्वणं नैव श्राद्धं तत्र विशेषतः ॥
“एकोदराणां पुत्राणां पितुश्चैकदिने तथा । श्राद्धे तु भोजनं नैव क्षौरकर्म न चैव हि ॥ ५
“पितुः पुत्रस्य चैकस्मिन्दिने क्षौरं कृतं यदि । पुत्रस्य चायुर्हीयेत पितुश्च तदनंतरम् ॥
“नित्यं नैमित्तिकं चैव कर्म कुर्वन्नतंद्रितः । निषिद्धं वर्जयन् धीमानिहामुत्र सुखी भवेत् ॥” इति ।
इत्यवशिष्टधर्मप्रकरणम् । अथ द्रव्यशुद्धिः । तत्र शुद्धिहेतूनाह पराशरः—

“कालोऽग्निः कर्ममृदायुर्मनो ज्ञानं तपो बलम् । पश्चात्तापो निराहारः सर्वेऽमी शुद्धिहेतवः ॥
“त्रीणि देवाः पवित्राणि ब्राह्मणानामकल्पयन् । अदृष्टमद्भिर्निर्णीतं यच्च वाचा प्रशस्यते ॥ १०
“ब्राह्मणा जगमं तीर्थं तीर्थभूता हि साधवः । तेषां वाक्योदकेनैव शुध्यन्ति मलिना जनाः ॥”
बोधायनः (१।५।४६।४८)—

“कालेऽग्निर्मनसः शुद्धिरुदकाद्युपलेपनम् । अविज्ञानं च भूतानां षड्विधं शौचमुच्यते ॥
“कालं देशं तथाऽऽत्मानं द्रव्यं द्रव्यप्रयोजनम् । उपपत्तिमवस्थां च ज्ञात्वा शौचं समाचरेत् ॥
“पंचेन्द्रियस्य देहस्य बुद्धेश्च मनसस्तथा । द्रव्यदेशक्रियाणां च शुद्धिराचार्य उच्यते ॥ १५
मनुः (५।१०४)—

“ज्ञानं तपोगिराहारो मृन्मनो वार्युपांजनम् । वायुः कर्मार्किकालौ च शुद्धेः कर्तृणि देहिनाम् ॥
आहारः पंचगव्यादिः । उपांजनं गोमयादिकम् । स एव (५।१०६, १०८)—
“क्षांत्या शुध्यन्ति विद्वांसो दानेनाकार्यकारिणः । प्रच्छन्नपापा जप्येन तपसा वेदवित्तमाः ॥
“अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति । विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति ॥ २०
अशुद्धिहेतवो दर्शिताः स्मृत्यर्थसारे—“विण्मूत्रशुक्लरक्तवसासुरामद्यादीन्यत्यंतोपहतिकार-
णानि नखश्लेष्माश्रुस्वेदादीन्यल्पोपहतिकारणानि ” । अल्पकालेऽल्पस्पर्शे अल्पोपहतिः ।
बहुकालेऽधिकस्पर्शेऽत्यंतोपहतिरिति ।

मनुः (५।११०—१११)—

“तैजसानां मणीनां च सर्वस्याश्रममयस्य च । भस्मनाऽद्धिर्मृदा चैव शुद्धिरुक्ता मनीषिभिः ॥ २५
“निर्लेपं कांचनं भांडमद्भिरेव विशुध्यति । अब्जमश्ममयं चैव राजतं चानुपस्कृतम् ॥
अब्जं शंखमुक्तादिकम् । अनुपस्कृतं निर्लेपम् । एवं विशेषणात्सलेपविषयः पूर्वश्लोकः ॥
“ताम्रायःकांस्यरौप्याणां त्रपुणः सीसकस्य च । शौचं यथार्हं कर्तव्यं क्षाराम्लोदकवारिभिः ॥” (११०)
उशनाः —“मूत्रपुरीषरेतःकुणपोपहतानामावर्तनमुल्लेखनं भस्मना त्रिःसप्तकृत्वः परिमार्जनं
अतैजसानामेवंभूतानामुत्सर्गः ” इति ।

कण्वः—“श्लेष्माद्युपहतानां प्रतिलोमस्पर्शोपहतानामेकविंशतिकृत्वो मार्जनं रजस्वलोच्छिष्टाना-
मेकदिनं पंचगव्यं प्रक्षिप्यैकविंशतिकृत्वो मार्जनं अस्पृश्योपहतानामावर्तनम् ” इति ।

पराशरः (७।२३)—“भस्मना शुध्यते कांस्यं ताम्रमम्लेन शुध्यति ।

“भस्मना शुध्यते कांस्यं सुरया यन्न लिप्यते । सुरामात्रेण संस्पृष्टं शुध्यतेऽग्न्युपलेखनेः ” ॥

उपलेखनं शस्त्रेणोपरिभागस्य तक्षणम् । मूत्रपुरीषलेपेभ्यैव शुद्धिः । गवाघ्रातादीनां दशकृत्वो भस्मकर्षणेन शुद्धिरित्याह स एव (७२४-२५१२७)—

“ गवाघ्रातानि कास्यानि श्वकाक्रोपहतानि च । शुध्यंति दशभिः क्षारैः शूद्रोच्छिष्टानि यानि च ॥

“ गंधूषं पादशौचं च कृत्वा वै कांस्यभाजने । षण्मासान्भुवि निक्षिप्य उद्धृत्य पुनराहरेत् ॥

५ “ दंतमास्थि तथा शृंगं रूप्यसौवर्णभाजनम् । मणिपात्राणि शंखं चेत्येतान्प्रक्षालयेज्जलैः ॥

“ आयसेष्वायसानां च सीसस्याग्न्यौ विशोधनम् । स्नेहो वा गोरसो वाऽपि तत्र शुद्धिः कथं भवेत् ॥ (२६)

“ अल्पं परित्यजेत्तत्र स्नेहस्य पचनेन च । अनलज्वालयया शुद्धिर्गोरसस्य विधीयते ” ॥ इति ।

याज्ञवल्क्यः (आ. १९०)—

“ त्रपूसीसकताम्राणां क्षाराम्लोदकवारिभिः । भस्माद्भिः कांस्यलोहानां शुद्धिः प्लावो द्रवस्य तु ” ॥

१० एतच्चांम्लोदकादिभिः शुद्धिविधानं नियमार्थम् ।

“ मलसंयोगजं तज्जं यस्य येनोपहन्यते । तस्य तच्छोधनं प्रोक्तं सामान्यं सर्वशुद्धिषु ” ॥

इत्याविशेषेण स्मरणात् । शुद्धिः प्लावो द्रवस्य तु द्रवद्रव्यस्य घृतादेः प्रस्थप्रमाणाधिकस्य

श्वकाक्रोपाद्युपहतस्यामेध्यसंसृष्टस्य च प्लावः प्लावनं शक्तिविषये ततोऽल्पस्य त्याग इत्यर्थः ।

तथा शंखः—“ अभ्यवहार्याणां घृतेनाभिघारितानां पुनः पचनम् । एवं प्रस्थाधिकानां स्नेहानां

१५ स्नेहद्रवरसानाम् ” इति । कीटाद्युपहतस्योत्पवनमेव । यथाह मनुः (५।११४)—

“ द्रवाणां चैव सर्वेषां शुद्धिरुत्पवनं स्मृतम् ” इति । उत्पवनं वस्त्राद्यन्तारितपात्रे प्रक्षेपः । मधूदकादेः

पात्रान्तरानयनाच्छुद्धिः । “ मधूदके पयस्तद्विकाराश्च पात्रात्पात्रान्तरानयनाच्छुद्धा ” इति

बोधायनस्मरणात् (ध.सू. १।६।४७) । पर्णापशदहस्ताप्राप्तस्य मधुघृतादैः पात्रान्तरानयनं पुनः

पचनं च कार्यम् । बोधायनः (१६।३४-३८)—“ तैजसानामुच्छिष्टानां गोशकुन्मृद्रसमभिः

२० परिमार्जनमन्यतमेन वा ताम्ररजतसुवर्णानाम्मलैः मूत्रपुरीषलोहितरेतःप्रभृत्युपहतानां तैजसानां

पात्राणां पुनःकरणं गोमूत्रे वा सप्तरात्रं परिशयनं महानद्या वा ” इति । याज्ञवल्क्यः (आ. १९१) ॥

“ अमेध्याक्तस्य मृत्तोयैः शुद्धिर्गन्धादिकर्षणात् ” इति । आदिग्रहणाद्धेपस्यापि ग्रहणम् । यथाह

गौतमः (१।४५) “ लेपगन्धापकर्षणे शौचममेध्यलिप्तस्य ” इति । सर्वशुद्धिषु च प्रथमं

मृत्तोयैरेव लेपगन्धापकर्षणं कार्यम् । अशक्तावन्येनापि । “ अद्भिः पूर्वं मृदा च ” इति (१।४६)

२५ गौतमवचनात् । आपस्तंबः (१।५।१७।११-१३)—“ परिमृष्टं लौहं प्रयतम् । निर्लिखितं

दारुमयम् । यथागमं यज्ञे ” इति । लौहं कांस्यादि भस्मादिभिः परिमृष्टं प्रयतं भवति दारुमयं

निर्लिखितं नष्टं प्रयतं यथागमं शोधितं प्रयतं भवति तद्यथा अग्निहोत्रहवणीदर्भैराद्भिः प्रक्षालित-

सोमपात्राणि मार्जालिये प्रक्षालितानि आज्यपात्राण्युष्णेन वारिणा ” इति ।

स्मृत्यर्थसारे—“ सौवर्णं राजतं लौहं विण्मूत्रादि स्पृष्टमात्रं निर्लेपं जलप्रक्षालनाच्छुध्येत् । सलेपं

३० भस्मजलाभ्यां शुध्येत् । अत्यंतोपहतं वान्हितप्तं जलप्रक्षालनाच्छुध्येत् । सौवर्णं राजतं ताम्रं

चंडालोदक्याद्युच्छिष्टं त्रिःसप्तभस्माभिरम्लोदकेन शुध्यति कांस्यादेरावर्त्तनं बहुपत्राते सर्वेषामावर्त्तनं

तैजसानां गोमूत्रपरिवासने लेपापगमेऽप्यावर्त्तनं ताम्रस्य विण्मूत्रादिचंडालद्रूपितस्याम्लोदकाभ्यां

शुद्धिः कांस्यपित्तलयोर्विण्मूत्रादिगंधूपादप्रक्षालनादिचंडालादिस्पर्शेऽपि त्रिः सप्तकृत्वोऽपि

भस्मना परिमृज्य प्रक्षालनाच्छुद्धिः । अल्पकालोपहतौ तापनपरिलेखनाभ्यां शुद्धिः । बहुकालोप-

हतौ आवर्त्तनम् । यद्वा भूमौ निखाय पण्मासे गते परिमार्जनम् । कांस्यपित्तलयोः श्वकाकस्पर्शे

शुद्धस्पर्शे च दशकृत्वो भस्मभिः प्रक्षालनं अल्पकालोपहतौ लवणतैलापवर्षणैः शुद्धिः । बहुकाले त्वावर्तनम् । त्रपुसीसायसानां भस्मजलाभ्यां शुद्धिः । सर्वे तैजसं स्वल्पोपहतं गोमूत्र-गोमयमृद्भस्मान्लोदकैः शुचि यथार्हं स्यात् शुक्तिशंसपाषाणमणीनामब्जानां विण्मूत्रचंडाला-युच्छिष्टस्पर्शनमात्रे जलप्रक्षालनाच्छुद्धिः । सलेपानां भस्मजलाभ्यामत्यंतोपहतानां सप्ताहं भूमौ निखाय प्रक्षालनाच्छुद्धिः । घृतस्य नवनीतस्य वा आढकप्रमाणस्य श्वकाकपिपीलिकादिदुष्टस्य ५ दुष्टांशं समुद्धृत्य वस्त्रेण परिशोध्य तज्जातीयेन तद्भांडं पूरयित्वा तत्सर्वमग्नौ प्रताप्य गायत्र्यभि मंत्रेण जलाभ्युक्षणाच्छुद्धिः । तक्रतैलक्षीरदध्नां द्रोणप्रमाणानां काकाद्युपहतौ घृतवच्छुद्धिः । दधिक्षीराणि शुद्धभांडस्थानि द्विजभांडप्रक्षेपाच्छुद्धानि भवंति । नवनीतं घृतं तैलं क्षौद्रं दासादि-भांडस्थं विप्रभाडे क्षितं शुध्येत् । चंडालेन प्रमादतः स्पृष्टं नवनीतादिजले क्षिप्त्वा उद्धृतं शुध्येत् । आढकप्रमाणान्यूनघृतादीनां द्रोणप्रमाणान्यूनतक्रादीनां च पूर्वोक्तोपहतौ परित्यागोऽ- १० नापदि । आपदि तु पूर्वोक्तविधिभिः शुद्धिः । गुडलवणादीनामिति पर्यग्निकरणमिति । मनुः (५।११४)—“ प्रोक्षणं संहतानां तु दारवाणां तु तक्षणम् ” ॥ इति । संहतानां पृथक्-द्रव्यसमवायरूपाणम् ॥ तथा चांगिराः—

“ शयनासनयानानि रोमबद्धानि यानि च । वस्त्राणि तानि सर्वाणि संहतानि प्रचक्षते ” ॥ इति ॥

मनुः (५।११७)—

“ अद्भिस्तु प्रोक्षणं शौचं बहूनां धान्यवाससाम् । प्रक्षालनेन त्वल्पानामद्भिः शौचं विधीयते ” ॥ संहतानां धान्यवाससां मध्ये बहूनां चंडालादिस्पर्शे प्रोक्षणं स्पृष्टानामल्पत्वे तेषां स्पृष्टानां प्रक्षालनमित्यर्थः । स्मृत्यंतरे—

“ वस्त्रधान्यादिराशीनामेकदेशस्य दूषणे । तावन्मात्रं समुद्धृत्य शेषं प्रोक्षणमर्हति ॥

“ स्पृष्टास्पृष्टसमत्वे च सर्वं प्रोक्षणमर्हति ” ॥ इति । इयत्स्पृष्टमियदस्पृष्टमित्यविवेके तु प्रक्षालन- २० मेव । स्पृष्टानां बहुत्वे सर्वेषां क्षालनमुक्तं विज्ञानेश्वरेण (पृ. ५२ पं. १९-२०)—अनेकपुरुषैर्धार्याणां द्रोणाधिकानां धान्यानां दशाधिकानां वाससां स्पृष्टानामस्पृष्टानां च प्रोक्षणमेवेति निबंधकृतः । याज्ञवल्क्यः (आ. १८४-८५)—

“ प्रोक्षणं संहतानां च बहूनां धान्यवाससाम् । तक्षणं दारुशृंगास्थनां गोवालैः फलसंभवाम् ॥

“ मार्जनं यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्मणि ” ॥ दारूणां मूत्रपुरीषादीनां दृढवासितौ गंधलेपौः २५

यदि मृज्जलप्रक्षालनेनापगच्छेतां तदा वास्यादीनां तक्षणं तक्षणेनाप्यनपगमे परित्यागः । यज्ञपात्राणां सुगादीनां दक्षिणेन हस्तेन दर्भादिना वा यथाशास्त्रं मार्जनमित्यर्थः । सलेपाना-मेव केषांचिल्लेपापकर्षणे विशेषहेतूनाह स एव (आ. १८६-१८७)—

“ सोषैरुदकगोमूत्रैः शुद्धत्याविककौशिकम् । सश्रीळलैरंशुपट्टं सारिष्टैः कुतपं तथा ॥

“ सगौरसर्षपैः क्षौमं पुनः पाकेन मृन्मयम् ” ॥ इति । सोषैः ऊषमृत्तिकासाहितेन गोमूत्रेण उद- ३० केन वा लेपापेक्षया आविकमूर्णामयं कौशिकं कोशप्रभवं पट्टादि प्रक्षालितं शुध्यति । अंशुपट्टं वल्कलतंतुकृतं सश्रीफलैर्बिल्वफलसहितैः । कुतपः पार्वतीयछागरोमनिर्मितः कंबलः सारिष्टैः अरिष्टफलसहितैः उदकगोमूत्रैः शुध्यतीत्यर्थः । अल्पोपघाते प्रोक्षणादिना शुद्धिमाह देवलः—

“ और्णिकौशेयकुतपपट्टक्षौमडुकूलजाः । अल्पशौचा भवन्त्येते शोषणप्रोक्षणादिभिः ॥

“तान्येवामेध्ययुक्तानि क्षालयेच्छोधनैः स्वकैः । धान्यकलकैस्तु फलजै रसैः क्षारानुगैरपि ॥
“तूलिकासुपधानं च पुष्परक्तावरं तथा । शोषयित्वातपे किञ्चित्करैः संमार्जयेन्मुहुः ॥

“पश्चाच्च वारिणा प्रोक्ष्य विनियुंजीत कर्मणि । तान्यप्यतिमलिष्ठानि यथावत्परिशोधयेत्” ॥ इति ॥
पुष्परक्तानि कुंकुमकुसुमादिरक्तानि । शंखः “रागद्रव्याणि प्रोक्षितानि शुचीनि ” ॥ इति ।

५. पराशरः (७३०)—

“वेणुवल्कलचीराणां क्षौमकार्पासवाससाम् । और्णनेत्रपटानां च प्रोक्षणाच्छुद्धिरिष्यते” ।
वेणुशब्देन तत्कार्याणि कटव्यजनादीनि गृह्यन्ते । नेत्रपटाः भूर्जत्वगादयः । स एव (७३१)—

“तूलिकाद्युपधानानि रक्तवस्त्रादिकानि च । शोषयित्वाऽर्कवातेन प्रोक्षणाच्छुचितामियुः” ॥ इति ।
तूलेन निर्मिता शय्या तूलिका । आदिशब्देनासनोपाश्रयादीनि गृह्यन्ते । उपधानमुच्छर्षिकं

१० तूलिकादीनि च उपधानानि च तूलिकाद्युपधानानीत्यर्थः । स एव (७३२)—

“मुञ्जेपस्करशूर्पाणां शणस्य फलचर्मणाम् । वृणकाष्ठस्य रज्जूनामुदकाभ्युक्षणं मतम् ॥

“मृन्मये दहनाच्छुधिर्धान्यानां मार्जनादपि ” ॥ इति । ‘मृन्मये दहनात्’ इत्येतदुच्छिष्टाद्युप-
हतिविषयम् । चंडालादिस्पर्शे त्याग एव । यथाह पराशरः (६१४)—

“चंडालाद्यैस्तु संस्पृष्टं धान्यं वस्त्रमथापि वा । प्रक्षालनेन शुध्येत परित्यागान्महीमयम्” ॥ इति ।

१५ स्मृत्यन्तरेऽपि—

“अंगारेण भवेच्छुद्धिस्ताम्राणां कांचनस्य च । जलशौचं च वस्त्राणां परित्यागेन मृन्मयम्” ॥ इति ।

“मार्जनं यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्मणि । चमसानां ग्रहाणां च शुद्धिः प्रक्षालनेन तु ॥

“चक्षणां सुक्ष्मवाणां च शुद्धिरुष्णेन वारिणा । स्फ्यशूर्पशकटानां च मुसले लुत्तलस्य च ॥

“चेलवच्चर्मणां शुद्धिर्वैदलानां तथैव च । शाकमूलफलानां च धान्यच्छुद्धिरिष्यते ” ॥

२० वैदलानां वेणुदलनिर्मितानाम् ॥

“कौशेयाविकयोत्तपैः कुतपानामरिष्टकैः । श्रीफलैरंशुपट्टानां क्षौमानां गौरसर्षपैः ॥

“क्षौमवच्छंखशृंगाणामस्थिदंतमयस्य च । शुद्धिर्विज्ञानता कार्या गोमूत्रे गोदकेन वा ॥

“प्रोक्षणात्तृणकाष्ठानि पलालं च विशुध्यति । मार्जनोपांजनैर्वैश्म परित्यागेन मृन्मयम्” ॥

उपांजनं उपलेपनम् । बोधायनः (१।६।३३-३४)—“मृन्मयाना पात्राणामुच्छिष्टसम-

२५ न्वारवधानामवकूलनमुच्छिष्टलेपोपहतानां पुनर्दहनम् । मूत्रपुरीषलोहितरेतःप्रभृत्युपहताना-

मुत्सर्गः । फलमयानामलावुविल्वनालिक्रेगणां गोवालैः परिमार्जनम् । नलवेणुशरकुशव्यूतानां

गोमयेनाद्भिः प्रक्षालनम् व्रीहीणामुपघाते प्रक्षालनं बहूनां तु प्रोक्षणं तंदुलानामुत्सर्गः” ॥

(१।६।२१-३२) “असंस्कृतायां भूमौ न्यस्तानां तृणानां प्रक्षालनं परोक्षोपहतानाम-

भ्युक्षणमेवं क्षुद्रसमिधां महतां काष्ठानामुपघाते प्रक्षाल्यावशोषणं दारुमयणां पात्राणामुच्छिष्ट-

३० समन्वारवधानां अवलेखनमुच्छिष्टलेपोपहतानामवतक्षणम् । मूत्रपुरीषलोहितरेतःप्रभृत्युपहताना-

मुत्सर्गस्तदेतदन्यत्र निर्देशाच्चैतदग्निहोत्रे धर्मोच्छिष्टे ब्रह्मोदनेषु च तेषु सर्वेषु दंभरद्भिः

प्रक्षालनम् सर्वेष्वेव नोमभक्षेष्वाद्भिरेव मार्जालीये प्रक्षालनम् मूत्रपुरीषलोहितरेतःप्रभृत्यु-

पहतानामुत्सर्गः ” इति ।

गौतमः (१।२८-३३)—“परिमार्जनप्रदाहतक्षणनिर्णेजनानि तैजसमार्तिकदारवतांतवानाम् ।

तैजसवदुपलमणिशंखशुक्तीनाम् । दारुवदस्थिभूय्योरावपनं च भूमेश्चेलवद्रज्जुविदलवचर्मणा-
मुत्सर्गो वाऽत्यंतोपहतानाम् ” इति । आवपनमन्यदानीय पूरणम् ।

स्मृत्यर्थसारे—“ मृण्मयानां पात्राणामीषदुपहतौ पुनर्दाहाच्छुद्धिः विण्मूत्राद्युपहतानां
चंडालसूतिकाशत्रोदकयास्पृष्टानां त्याग एव । आत्रिककंचलस्याल्यदोषे सूर्यरश्मिभिः शुद्धिः ।
विण्मूत्रादिदोषे वाल्मीकमृत्तिकया प्रक्षालनाच्छुद्धिः । नीलीसंघयुक्तवंशं स्वरूपेण त्याज्यम् । ५
कुसुंभादिगंजितवस्त्रमुपहतं चेच्छोषणाच्छुध्यति । विण्मूत्रादिसंस्पृष्टौ तदंशं संशोध्य संशोषणा-
च्छुध्यति । ऊर्णाकार्पासतूलकुसुंभकुंकुमकर्पूरनिर्यासादीनां चैवम् । श्वेतवस्त्रं चंडालादिस्पृष्टं
प्रक्षालनाच्छुध्येत् । धान्यमशुद्धं मृत्तिकायुक्तं तंडुलीकरणाच्छुध्येत् । धान्यराशौ मूत्रादियुक्ते
तमंशमपास्य शिष्टमभ्युक्षणाच्छुध्येत् । धान्ये गृहस्थिते गृहदाहे सति तत्र पशुमरणे तत् धान्यं
त्याज्यमेव । भूमिगर्भस्थं कुसूरस्थं च धान्यमभ्युक्षणाच्छुध्येत् । मुद्गरमाषादिधान्यानामल्पोप- १०
हतौ प्रोक्षणाच्छुद्धिः । अत्युपहतौ त्यागः । चंडालपतितादिसंस्पृष्टं पुस्तकं प्रोक्षयेत् ” इति ॥
विष्णुः ()—

“ मृत्पिण्डवृणकाष्ठानां श्वभिश्चंडालत्रायसैः । स्पर्शने विहितं शौचं सोमसूर्याशुमारुतैः ” ॥
भूमिशुद्धिमाह याज्ञवल्क्यः (आ. १७८)—

“ भूशुद्धिर्मार्जनाद्दाहात्कालाद्भोक्रमणात्तथा । सेकादुल्लेखनाल्लेपाद्गृहं मार्जनलेपनात् ” ॥ १५
मार्जन्या पांसुवृणादीनां प्रोत्सारणं मार्जनम् । दाहस्तृणकाष्ठैः कालो यावता कालेन लेपादिक्षयो
भवति तावान् । गोक्रमणं गवां पादपरिघट्टनम् । सेकः गोमूत्रादिभिः क्षीरगोमूत्रगोमयवारिभिः
प्रवर्षणाद्वा । उल्लेखनं तक्षणं खननं वा । लेपो गोमयादिभिः । गृहं मार्जनानुलेपाभ्यां शुध्यति ।
गृहस्य पृथगुपादानं संमार्जनानुलेपयोः प्रतिदिवसप्राप्त्यर्थम् । स्मृत्यंतरे—

“ प्रातः प्रतिदिनं गेहं सिंचेद्गोमयवारिभिः । मार्जयेच्च तथा सायं दीपैरुज्ज्वालयेद्गृहम् ” ॥ इति । २०

मनुरपि (५।१२२)—

“ संमार्जनेनां जनेन सेकेनोल्लेखनेन च । गवां च परिव्रासेन भूमिः शुध्यति पंचभिः ” ॥

बोधायनः (१।५।५८—५९)—“ भूमेस्तु संमार्जनप्रोक्षणोपलेपनावस्तरणोल्लेखनैर्यथास्थानं
दोषविशेषात्गायत्यम् । अथाप्युदाहरंति

“ गोचर्ममात्राविंदुर्भूमेः शुध्यति पातितः । समूढमसमूढं वा यत्रामेध्यं न लक्ष्यते ” ॥ इति । २५

वसिष्ठः* (१।५७)—

“ खननाद्दहनाद्द्विर्धर्षणात् गोभिराक्रमात् । चतुर्भिः शुध्यते भूमिः पञ्चमाञ्चोपलेपनात् ” ॥
नाभिहितैर्मार्जनादिभिः समस्तैर्व्यस्तैर्वा अमेध्या दुष्टा मलिना च भूमिः शुध्यति । तथा च
मेध्यभूमेः शोध्याभूमेस्त्रैविद्याध्याभिधानपूर्वकं शुचित्वभागं दर्शयति । तथा च देवलः—

“ यत्र प्रसूयते नारी प्रियने दृश्यतेऽपि वा । चंडालाध्युषितं यत्र यत्र विष्टादिसंगतिः ॥ ३०

“ एवं कश्मलभूयिष्ठा भूरमेध्या प्रक्रीर्तिता । श्वमूकरखरोष्ट्रादिसंस्पृष्टा दुष्टां व्रजेत् ॥

“ अंगारतुषकेशास्त्रिभस्माद्यैर्मलिना भवेत् । पंचधा वा चतुर्धा वा भूरमेध्या विशुध्यति ॥

“ दुष्टान्विता त्रिधा द्वेधा शुध्यते मलिनैकधा ” ॥ अत्र विज्ञानेश्वरः (पृ. ५४ पं. १५—१९)

“ यत्र मनुष्या दह्यन्ते यत्र चंडालाद्यैरध्युषितं तयोः पंचभिः दाहकालगोक्रमणसेकोल्लेखनैः शुद्धिः । यत्र मनुष्या जायन्ते यत्र वा म्रियन्ते यत्र चात्यन्तं विष्टादिसंगतिः तासां दाहवर्जितैस्तैरेव चतुर्भिः । श्वसूकरखरैश्चिरकालमध्युषितायाः गोक्रमणसेकोल्लेखनैस्त्रिभिः । उष्ट्रग्रामकुक्कुटादिभिश्चिरकालमधिवासितायाः सेकोल्लेखनाभ्यां शुद्धिः । अंगारतुषादिभिश्चिरकालमधिवासिताया

५ मलिनाया उल्लेखनेन शुद्धिः । मार्जनानुलेपने तु सर्वत्र समुच्चीयेते” इति । वृद्धगौतमः—

“ सेचनान्मार्जनाद्वेश्म शुष्पेत्सूतेगृहं पुनः । खननोल्लेखमृष्टेपपुग्याहैर्विंशतेः परम् ” ॥ इति । स्मृत्यर्थसारे—“भूतलं नारीप्रसवदूषिणं चेत्तत्स्थानान्मृत्तिकामुद्धृत्यान्यां मृत्तिकामापूर्य गवा-
क्रमणमार्जनाभ्युक्षणैः पुण्याहवाचनाच्च शुध्यति । अत्यंतोपहतौ वृगाग्निना दाहश्च । भूतलस्य चिरकालं विण्मूत्रादिवासितस्य श्मशानत्वं गतस्यातिवृष्टिप्रक्षालनात्पश्चात्पूर्वोक्तविधिना शुद्धिः ।

१० आरामे क्षेत्रे वा श्मशानत्वं गते अत्यंतवृष्टेरूर्ध्वं हलर्ध्वगाच्छुद्धिः । गृहे विप्रश्चात्रियविशां मरणे तत्रत्यं मृन्मयं भांडं पक्कमन्नं च संत्यजेत् । मृतदेशं गोमयेनोपलिप्याजाघृतेन वा पुण्याहवाचनैर्वा कुशसुवर्णमिश्रोदकैः प्रोक्षणाद्वा शोधयेत् । गृहे जनने मरणे वा जाते आशौचादूर्ध्वं मेध्यमृत्तिकामुद्धृत्यापुण्याहवाचनाच्छुद्धिः । गृहे दग्धे तत्र मार्जारादिमृतौ तद्गृहस्य कर्षणात्प्रोक्षणाच्छुद्धिः ” इति ।

१५ चंडालस्य सकृद्गृहप्रवेशे कर्त्तव्यां शुद्धिमाह पराशरः (६।४३।४५)—

“ गृहस्याभ्यन्तरं गच्छेच्चंडालो यदि कस्यचित् । तमगाराद्विनिर्वास्य मृद्भांडं तु विसर्जयेत् ॥

“ रसपूर्णं गृहे भांडं न त्यजेत्तु कदाचन । गोमयेन तु संमिश्रैर्जलैः प्रोक्षेद्गृहं तथा ॥

“ प्रवेशयेत्ततः पश्चाद्गृहे गां चाप्यजामपि ” ॥

किञ्चित्काल एकस्मिन्सहवासेऽपि स एव (६।३२)—

२० “ अविज्ञातस्तु चंडालो यत्र वेद्मनि तिष्ठति । विज्ञाते तूपसंज्ञस्य द्विजाः कुर्वन्त्यनुग्रहम् ” ॥

परिषदा विधेयं व्रतविशेषं दर्शयति स एव (६।३४-३५)—

“ दध्ना च सर्पिषा चैव क्षीरगोमूत्रयावकम् । भुञ्जीत सह भृत्यैश्च त्रिसंध्यमवगाहनम् ॥

“ त्र्यहं भुञ्जीत दध्ना च त्र्यहं भुञ्जीत सर्पिषा । त्र्यहं क्षीरेण भुञ्जीत एकैकेन दिनत्रयम् ” ।

दध्ना संयुक्तं गोमूत्रं यावकं च दिनत्रयम् । घृतक्षीरयोरप्येवं पुनरप्यैकैकेन युक्तमेकस्मिन्दिने

२५ मिलित्वा द्वादशरात्रम् । दध्यादीनां परिमाणमाह स एव—

“ दधिक्षीरस्य त्रिपलं पलमेकं घृतस्य तु । यावकस्य परीमाणं ग्रासमात्रमिति स्मृतम् ” ॥

एवं चेतनानां शुद्धिमभिवायाचेतनानामप्याह स एव (६।३७-४०)—

“ भस्मना तु भवेच्छुद्धिरुभयोस्ताम्रकांस्ययोः । जलशौचेन वस्त्राणां परित्यागेन मृन्मयम् ॥

“ कुसुमगुडकार्पसलवणं तैलसर्पिषी । द्वारे कृत्वा तु धान्यानि दद्याद्वेश्मनि पावकम् ॥

३० “ एव शुद्धस्ततः पश्चात्कुर्याद्वाह्मणतर्पणम् । त्रिंशतं गोवृषं चैवं दद्याद्विष्टेषु दक्षिणाम् ॥

“ पुनर्लेपनस्ताभ्यां होमजप्येन शुध्यति । आधारेण च विप्राणां भूमिदोषो न विद्यते ” ॥ इति ।

रजक्यादिभिः सह संवासेऽप्याह स एव (६।४१-४२)—

“ रजकी चर्मकारी च लुब्धकी वेणुजीविनी । चातुर्वर्ण्यस्य तु गृहे ह्यविज्ञाता तु तिष्ठति ॥

“ज्ञात्वा तु निष्कृतिं कुर्यात्पूर्वोक्तस्यार्धमेव च । गृहदाहं न कुर्वीत शेषं सर्वं च कारयेत्” ॥
क्षेत्रारामादावज्ञानेन चण्डालं सहवासेऽप्याह स एव (१०।१८)—

“चण्डालैः सह संपर्कं मासं मासार्धमेव वा । गोमूत्रयावकाहारो मासार्धेन विशुध्यति” ॥ इति ।
मासं च अर्धमासं च मासार्धम् । माससंकरे मासव्रतेन शुद्धिः । अर्धमाससंकरे अर्धमासेन
शुद्धिरित्यर्थः । माधवीये—

“यामाहं डशतं त्यक्त्वा नगराच्च चतुर्गुणम् । भूमिः सर्वत्र शुद्धा स्याद्यत्र लेपो न दृश्यते” ॥ इति ।
मनुः (५।१२७)—

“आपः शुद्धा भूमिगता वैवृष्ण्यं यामु गोर्भवेत् । अव्याप्ताश्चेदमेध्येन गंधवर्णरसान्विताः” ॥ इति ।
याज्ञवल्क्यः (आ. १९२)—

“शुचि गोवृत्तिकृत्तयोः प्रकृतिस्थं महीगतम् । तथा मांसश्वचण्डालकव्यादादिनिपातितम्” ॥ इति । ५०
प्रकृतिस्थं रूपरसगंधांतरमनापन्नमुच्छिष्टाद्यनुपहतं शुचि आचमनादियोग्यं भवति । एतच्च
यगांतरविषयम् । “गोवृत्तिशिष्टे पयासि कलौ नाचमनक्रिया” इति कलौ निषेधस्मरणात् ।

यमः—

“तथा क्षोभ्यतटाकादिनदीवापीसरांसि च । चण्डालाद्यशुचिस्पर्शे तीर्थतः परिवर्जयेत् ॥
“अंत्यजैः स्वीकृते तीर्थे तटाकेषु नदीषु च । शुध्यते पंचगव्येन पीत्वा तोयमकामतः” ॥ १५
तीर्थमन्त्रावतरणप्रदेशः ।

“अक्षोभ्यानामपां नास्ति प्रसृतानां च धावताम् । स्तोकानामुद्धृतानां च दोषदुष्टत्वमिष्यते” ॥

देवलः—

“उद्धृताश्चापि शुध्यन्ति शुद्धैः पात्रैः समुद्धृताः । एकरात्रोषिता आपस्त्याज्याः शुद्धा अपि स्वयम्” ॥

पराशरः—

“नदी वेगेन शुध्येत लेपो यदि न दृश्यते । वापीकूपतटाकेषु दूषितेषु कथंचन ॥

“उद्धृत्य वै कुंभशतं पंचगव्येन शुध्यति” ॥ इति । श्वमाजरादीनां तत्र पतितानां मरणमात्रे
इयं शुद्धिः । मृतशरीरक्षरणकृतायामत्यंतोपहतौ विष्णुराह (५४।२)—

“मृतपंचनखात्कूपादत्यंतोपहतात्तथा । अपः समुद्धरेत्सर्वाः शेषं शास्त्रेण शोधयेत् ॥

“बन्धिप्रज्वालनं कृत्वा कूपे पक्वेष्टकाचिते । पंचगव्यं न्यसेत्तत्र नवतोयसमुद्भवे” ॥ इति २५
मनुष्यशरीरक्षरणेऽप्येषैव शुद्धिर्महत्सु तटाकादिषु नास्ति दोषः ।

“वापीकूपतटाकानामेवं शुद्धिर्विधीयते । अल्पानामेव पयसां महत्सु न तु दूषणम्” ॥ इति
स्मरणात् । जातुकर्णिः—“मूत्रपुरीषाद्युपहता आपः सोमसूर्याशुस्पर्शे शुध्यन्ति” इति ।

देवलः—

“क्लिन्नं भिन्नं शवं चैव कूपस्थं यदि दृश्यते । पयः पिबेत्रित्रात्रं तु मानुषं त्रिगुणं पिबेत्” ॥ इति ।
एतदपद्विषयम् ।

“क्लिन्ने भिन्ने शवे तोये तत्रस्थं यदि तत्पिबेत् । शुद्ध्यै चांद्रायणं कुर्यात्तप्तकृच्छ्रमथापि वा” ॥ इति

५ हारतिस्मरणात् । शातातपः—

“अंत्यैरपि कृते कूपे सरो वाप्यादिके तथा । तत्र स्नात्वा च पीत्वा च प्रायश्चित्तं न विद्यते” ॥ इति
एतदापद्विषयम् ।

“चंडालखातवापीषु पीत्वा सलिलमग्रजः । अज्ञानाच्चैकभक्तेन त्वहोरात्रेण शुध्यति ” ॥ इति
पराशरस्मरणात् (६।२३) । विज्ञानेश्वरः—

“ प्रपासरण्ये घटके च सैरे द्रोण्यां जलं केशविनिःसृतं च ।

“ इवपाकचंडालपरिग्रहेषु पीत्वा जलं पंचगव्येन शुध्येत् ” ॥ इति ।

संवर्त्तः—

“ सीरखातप्रपातोयं पीत्वा नावगतं जलम् । अहोरात्रोपवासेन पंचगव्येन शुध्यति ” ॥ इति ।

सीरखातप्रपातोयपाने प्रायश्चित्तमेतदापद्विषयम् । अनापदि तु चांद्रायणम् । “सीरखातप्रपातोयं

५ चांद्रायणं चरेत् ” इति पराशरस्मृतेः ।

संवर्त्तः—

“ वापीकूपतटाकानां दूषितानां विशुद्धये । अपां घटशतोद्धारः पंचगव्यं च निक्षिपेत् ” ॥ इति ।

क्रिम्युपहतदेहस्य शुद्धिमाह पराशरः (६।४५-४६)—

“ ब्राह्मणस्य व्रणद्वारे पूयशोणितसंभवे । क्रिमिरुत्पद्यते यस्य प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥

५ “ गवां मूत्रपुरीषेण दधिक्षीरेण सर्पिषा । त्र्यहं स्नात्वा च पीत्वा च क्रिमिदष्टः शुचिर्भवेत् ” ॥ इति ।

एतच्च न.भेरधोभागे द्रष्टव्यम् । उपरिभागे तु भानुराह—

“नाभिकण्ठान्तरोद्भूते व्रगे चोत्पद्यते क्रिमिः । षड्भात्रं तु तदा प्रोक्तं प्राजापत्यं शिरोव्रणे” ॥ इति ।

बोधायनः (१।४।२३)—

“ यथैव सोमसंयोगाच्चमसो मेध्य इष्यते । अपां तथैव संयोगान्नित्यं मेध्यः कमंडलुः ॥

५ “ततः शौचं ततः पानं संध्योपासनमेव च । निर्विशंकेन कर्तव्यं यदीच्छेच्छ्रेय आत्मनः” ॥ (१६) इति

अत्र कमंडलुशब्देन ताम्रादिपात्रमुच्यते । न तु नालिकेरफलादि ।

“ दीर्घकालं ब्रह्मचर्यं धारणं च कमंडलोः ” इति कलौ तस्य निषेधात् । “ यतिपात्राणि

मृदेणुदार्ढ्यानुमयानि च ” इति सन्यासिविषयत्वस्मरणाच्च । स एव—

“ प्रायश्चित्तैः पंचयेनो याजनाध्यापनैः कृतम् । प्रतिग्रहनिमित्तं तु त्यागेन तपसाऽपि च ” ॥ इति ।

५ तत्र केवलं तपसा शुध्यति, किंतु

“ षष्ठांशं कर्पको दद्यात् पंचमांशं तथा वणिक् । प्रतिगृह्य चतुर्थांशं दत्वा पापैः प्रमुच्यते ” ॥

इत्युक्ततुरीयांशदानेन तपसा कृच्छ्रचांद्रायणादिना च शुध्यति ।

तथा च मनुः (११।१९३)—“ यद्गर्हितेनार्जयन्ति कर्मणा ब्राह्मणा धनम् । तस्योत्सर्गेण शुध्यन्ति जप्येन तपसैव च ” ॥ इति ।

याज्ञवल्क्यः (आ. ७१)—

“ सोमः शौचं ददौ स्त्रीणां गन्धर्वस्तु शुभां गिरम् । पावकः सर्वमेध्यत्वं मेध्या वै योषितो ह्यतः ॥

“ विप्रस्तु पादतो मेध्यो गावो मेध्यास्तु पृष्ठतः । अजाश्वा मुखतो मेध्याः स्त्रियो मेध्यास्तु सर्वशः ” ॥ ५

शातातपः—

“ गोकुले यज्ञशालायां तिलयन्त्रेक्षुयन्त्रयोः।न मीमांस्यानि शौचानि स्त्रीषु बालातुरेष्वपि ” ॥ इति ।

पराशरः (७।३६-३७)—

“ रथ्याकर्दमतोयानि नावः पन्थास्तृणानि च । मारुतार्केण शुध्यन्ति पक्वेष्टकचितानि च ॥

“ अदुष्टाः संतता धारा वातोद्धूताश्च रेणवः । स्त्रियो वृद्धाश्च बालाश्च न दुष्यन्ति कदाचन ” ॥ इति । १०

उदकपानगतधाराः शुद्धाः । अशुद्धिप्रदेशाद्वायुनोत्थापिता अपि रेणवः स्पर्शार्हाः । पुरुषवत्प्रातः-
स्नानाद्यभावेऽपि योषिदादयः शुद्धा इत्यर्थः ।

वैखानसे “ आतुरे बाले महानसे स्त्रीषु शौचं न विचारणीयम् ” ॥ इति ।

बृहस्पतिः—

‘पादौ शुची ब्राह्मणानां अजाश्वस्य मुखं शुचिः।गवां पृष्ठानि मेध्यानि सर्वगात्राणि योषिताम्’॥इति। १५

मनुः (५।१२९-१३०)—

“ नित्यं शुद्धः कारुहस्तः पण्यं यच्च प्रसारितम् । ब्रह्मचारिगतं भैक्ष्यं नित्यं मेध्यमिति स्थितिः ॥

“ नित्यमास्यं शुचि स्त्रीणां शकुनिः फलपातने । प्रसवे च शुचिर्वत्सः श्वा मृगग्रहणे शुचिः ” ॥

याज्ञवल्क्यः (आ. १८७)—“ कारुहस्तः शुचिः पण्यं भैक्ष्यं योषिन्मुखं तथा ” ॥ इति ।

योषिन्मुखं संभोगकाले शुचिः । तथा पैठीनासिः—“ स्त्रीमुखं रतिसंसर्गे ” इति । २०

वासिष्ठात्रिबोधायनशातातपाः—

“ वत्सः प्रसवने मेध्यः शकुनिः फलपातने । स्त्रियश्च रतिसंसर्गे श्वा मृगग्रहणे शुचिः ” ॥ इति ।

मनुः (५।१०७)—

“ मृत्तोयैः शुध्यते शोध्यं नदी वेगेन शुध्यति । रजसा स्त्री मनोदुष्टा संन्यासेन द्विजोत्तमः ” ॥ इति ।

पराशरः—“ रजसा शुध्यते नारी विकलं या न गच्छति ” ॥ इति । विकलं गर्भधारणम् । २५

चतुर्विंशन्मते—“ रजसा शुध्यते नारी परपुंसाभिगामिनी ।

“ तथापि मुनिना प्रोक्तं प्रायश्चित्तं समाचरेत् । कुच्छार्धं ब्राह्मणी कुर्याद्विप्रस्य गमने सति ” ॥ इति ।

एतदनभ्यासविषयम् । स्मृत्यन्तरे—

“ स्त्रीशुद्धिरर्थशुद्धिश्च यस्य नास्त्यपि कर्मवान् । स एव नरकं याति शिरच्छेदे कृतो भिषक् ” ॥ इति ।

मनुः (५।१३२)—

“ मक्षिकाविप्रुषः छाया गौरश्वः सूर्यरश्मयः । रजोभूर्वायुरग्निश्च स्पर्शे मेध्यानि सर्वदा ॥

“ मार्जारश्चैव दर्वी च मारुतश्च सदा शुचिः ” ॥ इति ।

५ बोधायनः—

“ आसनं शयनं यानं नावः पंथास्तृणानि च । चंडालपतितस्पृष्टं मारुतेनैव शुध्यति ” ॥ इति ।

स्मृत्यर्थसारे —“प्रतिमा लोहजा अल्पोपहतिद्विषिता भस्मनोद्धर्षणात्पंचगव्येन शुध्येत् । प्रतिमा पाषाणजाऽल्पोपहतिद्विषिता बल्मीकमृत्तिकाजलैः प्रक्षालिता पंचगव्येन शुध्येत् । प्रतिमा विण्मूत्र-
१० श्वादिद्विषिता चेत्पंचगव्यैः पंचाहमाधित्रास्याप्लाव्य गोमूत्रगोमयबल्मीकमृत्तिकादिभिः सम्यक्
प्रक्षाल्य पुनः प्रतिष्ठया शुध्येत् । रत्नजानां पंचगव्यैः प्रक्षाल्य पुनः प्रक्षालनं कुर्यात् ” इति ।
तत्रैव—“बाल उपनयनादर्वाक् सदा शुद्धः स्त्री च विवाहादर्वाक् मूषिकः शुकपतंगमक्षिकाधान्य-
कीटा गेहस्त्यश्वच्छागशुका जलस्थाः सर्वे जीवाः स्वभावशुद्धा ” इति ।

इति द्रव्यशुद्धिनिरूपणम् । हरिः ओम् । करकृतमपराधं क्षंतुमर्हति संतः ।

इति श्रीवैद्यनाथदीक्षितविरचिते स्मृतिमुक्ताफले द्वितीयः परिच्छेदः ॥

१५ आह्निककाण्डं समाप्तम् । श्रीयवतेश्वरार्पणमस्तु ।



क्ष—“ यादृश पुस्तकं दृष्ट्वा तादृशं लिखितं मया । यदि शुद्धमशुद्धं वा मम दोषो न विद्यते ॥
शके १७६८ पराभवनामनवत्सरे दक्षिणायने वर्षाऋतौ माद्रपदे मासे शुक्लपक्षे चतुर्थ्या भोगवासरे
ताद्विने इदं पुस्तकं यवतेश्वरस्थशंकरनारायणेन लिखितं समाप्तम् ॥ ॥ स्वार्थं परार्थं च ॥
॥ श्रीकालभैरवस्तु ॥ श्री ॥ ॐ ॥

